

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद की पी-एच. डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध



1995

—: प्रस्तुतकर्ता :—

नरसिंह राव कल्याणी

एम. ए., एम. फिल.

Sundar 8/11/96

—: निर्देशिका :—

प्रो० शशि मुदीराज डी. लिट्.

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

हैदराबाद विश्वविद्यालय,

हैदराबाद-500 046 (आं. प्र.)



Name of the research scholar: K. Narsimha Rao
Department/Centre: Hindi
University of Hyderabad

This is to certify that I, K. Narsimha Rao have carried out the research embodied in the present thesis for the full period prescribed under the Ph. D. ordinances of the University.

I declare that no part of this thesis was earlier submitted for the award of any research degree or diploma to any university.

K. Narsimha Rao
Signature

Date: 08/01/1996.

Sundar
Research Supervisor

Sundar
Head of Department/Centre
Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
Hyderabad-500 134

K. Ranganna
Dean of School
DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
University of Hyderabad,
Hyderabad-500 134.

विषयानुक्रमिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका - - - - -	1 - x
<u>विषय सूची</u> - - - - -	1 - 48
1. व्यक्तित्व	1
2. कृतित्व	13
2.1. हिंदी ग्रंथ	
2.2. मराठी ग्रंथ	
2.3. अंग्रेजी ग्रंथ	
3. डॉ. पुंभाकर माचवे के उपन्यासों का सार-संक्षेप	23
4. निष्कर्ष	48
<u>अध्याय - एक</u> - - - - -	49 - 104
समसामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन	
1. पुस्तावना	49
2. समसामयिक : अर्थ और स्वल्प	50
2.1. समसामयिकता और आधुनिकता	
3. यथार्थवाद की परिभाषा	54
3.1. पश्चात्त्य	
3.2. भारतीय	
4. यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध	69
5. यथार्थवाद के प्रकार	72
5.1. समाजवादी यथार्थवाद	
5.2. आलोचनात्मक यथार्थवाद	

5.3.	प्रकृतवादी यथार्थवाद	
5.4.	अतियथार्थवाद	
5.5.	आदर्शानुसृत यथार्थवाद	
5.6.	मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद	
5.7.	ऐतिहासिक यथार्थवाद	
6.	उपन्यास और यथार्थवाद	94
7.	निष्कर्ष	103
<u>अध्याय - दो</u>		105 - 182

हिंदी उपन्यासों में समासमयिक यथार्थबोध का चित्रण

105

1. पुस्तावना
2. पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध 1850-1915 107
3. प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध 1916-1936 123
4. प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध 1937-1980 140-180
 - 4.1. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास युग 1937-1960 140-161
 - 4.1.1. समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.2. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.3. ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.4. प्रकृतवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.5. अतियथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.6. आदर्शानुसृत यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.7. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार

4.2. साठौत्तरी उपन्यास युग § 1960-1980§

161- 180

4.2.1. समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख
उपन्यासकार

4.2.2. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख
उपन्यासकार

4.2.3. ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख
उपन्यासकार

5. निष्कर्ष

180

अध्याय - तीन

183 - 284

डा० प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में समासमयिक यथार्थवाधः वर्गीय दृष्टभूमि
और आर्थिक संदर्भ में.

1. प्रस्तावना	183
2. वर्ग	184
3. वर्ग का उदय	187
3.1. वर्ण	
3.2. जाति	
3.3. वर्ग	
4. वर्ग विभाजन	197
4.1. उच्च वर्ग	
4.2. मध्य वर्ग	
4.3. निम्न वर्ग	
5. डा० प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में वर्ग चेतना	205
5.1. उच्च वर्ग	
5.2. मध्य वर्ग	
5.3. निम्न वर्ग	
6. निष्कर्ष	283

डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में समासामयिक यथार्थबोधः

औद्योगीकरण और अमानवीकरण के संदर्भ में

1. पुस्तावना	285
2. क्रान्ति और औद्योगीकर क्रान्ति	286
3. भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया	290
4. भारतीय समाज पर औद्योगीकरण का प्रभाव	300
4.1. सामाजिक परिस्थिति	301
4.1.1. मिल के अंदर बाहर की समस्याएं	
4.1.2. नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन	
4.1.3. दुर्बलताओं व अपराधों में वृद्धि	
4.1.4. नगरों में गंदी बस्तियों का निर्माण	
4.1.5. गांवों का पतन और नगरों के प्रति आकर्षण	
4.1.6. नगरीकरण से उपजा उब और अलगाव	
4.2. आर्थिक परिस्थिति	304
4.3. राजनैतिक परिस्थिति	305
5. डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में औद्योगीकरण और अमानवीकरण का चित्रण	305
5.1. सामाजिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव	308
5.2. आर्थिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव	329
5.3. राजनैतिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव	334
5.4. औद्योगीकरण और अमानवीकरण	339
6. निष्कर्ष	350

डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थबोध: सामाजिक
परिदृश्य में

1. पुस्तावना	351
2. डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण	353
2.1. नारी जीवन का यथार्थ	354
2.1.1. नारी विषयक अवधारणा	356
2.1.2. नारी की असहायता	360
2.1.3. दुरुपेय पृथान समाज और नारी	371
2.1.4. समाज अधिकार और नारी	380
2.1.5. दहेज समस्या	385
2.1.6. विवाह	389
2.1.7. प्रेम और धोखा	394
2.1.8. गरिबता नारी	398
2.1.9. वेश्या समस्या	402
2.1.10. देवदासी पृथा	406
2.1.11. सती पृथा	408
2.1.12. विधवा समस्या	410
2.1.13. तलाक और भरण पोषण	412
2.1.14. पुताउना और कलात्कार	415
2.1.15. कन्याओं की बिक्री	420

2.2. रंगभेद बनाम वर्णभेद - पारश्चात्य एवं भारतीय जीवन का यथार्थ	422
2.2.1. रंगभेद समस्या का ऐतिहासिक विवेचन	425
2.2.2. "जो" उपन्यास में रंगभेद बनाम वर्णभेद का चित्रण	430
2.3. गीढ़ियों का अंतराल और बदलते जीवन मूल्य	443
2.3.1. पुरानी पीढ़ी	446
2.3.2. बीच की पीढ़ी	449
2.3.3. नई पीढ़ी	452
2.4. युवावर्ग : सम्प्रामयिक यथार्थ	455
2.4.1. "किश्नोर" और "लापता" उपन्यासों में युवा वर्ग का चित्रण	459
2.5. समाज और राजनीति में फैली अनैतिकता	473
2.5.1. "बाँटे मेरी, बाकी उनका" उपन्यास में समाज और राजनीति में फैली अनैतिकता का चित्रण	474
3. निष्कर्ष	489

अध्याय - ४: - - - - - 494 - 511

उपसंहार

ग्रंथ सूची - - - - - I - XIV

भूमिका

"डॉ० पुभाकर माचवे" उस व्यक्तित्व का नाम है जिसके अन्दर न केवल साहित्यिक धारा प्रवाहित होती है, बल्कि संसार के सारे ज्ञान - विज्ञान की अजस्र स्रोतस्त्रिणी भी है। डॉ० माचवे बहुभाषी है और बहुमुखी प्रतिभाशाली हैं। उन्होंने हिंदी, मराठी तथा अंग्रेजी भाषाओं में अनेक ग्रंथों का सृजन किया है। ऐसे, वे गुजराती और बंगला भाषाएं भी अच्छी तरह जानते हैं। वे आधुनिक हिंदी साहित्य के एक ऐसे मूर्धन्य रचनाकार हैं जिन्होंने आधुनिक हिंदी साहित्य के लगभग सभी विधाओं में अपनी कलम चलायी है। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, एकांकी, व्यंग्य, निबंध रिपॉर्ताज, यात्रा वृत्तांत, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, बाल साहित्य और आलोचना के क्षेत्र में आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त साहित्य इतिहास लेखन तथा कोश निर्माण में विदेश की भाषाओं में साहित्य के आदान-प्रदान कराने में उन्होंने अनुवादक के रूप में अभूतपूर्व सहयोग दिया है। डॉ० माचवे न केवल इतिहास, पुरातत्व दर्शन, विज्ञान आदि क्षेत्रों का भी अपार ज्ञान अर्जित किये हुए हैं। इसी कारण उन्हें डॉ० रामविलास शर्मा ने "ज्ञान का विश्वकोश" कहा तो अज्ञेय और विष्णु पुभाकर ने "प्रतिभा पूज"।

ऐसे तो डॉ० पुभाकर माचवे जी के साहित्यिक जीवन का आरंभ सन् 1934 से होता है। किन्तु वे बचपन से ही कविता करने में रुचि लेते थे। अतः कह सकते हैं कि इनका साहित्यिक जीवन कविता लेखन से शुरू हुआ। वे बाद में सुप्रसिद्ध प्रयोगवादी कवि और लेखक बन गये।

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" द्वारा संपादित पुयोगवादी कविता संकलन "पुथम तारसप्तक" में प्रकाशित सात कवियों के कविताओं के अंतर्गत इनकी भी कविताओं का प्रकाशन हुआ। पुथम "तारसप्तक" का प्रकाशन सन 1943 ई० में हुआ था। इस कविता संकलन में माधवे जी की कविताओं के अतिरिक्त अज्ञेय, मुक्तिबोध, नैमीचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, हामशेर बहादुर सिंह और गिरिराज कुमार माथुर के कविताएं भी छपी थीं। डॉ० माधवे जी ने अपनी पुयोगवादी दृष्टि को केवल कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं किया है बल्कि साहित्य के अन्य विधाओं में भी नये-नये प्रयोग किये हैं विशेषतः उपन्यास के क्षेत्र में।

वस्तुतः साहित्य की अनेक विधाओं में नये नये प्रयोग करने के बावजूद डॉ० माधवे ने कभी भी सामाजिक यथार्थ के प्रति अन्धेरी नहीं की। उन्होंने समासमयिक सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का आकलन अपने उपन्यासों तथा अन्य विधाओं में अधिक सूक्ष्मता के साथ किया है। इसी कारण इनके उपन्यासों में हमें प्रायः दो विशिष्टताएं दिखाई देती हैं - एक चिंतन प्रधान कथा वस्तु और दो विशिष्ट शैली का प्रयोग।

डॉ० माधवे जी के उपन्यासों में कथा वस्तु विशिष्ट चिंतन पर आधारित होती है। इनमें समाज में व्याप्त सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को यथार्थ के साथ देखने की एक विशिष्ट दृष्टि होती है। वे उपन्यासों में केवल समस्या को प्रस्तुत नहीं करते बल्कि समस्या का सर्वांगीण स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो वे न सिर्फ सामाजिक समस्या को प्रस्तुत करते हैं बल्कि उस समस्या को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखते हुए उसके कारणों का पता भी लगाते हैं। इस प्रकार समाज में जनता को पीड़ित

करनेवाली कोई भी समस्या क्यों न हो, उसका चित्रण संपूर्ण यथार्थ के साथ पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करना इनकी विशेषता है। शायद इसलिए डॉ० माचवे जी के उपन्यासों को "विचार प्रधान उपन्यास" कहते हैं। इनके उपन्यासों में न अभूतपूर्व कल्पना कोशल का प्रदर्शन होता है और न ही मन को सुभाने-वाली कोरी आदर्शवादिता का। इनके उपन्यासों में जो कुछ भी होता है यथार्थ से बंधकर होता है उससे परे नहीं। हाँ, यह भी कहा जाता है कि इनके उपन्यासों में अतिबोधिकता का अंश कुछ ज्यादा ही रहता है। यह कथन एकाध उपन्यासों के संबंध में आंशिक रूप में सही है।

डॉ० माचवे जी के उपन्यासों में "परन्तु", "एकतारा", "द्राभा", "दर्द के पैबन्द", "घूत", लक्ष्मीबेन", "दशभुजा", "अन्दोली" आदि में विशेषतः नारी समस्याओं का चित्रण किया गया है। वर्तमान परिस्थितियों में नारी की स्थिति से अवगत कराते हुए माचवेजी कहते हैं कि नारी अपने संपूर्ण जीवन में पुरुषों पर ही निर्भर रहती है। वह पिता-पति और पुत्र की आश्रय के बिना इस समाज में स्वतंत्र रूप से नहीं रह सकती। ऐसे ही अनेक सामाजिक विसंगतियों को अपने इन उपन्यासों में यथार्थ के साथ चित्रित किया है। "तीस बालीस पचास" उपन्यास में लेखक समाज में गीढ़ियों के अन्तराल के कारण उत्पन्न होने वाले समस्याओं का चित्रण तथा मानव मूल्यों का रत्न दिखाया गया है। "किशोर" और "लापता" जैसे उपन्यासों में माचवे जी ने युवावर्ग में उत्पन्न होने वाले असंतोष, अलगाव और विद्रोही भावनाओं का मनोवैज्ञानिक यथार्थ के दृष्टि से अध्ययन किया है। समाज में युवाओं का पर्याप्त आदर और स्नेह न मिलने के कारण ही उनमें अजनबीपन और अलगाव की भावनाएं घर कर रही हैं। इसी के फलस्वरूप अनेक आवेश

में असामाजिक कार्यों में इन भावनाओं का विद्रोही रूप प्रकट होता है। इन उपन्यासों में हीनता ग्रन्थि का मनोवैज्ञानिक यथार्थता के साथ विवेचन हुआ है।

डॉ० माचवे जी का "जो" एक ऐसा उपन्यास है जो अमेरिका में व्याप्त रंगभेद समस्या पर आधारित है। शायद ही इस विषय पर यह हिंदी का पहला उपन्यास है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने नीग्रो जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का चित्रण किया है। और साथ में इस रंगभेद समस्या को भारत की अस्पृश्य समस्या के साथ जोड़ कर देखा है। "किसलिए", "कहाँ से कहाँ" आदि उपन्यासों में विशेषतः मध्यवर्गीय जीवन पद्धति पर प्रकाश डाला गया है। "आँखें मेरी बाकी उनका" उपन्यास में देश में व्याप्त अनेतिकता, बेइमानी और भ्रष्टाचार का परीक्षण किया है। कुछ सरकारी संस्थाओं और विधिमूर्ख विचार-धाराओं से संबद्ध राजनैतिक नेताओं तथा धार्मिक प्रतिबद्धता वाले लोगों और उनके सहकर्मी महिला मित्रों का अनेतिक और भ्रष्टाचारी व्यवहार का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए इनमें मूल्यों का किस प्रकार हास हो रहा है दिखाने का प्रयास किया गया है।

शैली की दृष्टि से भी इनके उपन्यासों में अनेक अद्भुत प्रयोग किये गए हैं। इनके उपन्यास लघु होते हुए भी बीच बीच में कविताएँ, महान व्यक्तियों के सुक्तियाँ और समस्या या घटना का ऐतिहासिक विवेचन के लिए वेद, पुराण आदि से प्रसंग देना तथा अनेक विद्वानों का उस समस्या या घटना के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट करना इनकी विशेषता है। अनेक उपन्यासों में आत्म कथा शैली, पत्र शैली, डायरी शैली आदि का भी प्रयोग हुआ है। कुछ उपन्यासों में कविताएँ कथावस्तु के लिए बौद्धिक हुए हैं, यह बात भी सत्य है। इनके अनेक उपन्यास मनोवैज्ञानिक शैली पर आधारित हैं। इनका

पहला उपन्यास "परन्तु" अन्तःसंज्ञा प्रवाह वाले मनोविरलैषणवादो विवैभक्ताओं का है। इस प्रकार कह सकते हैं कि माचवे जी ने हिंदी उपन्यास सृजन प्रक्रिया में विचारपरक उपन्यासों का नया प्रयोग आरंभ किया है।

वस्तुतः "उपन्यास साहित्य में एक ऐसी विधा है जो मनुष्य के जीवन में व्याप्त सभी अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम है। इसी कारण आधुनिक काल में औद्योगिकीकरण के कारण जीवन में व्याप्त विसंगतियों तथा आधुनिक काल में उपन्यासों की भांग बदने के पीछे कारण यही है। उसमें जीवन का यथार्थ प्रस्तुत होता है। इस प्रकार उपन्यास साहित्य में यथार्थ अहम् भूमिका निभाता है। यथार्थ का चित्रण जितना सक्षम होता है उतना ही उपन्यास उच्च स्तर का होता है। यथार्थ को उपन्यास में प्रस्तुत करने में उपन्यासकार की दृष्टि, विचार और अनुभव का विशेष महत्व होता है। उपन्यासकार यथार्थ को जिस दृष्टि से देखता है, उसी प्रकार पाठक को उसका बोध कराता है। लेखक की दृष्टि में स्पष्टता, विचारों में गहनता तथा अपार अनुभव ही तो यथार्थ का बोध अधिक सत्यता के साथ करा सकता है।

डॉ० प्रभाकर माचवे में उपर्युक्त तीनों विवैभक्ताओं - दृष्टि, विचार और अनुभवों का भण्डार है। इसी कारण उन्होंने अपने उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण करते हुए समस्या या घटना का पूर्वापर का ऐतिहासिक विवेचन भी किया है। अर्थात् इनका यथार्थवादी दृष्टि तथ्यों पर आधारित है। यथार्थ का चित्रण करते समय तथ्यों को प्रस्तुत करना उपन्यास को और अधिक जीवन्तता प्रदान करना है। तथ्यों के कारण यथार्थ का चित्रण और अधिक विवरणमयी बनता है। माचवे जी के उपन्यासों में यही सब कुछ हुआ है।

माचवे जी ने अपने सम्सामयिक परिस्थितियों का जिस दृष्टि से देखा है, जिस प्रकार विचार किया है और जिसका स्वयं अनुभव किया है उसी का पाठक को बोध कराते हैं। माचवे जी ने अपने उपन्यासों में नारी जाँघोगी-करण वर्गीय तथा आर्थिक और अन्य सामाजिक समस्याओं का पाठक को यथार्थ बोध कराया है।

डॉ० पुभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में इन्हीं समस्याओं का यथार्थबोध पाठक को किस प्रकार कराया है इसका अध्ययन तथा विश्लेषण करना पुस्तक शोध पुस्तक का एक विनम्र प्रयास है। इस शोध पुस्तक में विषय प्रवेश तथा उपसंहार के अतिरिक्त पाँच अध्याय हैं। अन्त में मूल तथा सहायक ग्रंथों की सूची है।

"विषय प्रवेश" अध्याय का शीर्षक "डॉ० पुभाकर माचवे: व्यक्तित्व और कृतित्व" है। इसमें अंतर्गत डॉ० पुभाकर माचवे का संक्षिप्त जीवन परिचय तथा उनके सृजन कार्य का उल्लेख किया गया है। कृतित्व में विशेषतः उनके हिंदी उपन्यासों का सार संक्षेप दिया गया है। इस प्रकार इस अध्याय में डॉ० माचवे जी का जीवन परिचय तथा कृतित्व का एक विहंगावलोकन किया गया है।

अध्याय एक का शीर्षक "सम्सामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन" है। इस अध्याय के अंतर्गत आरंभ में सम्सामयिकता तथा आधुनिकता पर विचार किया गया है। इसके परंपरागत यथार्थवाद की परिभाषा-व्याख्या और भारतीय दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। इसी प्रकार यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध शब्दों का विवेचन किया गया है। यथार्थवाद के प्रकारों का अध्ययन करते हुए समाजवादी यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, पुस्तकवादी यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, आदर्शवादी यथार्थवाद,

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और ऐतिहासिक यथार्थवाद के बारे में संक्षिप्त रूप से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में "उपन्यास और यथार्थवाद" पर भी विचार किया गया है।

अध्याय दो का शीर्षक "हिंदी उपन्यासों में सम्सामयिक यथार्थबोध का चित्रण" है। इस अध्याय में हिंदी उपन्यास साहित्य में सम्सामयिक यथार्थबोध का चित्रण किस प्रकार हुआ है, देखा गया है। इस अध्याय में मुख्यतः तीन भाग हैं - पहला पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध दूसरा प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध तथा तीसरा प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध। प्रेमचन्दोत्तर युग के दो छठों में विभाजित करके अध्ययन किया गया है - एक प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास [1936-60] और दो साठोत्तरी उपन्यास युग [1960-1980]।

"डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में सम्सामयिक यथार्थबोध : वर्गीय प्रज्ञाभूमि और आर्थिक संदर्भ में" अध्याय तीन का शीर्षक है। इस अध्याय में वर्ग का उदय, वर्ग, जाति तथा वर्ग का स्वरूप और वर्ग विभाजन के बारे में विवेचन किया गया है। वर्ग विभाजन के अंतर्गत उच्च, मध्य तथा निम्न वर्गों के बारे में संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है। डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में इन वर्गों का चित्रण किस प्रकार हुआ है यह भी देखा गया है।

अध्याय चार जिसका शीर्षक है "डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में सम्सामयिक यथार्थबोध : औद्योगिकरण और अमानवीकरण के संदर्भ में" में औद्योगिक क्रान्ति तथा भारत में औद्योगिक विकास के संदर्भ में चर्चा की गई है। भारतीय समाज पर औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव पर भी विचार

किया गया है। इसी प्रकार इस अध्याय में डॉ० माचवे जी के उपन्यासों में चित्रित औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पन्न समस्याओं तथा अमानवीकरण के बारे में विवेचन किया गया है।

डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक परिदृश्य में शीर्षक अध्याय पाँच में समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं का विवेचन डॉ० माचवे के उपन्यासों में किस प्रकार हुआ है, देखा गया है। इस अध्याय के अंतर्गत डॉ० माचवे जी के उपन्यासों में चित्रित नारी समस्या, रंगभेद और वर्णभेद समस्या, पीढ़ियों का अंतराल, कुशाकर्ष की समस्या तथा समाज में व्याप्त अनैतिकता आदि के संदर्भ में विश्लेषण किया गया है।

अध्याय- छः "उपसंहार" है जिसके अंतर्गत शोध पुस्तक का सार प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध पुस्तक का कार्य मेरी निर्देशिका तथा अध्यक्ष हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय के आदरणीय प्रो० शशि मूदीराज जी के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ। आपके विद्वत्ता पूर्ण तथा गुरणादायक सुझावों तथा मार्गदर्शनों के कारण मेरा यह विनम्र प्रयास अधिक सुलभ और सफल रूप से संपन्न हुआ। एतदर्थ मैं आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन की औपचारिकता को न निभाते हुए शब्दावत हूँ।

इस शोध कार्य के संदर्भ में अपने विभाग के प्रो० विजैन्दु नारायण सिंह जी, प्रो० लेक्टरमण राव जी, प्रो० नूरजहाँ बेगम जी, डॉ० सुवासकुमार जी

डा० राम्भु जी, डा० रविवर्जन जी तथा डा० कृष्ण जी से सम्मेलन-समय पर जो प्रेरणादायक तथा सार्थक सुझाव मिले हैं इसके लिए अपने गुरुजनो के प्रति मेरे हृदय गहनतल से आभार व्यक्त करता हूँ ।

प्रा० कृष्ण रेणा, अध्यक्ष, हिंदी विभाग हिमाचल विश्वविद्यालय के प्रति मेरे आभार व्यक्त करता हूँ जिनके साथ हुई पत्राचार मेरे शोध कार्य की दिशा देने में सार्थक सिद्ध हुआ ।

सूर्यलक्ष्मी डिग्री कालेज के प्राचार्य श्री सुदर्शन रेड्डी जी को मैं धन्यवाद देता हूँ जिनका सहयोग और प्रोत्साहन मुझे समय समय पर मिलता रहा । उप-प्राचार्य श्री मल्लेश्वर रेड्डी जी के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

श्रीमती विजयलक्ष्मी जी हिंदी प्राध्यापिका, सूर्यलक्ष्मी डिग्री कालेज, के प्रति मैं धन्यवाद अर्पित करता हूँ, जिनका शुभकामनाएं हमेशा मेरे साथ हैं ।

पूज्य माता-पिता के प्रति मैं नतमस्तक हूँ जिनके आशीर्वाद सदा मेरे साथ हैं । अग्रज श्री अनिलकुमार, श्री रामचन्द्र राव तथा अनुज दिनोद, महेश ने जो आतिथ्य सम्पन्न और सहयोग दिया उसे कैसे भूल सकता हूँ ? शब्द सामने होने पर भी मन होता है, उनके प्रति कृतज्ञता को शब्दों में न बांधूँ ।

पुकाश, पुरुषोत्तम, दास्त, अशोक, रवि, सुरेश, श्रीनिवास, आनंद, अनिल, पद्मनाभा राव, नाथी मुस्तु, राजु, हेमन्त, मन्विक आदि मित्रों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने बहुत स्नेह के साथ मुझे सहयोग दिया है ।

X

हिंदी पुचार समिति नारायण पेंठ तथा अन्य साहित्यकारों, आलोचकों और विद्वानों को भी धन्यवाद देता हूँ जिसका लेखन सामग्री का इस शोध पुबंध में उपयोग हुआ है ।

इस शोध पुबंध को संदर तरीके से टंकित करने के कारण श्री मुन्ना जी धन्यवाद के पात्र है ।

इस शोध पुबंध के सृजन कार्य में सावधानों के बावजूद कुछ त्रुटियाँ रह गयी होंगी, एतदर्थ मैं क्षमा प्रार्थी हूँ ।

हेदराबाद

दिनांक ०८/०१/१९९६.

नरसिंह राव
नरसिंह राव कल्याणी
शोध कर्ता

डा० गुरभाकर माघदे : व्यक्तित्व और कृतित्व

विषय सूची

डॉ० पुष्पाकर माधवे : व्यक्तित्व और कृतित्व

1. व्यक्तित्व

- 1.1. जन्म
- 1.2. शिक्षा
- 1.3. विवाह
- 1.4. नौकरियाँ
- 1.5. विद्वानों और साहित्यकारों की दृष्टि में माधवे
- 1.6. प्राप्त सम्मान
- 1.7. निधन

2. कृतित्व

- 2.1. हिंदी ग्रंथ
 - 2.1.1. उपन्यास
 - 2.1.2. एकांकी
 - 2.1.3. कविता संग्रह
 - 2.1.4. कहानी संग्रह
 - 2.1.5. जीवनी
 - 2.1.6. दर्शन
 - 2.1.7. बाल साहित्य
 - 2.1.8. यात्रा वर्णन
 - 2.1.9. व्यंग्य
 - 2.1.10. शब्द चित्र, रेखाचित्र
 - 2.1.11. सम्पादित ग्रंथ
 - 2.1.12. समीक्षा

2.1.13. अनुवाद

2.1.14. अन्य

2.2. मराठी ग्रंथ

2.3. अंग्रेजी ग्रंथ

3. ७० प्रभाकर माधवे के उपन्यासों का सार संक्षेप

3.1. परन्तु

3.2. एकतारा

3.3. दाम्भा

3.4. साधवा

3.5. जौ

3.6. किशोर

3.7. तीस चालीस पचास

3.8. दर्द के पैबन्द

3.9. किसलिए

3.10. छूत

3.11. लक्ष्मीबेन

3.12. कहाँ से कहाँ

3.13. दशभुजा

3.14. आखे मेरी बाकी उनका

3.15. लापता

3.16. अनदेखी

4. निष्कर्ष

विषय पुर्वेक्ष

डॉ० पुभाकर माधवे : व्यक्तित्व और कृतित्व

१. व्यक्तित्व :

डॉ० पुभाकर माधवे उन गिने - चुने साहित्यकारों के श्रेणी में आते हैं जिन्होंने विषय वैविध्य, विधा वैविध्य तथा विलक्षण भाषा वैविध्य से आधुनिक हिंदी साहित्य को परिपुष्ट किया है। डॉ० माधवे की लेखनी ने साहित्य तथा पत्रकारिता के सभी विधाओं को स्पर्श किया है। कविता कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, जीवनो, आत्मकथा, रेखाचित्र, निबंध आदि विधाओं में माधवे जी की लेखनी बहुआयामी कार्य की बड़ी सजगता एवं कुशलता के साथ सम्पन्न की है। विजयेन्द्र स्नातक कहते हैं - "आधुनिक भारतीय साहित्य के इतिहास में डॉ० पुभाकर माधवे का नाम उनके बहुआयामी व्यक्तित्व और वैविध्यपूर्ण कृतित्व के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मुझे भारत को किसी अन्य भाषा में ऐसे व्यक्ति का ज्ञान नहीं जो अपनी मातृभाषा के साथ देश और विदेश की पाँच भाषाओं की मौलिक रचना या अनुवाद करने को क्षमता रखता हो। माधवे जी का कृतित्व केवल लेखन तक ही सीमित नहीं था। भाषण प्रवचन, रेखांकन, शब्द चित्र और स्मृतियों के विपुल विराट शिक्ति तक फैला हुआ था उसका कुतूहलपूर्ण कृतित्व।"^१

१. डॉ० पुभाकर माधवे - सादुल्ला की खरी-खरी भूमिका विजयेन्द्र स्नातक पृ० १।

डा० पुभाकर माचवे बहुमुखी प्रतिभाशाली होने पर भी निजी जीवन में अत्यंत सादा सीधा हुआ करते थे । न गर्व और न धमंड । "लम्बा कद, गेहुँडा रंग, दृष्ट पृष्ट शरीर, चौड़ा ललाट एवं वक्षस्थल और मुकीली नाक, विलक्षण प्रतिभा, गंभीर अध्ययन, साहित्यों की विस्तृत जानकारी तथा देश के अनेक भूभागों के यात्रा अनुभव से सज्जित यह है श्री पुभाकर माचवे ।"¹

1.1. जन्म :

डा० पुभाकर माचवे का जन्म लखर ग्वालियर के छत्री बाजार में एक पाटोरे वैद्य की छत खाने में गरीब परिवार में 26 दिसंबर, 1917 को हुआ था । माता का नाम लक्ष्मीबाई तथा पिता का नाम बलवन्त विठ्ठल माचवे था । वे मराठी भाषी थे । "तीन पीढ़ियों पूर्व इनके पूर्वज घालकी ग्राम छोड़कर भारत के मध्य प्रदेश में आ बसे थे ।"² माचवे जी अपने माता पिता की चौदहवीं और अंतिम संतान थे । अन्तिम संतान होने के कारण इनके प्रति माँ का प्यार थोड़ा ज्यादा ही था । पिता बलवन्त विठ्ठल माचवे रेलवे में काम करते थे । अपने पिता के बारे में डा० माचवे जो कहते हैं - "पिता रिटायर हो चुके थे । पेंशन लेने बंदोर जाते थे । यह तो याद है पर मैं सात आठ बरस का ही था जब उनका स्वर्णवास हुआ । हमारे बड़े भाई जबलपुर के पास नौकरी करते थे । हम वहीं चले गये । x x x पिता की याद इतनी है कि वे बड़े क्रोधी थे मारते भी थे । सवेरे उठाकर कसरत करवाते थे । संस्कृत पढ़ाते थे । हमें तभी से

1. सं० कमलकांत कुध्मर + शिव जायसवाल - अक्षर वर्णन: पृ० 18

लेख-पुभाकर माचवे: एक बहुमुखी व्यक्तित्व - लेखक श्री जगदीश नारायण चौरा

2. डा० कृष्णा रेणा - पुभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ० 9

संस्कृत और व्याकरण से नफरत हो गयी । उनके होते हुए हम शैतानी न कर पाते थे । माँ हमें बाँकल में छुपाये छुमती थी । सबसे छोटी संतान बड़ी प्रिय होती है ।¹

पिता के देहान्त के पश्चात् माता लक्ष्मीबाई ने ही इनका पालन पालन पोषण किया । माँ धार्मिक थी । तीर्थ यात्राएँ किया करती थी । प्रभाकर माचवे भी अपनी माँ के साथ यात्राओं पर जाते थे । किन्तु इनकी वास्था तब खत्म हो गयी जब इनके माता जी के गहने पुजारी ने छीनने की कोशिश की । प्रभाकर माचवे जी कहते हैं - "पंढरपुर के किठल मंदिर में हम दर्शन करने गये । मैं छोटा था, माँ के हाथ में सोने के कंठे थे । पुजारी ने छीनने का प्रयत्न किया । यह देखकर मेरी वास्था खत्म हो गयी ।² ऐसे बचपन से ही माचवे जी में धार्मिक नीतियों में विश्वास नहीं था । माचवे जी को अपने बचपन के बारे में "इतना स्मरण है कि उपजयन संस्कार के समय इन्होंने अर्धाक्षि वासों और धार्मिक कर्मकांड के प्रति विद्रोह किया था और तय कर लिया था कि धर्मग्रंथों में जो लिखा है मैं उसका अन्धानुकरण नहीं करूँगा ।"³

1.2. शिक्षा :

माचवे जी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई । "दरबार हाई स्कूल रत्नाम में सीधे पाँचवी क्लास में भरती हुए । इनके बड़े भाई काशीनाथ जी

1. डा० प्रभाकर माचवे : एक उन्मुक्त ठहाके को खोना - डा० माचवे जी से साक्षात्कार पद्म साखेब - धर्मपुरा - 16-7-1991 - पृ. 31

2. -वही- पृ. 33

3. सुरेश चन्द्र त्यागी [लेख] एक लेखक के संस्करण [लेख] पृ. 56

सो कमलकांत बुधकर और शिव जायसवाल - स्मरण - अर्पण:

वही गणित के अध्यापक थे। तेरह वर्ष की आयु में मैट्रिक करके क्रिश्चियन कालेज इंदौर गए।¹ इस प्रकार सन् 1930 ई में वे मैट्रिक उत्तीर्ण हुए। अपनी विद्यार्थी जीवन और विभिन्न भाषाओं के प्रति उत्पन्न आसक्ति के बारे में बताते हुए डा० माधवेजी कहते हैं कि — एक बार की बात याद आती है, तब हम रत्नाम में थे। वहाँ एक फकीर आता था - जैन उपासक। वही मुँह पर पट्टी बांधने वाले। साधुओं का उपासनाग्राह था। उनकी लायब्रेरी में जाकर किताबें पढ़ना मेरा नियम हो गया। मैं गुजराती वही पर सीखी। भाषाओं से प्रेम भी यहीं से शुरू हुआ। मैट्रिक होने रत्नाम से ही किया। तब मेरी आयु तेरह बरस की थी। काफी दबंग किस्म का था मैं। सब के साथ खाना पकाने में भी मुरिबल पैदा आती थी। मैट्रिक के बाद मैं इन्दौर क्रिश्चियन कालेज में गया। वहाँ तब तक आन्दोलन शुरू हो चुका था। हम भी उससे कूद लिये। वहाँ कालेज के पीछे हरिजननों की झोपड़ियाँ थी। मैं उन्हें पढ़ाने भी लगा। यह प्रेरणा मुझे एक ईसाई प्रोफेसर से मिली थी। वे हरिजन से ईसाई हुए थे। कहते थे - पढ़ाई को जिन्दगी से जोड़ो, उसके बिना ठीक शिक्षा न आयेगी। सो हम नयी - नयी दुनिया देख रहे थे। रात को लालटेन से कर उन्हें पढ़ाने जाते। प्यास लगने पर पानी भी पी लेते। तंगनजरी हटती जा रही थी।² सन् 1934 में बी.ए. उत्तीर्ण हुए। इन्होंने कालेज शिक्षा के समय ही इन्दौर स्कूल आफ आर्ट्स में छात्र के रूप में भर्ती हुए। इस प्रकार माधवेजी एक चित्रकार भी थे। वे कहते हैं - 'पेंटिंग मैं इंदौर के स्कूल आफ आर्ट्स में सीखी। हमारे गुरु थे डी.डी.देवलीलाकर। वे मुझे एक साल सीनियर थे। हुसैन मेरे साइ के थे, पर पेंटिंग मैं खर्चा बहुत आता था, इसलिए छोड़ दिया।'³

1. राजेन्द्र उपाध्याय - तार सप्तक का एक ओर तार टूट गया - पृ. 4
आजकल पत्रिका, अंक-4 अगस्त 1991।

2. पद्मा सचदेव का डा० प्रभाकर माधवे से सक्षात्कार : डा० प्रभाकर
माधवे : एक उन्मुक्त ठहाके को खोना: धर्म युग अंक 16-7-1991 पृ. 31

3. -वही-

सन् 1936 में उन्होंने आगरा कलेज, आगरा से दर्शन शास्त्र विषय लेकर एम.ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। "इससे पहले नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा से "साहित्य रत्न" प्रथम स्थान से उत्तीर्ण किया। नन्ददुलारे वाजपेयी निबंध परीक्षक थे। "काव्य में रहस्यवाद" निबंध पर वाजपेयी जी ने सर्वाधिक अंक दिए - यह बात निराला जी ने अपने "नन्ददुलारे वाजपेयी" नामक निबंध में भी लिखी है। प्रभाकर का यह निबंध पाँच कावियों में था और यह कबों तक हिंदी साहित्य संस्थान, इलाहाबाद में सुरक्षित रहा।" ¹ डा० माधवे अपनी एम.ए. की पढ़ाई केबारे में कहते हैं - "एम.ए. करने में आगरा गया। तब मध्यप्रदेश की किसी भी यूनिवर्सिटी में फिलासफी में एम.ए. न था। मैं अकेला पढ़ गया। ट्यूशन कर के पढ़ता था। भाई चाहते थे वकील बनूँ, पर मुझे लगता यह छूटा धंधा है, इसलिए जानबूझ कर एल.एल.बी. में फेल कर गया।" ²

माधवे ने सन् 1943 में अंग्रेजी में एम.ए. किया तथा सन् 1958 में "हिंदी, मराठी निर्गुण सन्त काव्य" पर आगरा विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।" मध्यभारत तथा आगरा में पहले तथा अखिल भारत में वह दूसरे मराठी भाषी हैं जिन्हें हिंदी - मराठी निर्गुण संतकाव्य के शोध ग्रंथ पर हिंदी साहित्य की पी.एच.डी. उपाधि द्वारा सम्मानित किया गया।" ³

1. राजेन्द्र उपाध्याय - तार सप्तक का एक ओर तार टूट गया - पृ. 4
आजकल अंक- 4, अगस्त 1991

2. पद्मा सचदेव का डा० प्रभाकर माधवे से साक्षात्कार : डा० प्रभाकर माधवे : एक उन्मुक्त हठवाके को खोना: धर्मपुरा अंक 16-7-91 पृ. 32

3. जगदीश नारायण वोरा - प्रभाकर माधवे : एक बहुदंगी व्यक्तित्व
सं० कमलकांत बुधकर एवं शिव जयसवाल - आर अर्पण - पृ. 19

1.3. विवाह :

माधवे जी का विवाह शरद पारनेरकर नामक कन्या के साथ 8 नवम्बर 1940 को संपन्न हुआ। दोनों उस समय महात्मा गांधी की सेवाग्राम आश्रम में रहते थे। माधवे जी अपने विवाह के बारे में डा० राम क्लिास शर्मा को बताते हैं - "सेवाग्राम की कुटिया। 1939 का वर्ष। यही गांधी जी से प्रथम भेंट हुई। मैं वर के रूप में वहाँ ले जाया गया था लहकी के पिता द्वारा जो वहाँ गो - सेवा संध में थे। गांधी जी ने अपना मौन तोड़कर लहकी से मेरे बारे में चर्चा की, फिर मुझ से कहा कि तुम भी उससे मिल लो और इस प्रकार मेरी शादी सेवाग्राम में तय हो गयी। सेवाग्राम में ही कुटिया के पीछे 8 नवम्बर, 1940 को मेरा विवाह संपन्न हो गया। विवाह का कुल खर्च हुआ साढ़े नौ आने। उस दिन सीभाग्य से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक भी थी, आश्रम में ही। अतः इस अवसर पर खान अब्दुल गफ्फार खाँ, मोलाना आजाद, सरोजनी नायडू भी उपस्थित थे। कस्तूरबा गांधी और महादेव देसाई तो थे ही।"¹

इन्हीं विवाह के शुभअवसर पर "कस्तूरबा ने स्वयं अपने हाथ से सुत कातकर एक साठी माधवे जी की अर्धांगिनी को भेंट की। भारत में ऐसी केवल दो ही साठियाँ हैं। दूसरी श्रीमती इन्दिरा गांधी के पास थी। जो उन्होंने गांधी संग्रहालय को दे दी। बापू ने स्वयं 108 तार कातकर माधवे जी के गले में डाले।"²

1. रामक्लिास शर्मा - ज्ञान का विक्रमोपश्लेष

सं० मासुतिनंदन पाठक - डा० प्रभाकर माधवे: सौ दृष्टिकोण - पृ० 226

2. -वही-

-वही-

पृ० 226

माधवे दम्पति को दो सन्तानें हुई। सन् 1948 में पुत्र अरुण का जन्म नागपुर में हुआ। "माधवे जी के पुत्र का नाम - "अरुण" राहुल जी का दिया हुआ है।" सन् 1950 में पुत्री चेतना का जन्म इलाहाबाद में हुआ। "उन्होंने अपने पुत्र और पुत्री को ऊँची शिक्षा दिल्ली और जीवन साथी के चयन के लिए दोनों को स्वतंत्र रखा। पुत्र ने सिन्धी लड़की से विवाह किया और पुत्री ने पंजाबी लड़के से। डा० माधवे ने दोनों में प्रसन्नतापूर्वक सहमति दी और दोनों को स्वीकार किया।" 2

1.4. नौकरियाँ :

डा० प्रभाकर माधवे - अपने जीवन काल में अनेक ख क्षेत्रों में सेवारत रहे। पढ़ाई के पश्चात् सबसे पहले उन्होंने चालिस रुपये महावार पर सन 1937 में राष्ट्रीय मजदूर संघ, इंदौर के मंत्री बने। सन् 1938 से सन् 1948 तक माधवकालेज, उज्जैन में अंग्रेजी व दर्शन के प्राध्यापक के रूप में काम किया। 1940 में अजमेर में आकाशवाणी, दिल्ली से प्रथम वार्ता कराई। सन् 1948 में उज्जैन की अध्यापकी छोड़कर आकाशवाणी नागपुर में काम करने लगे। उन्होंने सन् 1948 से सन् 1954 तक आकाशवाणी के नागपुर, इलाहाबाद, विदेश प्रसार सेवा दिल्ली में छह वर्ष कार्य के बाद त्यागपत्र दिया। सन् 1954 में केन्द्रीय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली में प्रथम सहायक सचिव के रूप में जवाहरलाल नेहरू तथा डा० राधाकृष्णन द्वारा उनकी नियुक्ति हुई। डा० माधवे साहित्य अकादमी की स्थापना तथा उनका वर्धा के कार्य के बारे में बताते हैं कि - "1954 में साहित्य

1. श्री मारुतिनन्दन पाठकभूमिका - डा० प्रभाकर माधवे: सी दृष्टिकोण

पृ: 23

2. -बही-

-बही-

पृ: 22

अकादमी की स्थापना हुई। मेहरू जी अकादमी के पहले अध्यक्ष थे। उन्होंने कहा - मैं जब भी विदेश जाता हूँ हमारे कवियों, लेखकों के बारे में पूछा जाता है। एक संस्था ऐसी जरूर होनी चाहिए जो साहित्यकारों की संस्था हो। जहाँ साहित्यकार की पहचान हो, सम्मान हो और यह साहित्य अकादमी बनी। इसकी कार्यकारणी में उस समय मामा वरेरकर, जेनेन्द्र, उमाशंकर जोशी व दिनकर जैसे लोग थे। मैं साहित्य अकादमी का पहला असिस्टेंट सेक्रेटरी था। सेक्रेटरी थे आचार्य कृपालानी के भतीजे कृष्ण कृपालानी। वे मोलाना आजाद के प्राइवेट सेक्रेटरी भी थे। सो काम ज्यादा मैं ही देखता था कृष्ण कृपालानी जी के कमरे के बाधे हिस्से में अकादमी शुरू हुई। मैं अकादमी का पीर बावर्ची भ्रिती सब कुछ था। वहीं मीटिंग भी होती। कुछ साइक्लोस्टाइल करके मैं पढ़ें बाँटता बस जी काम उस समय बाधे कमरे से शुरू हुआ आज देखिए कहाँ जा पहुँचा है।¹ उन्होंने सन् 1959 से 1961 तक अमेरिका के दो विश्वविद्यालय - विस्कॉन्सिन तथा केलिफोर्निया में अतिथि प्राध्यापक के रूप में काम किया। वहाँ हिन्दी, भारतीय साहित्य, गाँधी दर्शन का अध्यापन इनका क्षेत्र रहा। अमेरिका से लौटते समय तीन माहमें 13 देशों की यात्रा उन्होंने की। सन् 1963 में श्रीलंका में दो विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने के लिए यात्रा की। सन् 1964 से सन् 1966 तक संधी लोक सेवा आयोग में विशेष भाषाधिकारी के रूप में लालबहादुर शास्त्री द्वारा नियुक्त हुए। सन् 1969 में पश्चिम जर्मनी की सरकार के निर्मंत्रण पर डेढ़ माह यात्रा पर गए। सन 1971 से सन 1975 तक केन्द्रीय साहित्य अकादमी के सचिव

1. पद्मा सचदेव का ठाँठ प्रभाकर माधवे से साक्षात्कार : पृ. 34

ठाँठ प्रभाकर माधवे : एक उन्मुक्त ठहाके की सोना: धर्म युग

वैक- 16-7-1991:

के रूप में कार्यरत थे और 58 वर्ष की आयु में स्वेच्छा से सेवानिवृत्त हो गए। इसी बीच सन् 1973 में बांग्लादेश की यात्रा इन्होंने की। सन् 1976 से 1977 तक भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में मानद पार्थिव के रूप में रहे। सन् 1978 में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी भाषा विज्ञान संस्थान में इन्होंने तीन मास अतिथि प्राध्यापक के रूप में, पुनः कश्मीर विश्वविद्यालय में तीन मास अतिथि प्राध्यापक के रूप में काम किया। सन् 1979 से सन् 1985 तक भारतीय ^{भाषा} पारिषद कलकत्ता में निदेशक के रूप में सेवा की।

सन् 1981 क्वान्ति में जापान, हांगकांग, आर्लीण्ड की जापान फाउंडेशन के निमन्त्रण पर यात्रा पर गये। सन् 1984 में नेपाल की यात्रा की। सन् 1985 में वृन्दावन शोध संस्थान में एक मास संचालक रहे। सन् 1986 में पूर्णतः सेवानिवृत्त हो गए और अपने घर पर ही अध्ययन लेखन में व्यस्त रहने लगे। सन् 1987 ग्रीष्म में मोरीशस सरकार के निमन्त्रण पर एक मास यात्रा पर गए। सन् 1988 में 72 वर्ष की आयु में इंदौर के दैनिक "चौथा संसार" के प्रधान संपादक बने।

1.5. विद्वानों और साहित्यकारों की दृष्टि में माचवे :

बहुमुखी प्रतिभाशाली डा० प्रभाकर माचवे को व अनेक गणमान्य विद्वानों तथा शीर्षस्थ साहित्यकारों ने अपनी अपनी दृष्टि से देखा है और परसा है। माचवे जी की अद्वुत ज्ञान भण्डार को देखकर "गांधी जी ने उन्हें 'मशीन' और शक्तिपिय द्विवेदी ने 'राइटर' नहीं 'टाइप राइटर' कहा था। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ज्ञान पिपासु 'बहुमत' एवं सरस साहित्यकार, डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने 'मनस्वी रुद्र, कृद एवं सविद्वन्शील साधक, डा० रणवीर राय्या ने विद्वानों का स्वामी तथा विरोधाभासी

का संगम, राहुल साँस्कृत्यायन ने "चिरयात्री", उपमाशक्तिदीक्षित ने "कुल्लभ ह्यूमर लेखक कहा था तो किसी ने उन्हें फिलग्राम आफ नालेज" तो किसी ने "कम्प्यूटराइज्ड माइंड" कहा था । अमृतलाल नागर ने उनकी "अधक साहित्य लगन" की तबरीफ की है तो किसी ने उनके "सरल सुभाव तुल्यतुल्य नहीं", की, तो किसी ने उन्हें एक व्यक्ति एक संस्था" कहा है । किसी ने उन्हें "हिंदी का भवसम्पुल्लभ" कहा तो किसी ने "एंगी रांगेन सत्तर के" और बालकवि बेरागी ने तो उन्हें "अधि परंपरा के पुंस्व" कहा है । रामकिलास शर्मा ने "ज्ञान का विक्कोरा" डा रामदरश मिश्र ने "स्नेह की छाँव देने वाला बरगद" तथा किष्णु प्रभाकर ने "प्रतिभा पुंज" कहा है ।¹ अख्य ने भी माधवे को प्रतिभा पुंज कहा था । उनका कहना था कि -- "भारतीय भाषाओं में यदि एक एक माधवे होता तो भारत की भाषा समस्या और भारतीयता की सार्क्रीम पहचान बनाने के लिए हमें किसी राजनेता का मुख नहीं ताकना पड़ता ।"²

"आजकल के संपादक श्री सुरेश चन्द्र शर्मा लिखते हैं कि - "साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादकों के लिए तो ये संकट मोचन हैं । किसी भी विषय अथवा विद्या पर किसी भी समय लिखना हो तो माधवे जी जैसा तुरंत लिख कर देने वाला व्यक्ति और कोई दूसरा नहीं था । "आजकल" के साथ तो ऐसा अनेक बार हुआ, जब दूसरे साहित्यकार वचन देकर भी अपने वायदे से मुक्त हुए या किसी कारण लिखने में आनाकानी करने लगे तो संकट के वक्त माधवे जी ही काम आए । यह उनकी अध्ययनशीलता और

1. राजेन्द्र उपाध्याय - तार सप्तक का एक और तार टूट गया [लेख] पृ. 4

आजकल पत्रिका - संक. 4 अगस्त 1991

2. विजयेंद्र - स्नातक - भूमिका

डा० प्रभाकर माधवे - सादुल्ला की खरी खरी पृ. 1

अद्भुत स्मरणशक्ति का ही कमाल था कि किसी भी विषय पर वह ज्ञान पानन में लेख तैयार कर देते थे । किसी भी पत्रिका अथवा संपादक को उन्होंने लेख आदि के लिए शायद ही कभी निराश किया हो।¹ इसी प्रकार किष्णु खरे लिखते हैं — "वे लिखने के किसी निर्मूल्य को अस्वीकार नहीं करते थे । 1968 की एक शाम करीब सवा पाँच बजे वे दफ्तर से लौटे । घिड़ियाँ खोली । एक पत्र अंग्रेजी पत्रिका "समीक्षा" के संपादक एम गोविंदन का था जिन्होंने अक्किम्ब गुजराती साहित्य पर एक लेख मांगा था । माचवे जी तत्काल उसे लिखना शुरू कर दिया । साढ़े छह बजे ठाक बक्ते में ठालकर भी आ गए ।"²

इसी प्रकार अनेक विद्वान तथा साहित्यकार डा० माचवे के संबंध में अनेक स्मरण, लेख आदि लिखे हैं जिनमें डा० माचवे के प्रति उन्होंने सीढार्द भावना व्यक्त किया है । विशेषतः डा० माचवे जी की अष्टि पूर्ति के समय "ऋतु अर्पण" ग्रंथ तथा सत्तरवें जन्म दिन के सुअवसर पर डा० प्रभाकर माचवे : सी दृष्टिकोण" ग्रंथ प्रकाशित किये गये हैं । "डा० प्रभाकर माचवे : सी दृष्टिकोण" ग्रंथ में अमृतलाल नागर, डा० अमृता प्रीतम द्रोणवीर कोहली, बालकवि बैरागी, रामविलास शर्मा, राजेन्द्र अदस्थी डा० रामदरश मिश्र, प्रो किशोरेन्द्र स्नातक, किष्णु प्रभाकर, हिमांशु जोशी, त्रिलोचन शास्त्री साहित्य जगत् में सी विद्वानों के लेख छपे हैं । ऋतु अर्पण में भी अनेक साहित्यकारों के लेख हैं ।

1. सी सुरेश चन्द्र शर्मा - संपादकीय - पृ. 3

"आजकल" पत्रिका अंक - 41 - 1991

2. किष्णु खरे - भारतीय साहित्यों का सत्तु - पृ. 6

नवभारत टाइम्स 'दैनिक हिंदी' 23-6-1991

फिर भी उन्हें एक शिक्षाप्रिय विविधविधालयों के हिंदी विभागों से है। वे कहते हैं कि "मैं 1934 से हिंदी में लिख रहा हूँ। चालीस साल बीत गये। अभी तक मैंने अपने 40 से अधिक ग्रंथों जिनमें आठ उपन्यास भी हैं - की कोई ऐसी समीक्षा नहीं पढ़ी जिससे मैं कुछ सीख सकूँ। अधिकतर एकदम सतही समीक्षाएँ होती हैं - या तो केवल प्रशंसा या पूर्व-ग्रह युक्त निंदा। इसलिए मेरा विश्वास कि वह विधालयी समीक्षकों पर से उठ गया है। वे किताबें विरोधतः हम जैसे "नवतावादी" लेखकों की न सहानुभूति से, न गहराई से पढ़ते हैं, न उनके बारे में जानते हैं - चूंकि वे उनके "कोर्स" में नहीं होती, न पाठ्य पुस्तकों में। यह वृत्ति ठीक नहीं है। इससे मेरी बात छोटिये, चूंकि मैं किसी की ज्यादा परवाह भी नहीं करता - अपना मार्ग स्वयं बनाता हूँ - पर अन्य कई अधिक सख्दनागिल बड़े लेखकों के साथ ज्यादा अन्याय होता रहा है। विरोधतः गये दो दशकों में कि वह विधालयों न स्तर की आलोचना, आधुनिक साहित्येतिहास - लेखन और मुद्रांकन में।"

1.6. "प्राप्त" सम्मान :

डा० प्रभाकर माधवे को अपने जीवन काल में अपने भाषा एवं साहित्यिक सेवाओं के प्रति आदर व्यक्त करते हुए अनेक "सम्मान" प्राप्त हुए जो निम्न प्रकार हैं -

1. सन् 1972 में सोवियत लैड मेडल पुरस्कार
2. सन् 1963 हिंदी साहित्य सम्मेलन, कुस्कोन अधिवेशन में "साहित्य वावस्पति" उपाधि से विभूषित।

1. डा० प्रभाकर माधवे - जो : संस्मरण ॥ प्रकाशन काल 1960॥

सं० भीरम सहानी व अन्य - आधुनिक हिंदी उपन्यास - पृ. 234

3. सन् 1985 उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का सम्मान - पुरस्कार श्री राजीव गांधी द्वारा
4. सन् 1985 मित्र परिषद् कलकत्ता द्वारा सम्मान
5. सन् 1987 दिल्ली हिंदी आकदमी का साहित्यकार सम्मान
6. सन् 1989 केन्द्रीय हिंदी संस्थान द्वारा सम्मान
7. सन् 1990 मारिक्कत "अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन" का सम्मान

1.7. निधन :

दिनांक 17 जून, 1991 की दोपहर ठेढ़ बजे दिल का दौरा पड़ने से डा० प्रभाकर माघवे की मृत्यु हो गई। इस प्रकार डा० माघवे जी अपने चौहत्तर वर्ष, अर्ध पाँच मास, बारस दिन के जीवन में साहित्य, संस्कृति, राष्ट्रनीति और भाषिक क्षेत्र में जो कार्य किया उसका आकलन करना कष्ट साध्य कार्य है।

2. कृतित्व :

डा० प्रभाकर माघवे जीका साहित्य जीवन सन् 1934 से शुरू हुआ। ऐसे वे विद्यार्थी जीवन से ही कवितार्प निश्चित थे। एक सक्षात्कार में माघवे जी अपने आरंभिक लेखन के बारे में बताते हुए कहते हैं कि - "बड़े भाई शांति विहीरित उठे में कविता के मंत्राष्टक रचते थे जिसमें कछु-वर के नाम गूँथ दिये जाते, जो एक शब्द पहेली की तरह लगता था। हमने भी आठ बरस की उम्र में ऐसा पद्य रचा। यह कविता कम शब्द कीटा अधिक थी। फिर 17 बरस की उम्र में मेरी एक मराठी कविता जलगांव के "काव्य रत्नावली" में और एक हिंदी तुलबन्दो सण्डे के "कर्मवीर" में,

बाद में इन्दोर की "वीणा" में छपी । उन आरम्भिक रचनाओं में "कुंज का माध्यम" और "सन्तुष्टि" जैसे शब्द थोड़े बहुत ज्यादा सोचना, कूट में समझ के दर्शन करनेके बराबर हैं । हाँ, उसी समय गद्य लिखना भी शुरू हो गया था । खिल्ली में निर्वर्ण, हिंदी में रसाचित्र, लङ्कथा, गद्य काव्य आदि भी गद्य या पद्य जैसी कोई बाध्यता या पर्यायवाची विचार मनमें नहीं थे । सारा लेखन जिस विधा में हो - एकरस लगता है । हाँ, पद्यता कविता आर्थिक या बयोंकिक वे समय कम लेते थीं, चुनौती भी देती थीं । कविता के लिये ही, रविन्द्रनाथ पद्य के लिये बंगला और क्लापी पद्य के लिये गुजराती आदि भाषाएँ सीखी ।¹

इस प्रकार सन 1934 में लूवा में नाथनवाल बतुर्जेदी के संपर्क में आने के कारण पक्की कविता "वर्गजीर" में छपी । सन 1935 में प्रेमचन्द ने इनकी पक्की कहानी "ईश" में छपी । सन 1936 में निराला ने "सुधा" में पक्का निर्वर्ण "नथक्का में मनोविकलान" छपा । 1936 में ही "माधुरी" में "जब विद्विष्ट दार्शनिक सी-सो छपा । सन् 1937 में महादेवी ने एक कहानी घटि में छपी । इसी वर्ष माघसे द्वारा संपादित "जेनेन्द्र के विचार" प्रकाशित हुई । सन 1938 में ज्योय ने "विशाल भारत" में दो दृष्टान्तिस्ट" कविताएँ छपीं ।

सन् 1934 में बम्बई में कग्रिस के अठतालिसवें अधिवेशन में भाग लेकर अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद के भाष्य का हिंदी अनुवाद किया । इसके बारे में बताते हुए माघसे कहते हैं कि - 1934 में बम्बई की कग्रिस हुई तो

1. कमलाकान्त बृध्मर का डा० प्रभाकर माघसे से सहायताकार ; जाहने के समाने - माघसे - 2. अक्षर अपि - पृ: 68

तो मैं उसमें भी गया। राजेन्द्रबाबू का भाषण अंग्रेजी में था। सारी रात लालटेन जला कर उसे हिंदी में किया।¹

सन् 1943 में अक्षेय के संपादन में प्रथम "तारसप्तक" का प्रकाशन हुआ। इसमें प्रयोगवादी सात कवियों के कविताएँ छपी थीं। ये कवि थे—अक्षेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माधवे, रामकृष्ण शर्मा और गिरजा कुमार माधुर।

इन्होंने सन् 1946 में महापीठित राहुल सांकृत्यायन के साथ मिलकर 16000 शब्दों के अंग्रेजी हिंदी शासन शब्द कोश का संपादन किया। "तदर्थ भारत के अठ्ठा प्रान्तों में घूम कर भाषा शास्त्रियों तथा कोशकारों से मिले और हिंदी के मिशनरी की भाँति हिंदी साहित्य सम्मेलन के लिये यह कार्य किया। इस कोश के लिए माधवे ने एक ऐसा पारिश्रमिक नहीं लिया। आज यह कोश उपलब्ध नहीं है।"²

इन्का पहला उपन्यास "परन्तु" का प्रकाशन सन् 1951 में हुआ।

डा० प्रभाकर माधवे ने हिंदी, मराठी तथा अंग्रेजी भाषा में उपन्यास, कहानी, एकांकी, कविता, जीवनी, दर्शन, बाल साहित्य, यात्रा वर्णन, व्यंग्य निबंध, शब्द चित्र, रेखा-चित्र, समीक्षाएँ, सम्पादित ग्रंथ और अनुवाद आदि का लेखन किया है। उनके द्वारा लिखे गए ग्रंथों की सूची इस प्रकार है—

1. पद्मा सचदेव का डा० प्रभाकर माधवे से सहायकार - डा० प्रभाकर माधवे : एक उन्मुक्त ठहाके का धोना - धर्म युग अंक 16-7-1992 पृ. 32

2. जगदीश नारायण वोर - प्रभाकर माधवे : एक बहुरंगी व्यक्तित्व [लेख] अक्षर अर्पण - पृ. 20

डा० प्रभाकर भाचदे के प्रकाशित ग्रंथों की सूची

2.1. हिंदी ग्रंथ

2.1.1. उपन्यास :

1. परन्तु : प्रगति प्रकाशन : 1951
2. एकतारा : चेतना प्रकाश हैदराबाद 1951 हिंदी प्रचारक वाराणसी
कल्पना कार्यालय हैदराबाद, 1958
3. आभा : हिंदी भवन, इलाहाबाद - 1952
4. साधा : हिंदी प्रचारक वाराणसी, 1964
पुनः साहित्य निधि 1987
5. जो : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली: 1965
6. किशोर : कृष्ण प्रकाशन, अजमेर, 1969
7. तीस चालीस पचास : राजपाल, दिल्ली, 1973
8. दर्द के पैलन्द : हिंदी भवन, इलाहाबाद 1974
9. किसलिय : राजपाल, दिल्ली, 1975
10. धूत : राजपाल दिल्ली 1976
11. लक्ष्मीबेन : राजपाल दिल्ली, 1976
12. कहाँ से कहाँ : पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1978
13. व्याधुजा : किष्किति प्रकाशन, दिल्ली, 1981
14. अग्नि मेरी बाकी उनका - किष्किति प्रकाशन, दिल्ली 1983
15. लापता : राजपाल, दिल्ली, 1984
16. अन्देशों : राजपाल, दिल्ली 1988

2.1.2. एकांकी :

1. गली के मोड़ पर : दत्त ब्रदर्स, अजमेर, 1960
पुनः किताब घर 1988

2.1.3. कविता संग्रह :

1. तार सप्तक - 1 : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली- 1943
॥ उः अन्य कवियों के साथ कविताएं ॥ : पुनर्मुद्रण - 1968
2. स्वप्न - भग ॥ सानेट ॥ : हिंदी भवन, इलाहाबाद- 1955
3. अनुक्षण : भारतीय ज्ञानपीठ = 1958
4. मेघल : भारतीय ज्ञानपीठ - 1963
5. विक्कमर्मा ॥ सुंद काव्य ॥ : भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ-1988

2.1.4. कहानी संग्रह :

1. स्त्री नों का साया : इंदौर: 1943 ॥ अप्राप्य ॥

2.1.5. जीवनी :

1. उत्तरपति शिवाजी : सोमिया पब्लिकेशन प्रा.लि. बम्बई: 1975

2.1.6. दर्शन :

1. विभिन्न धर्मों में ईश्वर कल्पना : बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना, 1974
2. आधुनिक भारतीय विचारक : बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना 1976

2.1.7. बाल साहित्य :

1. असम : 1957
2. केरल : 1957
3. महाराष्ट्र: 1957
4. आदिवासी बच्चे : राजपाल, दिल्ली

2.1.8. यात्रा दर्शन :

1. गोरी नहरों में हम : रामलोचन पाकेट बुक, पटना : 1964
2. रूस में : हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी : 1976

2.1.9. व्यंग्य :

1. खरगोश के सींग : नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद : 1950
2. बेरिंग : नव साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली : 1956
3. तेल की पकोठियाँ - भारतीय ज्ञानपीठ : नई दिल्ली : 1963
4. विसर्गति : भारती भंडार, इलाहाबाद : 1984
5. खबरनामा : कृष्ण ब्रह्मा अजमेर.

2.1.10. शब्द चित्र, रेखाचित्र :

1. शब्द - सेवा : किर्ति प्रकाशन, दिल्ली - 1980

2.1.11 : सम्पादित ग्रंथ :

1. जेनेन्द्र के विचार : पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली - 1937
2. शासन साहित्य कोश - हिंदी साहित्य सम्मेलन - 1948
3. गांधी शतद्वय : प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली : 1969
4. बारह कदम कहानी संग्रह : भक्तिमित्र, नई दिल्ली - 1971
5. आदर्श पद्य संग्रह : अलाहट, नई दिल्ली, 1971
6. आदर्श गद्य रचना कहानी संग्रह : अलाहट, नई दिल्ली : 1971
7. रेती के रात दिन : राजस्थान शासन, शिक्षा मंत्रालय, जयपुर 1984
8. शतद्वय कविता संकलन : भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता - 1980
9. भारतीय संस्कृति दो खंड : भारतीय संस्कृति संसद कलकत्ता 1984

10. भारतीय उपन्यास कथासार ॥ दो खंड ॥ भारतीय भाषा परिषद्
कलकत्ता : 1983
11. वाद और स्थिति : मित्र परिषद्, 1983
12. भेरी और सेवा, मित्र परिषद्, 1985
13. भारतीय : 2001 : मित्र परिषद् कलकत्ता, 1987
14. राजकुल स्मृति : पी पी एच, दिल्ली 1987
15. धर्म, दर्शन, संस्कृति : भारतीय संस्कृति संसद कलकत्ता

2.1.12. समीक्षा ग्रंथ :

1. नाट्य चर्चा: हिंदी विद्यापीठ, देवघर - 1951
2. हिंदी गद्य की प्रवृत्तियाँ : राजकमल, नई दिल्ली, 1952
3. हिंदी पद्य की प्रवृत्तियाँ : राजकमल, नई दिल्ली, 1952
4. हिंदी निबंध : राजकमल, नई दिल्ली, 1952
5. व्यक्तित्व और वाद-मय : साहनी प्रकाशन, 1952
6. समीक्षा की समीक्षा : साहनी प्रकाशन, 1952
7. मराठी और उसका साहित्य : साहित्य सहायक, नई दिल्ली
1954
8. हिंदी साहित्य की कहानी: ओरियंटल बुक डिपो, नई
दिल्ली, 1954
9. सन्तुलन : आत्माराम एंड सन, दिल्ली, 1954
10. कबीर : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1954
11. वैष्णवसुत : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1958
12. भारत और एशिया का साहित्य : कृष्ण प्रकाशन, जयमेर, 1969
13. हिंदी ही क्यों तथा अन्य निबंध : पारिजात प्रकाशन, पटना
1981
14. मराठी साहित्य का इतिहास : उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ

15. राहुल सांकृत्यायन : साहित्य अकादेमी, 1980
16. मेथिलीरसम गुप्त : राजपाल एंड एस, 1987
17. बालकृष्ण शर्मा "नवीन" : राजपाल एंड संस, 1987
18. राहुल सांकृत्यायन, राजपाल, 1987
19. माखनलाल चतुर्वेदी : राजपाल, दिल्ली

2.1.13. अनुवाद :

1. क्या हम भूखों मरे ? : गांधी आश्रम, पटना, 1944
2. उल्का वि.के.चाटेकर का मराठी से॥ रा.ज.देशमुख कोरहापुर 1950
3. शांति के लिए अणु सोवियत रूस के लिए॥ 1956
4. बौद्ध धर्म क 2500 वर्ष : प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1956
5. भगनमूर्ति मराठी से॥ साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1958
6. आज का भारतीय साहित्य : साहित्य अकादमी, राजपाल हिंदी, 1958
7. लक्ष्मदास की छाया में भवानी भट्टाचार्य का उपन्यास अंग्रेजी से॥ राजपाल, दिल्ली, 1966
8. सात यूगोस्लाव कहानियाँ : साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 1958
9. कुली नौका और अन्य कहानियाँ : अमेरिका के लिए॥
10. पुण्यकोटि गो की कहानी कन्नड़ से॥ कृष्ण प्रकाशन : 1969
11. टारुस्ताय और भारत : साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1969
12. अक्लोकित्ता मराठी से॥ भारतीय ज्ञान पीठ, 1971
13. नामदेव मराठी से॥ साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1970

14. रान्हे ॥ मराठी से ॥ प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1971
15. ब्राह्मण कन्या ॥ मराठी से ॥ मेनलबुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1971
16. अस्तित्ववादः म.प्र.ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1974
17. सहयात्रा और "लिव्स" : राजपाल एंड सन्स, 1987
18. आजादी ॥ चमन हल का उपन्यास अंग्रेजी से ॥ 1988

2.1.14. अन्य :

1. सी सवाल एंड जवाब : राजपाल, सिद्ध दिल्ली: 1969
2. मराठी लोक कथाएँ : आत्माराम सैत, दिल्ली, 1969
3. सीलियर पट्टिए 15 भाषाएँ : स्टार पाकेट बुक दिल्ली, 1976
4. नमक आन्दोलन : प्रकाशन विभाग, 1986
5. गांधी के आश्रम में - एन सी ई आ टी.
6. गांधी जी और भारतीय साहित्य

2.2. मराठी ग्रंथ :

1. मालविका ॥ कविता ॥ 1934
2. मराठी सुनीत ॥ कविता ॥ 1936
3. छिछेकाठील छिछल ॥ कहानी ॥ 1938
4. चरित्र आत्मचरित आणि टीका ॥ समीक्षा ॥ 1939
5. त्याग पत्र ॥ भूमिका ॥ 1939
6. कर्क ॥ अनुवाद ॥ 1958
7. तब चरणी ही जंगली ॥ कविता ॥ 1970
8. हिंदी कथा ॥ अनुवाद ॥ 1973 ॥ एन सी टी ॥

9. पंजाबी कथा अनुवाद 1973 एन बी टी.
10. चिंदबर ॥ सुमित्रानंद पंत की कविताओं का अनुवाद भारतीय ज्ञानपीठ, 1969
11. जगन्नीवन राम : व्यक्तित्व और विचार ॥ मूल्यांकन 1973
12. सुब्रह्मण्य भारतीया कविता अनुवाद ॥ तमिल संग्रह, कलकत्ता 1983
13. मत्स्यमिथा मेघ अनुवाद ॥ कलकत्ता : 1987

2.3. अंग्रेजी ग्रंथ :

1. वेदम सुत - साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1967
2. कबीर : साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1968
3. नामदेव : लाइफ एण्ड पोएट्री : पंजाबी युनि. 1969 ॥ पंजाबी में अनुवादित ॥
4. हिंदी शार्ट स्टोरीज : जयको : 1973 ॥ संपादित ॥
5. ईस्ट बेसिस ट्रेड इन फिलासोफी एण्ड लाइफ : पुना युनि. 1974 ॥ रान्छे लेक्चर्स ॥
6. फोर ठिंकेस ऑफ इन्डियन लिटरेचर : चेतना पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1976 ॥ संपादन ॥
7. बुद्धिज्म इन इंडिया एण्ड सीलोन : चेतना पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1976 ॥ संपादन ॥
8. माठर्न इन्डियन पोएट्री अनुवाद ॥ आई सी सी आर 1976
9. प्रायेन्स ऑफ इन्डियन लिटरेचर : स्टेटिस्टिकल इन्स्टीट्यूट कलकत्ता : 1976
10. तुकारामस पोएमस : मुनाइटिड राइटर्स, कलकत्ता : 1976

11. हिन्दुइजम - इदस कंदी ब्यूना टू सार्स एण्ड सिक्काइजेशन:
विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979
12. मार्निंग एक्स: भरणी से कवितानुवाद : 1979
13. लिटरेरी स्टडीज एंड स्केचस : युनाइटेड राइटर्स, कलकत्ता: 1979
14. माउन्टिनी एण्ड क्रीमपोरेरी इन्डियन लिटरेचर : चेतना पब्लि-
केशन नई दिल्ली, 1977
15. रिनेसांस इन इन्डियन लिटरेचर : युनाइटेड राइटर्स : कलकत्ता
1979
16. ग्राम सेल्फ टू सेल्फ : आत्मकथा : विकास पब्लिकेशन: 1976
अप्रैल
17. राजल साहित्यायन : साहित्य अकादेमी : 1981

इनके अतिरिक्त अनेक ग्रंथ और बनाए देशी - विदेशी अनेक भाषाओं में अनुवादित हुए हैं।

“माचवे जेदस हजार पृष्ठों का विविध प्रकार का लेखन पत्र -
पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है।”

3. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों का सार स्वीप :

3.1. परन्तु :

“परन्तु” माचवे जी का प्रथम एवं अत्यंत लघु उपन्यास है। इस में मात्र 51 पृष्ठ हैं। “हेमवती” विधवा के माध्यम से नारी पर होने

1. मास्तिनंद पाठक भुम्किता डा० प्रभाकर माचवे : सी दृष्टिकोण
पृ० १११

वाले अत्याचारों का वर्णन किया गया है। उसके विवाह के एक साल बाद ही वह विधवा हो जाती है। हेम में उसका पड़ोसी अविनाश खिलचस्पी लेता है। हेम अपने मामा के साथ कलकत्ता चली जाती है। उसे हमेशा अपने पिता की बात सताती रहती है। अविनाश भी पढ़ाई के लिए कलकत्ते में ही रहता था। उसकी याद उसे आती है और वह सोचने लगती है कि इस कलकत्ता महानगर में उसे कहाँ दूँटे और कैसे पता लगाया जाए ? इसी बीच उस महानगर में वह अशोच विधवा सैठ लक्ष्मीचन्द से ठगी जाती है। हेम नौकरी की आशा से उस सैठ को अपना सब कुछ अर्पित कर देती है। लक्ष्मीचन्द हेमवती को नौकरानी के रूप में पाकर जितने पैसे देता है उससे अधिक का तो काम ले लेता है और उसके नारीत्व से खिलवाठ मुनाफे में करता है। हेम रोजी चले जाने के डर से इस घृणित और इच्छा विरुद्ध अत्याचार को भी बरखीकार करने में असमर्थ रहती है। हेम को अन्ततः अविनाश का पता मिल जाता है और वह अपनी दुःखमयी कहानी उसे सुनाती है। अविनाश के मन में सैठ लक्ष्मीचन्द के प्रति प्रतिहिंसा की भावना जाग उठती है। अविनाश सैठ की हत्या करने का निश्चय करता है परन्तु डर के मारे वह भाग जाता है। यह देखती मात्र अविनाश की नहीं बल्कि सारे समाज के गतिरोध की समस्या है।

इस उपन्यास में अमिय और अनीता की कथा भी है। अमिय मूलतः सुविधाभोगी जीव है। अनीता क्रांतिकार है। अनीता के मृत्यु गीत देखकर अमिय उसका दास हो जाता है किन्तु अनीता का आकर्षण अमिय के प्रति केवल बौद्धिक स्तर का जैसे एककलाकार दूसरे कलाकार का आदर करता है, होने के कारण अनीता ने दशरथ मिश्र नामक कलाकार से विवाह किया।

इस उपन्यास में नारी के प्रति लेखक ने भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। उसने नारी के कला, रवीन्द्रनाथ की उद्योग, विधवा, कुलवधु, परिवार का निर्वाह करने वाली कर्तव्यपरायणी कथा है। कुल मिलाकर इस उपन्यास में "हेम" के माध्यम से नारी जीवन की दर्दभरी कहानी प्रस्तुत की गयी है।

3.2. फक्तरा :

यह माघवे द्वारा लिखा गया दूसरा उपन्यास है जिसमें सन 1942 के आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में नारी की दार्शनिक कथा है। इस उपन्यास की केन्द्र बिन्दु तारा नामक नायिका है। तारा एक बड़े सेठ की पुत्री है। उसकी माता का देशान्त हुआ है और विमाता उसको हमेशा कोसती रहती है। उसके पास भौतिक सुख सभी हों पर भी मानसिक आनन्द नहीं है। इस उपन्यास में "तारा" आकाश में चमकने वाले तारे के समान अकेली है। सन 42 के आन्दोलन में वह क्रांतिकारी दल के प्रति आकर्षित होती है और घर छोड़ कर चली जाती है। क्रांतिकारी दल के नेता जयन्त को वह बहुत मानती थी। किन्तु वह तारा को सदिह की दृष्टि से देखता है। तारा घर से इसलिए निकलकर आयी थी कि वहाँ उसकी स्वतंत्रता का हनन हो रहा था। किसी पुरुष के साथ छुमने नहीं दिया जा रहा था। देर रात बाहर से घर आने नहीं दिया जा रहा था। किन्तु तारा को अब माजूम हुआ कि बाहर भी जयन्त जैसे समाजवादी उसे सदिह की दृष्टि से देख रहा है अतः भारत जैसे देश में स्त्री की स्वतंत्रता का कल्पना भी नहीं की जा सकती। परिस्थितियों के कारण वह जेल जाती है, वहाँ पर मिलने होमैन्ड नामक गायक के सिवाय और कोई नहीं

जाता । वह सोचने लगती है कि क्या नारीका जीवन पिता, पति और पुत्र के आधार पर ही निर्भर रहता है ? क्या उसका स्वतंत्र जीवन नहीं है ? वह यह भी विचार करती है कि विवाह स्त्रीके लिए बंधन है । इसलिए उसने निर्णय लिया कि राष्ट्र सेवा के लिए अविवाहित ही कामकरे । किन्तु जैसे ही जेल से छुट गयी वह नौकरी ढूँढने लगी किन्तु उसके आन्दोलनों के कारण कहीं पर भी नौकरी नहीं मिली ।

अन्तः हेमन्त के थियेटर ग्रुप में भर्ती हो गई और हेमन्त के साथ रजिस्टर्ड पद्धति से विवाह किया । परिस्थितियों के दबलाव के कारण थियेटर कंपनी ठीक नहीं चल रही थी । साथ ही सांसारिक जीवन में बढ़े भी हो गये थे । आर्थिक अभाव जीवन को दुःखी बना रहा था । पति ने तलाक दिया था । तब तारा को मालूम हुआ कि आदमी और आदमी के बीच के रिश्ते आर्थिक ही है ।

इस प्रकार साचवे जी ने इस लघु उपन्यास में "तारा" के माध्यम से अकेली नारी के जीवन स्तर का मनोवैज्ञानिक ढंग से यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है ।

3.3. आभा :

इस उपन्यास में स्त्री जीवन की दर्दभरी कहानी तथा पुरुष की उच्छ्वेसता का चित्रण किया गया है । "आभा" की नायिका "आभा" है जो परित्यक्ता है । आभा ललाम नामक युवक से धनिकृता बढ़ाती है किन्तु आभा के पिता उसका विधवात कलाकार "बी" के साथ विवाह कर देता है । आभा की पति के प्रति विमुखता बढ़ती गई और एकदिन बी ने एक कन्या देकर उसे छोड़ दिया । आभा अपना जीवन

कालेज में पढ़ाने में लगा देती है । उसके अन्दर पुरुषों के प्रति द्वेष भावना उत्पन्न होती है । आभा सत्यकाम नामक पुस्तक से आत्मीयता बढ़ाती है उसके साथ दिवली जाती है । उसे याद आता है कि एकबार श्री के साथ भी दिवली आयी थी । इसी दिवली में श्री श्यामा के साथ रहता था । श्री श्यामा की एक पुस्तक से सत्यकाम का दिया हुआ एक उपहार और एकचित्र देखता है । श्री को यादआता है कि एक बार श्यामा के सत्यकाम के घर पर देखा था । उसमें श्यामा के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है । वह सोचने लगता है कि इस स्त्री के जीवन में और कितने पुरुष होंगे । किन्तु श्री के जीवन में भी अमिता, आभा, श्याम, सुचिन कई अन्य भी आई है । इस उपन्यास में एक और पात्र है केल्की जिसका पति हमेशा व्यापार में व्यस्त रहता है तो वह अलताफ के साथ घूमती है । इस प्रकार लेखक ने सभी पात्रों का अपने अपने समस्याओं का मनोवैज्ञानिक रूप का चित्रण किया है ।

जीवन की दीछ धूस में अनेक अनुभवों को डेलते हुए आभा टी.बी की पेशेंट हो जाती है । आभा के जीवन में श्री एक पुरी को देकर चला गया और सत्यकाम एक लठके को देखकर चला गया किन्तु वह लठका भी जीवित नहीं रहा । अंततः आभा श्री को एक पत्र लिखती है कि ब्या मेरी जैसी नारीका समाज में कोई स्थान नहीं है १ बयों नारी को निरा छिन्नोना समझते है १ और वह पापिनीकह्लाती है १ और पत्र में जागे लिखती है - "मुझे एक वचन दो - अपने जीवन में जब तक तुमने जो कुछ किया, पर जागे जब मेरी शपथ है, किसी भी नारी का अपमान न करोगे, नारी का अपमान आधी सृष्टि का अपमान है और मनुष्य सृष्टि की भुल उस शक्ति को ठुकराकर कहा जाएगा ।"¹ श्री पत्र पाकर

स्पेशल कार में अस्पताल के पास जाता है जहाँ पर आभा थी किन्तु गेट के पास ब्रेक फेल होकर कार की दुर्घटना होती है उसी में श्री समाप्त हो जाता है। उधर अस्पताल में आभा ने श्री की राह देखते-देखते बर्षि बन्द कर दी। इस प्रकार दोनों इस संसार को छोड़ जाते हैं।

इस उपन्यास में माधवे जी ने जीवन, जन्म, मृत्यु आदि का दार्शनिक व्याख्याएं भी प्रस्तुत की है। नारी जीवन में आनेवाली समस्याओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।

3.4. साधा :

"साधा" माधवे जी का चौथा उपन्यास है जिसमें औद्योगिक सभ्यता के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर मानवीय दृष्टि से विचार व्यक्त किया गया है। इस उपन्यास में तीन मुख्य कहानियाँ हैं - एक केशो और मांगीराम की, दो मनोहर, लिजा और फादर ठिक्सन की और तीन शरण और कामिनी की।

केशो ग्रामीण किसान है वह अपने मित्र मांगीराम के कहने पर उसके साथ शहर में मजदूरी करने निकल पड़ता है। केशो भोला है और और मांगीराम बहुत चालक। दोनों शहर उज्जैन जा कर किसीकपड़े के मिला में काम करने लगते हैं। किन्तु उस काम से केशो तुरन्त उब्र जाता है। वहाँ की परिस्थिति भी उसे अच्छी नहीं लगती। वहगांव जाना चाह रहा था। मिला का वास्तविक स्वरूप तब पता उसे लगा जब उसे टी बी हो गयी और उसके इलाज के लिए वहाँ की कोई भी यूनियन सहायता नहीं करती। कम्युनिस्ट यूनियन कहती है कि वह गांधीवादी यूनियन वालों से मिलता छलता है वहाँ जाकर मदद माँगे। आई एन टी यू सी कहती है कि वह कम्युनिस्ट है वहाँ से ही आप मदद लीजिए।

इसी चक्कर में एक दिन मुफ्त वाई से केशो का शव उसकी पत्नी के हवाले कर दिया गया - शायद मुर्दा फूँकने लायक पैसा मिले वालों ने दे दिया था ।

मनोहर की कहानी उपन्यास का दूसरा खंड है । वह दर्शन शास्त्र में एम. ए. है और समाज सेवा करने के लिए उत्सुक है । इस कारण मिशनरी फादर ठिक्सन तथा उसकी पुत्री लिजा से मिलते रहते हैं । वह लिजा पर आकर्षित होता है किन्तु फादर ठिक्सन की बातों से पता चलता है कि लिजा की शादी उनके साथ नहीं हो सकती तो वह इन्दौर जाकर मजदूर यूनियन की सेवा करने में भर्ती हो गया । वह उस नौकरी से उब गया और उसे छोड़कर दूसरी नौकरी के लिए निकल पड़ा, वहमदाबाद गया । वहाँ पर छठालें और ताम्रपदायक दौरे हुए । मनोहर को पुलिस पकड़ ले गयी । वह सोचने लगा यह संसार कैसा है जिस तरह से मनुष्य को अपने सचि में फिट करना चाहता है । उसने मन ही मन सोचा - "चाहे दूट जाऊंगा, साँचा नहीं बनूँगा, शरण नहीं जाऊँगा ।"।

इस उपन्यास में तीसरी कहानी है मनोहर के मित्र शरण की । यह अनर्थात शहर में बी. एस. सी. किया था और मनोहर को यूनियन में नौकरी दिलवाया था । वह कामिनी के प्रति आकृष्ट होता है । बाद में शरण किसी प्रवेश के सरकारी उपमन्त्री बना । इस प्रकार अब शरण राजनीति में उतर पड़ा । उन्हें कामिनी मिल जाने के कारण वह फिल्म कंपनी भी चलाना चाहता है । इसी प्रकार इन का भी जीवन एक विशिष्ट सचि हो गया ।

इन तीन कहानियों के आधार पर उपन्यासकार ने सखिबुद जीवन का और औद्योगिक सभ्यता का सुलासा दिया है। मशीन के कारण आदमी का व्यक्तित्व नष्ट होता है और वे अकेले मात्र हो जाते हैं। इस प्रकार औद्योगिक विकास के कारण उत्पन्न होने वाली सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं का यथार्थ के साथ चित्रण किया है।

3.5. जो :

"जो" अमरीकी रंगभेद समस्या के आधार पर लिखा गया हिंदी का शायद पहला उपन्यास है। रंगभेद पर आधारित शोषण व्यवस्था इस उपन्यास में यथार्थ चित्रण हुआ है। अमरीकी नीग्रो समस्या को उपन्यासकार ने भारत की अछूत समस्या से तुलना करके देखने का सफल प्रयास किया है। माचवे जी ने अपने अमरीकी प्रवास में वहाँ अनेक अखेत लोगों से मिला उनके समस्याओं का नज़दीकी से अनुभव किया। इसी कारण नीग्रो जाति के सामाजिक - सांस्कृतिक और राजनैतिक समस्याओं का चित्रण करते हुए इन सबके मूल में आर्थिक विषमता मूल कारण बताया है।

इस उपन्यास में कथा तीन भागों में विभाजित है - एक बेसी और जेम्स, दूसरा ठोरा और स्टीवन तथा तीसरा रामन और मुस्गन। कथा के मुख्य नायक अछूत वर्ग का "जो" है जो नीग्रो संगीतज्ञ है। वह एक गोरी बेया की लड़की से प्यार करता है किन्तु वह लड़की "जो" को छोड़ कर किसी और के साथ केनेडा चली जाती है। जिसके कारण "जो" में हमेशा प्रेम आदि के संदर्भ में छुणा रहती है। विशेषतः गोरी लोगों के प्रति उन्हें द्वेष है। बेसी "जो" की बहन की लड़की है वह गोरी

लड़के जेम्स से प्रेम करती है और उसे बचचा होने वाला है। इस कारण जो बेसी को पीटता है और होने वाले बच्चे के भविष्य के बारे में चिंता व्यक्त करता है। बेसी "जो" को छोड़ कर धनी जाती है। बेसी को लड़का पैदा होता है और उसके बाद वह नीग्रो मुक्ति आन्दोलन में जुट गई, जेल गई और छुटने पर जेम्स ने उसका स्वागत किया। दोनों स्नेहपूर्वक रहने लगे। बेसी को लगता है कि अच्छे और बुरे आदमी काले और गोरे दोनों में भी होते हैं।

ठोरा स्टीवन से प्रेम करती है। स्टीवन यूरोन्मादी है। और वह नीग्रो जाति के विरुद्ध है। वह ठोरा से इसलिए शादी नहीं करता क्योंकि वह सोचता है कि युद्ध में अगर वह मर जाए या अपाहिज हो जाए तो ठोरा को सुख नहीं दे पायेगा। किन्तु भारतीय रामन समझता है कि ऐसा सम्झना गलत है। भारतीय चिंतन में मृत पूर्ण विराम नहीं है, वह एक प्रक्रिया है। रामन के विचारधारा से ठोरा प्रभावित होकर वह स्टीवन से सम्झौता नहीं करती है।

रामन के रूप में स्वयं उपन्यासकार सामने आता है। रामन को अमेरिका के अनेक प्रान्तों को देखते - देखते भारत की याद आने लगती है। रंगभेद की समस्या को लेकर अपने हरिजन मित्र मुस्गन की याद आती है तथा भारतीय समाज में फैली अस्पृश्यता की समस्या की याद आ जाता है।

इस प्रकार ठोरा माचवे द्वारा विकसित अमेरिका जैसे देश में व्याप्त रंगभेद समस्या पर लिखा गया यह उपन्यास नीग्रो जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं को पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

3.6. किशोर :

माधवे द्वारा युवा वर्ग की समस्याओं के आधार पर लिखा गया उपन्यास "किशोर" है। इस उपन्यास के अन्तर्गत समाज में उत्पन्न होने वाले सामाजिक तथा विद्यार्थी-कारियों के कारण देश की शिक्षा संस्थाओं में फैलने वाली अज्ञात का चित्रण किया गया है। इसी प्रकार "किशोर" नामक छात्र के माध्यम से छात्रों की मानसिक स्थितियों का अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ विश्लेषण किया गया है। युवकों में धर कर लेने वाले असंतोष, अव्यवस्था और हीनता की भावनाओं का भी इस उपन्यास में चित्रण हुआ है।

किशोर एक निम्न जाति का विद्यार्थी है। इसके पिता बल्लू है और घर में सीतेजी माँ और उसके बच्चे हैं। सीतेजी माँ घर में हमेशा ठूटते फटकारते रहती हैं और अनेक काम करने का कहती हैं। वह काम करके जमा जाता है। घर के बाहर समाज में उसे कम जात और अर्द्धभाव के कारण हेय और धृष्ट की दृष्टि से सभी लोग देखते हैं। इस कारण उसमें असंतोष और अव्यवस्था विकसित का रूप लेते हैं और कोई उकसाने के कारण छात्रान्दोलन में बस जलाता है। बस जलाते समय रंग हाथों पुलिस पकड़ लेती है। तब मित्र और छात्र नेताओं में से कोई भी उसे छुड़ाने हवालत के पास नहीं जाता। अन्ततः उसके पिता ही जमानत का प्रबंध करके छुड़ा लेते हैं।

परिस्थितियों के बदलाव में किशोर को दो लाख रुपये की लाटरी निकलती है और उसकी नियति बदल डालती है। जो लोग पहले दूर-दूर हो रहे थे वे सभी किशोर के पास आने लगे। जिन लोगों

ने विश्वोर के साहित्यिक लेखों को प्रकाशित नहीं किया था वे अपनी पत्रिका में हिस्सा देने आये । विश्वोर के घर के पास "दया" न नाम की लड़की रहती थी उसके पिता जी विश्वोर कम जात का होने पर भी उससे उसकी शादी करने को तैयार हो गया परन्तु विश्वोर ने प्रस्ताव को टाल दिया । बहुत सोच विचार करने के बाद बस जलाने का प्रयासिचत करने हेतु उसने बस फँड में बस के लिए पैसे जमा किया । छात्रों के द्वारा छात्रों के लिए और छात्रों की ही बस । सहकारी बस सर्विस आरंभ हो गई ।

ज्ञान में उपन्यासकार कहते हैं कि "ऐसा आदर्श क्या यथार्थ में जन्दी ही मूर्त होगा ?"।

3.7. तीस चालीस पचास :

इस उपन्यास के माध्यम से पीढ़ियों के अंतराल की समस्या को उपन्यासकार ने उभारने का प्रयास किया है । उनका कहना है कि चाहे तीस चालीस पचास हो या पचास साठ सत्तर हो यह अन्तराल हमेशा बना रहता है । उपन्यास में दो खण्ड है काल और दिक् जिसे हाइफन से जोड़ा है । काल के अंतर्गत आचार्य कसूदेव, मोहन अनिरुद्ध, सरला, स्वस्थाना और १२ उधा की कहानी है । दिक् के अंतर्गत संसार के विभिन्न स्थलों को संपादित किया गया है । सेन्ट्रॉसिस्को, सोफिया, सुवर्ण श्री और सेवापुरी के द्वारा उपन्यासकार ने विभिन्न देशों के महानगरीय जीवन बोध को उजागर किया है ।

बाचार्य वसुदेव और सरला पुरानी पीढ़ी के हैं और अनिस्ट तथा उषा नयी पीढ़ी के हैं। इन दो पीढ़ियों के बीच मोहन और स्खसाना हैं। वसुदेव का जन्म सन 1900 में हुआ है। उसका विवाह बचपन में ही धार्मिक और कमपढ़ी लिखी सरला के साथ हुआ है। वसुदेव गांधी-वादी था और अपनी विचार धारा पर ही चलने के लिए बड़े मोहन को भी कहता है मगर मोहन अपने पिता जी के विचारों को रुढ़िग्रस्त पुराने विचार समझता है। वसुदेव को मोहन में विद्रोह के स्वर नजर आते हैं। मोहन मुस्लिम स्खसाना से विवाह करता है। वह एक वैज्ञानिक बन जाता है। वह सन् 1930 की पीढ़ी का है। वह साम्यवाद को फैलाने के रूप में स्वीकार करता है। किन्तु समाज ने उसके प्रति बुरा व्यवहार किया है वह मुस्लिम स्त्री से विवाह कर लेने के कारण "एन्टिसेन्ट" होने लगा। साम्यवादी पार्टी से सम्बद्ध तो उन्होंने भी एनार्किस्ट कहकर निकाल दिया। उसने प्रतिकार के रूप में मार्क्सवाद विरोधी साहित्य पढ़ने लगा। मोहन की अगली पीढ़ी के प्रतीक उत्काबेटा है अनिस्ट। अनिस्ट क्षणवाद में विश्वास रखनेवाला युवक है। वह अपने साथियों के साथ कहीं स्नैबर में या फिर किसी चूल्हाने में रात और दिन गुजारते रहता है। वह कभी साहित्य, कभी दर्शन और कभी राजनीति पढ़ता है तो कभी अंग्रेजी कविताएं करता है। वह समस्याओं और चिंताओं से दूर होने के लिए गोली खाता है। उसके लिए दिन रात और नहाना - न नहाना बराबर है। वह पीढ़ी असांमाजिक है। उसके लिए शरीर और अशरीर की परिभाषा मिट चुकी है। खतरनाक और जबरन की हुई विदेशी पुस्तकें पढ़ती है।

अनिस्ट इसका प्रतिनिधि है। वह विदेशी युवती उषला जिसे उषा कहा जाता है से शादी कर लेता है।

इस प्रकार तीन पीढ़ियों के बीच में आपसी स्पर्ध से उत्पन्न अनेक समस्याओं का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। पुरानी पीढ़ी में आदर्शवाद और नयी पीढ़ी में अराजकतावाद है। इन दोनों के बीच में किछ भी न रहने वाली बीच की पीढ़ी है जो हमेशा निर्णय लेने में विफल होती रहती है। उपन्यासकार ने इन सभी पात्रों को संसार के भिन्न भिन्न प्रान्तों में देखा है और हर प्रान्त के सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है। अन्त में उपन्यासकार "भारत के कल्पित ग्राम सेवापुरी में विचरता है जो दूर से गंधता और जातिवाद के पंक से सना हुआ है जो अलग-अलग परतों, हिस्सों गुटों और समूहों में विभाजित है। यहाँ के सत्तर प्रतिशत लोग निष्कार तथा भुत प्रेत और काठ फूँक में विश्वास करने वाले हैं। सबकी दृष्टि नगर की ओर लगी है। गाँव की नारी अभी परदे में है, अनपढ़ है। यहाँ के लिए रास्ते बंद दिखते हैं परन्तु यह दृष्टि दोष है। कोयले में भी रत्न ढूँढे रहते हैं।"।

इस प्रकार इस उपन्यास में "पीढ़ियों का अन्तराल" समस्याओं को प्रमुख मुद्दे के रूप में विचार करते हुए देश विदेश के अनेक प्रान्तों का भी विवरण दिया गया है।

३.४.० दर्द के पेखन्द :

इस उपन्यास में "रीटा और श्रुता दो नारी पात्रों के माध्यम से पूर्व और पश्चिम की टकराव लेकर नारीजीवन के अन्तर्द्व और विकास की कहानी है।"।^२ श्रुता एक गरीब लड़की है जिसका बाप शराबी है।

१. डा० कृष्णा रेखा - प्रभाकर माधवे के हिंदी उपन्यास - पृ० ५६

२. -वही-

-वही-

पृ० ५८

उसने बचपन से पहाड़ी प्रान्तों के लड़कियों की बिक्री को देखा है। नारी का समाज में क्या स्थान है तभी उसे मालूम हुआ। वह कॉलेज में रमेश नामक छात्र से प्रेम करती है परन्तु वह दूसरी लड़की से शादी कर लेता है। श्रुता संस्कृत में कमजोर होने के कारण वसुबंध से संस्कृत सीखने जाती है। समाज के प्रति उसके विचारों से वह प्रभावित होती है। श्रुता नौकरी खोजने लगती है। संयोग व्वा उस को बटनी के डा० रोबर्टों को हिंदी पढ़ाने का काम मिला जाता है। धीरे धीरे वह विदेशी डा० रोबर्टों से प्यार करने लगती है और डा० रोबर्टों भी श्रुता के प्रति आसक्त होता है। दोनों का विवाह "हिन्दू पद्धति" से सम्पन्न होता है। श्रुता को एक बच्चा होता है किन्तु एक दिन डा० रोबर्टों श्रुता के पुत्र को लेकर भागजाता है। इस प्रकार श्रुता दुःखार्थ, उपेक्षित और परित्यक्ता नारी बन जाती है। श्रुता अपने पुत्र आनन्द की खोज करने के बटनी जाती है। वहाँ वह अपने पुत्र को एक अनाथालय में देखती है और फूट-फूट कर रोती है। वह इतनी विवश है कि अपने पुत्र से बात भी नहीं कर पाती।

उपन्यास के दूसरे खण्ड में आस्ट्रेलिया से भारतवर्ष रीटा की कहानी है। यह भी अकेली है। नर्सिंग ट्रेनिंग करके वह भारत में मिशनरी में काम करने आयी है। रीटा आस्ट्रेलिया में आदिवासी समस्या से जुड़ी है उसे उसी समस्या से भारत में भी जुड़ना पड़ता है। रीटा सेवा कार्य करते हुए राज नामक अध्यापक के प्रभाव में आ जाती है और राज की माता की प्रेरणा से उससे विवाह कर लेती है। इसी प्रकार वसुबंध राज की बहन प्रतिमा के साथ विवाह करता है।

इस प्रकार उपन्यास में श्रुता और रीटा के जीवन संघर्ष की ही कथामंश है। "एक नारी भारत से चकर यूरोप की आत्मा की

खोज में ग्रीस, रोम, जेस्तलम के छण्डहरों में भटक रही थी और दूसरी गोरी बस्तियों से पाश्चात्य संस्कारों से लैस होकर भारत के आधुनिक मनीषियों की लीलाभूमि में आत्मा को खोजना चाहती है ।¹

३.१०. किसलिए :

"किसलिए" मध्यविक काल में फैली बुराईयाँ, पनपने वाले छुटा-चार, किसी भी मूल्य पर सुविधाओं को जुटाने की प्रवृत्तियाँ, जीवन का दैहिक सुखवादी दृष्टिकोण कथ्य का प्रमुख अंग है ।² यह उपन्यास दिल्ली के एक उपनगर के ऐसे बड़े चालुनुमा घर की कल्पना पर आधारित है जिसमें पाँच हिस्से हैं और सब में मध्यवर्गीय आय वाले विभिन्न पेशों से संबंधित परिवार रहते हैं । इस प्रकार यह बड़ा सा घर मध्यवर्गीय समाज का प्रतीक सा लगता है जिसमें अलग अलग स्वभाव के लोग रहते हैं । वे एक समूह भी हैं और अलग अलग हकाई भी हैं । लेखक ने इस उपन्यास में अर्थ, अ-नर्थ और अ-काम के रूप में कथा को तीन छण्डों में विभाजित किया है । उपन्यासकार माधवे अर्थ, अर्थ, काम के आगे "अ" उपसर्ग लगा कर यही कहना चाहता है कि ये तीन पुरुषार्थ अपना सही अर्थ खो गए हैं । इस उपन्यास में मध्यवर्गीय कतिपय चिन्तों को माधवे जी ने प्रस्तुत किया है । इसमें नव धान्द्वय वर्ग है, जिन्दगी में कैरियर बनाने वाले लोग हैं, और दूसरों को फँसाने वाले स्वाधीन लोग भी हैं । इनके अतिरिक्त बहुत जाति की समस्याएँ हैं, आत्मपीते वर्ग की अपनी आत्मसंवेदित जिन्दगी है और पुरुष द्वारा शोषित नारियों की गाथा है ।

1. डा० कृष्णा रेणा - प्रभाकर माधवे के हिंदी उपन्यास - पृ० 62

2. चंद्रकांत दादिवहेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास : सृजन और आलोचना - पृ० 24

कुल मिलाकर इतना कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय परिवारों की समस्याओं को नगरबोध के परिप्रेक्ष्य में दिखाने का प्रयास किया गया है। इसलिए नगरीय जीवन का यथार्थ के साथ चित्रण किया गया है। उपन्यास की कथा वस्तु ऐसा है कि अन्त तक पढ़ने के बाद भी हम वहीं रह जाते हैं जहाँ से शुरू करते हैं। लेकिन जानकारी का एक विशाल भण्डार हमें मिलता है।

3.10 पुनः :

इस उपन्यास में माधवे जी पौराणिक गाथाओं को प्रतीक के रूप में लेकर मानव जीवन की परिभाषा दी है। उनके अनुसार जीवन एक जुड़ा है, छेदने वाले खुद पासे है, खुद ही गोटियाँ हैं, हार जीत का निर्णय न खिलाड़ियों के हाथ में है न ही गोटियों के। जीत भी कितनी जीत है और कितनी हार तथा हार भी कितनी हार है और कितनी जीत। इसका निर्णय भी अपने आप में एक जुड़ा है। उपन्यास का मुख्य कथ्य इस प्रकार है - बाढ़ग्रस्त गाँव में सहायता कार्य करने धर्मराज नामक युवक तथा द्रोपदी नामक युवती आते हैं। धर्मराज दक्षिणपंथी विचारधारा वाला है और द्रोपदी वामपंथी विचारधारा वाली। ये दोनों गाँव में मधुच्छेता दादा से, नीच जातिवाली, देवदासी की संतान कलिया से मिलते हैं और ग्राम सुधार के बारे में सोचते हैं। छेद का पुत्र कलिया के लोकनृत्यों की फिर से बनाकर उसकी प्रचार करना चाहता है। किन्तु यह सब कुछ छूट कर वह अमेरिका चला जाता है। वह वहाँ के जीवन को एक बहुत बड़े और विशाल जुड़ा खाने के रूप में देखता है। जहाँ की सारी जाँच व्यवस्था केवल जुएबाजी पर टिकी है। वह भारत लौट आता है। इधर गाँव में सुधार हो रहा है। इसके लिए सरकारी

मदद भी मिल रही है। लकी गाँव के पास लोह अयस्क की खानें मिल जाती हैं। कुछ ही वर्षों में वह गाँव इस्पात नगरी के रूप में परिवर्तित होता है। यहाँ पर लेखक ने एक कल्पित औद्योगिक सभ्यता का रूप दिया है। जिसमें मन की भावनाएँ, भाषा, कलाएँ, साहित्य, धर्म संगीत, शिक्षा सभी कुछ इस्पातमय हो उठते हैं। प्रजनन कार्य रोक दिया जाता है। पूर्ण शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं समृद्धिकरण हो जाता है। यहाँ पर बसने वाली जनता अपने से एक पीढ़ी पुराने इतिहास को छुपा और उपहास की दृष्टि से देखती है। इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यम से माघवे ने औद्योगीकरण से होने वाले मानवीय गुणों की क्षति के बारे में अवगत कराया है।

३.११. लक्ष्मीबेन :

इस उपन्यास में विभिन्न क्षेत्रों में नारी के प्रति उत्पन्न होने वाले विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने लक्ष्मीबेन को केन्द्र में रखकर उसके आस पास उत्पन्न होने वाले समस्याओं का चित्रण किया है। सबसे पहले वह पारिवारिकता नारी है उसका एक पुत्र है विनोद और वह किसी कलेज में इतिहास के प्रोफेसर के रूप में काम करती है। उसका नाम लेखक गुप्ता है। वह पढ़ाने में उब जाती है। इस कारण प्रोफेसरी छोड़ कर "लक्ष्मीबेन" नाम से समाज सेविका बनती है। वह समाज सेविका बनने के बाद समाज में व्याप्त अशिक्षा, निर्धनता और अंधेरे कार्यों को नज़दीक से देखती है। फिर वह अपना रूप बदलती है। अब वह नेता कुक्षणा देवी जी परन्तु शान्ति उसे यहाँ भी नहीं मिलती। राजनीति में इनका झुंझकर विरोध होने लगा। इनके विरोधी अनेक लांछन लगाये और आरोप करने लगे। इस कारण इस

रूप को भी उसने त्याग दिया । वह शांति प्राप्त करने के लिए अध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो गई । अब इनका नाम योगिनी-अलक्षिता हो गया । जब परात्पर आश्रम में अलक्षिता रहने लगी थी तब उन्हें पता चला कि अपना पुत्र विनोद नदी में छूदकर आत्महत्या कर ली तो माँ का हृदय इस घटना को सहन नहीं कर सका और उसने आश्रम छोड़ दिया । वह अन्त में लेखिका बनी । इनका नाम था लेखिका "ल०" । इसके मन में अन्तर्द्ध व्याप्त था । यहाँ पर भी वह शांति से रह न पायी थी । प्रकाशकों की व्यापार नीति से वह असंतुष्ट थी । इस प्रकार वह पाँचों रूपों में भी कहीं शांति को नहीं प्राप्त कर सकी । नारी के लिए प्रत्येक क्षेत्र बाधा गया मार्ग ही है । ऐसा लेखक ने कुछ क्षेत्रों को उद्घृत करते हुए दिखाने का प्रयास किया है ।

कुल मिलाकर संपूर्ण उपन्यास में नारी जीवन में उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है ।

3.12. कहीं से कहीं :

माचवे जी ने इस उपन्यास के माध्यम से भारतीय सामाजिक परिदृश्य का चित्रण किया है । उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त जाति भेद, धर्म भेद तथा क्षेत्र भेद आदि को तत्कालीन जर्मनी के परिदृश्य में देखा है । भारत में स्वतंत्रता से पहले भविष्य का सुन्दर स्वप्न देखा जा रहा था किन्तु स्वतंत्रता आने के पश्चात वह सुन्दर स्वप्न टूट चुका और अनेक अलग-अलग पूर्ण समस्याएँ उत्पन्न हो गये । इसी का चित्रण माचवे जी ने इस उपन्यास में किया है । "विभा" विज्ञान और उच्च शिक्षा की पढ़ाई के लिए जर्मनी जाती है । वहाँ पर जर्मन युवक क्लि के साथ उसका परिचय होता है । दोनों विवाह कर लेना चाहते हैं किन्तु क्लि की माँ विभा को ईसाई धर्म स्वीकारने को कहती है। विभा क्लि से कहती है

कि यदि अपनी माँ से अपनी विवाह के संबंध में कहे तो वह शायद रजिस्टर्ड एंग से विवाह कर लेने को कहती क्यों कि तत्कालीन समय कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी । जर्मन में ही विभा को भारतीय युवक भास्कर से परिचय होता है । विभा भास्कर को भी परछाई है और वह प्रभाकर के प्रति अनिच्छा व्यक्त करती है । विभा भारत लौट आती है और दिल्ली के पास ही एक गाँव में ठाकुरी करते हुए समाज सुधार कार्य में लग जाती है । जिस गाँव में विभा काम करती है उसी गाँव में जितेन्द्र नामक गांधीवादी, मेधावी, समाज सुधारक युवक रहता है, दोनों के बीच में परिचय होता है और दोनों मिलकर ग्राम सुधार का कार्य करने लगते हैं । विभा निर्णय करती है कि वह जितेन्द्र से शादी कर ले और विभा और जितेन्द्र एक हो जाते हैं ।

भास्कर जर्मन लड़की फ्रेडा से विवाह कर लेता है किन्तु फ्रेडा भारत नहीं आना चाहती । इस कारण दोनों के बीच विवाह संबंध टूट जाता है । भास्कर भारत लौट आता है । जब विभा जर्मनी से भारत आ रही थी तब भास्कर एक पूर्वी बंगाल की मुसलमान लड़की नजमा को विभा के साथ मिला देता है । उस लड़की के साथ भास्कर भारत आने के बाद विवाह कर लेता है । दोनों कई जगहों पर काम करते हैं । किन्तु दोनों के मत भिन्न होने के कारण नजमा भास्कर को छोड़ कर अमेरिका चली जाती है ।

इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने जर्मन का विभाजन, ज़लीम दीवार, भारत विभाजन, बंगला शरणार्थी, भारत में फैली जातिवाद, बेरोजगारी, अनात्मता और हेतुवाद का भी उल्लेख किया है । लेखक ने स्वतंत्रता के बाद की देश की स्थिति पर चिंता व्यक्त किया है ।

3.13. दशमुखा :

"दशमुखा" उपन्यास में माधवे जी ने नारी की सामाजिक स्थिति के बारे में चित्रण किया है। माधवे जी कहते हैं - भारतमें नारी देवी है, शक्ति है, भारत "माता" है। * * * उस आधा शक्ति का हमने बया कर ठाला है। आधी दुनिया रसोइदार, जूँचा-बूँचा और जर्जर बन्ध-रुद्धियों में जकड़ी पड़ी है। स्त्रियों की सक्षरता, स्वतंत्रता के तैत्ति स वर्ष बाद और एक दशक के ऊपर, एक महिला प्रधान मंत्री के होते हुए, अभी भी नारी दयनीय और शोचनीय अवस्था में है। यह उपन्यास उसी आक्रोश का एक चित्र है, एक असहाय स्त्री की दृष्टिसे।*

इस उपन्यास की नायिका अदिति है जो सोमनाथ घटगी नामक ब्रह्मवत की पत्नी है। सोमनाथ और अदिति कलकत्ता देखने आते हैं। वे एक दिन काली मंदिर जाते हैं। वही सोमनाथ अपनी पत्नी को छोड़ कर चले जाता है। अदिति मंदिर के चारों ओर अपने के लिए दूटती है किन्तु वह कहीं पर भी नहीं मिलता। बाँखर वह उस लोख में भी खोजती है, जहाँ पर वे ठहरे हुए थे। किन्तु लोख के मैनेजर नबताया कि उसका पाँत सामान लेकर, कमरा खाली कर के चले गया है। अदिति अकेली और उपेक्षित नारी उस नये महानगर में परेशानी के साथ सोच रही थी कि कहाँ जाए ? इसी समय उसे याद आ गया कि उसकी बचपन की सहेली महिमा इसी नगर में रहती है। और उसने उसका घर खोज निकाला। घर में महिमा थी। अदिति ने अपना कहानी सुना दी। महिमा ने उसे वरुणों की स्त्रीत सिखाने का और नालिकान्त नामक एक बौद्धिक के पास स्केटरी कम टार्निपस्ट का काम दिला दिया। जिसके कारण अदिति का गुजारा उस महा नगर में होता था। इसी प्रकार

महिमा के सहयोग से उसे ग्रामीण कला की प्रदर्शनी में स्वीकृत कार्य कार्य तथा साहित्यिक पत्रकार सुनात से अनुवाद का कार्य भी मिला । इसी बीच दीपक दास गुप्ता नामक काला समीक्षक से अदिति का परिचय हुआ । दोनों मिलकर गरीब बस्ती को सुधारने का कार्य करने लगे । इस तरह से अदिति ने समाज के उच्च मध्य और निम्न वर्ग के लोगों की जिन्दगी को परख लिया । एक दिन समय के खाली रहने के कारण वह काली मंदिर गई । वहाँ उसने अचानक अपने पति सोमनाथ को एक दूसरी स्त्री के साथ देखा । वे कहाँ पर ठहरे हुए है उसका पता अदिति ने पता लगाया और वहाँ पर गई । उस समय पति नहीं था । केवल वह स्त्री थी जो सोमनाथ के साथ मंदिर आई हुई थी । उसका नाम श्यामा था । उसने बताया कि वह सोमनाथ की पत्नी है । अदिति ने अपना किस्सा सुनाया । अदिति बहुत दुःखित होती है । और वह अपने पति के विरोध में कुछ कर नहीं पाती । समय काटने के लिए नाटकों में अभिनय करने लगती है । वह रंगमंच की प्रसिद्ध अभिनेत्री बन जाती है और आर्थिक स्थिति से भी काफी सुधर जाती है । एक दिन अचानक उसके घर पर उसका पति सोमनाथ भले कपड़ों में भूखा ला आता है । अदिति के फूटने पर कहता है कि उसका पुलिस पीछा कर रही है । और उस पर आरोप है कि वह गुप्त छान्तिकारियों से संबंध रखता है । अदिति को पहले उसे देख कर धुना करती है किन्तु उसकी मजबूरी पर तरस खाकर उसे किसी दूसरे अभिनय करने वाले व्यक्ति के पास दूसरे देश में भेज देती है । इस प्रकार अदिति अपने पति जो स्वयं को मंदिर में छोड़ कर चला गया था की खता करती है । ऐसीही एक दिन अचानक वह विदेश चली जाती है । कुछ दिन बाद उसका पत्र थियेटर कंपनी के मैनेजर को जाता है जिसमें वह लिखती है कि यदि अपने पति को आर्थिक मदद की आवश्यकता हो तो उन्हें मदद कीजिए । इस पत्र के साथ चेक भेज रही है ।

इस उपन्यास के माध्यम से माचवे जी ने पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को कितने यातनाएँ दी जाती हैं तथा स्त्री स्वेच्छ के साथ अपने जीवन को किस प्रकार आगे बढ़ाती है, स्पष्ट किया है और अंत में स्त्री को दया, कृपा, का सागर के रूप में सार्थक सिद्ध किया है। इस उपन्यास में कलकत्ता महानगर की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का अद्भुत चित्रण हुआ है।

3.14. अष्टि मेरी बाकी उनका :

इस उपन्यास में देश के सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का सर्वेक्षण एक ऐसे पात्र के माध्यम से कराया गया है कि जो अपने किक्सनोव उद्योक्तियों के अनुसार आगामी चार वर्ष के बाद भरने वाला है। इस पात्र का नाम दास है और इनके साथ देश के विभिन्न क्षेत्रों तथा विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओं के लोगों का सक्षात्कार करने के लिए राजा ज्यमराज भी रहते हैं।

दास और राजा के माध्यम से लेखक ने देश के अर्थतंत्र की स्थिति, धर्मोत्तरण का मामला, प्राथमिक पाठशालों तथा कालेजों की वर्तमान स्थिति, अस्पताल में फैली भूटपाथार और ठाक कार्यालयों में अज्ञातसहीनता लापरवाही आदि का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार इन दोनों के माध्यम से देश के विभिन्न विचारधाराओं के राजनेताओं की स्वाधीनता और जनैतिकता का पदार्पण किया गया है। इन नेताओं में सर्वोदायी, साम्यवादी, समाजवादी काँग्रेस, दक्षिणपंथी मुस्लिम तथा पारसी विचारधाराओं के समर्थकों तथा उनके महिला सहकर्मियों का भी चरित्र चित्रण किया गया है।

यह उपन्यास एक प्रकार से कोलज है। जिसमें सामाजिक परिस्थितियों के टुकड़ों को और जीवन के छोटे - छोटे अनुभवों का फूज है। इस प्रकार देश की वर्तमान सामाजिक - राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ सर्वेक्षण इसके अन्तर्गत हुआ है और इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि सारे क्षेत्रों में भ्रष्टाचार, बेबमानी और अनैतिकता अधिक हो गई है।

3.15. लापता :

इस उपन्यास में डा० प्रभाकर माधवे ने एक ऐसे युवक का घरेलू विषम मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया है जिसके मन में अस्तोष और अलगाव की भावना संचित है और वह घर छोड़कर भाग गया है। अरविन्द मल्होत्रा उस युवक का नाम है और वह दिल्ली में रहता है। घर में सोल्वे माँ की डाँट से वह पूरी ज़रूर उब जाता है और उसे घर में स्नेह और भ्रमता न मिलने के कारण अस्तोष की भावना घेर लेती है। इस कारण उसमें प्रतिकार न लेने की भावना जागृत हो उठती है इस कारण वह घर छोड़ कर भाग जाता है। वह अपना पहचान मिटाना चाहता है। इसलिये उसने देवी सेन सदानन्द बालकलकर, महादेव शर्मा और शिवाजी बन्कर देवा और विद्या भूना किन्तु उसे अलगाव की भावना सलाती है। अन्तः वह घर पहुँचता है। घर के सभी सदस्य जानबूझकर होते हैं।

इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार माधवे जी यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि युवकों को घर में स्नेह और आदर न देना चाहिए।

यदि यही नहीं मिले तो युवक के मानस पटल पर कुंठा की हीन ग्रंथि उत्पन्न हो जाती है। जिसके कारण अलगाव की भावना में संवेदन पैदा होती है। यह भयंकर रूप धारण करने पर पूरा समाज खोखला होते जायेगा।

उपन्यास में केरल, गोवा, ओडिशा, कलकत्ता तथा हिमालय के पहाड़ी प्रदेशों का सुन्दर चित्रण हुआ है।

3.6. अनदेखी :

इस उपन्यास में नारी जीवन की त्रासदी का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास की नायिका "दर्शना" निम्न मध्यम वर्ग की गरीब, अकेली, उपेक्षित और विवासाघात की शिकार बनी साधारण नारी है जिसकी मनोव्यथा का चित्रण उपन्यासकार ने किया है। यह उपन्यास आत्म-कथात्मक शैली में लिखा गया है। दर्शना के जीवन में तीन पुरुष आए और तीनों तीन प्रकार के लोग थे। वह समझती थी कि वे महान हैं पर सब के सब कमीने निकले। दर्शना के जीवनमें सब से पहले आया रत्नाकर ने संस्कृत पढ़ाने के खातिर। पर उसकी दृष्टि दर्शना पर थी। इस कारण संस्कृत दूधन बन्द कर देना पड़ा। फिर दर्शना के जीवन में बामपंथी का मुछोटा पहले आनंद आया। उसके तथाकथित साम्यवादी बयानों से वह उल्लस गई थी। आनंद को व्यक्तिवादी स्वार्थपरता देख चुकी थी। इस कारण उसने अपना संबंध दर्शना से तोड़ दिया। जिस तीसरे आदमी से दर्शना भिड़ी थी उसका नाम डॉ. विनोद था और वह अंध आश्रम में काम करता था। उससे प्रभावित होकर दर्शना ने भी उस अंध आश्रम में काम करने लगी। विनोद की बढ़ती हुई लोकप्रियता को

देखकर उस संस्था के प्रबंधकों ने छूटा इन्जाम लगा कर निकाल दिया । विनोद के फ्ला में सत्य रहते हुए भी वह उनसे लड़े बिना आश्रम छोड़ कर चला गया। बाद में दर्शना ने भी उस आश्रम को छोड़ कर दुःखी असहाय लोगों की सेवा करने की तत्परता से किसी समाज सेवा केन्द्र में काम करने लगती है । इस संस्था के पाँच हिस्से थे - एक अनाथालय चलाता था, एक विधवाओं को स्वावलम्बी बनाने वाला विभाग था, एक में निष्कारता दूर करके नव सक्षार बनाने का कार्यक्रम था, चौथे में जो गाँव में बेकार युवक बैठे हैं उन्हें स्वावलम्बी बनाने का , रोजगार दिलाने, छोटे रोजगार शुरू करने के लिए कर्जा देने का विभाग था , पाँचवें विभाग में होम्योपैथी और दूसरी दवाइयाँ मुफ्त बाँटने की एक चिकित्सा शाला थी । दर्शना ने क्रमशः इन सारे विभागों में काम करते हुए अनुभव किया कि समाज में नैतिक का कोई मूल्य नहीं रह गया है और समाज के चारों ओर अनेतिकता, बेइमानी और भ्रष्टाचार फैली हुई है । इसी बीच दर्शना की अंधी होने के कारण नौकरी छूट जाती है । उपन्यासकार माचवे ने अंधी दर्शना के माध्यम से एक अकेली नेत्रहीन नारी का जीवन किस प्रकार दुःखास्त होता है स्पष्ट किया है । दर्शना की सहायता उसकी मित्र "दृष्टि" करती रहती है । दर्शना "ब्रेल" लिपि सीखती है । कुछ दिनों बाद एक पहचानी तिल्लती लड़की के नेत्रहीन के कारण दर्शना को फिर से दिखाई देने लगता है । दर्शना को जिन नेत्रों से दृष्टि आती है वे उसी तिल्लती लड़की के थे । जिसको दर्शना के मित्र कहे जाने वाला व्यक्ति प्रेम करके धोखा दिया था । लड़की के मर जाने के बाद उस पहचानी प्रदेश के आई बैंक में उसके अखि रखे गये थे जो दर्शना के कामकाये । दृष्टि आने के पश्चात दर्शना ने समाज सेवा केन्द्र खोलकर गरौबों, असहाय लोगों की सेवा करने लगी ।

कुल मिलाकर माचवे जी ने इस उपन्यास में दर्शा के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों का आकलन प्रस्तुत किया है और नारी विरोधतः अकेली उपेक्षित तथा भेदहीन के प्रति सामाजिक स्व का दर्शन किया है ।

4. निष्कर्ष :

डा० प्रभाकर माचवे आधुनिक साहित्यकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । उन्होंने साहित्य के सभी विधाओं का स्पर्श किया है । उन्होंने विरोधतः अपने विचारों को उपन्यास का रूप दिया है । इसी कारण उनके उपन्यास रोमांचकारी या मनोरंजन कम और चिंतन प्रधान अधिक लगते हैं । उनके उपन्यासों में गहन चिंतन के अलावा संसार के अनेक विरोधताओं की भी जानकारी रहती है । कुल मिलाकर इतना कह सकते हैं कि डा० प्रभाकर माचवे सही अर्थों में चलते फिरते ज्ञान कोश हैं और उनका रचना संसार अनंत है ।

अध्याय - एक

समसामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन

अध्याय - एक

समसामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन

1. प्रस्तावना
2. समसामयिक : अर्थ और स्वल्प
 - 2.1. समसामयिकता और आधुनिकता
3. यथार्थवाद की परिभाषा
 - 3.1. पश्चात्य
 - 3.2. भारतीय
4. यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध
5. यथार्थवाद के प्रकार
 - 5.1. समाजवादी यथार्थवाद
 - 5.2. आलोचनात्मक यथार्थवाद
 - 5.3. प्रकृतवादी यथार्थवाद
 - 5.4. अतिथार्थवाद
 - 5.5. आदर्शोन्मुख यथार्थवाद
 - 5.6. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद
 - 5.7. ऐतिहासिक यथार्थवाद
6. उपन्यास और यथार्थवाद
7. निष्कर्ष

अध्याय - एक

समसामयिक यथार्थबोध - एक विवेचन

1. प्रस्तावना :

साहित्य और जीवन को एक दूसरे के पूरक के रूप में स्वीकारने वाली विचारधारा है यथार्थवाद । यथार्थवाद आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रमुख विचारधारा है । हिंदी उपन्यास साहित्य जब कल्पनालोक में विचरण कर रहा था तब प्रेमचन्द जैसे साहित्यकारों ने उपन्यास को यथार्थ से जोड़ने का प्रयास किया । यथार्थ के चित्रण का अर्थ है साहित्य में किसी घटना या समस्या का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन करना । इसलिए प्रसाद जी ने यथार्थवाद की परिभाषा देते हुए कहा था कि "लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात ही यथार्थवाद है ।" ऐसे तो प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग में अनेक उपन्यासकारों ने जीवन के अनेक पक्षों का यथार्थ चित्रण बहुत ही व्यापक पटल पर सफलता पूर्वक चित्रित किया है । किन्तु इनके चित्रण में फेलाव अधिक है गहराई कम है । सद्योत्तरी उपन्यासों में जीवन की गहराई का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक हुआ है । इसी कारण प्रत्येक रचनाकार की अपनी एक दृष्टि होने के कारण यथार्थ का बोध कराने में वह अपनी सीमा के अन्तर्गत करता है । अर्थात् प्रत्येक रचनाकार की यथार्थ के प्रति अपनी एक विशेष दृष्टि होती है ।

साहित्य में यथार्थ के चित्रण के कारण मानव जीवन के अनेक व्यावहारिक पहलुओं का खुलासा पाठकों को होता है। मानव जीवन के यथार्थ पहलुओं का चित्रण साहित्य में करना मानव को अपने जीवन में विकास करने में सहायक होता है। ऐसे जीवन के यथार्थ को अन्य कलात्मक क्षेत्रों में भी अभिव्यक्त की जा सकती है किन्तु साहित्य इसके लिए स्रावत फल है।

2. समसामयिक : अर्थ और स्वरूप :

आजकल साहित्य की सभी विधाओं में समसामयिक या समकालीन शब्द का प्रचलन अधिक हो रहा है। समसामयिक का सीधा सादा अर्थ है एक ही काल में मौजूद रहना। वास्तव में हिंदी साहित्य में इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द कान्टेपररी के आधार पर हुआ है। कान्टेपररी शब्द उस व्यक्ति, घटना या स्थिति आदि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है जो लेखक का समकालिक हो।

किसी रचना को समसामयिक रचना कहकर किस आधार पर घोषित किया जाता है ? इस प्रश्न पर विचार करने पर स्वाभाविक रूप से यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि वह रचना किसकी समसामयिक है ? लेखक की ? या पाठक की ? पाठक की समसामयिकता हो नहीं सकती क्योंकि पाठक सापेक्ष है। रचना की समसामयिकता उसके लेखक से ही हो सकती है क्योंकि लेखक ही अपनी युगीन विवेकताओं को प्रतिपादित बनाकर रचनाएँ करता है और उन रचनाओं में समकालीन युग का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में दिखाई देता है। स्पष्ट है कि किसी रचना की समकालीनता उसके रचनाकार से ही हो सकती है।

अतः किसी भी रचना में हम उसके रचनाकार के समसामयिक संदर्भ को ही देख सकते हैं ।

“समसामयिकता अक्सर अपने काल की समस्याओं एवं चुनौतियों का मुकाबला करने का ही दूसरा नाम है । समकालीनता के घेरे में जाने वाला रचनाकार उन समस्याओं पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करता है जो समस्याएँ केन्द्रीय महत्व की होती हैं । इन्हीं समस्याओं की परख से वह समकालीनता का भ्रम हुआ करती है ।”¹

हम किसी रचनाकार को समकालीन या समसामयिक लेखक के रूप में तभी धोषित कर सकते हैं जब कि उसकी रचनाओं में उस युग के परिवेश का अंकन किया गया हो । लेखक अपने अनुभव, ज्ञान और दृष्टि से समाज में होने वाले परिवर्तनों पर अपना एक नजरिया बना लेता है । इसी नजरिये को अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठक तक पहुँचाता है । यही समसामयिकता का बोध है । रचनाकार अपने अनुभव, ज्ञान तथा दृष्टि के आधार पर केवल वर्तमान या अपनी समकालीन स्थिति पर ही नजर नहीं रखता बल्कि भूतकाल का अंकन करते हुए भविष्य की भी कल्पना करता है । इस प्रकार रचनाकार पर न केवल वर्तमान का प्रभाव रहता है बल्कि भूत और भविष्य का भी प्रभाव उस पर होता है ।

“भारतीय समाज की वर्तमान संरचना वैषम्यपूर्ण, मुद्रापरक उच्चकोष्ठीय, अलगाववृत्ति की पृष्ठभूमि एवं स्थायी है । जनतंत्र का

अर्थ अल्पतम बना दिया गया है। जो साहित्य इस गलत सामाजिक दृष्टि को तोड़ता है, वही सही समकालीन साहित्य है। अतः जो साहित्य ये कार्य नहीं करता, वह अप्रासंगिक साहित्य ही कहा जाना चाहिए। समकालीन साहित्य यथार्थस्थिति का विरोधी होता है। "यथार्थस्थिति का विरोध" का सन्निहितार्थ यह है कि जड़ भक्तिकता को सामने लाकर उसकी व्यर्थता सिद्ध कर, उसे नकारना, राजनैतिक प्रबंधों को निवारण करना, स्वहित - प्रेरित प्रचार साधनों को नंगा करना ही रचना का अन्तर्निहित मूद्दा हो।¹

समकालीन रचनाओं में उस काल का समग्र चित्रण होता है जिस काल में लेखक रहता है। लेखक अपने परिवेष्टागत सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं का सुनासा अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। लेखक को समकालीनता का चित्रण करने के लिए इन शक्तों पर प्रतिबद्ध रहना चाहिए कि स्थितियों, व्यक्तियों एवं शक्तियों का सही विश्लेषण सत्यतः रूप में सामने आए। सभी प्रकार के मुखौटों का पद फाश, सही स्थिति का उद्घाटन, मुख्यवान जीवन की पहचान और ऐसा जीवन जीने का जीव्य जिसकी समाज मांग करता है। यही समसामयिकता की पहचान के मुख्य मूद्दे हैं।

2.1. समसामयिकता और आधुनिकता :

आधुनिकता और समसामयिकता दोनों को एक दूसरे के पर्याय समझने का भ्रम होता है किन्तु ऐसा नहीं है। आधुनिकता को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि आधुनिकता एक मानसिक बोद्धिक स्थिति है, जो अपने परिवेश और समाज की समस्याओं से उद्भूत होती

हे तथा समकालीन जीवन को संस्कार देती है। सर्वव्यापी और सर्वजीन होते हुए भी इसका स्वरूप अपनी जातीय विशेषताओं से अलग नहीं होता यद्यपि यह विजातीय गुणों को भी अपने में समाहित करने की शक्ति रखती है।

यदि हम विवेचनात्मक दृष्टि से आधुनिकता पर विचार करेंगे तो निम्न विशेषताएँ हमें दिखाई देंगी...आधुनिकता भाव को सही धरातल पर विवेचन करके उसे प्रमुखता प्रदान करती है और तब साहित्य में निरूपण करती है। ऐसा करने से ही जीवन की कठोरताओं का साहित्य में प्रतिबिम्बन होता है। वास्तविक रूप में आधुनिकता वही है जो वर्तमान को भूत और भविष्य से ठीक ठीक जोड़ने में पुल की तरह काम करती है। अंधविश्वासों से पूरी तरह से मुक्त रहती है। आधुनिक वही है जो बुद्धि के धरातल पर परीक्षण करके ही विश्वास करता है। आधुनिकता बोध का जन्म सन्दर्भों के बीच से ही होता है। पिता को पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधि मानकर उसका विरोध करना या विद्रोह के नाम पर विद्रोह करना आधुनिक होने की झूठी शान है। आधुनिकता की एक और विशेषता यह है कि व्यक्ति को स्वनिर्णयित रहना चाहिए।

वर्तमान के बहुत से आयोग ऐसे होते हैं, जो अपने परिवेश में छोटे रहकर भी, अपनी प्रेषणीयता से समूचे जीवन को प्रभावित करते हैं समसामयिकता का आग्रह है कि इन्हीं आयोगों को मानवीय सिद्धान्त और मानवीय अनुभूति दी जाए। किन्तु समसामयिकता को ही आधुनिकता समझ बैठने की भूल नहीं करना चाहिए।

डा० सुखवीर सिंह आधुनिकता और समसामयिकता में अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि -

• "युग क्रोध का गुण आधुनिकता है जबकि समसामयिकता स्थिति क्रोध का आयाम है। एक स्थिति क्रोध के विस्तार तक ही समसामयिकता का बोध होता है, जबकि आधुनिकता में युग क्रोध के अंततः टेम्परेमेंट का ज्ञान निहित रहता है। यह एक देशकाल से सम्बद्ध ऐतिहासिक विश्लेषण है। देशकाल के बोध के साथ जो सक्रिय गतिशीलता जुड़ी रहती है, उसके प्रमाण समसामयिकता से ही मिलते हैं।

• आधुनिकता के संदर्भ में ही समसामयिकता की अर्थवत्ता कायम रहती है। शाश्वत मूल्यों और सत्यों को, परिस्थितियों के घात - प्रतिक्रांत द्वारा जड़ता और असफलता से उबारने का कार्य समसामयिकता का ही है।

• आधुनिकता का केनवस बढ़ा है और समसामयिकता का सीमित। किन्तु दोनों का महत्व एक दूसरे का स्वरूप स्पष्ट करने में ही है।¹

3. यथार्थवाद की परिभाषा :

आधुनिक हिंदी साहित्य विभिन्नवादों की देन है। इस काल में कितने हीवादों का जन्म, विकास और हास हुआ किन्तु यथार्थवाद मात्र ऐसा एकवाद है जो निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है। जिसका जन्म हुआ विकास हो रहा है किन्तु दूरगामी भविष्य में भी हास होने की आशंका नहीं है। यथार्थवाद एक ऐसी विचारधारा है जो जीवन को सही मार्ग पर जीने के लिए प्रोत्साहित प्रेरित करती है।

सम्कालीन साहित्य में यथार्थ का बहुत ही महत्व है क्योंकि सम्कालीन साहित्य बिना यथार्थ के रचा ही नहीं जाता। सम्कालीन साहित्य में रचनाकार अपने परिवेश की स्थितियों का यथार्थ चित्रण करता है। जिसके कारण पाठक को रचनाकार के परिवेश को यथार्थ चित्रण का आभास मिलता है।

यथार्थ का मतलब है "जो है" का चित्रण करना अर्थात् अपने समय के परिवेश में जो छिटित होता है और जो हम देखते हैं उसी का चित्रण करना है। इस सीधी सादी परिभाषा से यह भ्रम पैदा होना स्वाभाविक है कि क्या यथार्थ "फोटोग्राफिक" चित्रण मात्र है अर्थात् "ज्यों का त्यों" चित्रण। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। रचनाकार जो अपने सम्कालीन परिवेश में छिटित होता है उसका चित्रण अपने अनुभव, ज्ञान और तृप्ति के द्वारा करते हुए सृजनात्मक ढंग से उस छटना को प्रस्तुत करता है। यदि फोटोग्राफी की तरह यथातथ्य चित्रण किया जाए तो दैनिक समाचार पत्र और साहित्य में कोई फर्क नहीं रह जाता। इसलिए स्व. नित्यानन्द पटेल वेदालंकार ने ठीक ही कहा है कि - "यह मानना पड़ेगा कि जिन उपन्यासों में अपने शाब्दिक या वास्तविक अर्थ में यथार्थवाद की प्रधानता होती है,

उनमें भी उपन्यासकार के व्यक्तित्व, राग - विराग, भावना कल्पना दृष्टिकोण और जीवन दर्शन आदि का कम या अधिक मात्रा में समावेश होता ही है। अगर इन सबका यत्कीर्णत समावेश न हो, तो वे उपन्यास दैनिक पत्र, मनोविज्ञान या इतिहास आदि की कोटि में ही गिने जाने के योग्य होंगे। साहित्य के प्रधान तत्वों के समावेश के बिना वे समाज की स्थिति और गतिविधि का कितना ही ज्ञान देते हों, साहित्य की संज्ञा न पा सकेगी। ज्ञान देना कुछ और बात है, शक्ति - स्फूर्ति एवं प्रेरण जानंद का स्रोत होना दूसरी बात है।"

1. स्व. नित्यानन्द पटेल वेदालंकार - प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य में सांस्कृतिक चेतना - पृ. सं० 544

वतः स्पष्ट होता है कि यथार्थ के चित्रण में भी सृजनात्मकता की आवश्यकता होती है ।

"यथार्थवाद" मूलतः पारचात्य विचारधारा है जो स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों का एक अहम अंग बन चुका है । यथार्थवाद की परिभाषाएँ अनेक पारचात्य एवं भारतीय विद्वानों ने दी हैं । यहाँ पर हम पहले पारचात्य विद्वानों की परिभाषाओं को तत्पश्चात् भारतीय विद्वानों की परिभाषाओं पर दृष्टिपात करेंगे ।

३.१. पारचात्य विद्वानों का दृष्टिकोण :

साहित्य में यथार्थवाद ऐसे दृष्टिकोण का परिचय देता है जो हर संभव तरीके से जीवन को चित्रित और प्रकृति को निरूपित करना चाहता है । इस प्रक्रिया में वह यथार्थ पर आदर्श का आवरण नहीं चढ़ाता है । इसी बात को प्रमुख पारचात्य विद्वान "कजीमिया" ने और स्पष्ट किया है -- "यथार्थवाद यथार्थ का शैलीबद्ध निरूपण या उसे निश्चित साधन में ढालने की क्रिया है ।"^१ और एक जगह यथार्थवाद के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कजिमिया कहते हैं कि "यथार्थवाद साहित्य में एक पद्धति नहीं, बल्कि एक विचार धारा है ।"^२ यथार्थ के नाम अधिकतर लोग इस ध्रुव में पड़ जाते हैं कि यथार्थवाद में वस्तु-तथ्य का यथातथ्य चित्रण होता है अर्थात् साहित्य में यह एक अनिवार्यवित की एक शैली है । किन्तु ऐसा नहीं है कजिमिया ने ठीक कहा है कि यथार्थवाद शैली नहीं बल्कि एक विचारधारा है । समाज में घटित होने

१. शिवकर तिवड़े - आलोचना के आधुनिकवाद और नयी समीक्षा से उद्धृत - पृ. १२

२. ठाणु कियुवन तिवड़े-हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद से उद्धृत-पृ. ४४

वाली धटनाओं के आधार पर यथार्थवाद एक वैचारिक आन्दोलन के रूप में उभरता है। यथार्थवाद में एक ऐसी शाखा भी निहित है जो प्रभुत्वता से शैली के आधार पर ही विकसित हुई है यही प्रकृतवाद है। काजामियाँ विचार धारा को अधिक महत्व देते हुए भी विचार विशेष के अभिव्यक्तिकरण में शैली का सहयोग अपेक्षितसमझते हैं।

स्टीवेन्सन का कहना है कि "यथार्थवाद का प्रश्न साहित्य में मुख्यतः सत्य से अन्वेषण भी सम्बन्ध नहीं रखता बल्कि उसका संबंध केवल रचना की कलात्मक शैली से है।"¹ स्टीवेन्सन की यह धारणा कुछ हद तक यथार्थवाद के प्रति नकारात्मक है या फिर वे यथार्थवाद को ठीक तरह से समझने में असफल हो गये हैं। वास्तव में दर्शन या अन्य कला - विधाओं में जो सत्य है वही साहित्य में यथार्थ के रूप में प्रतिफलित होता है। साहित्य में यथार्थ का चित्रण का अर्थ मात्र किसी वास्तविक धटना, वस्तु या स्थिति का अंकन करना नहीं है। यदि ऐसा किया गया हो तो यह धारणा साहित्य के स्वरूप के साथ सर्वथा असंगत है।

हावर्ड फास्ट के अनुसार यथार्थवाद का अर्थ ज्यों का त्यों चित्रण करना नहीं है। वे लिखते हैं कि - "साहित्य में सज्जनात्मक प्रक्रिया वस्तुओं का तद्वत चित्रण न होकर संश्लेषणात्मक होती है, वह मात्र उसका वर्णन नहीं करता बल्कि चुनाव भी करता है।"² यथार्थवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए वे ठीक कहते हैं - "यथार्थवाद वह साहित्यिक

1. डा० मदन केवलिया - पारिचात्य साहित्यशास्त्र की भूमिका-पृ. 212

2. डा० त्रिभुवन सिंह-हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद से उद्धृत-पृ. 45

लेखन है जो चुनाव तथा रचना के माध्यम से अपने वास्तविक विचारों को समुन्नत रूप में पाठकों के सामने उपस्थित करता है ।¹

इस प्रकार हार्वर्ड फास्ट का कहना है कि यथार्थ का अर्थ ज्यों का त्यों चित्रण नहीं बल्कि चुनाव और छन के माध्यम से यथार्थ का चित्रण होता है । यदि सम्मालीन सभी परिस्थितियों का चित्रण ज्यों का त्यों किया जाय तो समाचार पत्र और साहित्य में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा । शायद इसलिए एक अमेरिकन विद्वान का उद्धरण देते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "अगर अमेरिका को ठीक-ठीक समझाना हो, तो उसके किसी लोकप्रिय दैनिक के दो चार अंकों को देख जाइये, अमेरिका, अपने सब गुण - दोषों एवं दुर्बलता के साथ सामने खड़ा हो जायेगा । उसके स्त्री पुरुष क्या खाते हैं, कैसे बातों में रुचि रखते हैं, किन रोगों के शिकार हैं आदि कोई भी बात अप्रकट नहीं रह जायेगी ।"² इस प्रकार यदि दैनिक पत्र समाज का यथाई चित्रण कर देता है तो साहित्य में यथाई का चित्रण करने की आवश्यकता नहीं है । किंतु ऐसा नहीं होता । साहित्य मानव जीवन का सर्जनात्मक क्रिया है इस में स्थायित्व बना रहता है वे सैकड़ों वर्षों के बाद भी नित्य नवीन बने रहते हैं इसीलिए साहित्य समाज की स्थिति एवं गतिविधि से अवगत ही नहीं करता बल्कि उल्लास, आत्म परिष्कार तथा प्रेरणा प्रोत्साहन के अत्यन्त स्रोत भी होते हैं ।

1. डा० त्रिभुवन सिंह-हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद से उद्धृत - पृ. 46

2. स्व. नित्यानन्द पटेल वेदालंकार - प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक धेतना - पृ. 542-543

एच लेविन लिखते हैं - "साहित्य में यथार्थवाद उस पद्धति को कहते हैं जिसका उद्देश्य जीवन में सभी वस्तुओं का पूर्ण निष्ठामय चित्रण एवं प्रकृति का पुनः प्रस्तुतीकरण है। यह प्रकृति सौन्दर्य के हेतु वास्तविकता के आदर्शिकरण को अभिव्यजना के शैलीकरण को और आध्यात्मिक तथा अति प्राकृत विषयवस्तु के निर्वहण को अस्वीकारती है।"। इस प्रकार एच लेविन ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में यथार्थवाद की परिभाषा दी है। उनके अनुसार साहित्य में जीवन के सभी वस्तुओं का तथाप्रकृति का पुनः प्रस्तुतीकरण है साथ में आदर्श अंत्ययार्थ तथा आध्यात्म का तिरस्कार भी है।

शिफले भी 'डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर' में यथार्थवाद की परिभाषा देते हुए लिखते हैं - 'साहित्यिक समालोचना में यथार्थवाद शब्द का प्रयोग आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के विरोध में उन साहित्यिक कृतियों के लिए किया जाता है, जो वास्तविक जीवन की अनुकृति में निर्मित होती है और जो अपनी विषय वस्तु वास्तविक जीवन से ग्रहण करती है। यथार्थवादी लेखक वह होता है जो वस्तुमूखी दृष्टिकोण धारण करता है और अपनी रचना में अपनी व्यक्तिगत भावनाओं एवं विचारों को सम्मिश्रित न कर अपनी विषय वस्तु का निर्वहण फोटोग्राफिक और विवरणात्मक शैली में करता है।"।²

बन्स्ट फिशर का कहना है कि साहित्य में यथार्थवाद की धारणा दुर्भाग्यवश अस्पष्ट है। कुछ लोग इसे एक दृष्टिकोण के रूप में और कुछ

1. डा० मदन केवलिया - वास्तविक साहित्य शास्त्र की भूमिका - पृ० 212

लोग शैली के रूप में देखते हैं। उनका कहना है कि "यदि हम अपनी वस्तुपरकता में स्थित यथार्थ को ही वास्तविक यथार्थ माने और कला में उसका स्थानापन्न माने तो हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं हम इस यथार्थ बोध को विप्लव रूप से बाह्य जगत के यथार्थ तक ही, जो कि हमारी अपनी ही चेतना अथवा इच्छा - अनिच्छा से परहे है, सीमित न कर दें। वस्तुतः हमारी चेतना से स्वतंत्र जो कुछ भी अस्तित्ववान है, वह जड़ पदार्थ है। किन्तु यथार्थ के अंतर्गत वे सारी अनेक-रूपा अंतःक्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनका आदमी अनुभव करने एवं परिज्ञान करने के स्मिकले में भागीदार है।" अन्स्ट फिशर का निष्कर्ष है कि "यदि हम यथार्थ को एक फलित के रूप में न लेकर एक दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित करना चाहे - कला के अन्तर्गत यथार्थ के चित्रण के रूप में, तो हम पायेंगे कि अमूर्त कला या वेसी ही कुछ चीजों को छोड़कर वस्तुतः सारी कला यथार्थ कला है। अतएव अधिक व्यवहारिक तथा उपयोग यह होगा कि हम यथार्थ को चित्रण की एक विशिष्ट फलित के रूप में ही स्वीकार करें।"²

एग्लस के मतानुसार - "मेरे विचार से "यथार्थवाद" का आशय यह है कि लेखक विवरणों और व्योमों के सत्य प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करे।"³ एग्लस की इस परिभाषा पर टिप्पणी करते हुए शिखर कुमार मिश्र लिखते हैं कि "एग्लस के उपर्युक्त कथन से जहाँ एक ओर यह निष्कर्ष निकलता है कि यथार्थवादी लेखक को वस्तु स्थिति के एक एक रंग रेशे

1. शिखर कुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 2

2. - वही - - वही - पृ. 3

3. - वही - - वही - पृ. 10

को अपनी कृति में चित्रित करनी चाहिए। वही दूसरी ओर अधि-महत्त्वपूर्ण बात उन्हें सचार्ड के साथ चित्रित करने की है। सत्य के प्रति यथार्थवाद क या आग्रह उसके चरित्र की केन्द्रीय विशेषता है। लेखक को वस्तुगत यथार्थ का निरीक्षण वस्तुपरक दृष्टि से करना चाहिए, अपने निजी विचारों एवं निजी दृष्टि को सक्रिय कर वस्तुगत यथार्थ को हलसे गूँथमूँथ नहीं करना चाहिए। सचार्ड के प्रति "यथार्थवाद" की यह केन्द्रीयता ही उसे सही अर्थों में युग जीवन का प्रतिनिधि दृष्टिकोण सिद्ध करती है। एक तीसरी बात जिसकी ओर एंगेल्स नेबल देकर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों के चित्रण से संबंध रखती है..... टाईप प्रितिनिधि वह है जिसके अंतर्गत परिस्थिति या पात्र अपने निजी चरित्र के साथ - साथ अपनी सामाजिक अथवा वर्गात्मक संदर्भता को भी लिए हुए हो। टाईप प्रितिनिधि का यह द्वि-आयामी स्वरूप ही उसका वास्तविक स्वरूप है। अपनी संपूर्णता में युग, जीवन या मनुष्य की प्रस्तुति टाईप के माध्यम से ही हो सकती है। हम समझते हैं कि एंगेल्स के उपर्युक्त कथन में यथार्थवादी दृष्टि और यथार्थवादी कला का जो धारित्व निहित है, उसका कुछ आभास इस विवेचन से हो गया होगा।¹

यथार्थवादी विचार धारा के संदर्भ में जार्ज लुकाच की मान्यताएं अधि-महत्त्वपूर्ण और मान्य हैं। जार्ज लुकाच मनोविवेक्षणवादियों की व्यक्तिपरकता और प्रकृवादियों की वस्तुपरकता दोनों को मिथ्या घोषित करते हैं। वे यथार्थवाद को इन दोनों से अलग करके समझने पर बल देते हैं। उनका कथन है कि "यथार्थवाद मिथ्या वस्तुपरकता तथा मिथ्या

व्यक्तिपरकता के बीच का कोई मध्यम मार्ग नहीं है, वरन् इसके विपरीत वह हमारे समय की भूल भूझ में बिना किसी नवशे के भटकने वाले लोगों के द्वारा गलत रूप में प्रस्तुत किए गए प्रश्नों के फलस्वरूप उत्पन्न समस्त प्रकार के छूटे असमझों के विरुद्ध एक सत्य तथा सही समाधानों तक पहुँचने वाला तीसरा रास्ता है ।¹ यही नहीं "वह इस तथ्य की स्वीकृति है कि कोई साहित्यिक कृति न तो किसी निष्प्राण ओस्त पर आश्रित हो सकती है जैसा कि प्रकृतिवादियों का विचार है, और न ही एकदम शून्य में अपने आपको पूर्णतः छुला देने वाले किसी व्यक्तिगत सिद्धांत पर ।"²

लुकास के अनुसार सच्चे तथा महान यथार्थवादी लेखक समाज में एक तंत्र विखरे हुए अंशों को ही परख कर ज्वलेश्वर नहीं करना चाहता बल्कि वह इनको सम्पूर्णता में ही देखने पर जोर देता है । इस प्रकार "उत्कृष्ट प्रकार का यथार्थवाद मानव एवं समाज को पूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है । जार्ज लुकास के विचार से सच्चे यथार्थवादी साहित्य की यह प्रमुख विशेषता है कि लेखक बिना किसी भय अथवा फ़ाषात के ईमानदारी के साथ जो कुछ भी अपने आसपास देखता है उसका चित्रण करें ।"³

पोडरिक मेक्लिम (Pederick McMillan) का मत है कि "यथार्थवाद का प्रमुख गुण अवतारवाद का खण्डन है । वह मानव एवं उसके मस्तिष्क को इस संसृति के क्रियाकलापों एवं व्यवसायों में सम्मिलित करके उन्हें उनका

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 12

2. - वही - - वही - पृ. 12

3. डा० त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. 45

उचित स्थान प्रदान करता है। यह एक ओर तो भौतिकता को आदर्श-वादी संस्पर्श से मुक्त करता है और दूसरी ओर उन्हें चेतन जीवन का आधार प्रस्तुत करता है। यथार्थवाद मॉस्तीक को एन्द्रजालिक विद्वत्ताओं से मुक्त करता है और इसके मूल्यों की रक्षा करता है।¹

"बी.आर्बोगन्सन" के अनुसार "यथार्थवादी" कलाओं की विशिष्टता पाठक तक विचारों को इस स्पष्टता एवं स्वच्छता से प्रेषित करने में निहित है कि सर्वप्रथम आतुर होकर लेखक के हृदय के स्पन्दन का श्रोता बन जाय।²

Dictionary of world literature

में अन्य विद्वानों के यथार्थवाद के संबंध में परिभाषाएं इस प्रकार हैं - "हावेज़" ने सामान्य जीवन के यथार्थ को महत्व देते हुए भौतिक जीवन की अवस्था को अनुचित बताया है। फ्लावेयर वस्तुगत दृष्टिकोण और जीवन के सामान्य क्षणों के महत्वपूर्ण उद्घाटन को यथार्थवाद की विशिष्टता मानता है।

W. L. Courteney डब्ल्यू एल कोर्नेज़ ने मानव जीवन के स्पष्ट यथार्थ को महत्व दिया है। पर यथार्थवाद की समग्र परम सजीव एवं व्यापक उपलब्धि साहित्य के लिए निरन्तर नवीन विषय, परिस्थिति और भाषा की गवेषण में निहित है।³

यथार्थवादी लेखक हमरसन के शब्दों में कहा जा सकता है कि "मुझे

1. डा० त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद-पृ. 47

2. -वही- -वही-

3. -वही- -वही-

महान दूरस्थ और कार्पनिक नहीं चाहिए.....भे साधारण का आलिंगन करता हूँ भे सुपरिचित और निम्न के चरणों में बैठता हूँ ।¹

3.2. भारतीय विद्वानों का दृष्टिकोण :

यथार्थवादी विचार धारा सम्बन्धी मत भारतीय मनीषियों ने भी प्रकट किये हैं जो निम्न प्रकार हैं - यथार्थवाद के संबंध में बाबू 'गुलाबराय' का मत है कि "यथार्थ वह है जो नित्य प्रति हमारे सामने धृता है । उसमें पाप - पुण्य, सुख - दुःख की क्षुब्ध छाँट का मिश्रण रहता है । यह सामान्य भाव भूमि के समतल पर रहकर वर्तमान की वास्तविकता से सीमाबद्ध रहता है । स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परी देश की वस्तुएं हैं जो उसकी पहुँच से बाहर हैं । वह संसार की क्लृप्त कालिमा पर भव्य आवरण नहीं डालना चाहता । वह स्वर्ग को भी मिट्टी के कणों से मिश्रित देखना चाहता है ।"²

जयशंकर प्रसाद यथार्थवाद पर अपना अभिप्राय व्यक्त करते हुए कहते हैं कि "यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात । उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है । लघुता से मेरा तात्पर्य है, साहित्य के माने हुए सृष्टि के अनुसार महत्ता के कार्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख ।"³

1. स्व. नित्यानन्द पटेल वेदालंकार - प्रेमचन्द के उपन्यास - साहित्य में सांस्कृतिक चेतना - पृ. 540

2. डा० नारका प्रसाद मील - हिंदी साहित्य के वाद - पृ. 234

3. जयशंकर प्रसाद - काव्य और कला तथा अन्य निबंध - पृ. 120

‘पं० नंद दुलारे वाजपेयी’ के अनुसार “यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक् सत्ता का समर्थक है। वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तुजगत से है।” वाजपेयी जी की इस परिभाषा में जो पृथक् सत्ता के समर्थक होने की बात कही गई है वह सही नहीं लगती क्योंकि यथार्थवाद संपूर्णता का चित्रण बहुत ही विस्तार से करता है जिसके कारण वस्तुओं का वर्णन पृथक् लगता है। एक जगह पं० नन्द दुलारे वाजपेयी आदर्शवाद और यथार्थवाद की तुलना करते हुए कहते हैं कि “यथार्थवाद तथा आदर्शवाद दोनों ही चित्रण शैली के दो स्थूल विभाग मात्र हैं। दोनों ही शैलियाँ लेखक के दृष्टिकोण पर अवलम्बित रहती हैं। कला की सौन्दर्य सत्ता की ओर दोनों का झुकाव रहता है। आदर्शवाद में ज्ञेय या दृष्ट के आग्रह द्वारा दृष्ट ध्वनि होता है। यथार्थवाद में सामान्य व अनीष्ट के चित्रण द्वारा दृष्ट की व्यञ्जना होती है।”¹

‘रिश्वदान सिंह चौहान’ ने आदर्शवाद को पलायनवाद माना है। वे कहते हैं — “महान साहित्य और कला सदा निर्विकल्प रूप से जीवन की वास्तविकता को ही प्रतिबिम्बित करती है अतः उसकी एक मात्र कसौटी भी उसका यथार्थवाद है।”²

‘प्रेमचन्द’ यथार्थवाद पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि “यथार्थवादी अनुभव कीबेडियों में जकड़ा होता है और धुँक तसर में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है — यहाँ तक कि उज्ज्वल से उज्ज्वल चरित्र में भी कुछ न कुछ दाग धब्बे रहते हैं इसलिए यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं हमारी विषमताओं और हमारी कुरताओं का नग्न चित्र होता है और

1. डा० द्वारका प्रसाद मिस्तान - हिंदी साहित्य के बाद - पृ० 234

2. डा० त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ० 49

इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है ।¹

यथार्थवाद के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि "कला क्षेत्रों में यथार्थवाद ऐसी एक मानसिक प्रवृत्ति है, जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और स्थायित्व होती रहती है ।"² आगे वे कहते हैं — "बहुत से लेखक यथार्थवाद के नाम पर समाज की उन गन्दगियों का ही चित्रण करते हैं, जो समग्र रूप का एक नगण्य अंश मात्र है । यह यथार्थवाद नहीं हो सकता । यथार्थवाद भले की उम्मेदा करके बुरे के चित्रण को नहीं कहा जा सकता, फिर वह चित्रण कितना भी यथार्थ क्यों न हो ।"³ यथार्थवाद के मूल सिद्धांत पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि — "यथार्थवाद शब्द अंग्रेजी के रियलिज्म शब्द के तोल पर गढ़ लिया गया है । यथार्थवाद का मूल सिद्धांत है — वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना ।"⁴ कथा साहित्य में यथार्थवाद के महत्त्व के संबंध में वे कहते हैं — "कविता यथार्थ की उम्मेदा कर सकती है; सीमित यथार्थ को छोड़कर भी जी सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए "यथार्थ" प्राण है । उसके न रहने से उपन्यास और कहानी प्राणहीन वस्तु बन जाती है ।"⁵

प्रो० नरेन्द्र कोहली का मत है कि "सामान्यतः यथार्थ चित्रण का अर्थ है किसी वस्तु का वास्तविक यथातथ्य चित्रण । किन्तु यथार्थवाद

1. प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य - पृ० 56

2. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - विचार और कितई - पृ० 95

3. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - साहित्य सहर - पृ० 91

4. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - "हिंदी साहित्य" - पृ० 427

5. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - विचार और कितई - पृ० 95

पूवाग्रह युक्त दृष्टिकोण के कारण सत् या सुन्दर अंश को ग्रहण नहीं करता ।
वस्तुतः यह अंग्रेजी के रियलिज्म शब्द के समतुल्य व्यवहृत होता है और
जीवन के कालिमापूर्ण अंश को ही अधिक अपनाता है ।¹

त्रिभुवन सिंह के अनुसार "जो साहित्यकार मानव जीवन एवं समाज
का सम्पूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है और अपने साहित्य का
वस्तुविषय काल्पनिक संसार से न लेकर वास्तविक संसार लेता है उसे ही
हम यथार्थवादी लेखक कह सकते हैं । यथार्थवादी लेखक अपनी प्रतिभा के
बल पर बाह्य पदार्थों का यथातथ्य चित्र उपस्थित करने का भी प्रयत्न
करता है, अथवा भौतिक तत्वों का चित्रण करते समय अपनी भावुकता
तथा अपनी अनुभूतियों को बाधक नहीं होने देता । यथार्थवादी लेखक
का विश्वास है कि साहित्य में सत्य की अभिव्यक्ति तभी संभव है जब
उसका मूलधार शुद्ध बाह्य तथ्य हो । यथार्थवादी साहित्य के अन्दर
निर्भयतापूर्वक स्वीकार किया जाता है कि किसी भी साहित्य को यथार्थ-
वादी साहित्य की संज्ञा तभी दी जाती है जब कि उसमें उन निश्चित
समस्याओं का समावेश हो जो कि यथार्थवादी साहित्य के लिए
आवश्यक हैं ।"²

डा० रवीन्द्रकुमार जैन का कहना है कि "सामान्यतः ब्रह्म-
साहित्यकार यथार्थवादी कहा जा सकता है, क्योंकि सभी साहित्यकार
जीवन के किसी न किसी पक्ष की वास्तविकता को लेकर चलते ही हैं ।
यादव और हलाचन्द्र जोशी अथवा अंग्रेजी के डेजर और शेक्सपियर उक्त
आधार पर यथार्थवादी हैं । परन्तु, बात ऐसी नहीं है, यथार्थवाद के

1. प्रो० नरेन्द्र कोहली - प्रेमचन्द के साहित्य - पृ० 193

2. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ० 44

के नाम पर किसी भी अनगणितता की संगति ठेकाना ओचित्यपूर्ण नहीं है। यथार्थवादी साहित्य वही है, जो एक वस्तुमूलक एवं वर्गीहीन जनवादी चेतना से अनुप्राणित हो। कल्पना के निष्पेक्ष और आदर्श तथा उपदेशात्मकता के बहिष्कार से युक्त वस्तुमूलक जीवन दृष्टि यथार्थवाद है।¹

हिंदी साहित्य कोश में यथार्थवाद के अर्थ को स्पष्ट करते हुए श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - "साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तन पद्धति जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए।"²

शिवकुमार मिश्र "यथार्थवाद" की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि "यथार्थवाद" निश्चित रूप से सत्य के प्रति उत्कट आग्रह रखता है। वास्तविकता का सत्य चित्रण उसकी आधारभूत ज्योतिष्यता है। वह तथ्यों का भी आग्रह है। किन्तु सत्य का, वास्तविकता के सत्य चित्रण का तथा तथ्यों के प्रति आग्रह का यह अर्थ कदापि नहीं है कि कृतिके निर्माण में चिंतन तथा कला के धरातल पर यथार्थवादी रचनाकार की अपनी कोई सक्रियता नहीं होती। यथार्थवादी रचनाकार तथ्यों को महत्वपूर्ण मानता है, तथ्य संकलन पर विश्वास नहीं रखता। वह समाचार पत्र का संवाददाता नहीं है कि बिना किसी प्रकार के भावात्मक या ध्वनारिक लगाव के वह तथ्य को ज्यों का त्यों समाचार पत्र में प्रस्तुत कर दे। वह सत्य का जिज्ञासु और शोधकर्ता अव्यय है किन्तु निरपेक्ष और नीरस सत्य का नहीं। सत्य उसके लिए सापेक्ष वस्तु है। वास्तविकता के सत्य चित्रण में उसका जोर इसी बात पर रहता है कि वास्तविकता तथ्यपरक न होकर कला की अपनी आव्ययकता की पूर्ति करते हुए कृति में अभिव्यक्त हो।³

1. डा० रविन्द्र कुमार जैन - उपन्यास : स्थिति और संरचना - पृ. 43

2. डा० धीरेन्द्र वर्मा - हिंदी साहित्य कोश - संपादक - पृ. 606

3. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 141-142

4. यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध :

यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध - ये तीनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची जैसे लगने पर भी इन में भिन्नता है। यथार्थ जीवन की सच्ची अनुभूति है। जिसमें हम अपने जीवन में घटित होने वाले राग-विराग सुख-दुःख और अन्य भावनाओं का अनुभव करते हैं। अपनी इन्द्रियों के द्वारा समाज में होने वाली सभी प्रकार के क्रियाकलापों का अनुभव करना ही यथार्थ है। इस यथार्थ अनुभूति के कारण लेखक अपने अनुभव, ज्ञान और दृष्टिकोण के द्वारा एक सैद्धांतिक विचारधारा बना लेता है। यही यथार्थवाद है। अर्थात् यथार्थ का कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है। इस प्रकार "यथार्थ यथार्थवाद का अनुगृह स्वरूप है इसका राम्पेटोरियल कच्चा माल" है।¹ दूसरे शब्दों में कहें तो यथार्थ वह है जो साहित्य में वास्तविकता के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है और यथार्थवाद उसे कहते हैं जो उस यथार्थपरक साहित्य का एक विशिष्ट पंचारिक अर्थ प्रदान करता है।

वस्तुतः यथार्थ का चित्रण साहित्य में दो रूपों में किया जाता है एक स्थूल रूप में जिसके अन्तर्गत वास्तविकता के बाह्य पक्ष का चित्रण किया जाता है और दूसरा सूक्ष्म जिसमें यथार्थ के आन्तरिक पक्ष का चित्रण किया जाता है। स्थूल चित्रण में बाह्यतर रचनाकार यथातथ्य ज्यों का त्यों या फोटोग्राफिक चित्रण करने की होठ में लगे रहते हैं जो अतियथार्थ की सीमा में पहुँच जाता है। इस प्रकार के चित्रण में समाज

को नग्न कुरूप, कुत्सित रूप का वर्णन अधिक होता है। इस प्रकार बाह्य यथार्थ का चित्रण करने वाले रचनाकार समाज के एक पक्ष को ही उभारते हैं जिससे ऐसे साहित्य को पढ़ने वाले पाठक में समाज के प्रति घृणा और भय की भावना उत्पन्न होती है। इस प्रकार बाह्य यथार्थ का चित्रण करते समय अक्सर परिस्थितियों और परिदृश्यों का कुरूपतापरक चित्रण ही होता है। वास्तव में यथार्थवादी लेखक को समाज के दोनों पक्षों - अच्छे और बुरे का चित्रण करना चाहिए।

यथार्थ का दूसरा रूप सूक्ष्म यथार्थ है। यह लेखक की समझ पर आधारित रहता है। इसमें मात्र यथार्थ या फोटोग्राफिक चित्रण करना करना नहीं होता बल्कि पात्रों और परिस्थितियों को सम्मालीन युगिन परिदृश्यों के अनुकूल निरूपण करना पड़ता है। इसके लिए रचनाकार को अनुभव, ज्ञान और दृष्टिकोण के व्यापक स्तर पर आवश्यकता होती है। क्योंकि यह केवल वर्तमान स्थिति या परिदृश्यों पर आधारित नहीं रहता बल्कि उसके पीछे अतीत तथा आगे भविष्य भी उसे प्रभावित करने वाले होते हैं। अतः रचनाकार को यथार्थ का चित्रण करते समय अपने परिदृश्यों का गहन अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है जिसके कारण उसे युग और परिस्थितियों के प्रति एक दृष्टिकोण का निरूपण करना होता है। यही दृष्टिकोण साहित्य में एक सैद्धांतिक विचार धारा बन जाती है तो वह "वाद" में स्पातिरित हो जाती है। अर्थात् यथार्थ यथार्थवाद हो जाता है। साहित्य में "यथार्थ" आत्मा है तो यथार्थवाद उसका शरीर।

यथार्थबोध उपरोक्त दोनों शब्दों से सम्बन्धित संबंध रखते हुए भी उनसे कुछ भिन्न है। यथार्थ जीवन की अनुभूति है। उसी का

सैद्धांतिक निरूपण यथार्थवाद है। यथार्थवाद यथार्थ को ग्रहण करने वाले का होता है। स्पष्ट है साहित्य के क्षेत्र में यथार्थ बोध रचनाकार का होता है। अर्थात् रचनाकार अपने समसामयिक परिवेश की यथार्थ स्थिति को किस दृष्टि से देखता है वही उसका यथार्थबोध होगा। अतः एक ही काल के विभिन्न रचनाकारों के यथार्थबोध में अन्तर रहना स्वाभाविक है।

"यथार्थबोध का अर्थ है अहम [अस्मिता] के माध्यम से अन्तः बाह्य जीवन को सक्रिय रूप से जीने की दृष्टि, जो चमत्कार निरूपेण होती है और समसामयिक जीवन को पूर्णतः बाह्यमात्र करने में समर्थ होती है।" ¹ 'मूलतः यथार्थबोध इतिहास बोध का अंग है और इसी दृष्टि से रचना के क्षेत्र में निरन्तर प्रकट होने वाले नवीन रूपों, संबंधों, भावों और विचारों को पहचाना जा सकता है और उनका सहानुभूति पूर्ण मूल्यांकन किया जा सकता है।" ²

यथार्थवाद को हम सैद्धांतिक विचार धारा का मानदण्ड मान सकते हैं और यथार्थबोध को उस मान दण्ड की कसौटी पर खरे उतरने की कोशिश। अर्थात् यथार्थवादी सिद्धांत के नियमों तक पहुँचने के लिए रचनाकार को अपने अनुभव ज्ञान और दृष्टि के सहारे अपने परिवेश का यथार्थ का बोध उसी दायरे में कराना है जो यथार्थवाद के सिद्धांत है। यथार्थ का बोध कराने वाले लेखक से अपेक्षा की जाती है कि उसकी सविदग्धगीलात्ता देशकालातीत हो। वह बीते हुए काल के यथार्थ के भी संबद्ध

1. डा० सुखवीर सिंह - समीक्षा के नए प्रतिमान - पृ० 77

2. डा० सुखवीर सिंह - समीक्षा के नए प्रतिमान - पृ० 82

और समसामयिक यथार्थ के कच्चे माल से आने वाले कल की संभावनाओं को भी व्यक्त कर सके ।¹

सही में यही कहा जा सकता है कि "यथार्थ बोध से तात्पर्य है समसामयिक परिवेश के बीच वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीवन को सक्रिय एवं सम्पूर्ण रूप से जीना ।"² और उससे पाठक को परिचित कराना ।

5. यथार्थवाद के प्रकार :

यथार्थवाद साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनने के बाद उपन्यासों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगा । उपन्यासों में सामाजिक व्यवस्था का चित्रण अधिक होने लगा । रचनाकार अपनी - अपनी दृष्टि से यथार्थ का चित्रण करने लगे । रचनाकार कितना भी महान हो वह सामाजिक व्यवस्था को कितनी ही निष्पक्ष दृष्टि से देखता हो किन्तु उसमें उसकी निजी दृष्टि अवश्य समाहित रहती है । इसलिए साहित्य में यथार्थवाद के आधार पर समाज का कितना भी वास्तविक चित्रण क्यों न हो उसमें रचनाकार का अपना यथार्थबोध समाहित रहता है, जिसके पीछे उसकी दृष्टि, ज्ञान और अनुभव कार्य करते हैं । इस प्रकार रचनाकारों की भिन्न दृष्टियों के कारण यथार्थ के विभिन्न रूप सामने आते हैं, जो निम्न प्रकार हैं :-

1. समाजवादी यथार्थवाद

2. आलोचनात्मक यथार्थवाद

1. डा सुखवीर सिंह - समीक्षा के नए प्रतिमान - पृ 80

2. -वही- -वही- पृ. 83

3. प्रकृतवादी यथार्थवाद
4. अतियथार्थवाद
5. आदेशोन्मुख यथार्थवाद
6. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद
7. ऐतिहासिक यथार्थवाद

उपरोक्त यथार्थवाद के रूपों का यहाँ पर स्वीस में विवेचन प्रस्तुत है :-

2.1. समाजवादी यथार्थवाद :

समाजवादी यथार्थवाद मार्क्सवादी चिंतन पर आधारित साहित्यिक अभिव्यक्ति है। मार्क्सवादी दर्शन मूलतः द्वातात्मक भौतिकवादी दर्शन है। समाजवादी यथार्थवाद वर्गीय समाज की स्थापना श्रमिक वर्ग का प्रामुख्य सम्बलित समाजवादी अर्थ व्यवस्था, परिवर्तन में विश्वास और पूँजीपति वर्ग से निरंतर संघर्ष आदि बातों में विश्वास करता है।

समाजवादी यथार्थवाद जो मार्क्सवादी चिंतन पर आधारित है, के अनुसार समाज में दो वर्ग रहते हैं - एक शोषक और दूसरा शोषित। इन दोनों में निरंतर संघर्ष चलने के फलस्वरूप अंततः शोषित वर्ग का विजय होता है और समाजवादी व्यवस्था का निर्माण होता है। सामाजिक व्यवस्था में साहित्यकार भी दो पक्ष के होते हैं - एक कुँआ वर्ग के समर्थक दूसरे शोषित सर्वहारा वर्ग के समर्थक। जो रचनाकार पूँजीपतियों के समर्थन में उनके हित में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लिखता है वह कुँआ लेखक कहा जाता है और जो सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति रखकर उनके प्रति होने वाले शोषण, अत्याचार, अन्याय और कलात्कार को उजागर करते हुए उनके शोषकों के समर्थन में तथा पूँजीपतियों के विरुद्ध में लिखता है वह समाजवादी यथार्थवादी रचनाकार कहलाता है।

यथार्थवाद की इस प्रमुख धारा का विकास मुख्यतः रूस में हुआ । सोवियत लेखकों की सन् 1934 ई० में हुई प्रथम अधिवेशन में मैक्सिम गोर्की ने सर्वप्रथम समाजवादी यथार्थवाद का नामलिया । इस वाद का मुख्य उद्देश्य था मनुष्य, जीवन, और समाज का संपूर्णता से यथार्थ चित्रण करना । स्पष्ट है कि यह मार्क्सवादी विचार धारा के अनुकूल है । शिव कुमार मिश्र कहते हैं कि - "समाजवादी यथार्थवाद के मूल में मार्क्स, एंगेल्स तथा लेनिन द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद तथा द्वांत्मक भौतिकवाद की वह विकासमूलक धारणा है जो विरोधी तत्वों के बीच काने वाले चिरंतन संघर्ष की भूमि पर प्रतिक्रिया एक नये परिवर्तन की सृजक बनती है और यह परिवर्तन यांत्रिक भौतिकवादियों के मन के विपरीत सदा ही एक गुणात्मक विकास की योजना करता है । विकास की यह प्रक्रिया निरंतर कला बनती है और इस प्रकार सदैव ही एक उन्नयन की भूमिका सामने आती रहती है ।"¹

समाजवादी यथार्थवाद मनुष्य की अन्तर्भावितियों और भावात्मक चेतना का निमग्न वस्तुमूलक ठोस चिन्तन पर आधारित है । इसके अनुसार समाज गतिशील तथा द्वांत्मक भौतिकवादी चिन्तन पर आधारित है । समाजवादी यथार्थवादी लेखक को इन्हें समझने की क्षमता होनी चाहिए शरफ फास समाजवादी यथार्थ को चित्रण करने वाले लेखक के लिए कहते हैं कि "उसे निरन्तर वर्गों या द्वांत्मक विवेक्षण से ही नहीं, बल्कि परिवर्तन से कार्य कारण संबंध से, संघर्ष और द्वां से सरोकार रखना चाहिए ।"² 'उत्कीर्णदृष्टि में इतना पेनापन होना चाहिए कि समाज में काने वाले

1. शिव कुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 115

2. -वही- -वही- पृ. 116

विरोधी शक्तियों के संघर्ष को, उसकी सही धुमका और परिदृश्य में देख सके, उनके मूल अलगतियों तथा उनके भीतर निहित अंतर्विरोधों को पहचान सके, अपने चिंतन की समस्त वस्तुओं के सार को तेजी तथा समझ-दारी से पकड़ सके ।¹

समाजवादी यथार्थवाद में समाज प्रथम है और साहित्य द्वितीय । इस के अनुसार समाज के आविर्भाव के बाद ही साहित्य का उदय हुआ है । इसका मानना है कि साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित है । सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिवेशों से साहित्य प्रभावित होता है और ऐसे ही साहित्य से समाज ।

इस धारा के साहित्य में नायक कोई महापुरुष या सर्वज्ञ संपन्न व्यक्तित्व नहीं होता बल्कि सामान्य मनुष्य होता है । "ये नायक उसी "मनुष्य" के प्रतिनिधि है, जो या तो आकांक्षित समाज व्यवस्था को प्राप्त के लिए संघर्षरत है या उसकी रचना और समृद्धि में लगा हुआ है । यह वह "मनुष्य" है जिसके सामने महत लक्ष्य और महत संभावनाएँ हैं, जो मानव जीवन के उदात्त मूल्यों को हस्तगत करने के लिए ही अपने समुच्चै अस्तित्व को दाँव पर लगाए हुए है । और जानता है किजीत अंततः उसी की होगी ।² इस प्रकार समाजवादी लेखक वही हो सकता है जो सामान्य जीवन के बीच ऐसे चरित्रों को पहचानने और पाने की जरूरत महसूस करता हो । ऐसे लेखकों उन पात्रों के जीवन में गहराइयों तक जाकर उनके अनुभूतियों को जानना, उनके आशाओं और आकांक्षाओं को समझकर उन्हें पात्रों के चरित्रों में गढ़ना पड़ता है । इस प्रकार रचना को पूरी जीवन्तता से उजाकर करना पड़ता है । रान्फ पाक्स कहते हैं -

1. शिव कुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ० 116

2. -वही- -वही- पृ० 122

"पुरुषों और स्त्रियों की जगह कठपुतलियों को खड़ा करना, रक्त और मांस की जगह लगे बहि विचारों से काम लेना, सदियों, पुराने नाते - रिश्तों, रीति - रिवाजों और लगावों से ग्रस्त वास्तविक लोगों की जगह नायकों और खलनायकों की बारात सजाना आसान है, पर ऐसा करना उपन्यास लिखना नहीं है।¹ राल्फ फाब्स का कहना ठीक ही है कि बिना जीवितता के उपन्यास नहीं लिखा जा सकता। सामाजिक यथार्थवाद का भी आशय यही है कि रचना में जीवितता हो।

सामाजिक यथार्थवादी रचनाकार का उद्देश्य यही रहता है कि इस वर्गगत समाज में सर्वहारा पर होने वाले अत्याचार, अन्याय, शोषण आदि को दूर करने के लिए उस वर्ग [सर्वहारा] को जागृत करना है और उसमें सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए क्रान्ति करने के लिए प्रेरित करना है। इसके लिए लेखक को दृष्टिकोण जन्य ईमानदारी, साक्षात् होना आवश्यक है।

5.2. आलोचनात्मक यथार्थवाद :

"यथार्थवाद के उद्भव के साक्ष्य 19वीं और 20वीं शताब्दी में, प्रकृतवादी दृष्टिकोण से भिन्न वास्तविक जिन्दगी को उसकी वस्तुपरकता में और सच्चाई के साथ देखने, परखने और चित्रित करने वाले जिस साहित्य का जन्म और विकास हुआ, मार्क्सवादी आलोचकों ने उसे "आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य" तथा उसमें निहित यथार्थ दृष्टि को "आलोचनात्मक यथार्थ दृष्टि" के नाम से संबोधित किया है।²

1. शिखर - यथार्थवाद - पृ. 124

2. -वही- -वही- पृ. 96

आलोचनात्मक यथार्थवाद साहित्य की अन्य विधाओं से ज्यादा कथा साहित्य में अधिक सक्षम रूप में व्यंजित होता है। इसका कारण यही है कि उपन्यास के उदय से इसका गहन संबंध है। यह समाजवादी यथार्थवाद से भिन्न है। इसमें समाजवादी विचार धारा की सक्रियता दिखाई नहीं देती। यह युग जीवन तथा समाज की विक्तियों तथा कुरूपताओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखता है, किन्हीं रचनात्मक संभावनाओं को उजागर नहीं करता। इस प्रकार कह सकते हैं कि आलोचनात्मक यथार्थवाद समाज का निष्पक्ष रूप से आलोचना करता है। उसके पीछे किसी विचारधारा की उत्प्रेरणा नहीं है।

"मार्क्सवादी साहित्य चिंतक इस आलोचनात्मक यथार्थवाद को कुर्बाना यथार्थवाद के नाम से भी पुकारते हैं।¹ गोकी ने कुर्बाना यथार्थवाद के अंतर्गत दो प्रकार के लेखकों की चर्चा की है -- "एक वे लेखक, जो अपने वर्ग घरित्र को न छोड़ सकने के कारण अपने वर्ग हितों से जुड़े रहे हैं और जिन्होंने अपने कृतित्व में अपने वर्ग का गौरवमान किया है। दूसरे प्रकार के कुर्बाना लेखक वे हैं जिन्होंने अपने वर्ग स्वार्थ तथा वर्ग हितों का अतिक्रमण करते हुए अपने वर्ग की खरी आलोचना की है। ऐसे ही लेखकों को गोकी आलोचनात्मक यथार्थवाद तथा "क्रान्तिकारी स्वचर्युद्धतावाद" का झूटा कथा है।"² किन्तु इस स्वीकृति के बावजूद गोकी ने इस पर आपत्ति व्यक्त की कि इन लेखकों में समाजवादी व्यक्तिगतता के निर्माण में सहायता नहीं रहा है कारण ये समाज में प्रत्येक वस्तु की आलोचना किये हैं और कहीं भी कोई वस्तु की प्रतिष्ठा नहीं कर सके हैं।

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 100

2. -वही- -वही- पृ. 100

आलोचनात्मक यथार्थवाद में पूँजीवादी सभ्यता का आलोचनात्मक दृष्टि से चित्रण करते हुए उस व्यवस्था के कुरीतियों तथा दुष्परिणामों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया गया है। आलोचनात्मक यथार्थवाद पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध अकेले अर्थ का विद्रोह था। और कुर्बाना कर्ग के प्रति एक विक्षोभित स्वर था।

कहा जाता है कि आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखकों के पास वैज्ञानिक दृष्टि की कमी थी। वे पूँजीवादी समाज व्यवस्था के विकास से परिचित नहीं थे। इसी कारण ये सभी लेखक एक जुट होने में असफल रहे और पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध शक्तिरूप में कर न सके। हाँ, ये लेखक इतना कर सके हैं कि पूँजीपतियों के सामने अपने घुटने नहीं टेके। वे पूँजीवादी जर्जर समाज का व्यवस्था का चित्रण पूरे इमान्दारी से किये हैं।

यह ज्ञात होना आवश्यक है कि आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद के बीच में कोई विरोध नहीं है। मात्र भेद विचार धारा का है जो समाजवादी यथार्थवाद में समाजवादी विचार धारा है और आलोचनात्मक यथार्थवाद में इसका अभाव है।

जार्ज सुकाच बाल्जक की यथार्थवादी दृष्टि पर विचार करते हुए कहते हैं कि "सामान्य प्रतिभा वाले लेखक अवश्य अपनी निजी विचार धारा तथा वस्तुगत यथार्थ के बीच संतुष्टि बिठाने में सफल हो जाते हैं परन्तु महान लेखक वस्तुगत यथार्थ के प्रति अपनी ईमानदार आस्था को अपने निजी विचारों की वेदी पर कदापि बलि नहीं होने देते। बाल्जक ही नहीं, आलोचनात्मक यथार्थवाद के दूसरे महान लेखकों का कृतित्व भी इस कथन का सश्रय प्रस्तुत करता है। ये वे लेखक हैं जो वस्तुतः

जिन्दगी को उसकी सच्चाइयों में उभारते समय अपने निजी विचारों के प्रति ही सर्वाधिक निर्मम होते हैं।¹ बारूज की आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए एंगल्स ने यहाँ तक कहा कि "उस युग के बारे में जो ज्ञान मुझे बारूज के उपन्यासों के माध्यम से प्राप्त हुआ है, वह उस युग के समस्त राजनीतिक, इतिहासकार, अर्थशास्त्री और सांख्यिकीविद् मुझे मिलकर भी नहीं दे सके।"²

बारूज ही नहीं रोमारोला, टालस्टाय के कृत्रिम में भी ऐसा ही आलोचनात्मक यथार्थवाद को देखने मिलता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद के इन्हीं पुरोधारों ने उपन्यास को "महाकाव्यात्मक उपन्यास" की संज्ञा दिलाई है। इन लेखकों की मात्र यथार्थ चित्रण के कारण उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा मिली है ऐसा नहीं है बल्कि इन के उपन्यासों की शैली, भाषा प्रतिनिधि व्यक्तियों के साथ पात्रों का सजीव चित्रण और समाज का समग्रता से आकलन करना भी है।

इस धारा के लेखकों ने अपनी रचनाओं में वस्तुपरकता, सख्ती-यता, युग जीवन की प्रामाणिक चित्रण किया है। जिसके कारण इनकी रचनाएँ महान हो सकी हैं।

सही में आलोचनात्मक यथार्थवाद की व्योमताएँ इस प्रकार है - "सत्य के प्रति अग्रहित निष्ठा, सूक्ष्म परीक्षण, समग्र आकलन, वस्तुगत यथार्थ का मार्मिक विश्लेषण, अंतर्मेदी दृष्टि, व्यवस्था जन्य विक्तियों का निर्मम उद्घाटन चित्रण की समग्रता, उसकी पारदर्शी स्वरूप, गहरी

1. रिचर्डुमार मित्र - यथार्थवाद - पृ. 108

2. -वही- -वही- पृ. 110

सामाजिक किंठा तथा अकृत्रिम मानवीय संवेदना, यात्रिकता का तिरस्कार सजीव और सघाण मानव चरित्र चित्रण के अंतर्गत "टाइप" की सृष्टि और उसे दुहरी भूमिका पर उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक इतिहास के साहस मूर्त करना, महाकाव्यात्मक बोधात्य दृष्टिकोण तथा चित्रण, दोनों धरातलों पर, निष्क्रिय तटस्थता से हटकर युग जीवन की गति-विधियों में इनका सजग और सचेष्ट इनवाल्वमेंट कुछ ऐसी खास बातें हैं, जो "बालोचनात्मक यथार्थवाद" को महनीयता प्रदान करती हैं, इसे यथार्थवादी कला की धरोहर सिद्ध करती हैं।¹

5.3. प्रकृतवादी यथार्थवाद :

प्रकृतवादी यथार्थवाद का जन्म 19वीं सदी में फ्रांस में हुआ था। एक प्रकार से इसका जन्म समाजवादी यथार्थवादी के अनेक व्यक्तियों के कारण हुआ। यह बाद बादशवाद, रोमान्सवाद और भावुकता जैसेवादों के भी विरोधी है। इसके प्रबल समर्थ के रूप में प्रख्यात उपन्यासकार एमिल जौला का नाम लिया जाता है। प्रकृतवादी यथार्थवाद साहित्य के कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं - इसमें प्रकृति प्रेम का वर्णन होता है और यह सामान्यतः प्रकृति के साहस प्रत्यक्ष संपर्क रखने की चेष्टा करके यथार्थवाद का रूप स्पष्ट करता है। इस धारा के लेखक मानव को प्रकृति का ही एक अंश मानते हैं। इसलिए वे मनुष्य को प्रकृति के सम्मिलित में ही देखने पर बल देते हैं न कि धार्मिक या मानवीयता के रूप में। इस प्रकार वे मानव और पशु को समान रूप से देखते हैं। इन लेखकों पर डार्विन का विकासवाद का प्रभाव है इसलिए वे मानते हैं कि मनुष्य कोई असाधारण प्राणी नहीं है, बल्कि वह भी इस प्रकृति का एक विकसित प्राणी मात्र है। इसलिए मनुष्य और पशु के मूल भूत प्रवृत्तियों

में साम्य है। वे स्थापित करते हैं कि "मानव शरीर की सभी मांगें महत्वपूर्ण हैं और काम मूलक मांगें और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। अतः उन मांगों की पूर्ति अत्यन्त सहजता, पूर्णता और निष्ठा से होनी चाहिए। शरीर की किसी भी काम मूलक क्रिया अथवा इच्छा को यथावत् चित्रित करके ही समाज में हम उसकी सच्चाई को प्रकट कर सकते हैं। तथ्य तथ्य है, उसमें न कुछ गड़बड़ है, न बीभत्स। तथ्य को छिपाने से समाज में उसके प्रति राग, आकर्षण और आक्रोश अधिक बढ़ता है। वास्तविकता को उसके सही और सच्चे रूप में सम्मिलित लेने पर व्यक्ति को अनुभूति का सा तोष आ सकता है। साह ही किसी प्रकार की अस्पष्टता उसके मन में नहीं रहती।"।

प्रकृतिवादी यथार्थवाद के कारण यह मान्यता प्रबल हो गई है कि मनुष्य और पशुओं में समान रूप से स्थित भूख और काम की प्रवृत्तियों का पोषण रुचि के अनुसार होनी चाहिए। इस धारणा के कारण साहित्य में अर्मलकारी कुत्सित, घृणित, विवृत तथा भीभत्स दृश्य प्रकट होने लगे।

प्रकृतिवादी यथार्थवाद की विरोधता यह है कि वह साहित्य में समाज और जीवन को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करता है। यह किसी वस्तु तथ्य को गोपनीय रखना पसंद नहीं करता। इस सम्बन्ध में जोला का कथन है कि "लेखक का कर्तव्य है कि वह किसी भी वस्तु का जब चित्रण करने बैठे तो उसका विवक्षणीय एवं ठीक ठीक चित्र उपस्थित कर दे, भले ही वे कुरूप तथा जीवन के गन्दे चित्र क्यों न हों। जब वह मनुष्यों की दुर्बलताओं तथा रोगों और नैतिक कमजोरियों का चित्र उपस्थित करने लगे तो उसे चाहिए वह किसी भी अंश का चित्र सींचना

भूल न जाय जिससे कि पाठक को उसकी चित्रोपमता में सन्देह होने लगे ।¹

प्रकृतवादी यथार्थवाद के अनुसार कला का वास्तविक अध्ययन प्रकृति का अध्ययन ही है । इसलिए प्रकृति का वास्तविक चित्रण साहित्य में ऐसा होना चाहिए कि जिसमें न कोई अलंकरण हो और न दुर्गार । इस वाद के अनुसार प्रकृति सर्वसत्तात्मक है । यह किसी पर आधारित नहीं है और न ही किसी से परिचालित है इसलिए कलाकार या साहित्यकार का यही कर्तव्य है कि अपने मनोवृत्तियों या धार्मिक वृत्तियों को बीज में न लाते हुए प्रवृत्ति को अपने द्वारों और जिस प्रकार से वह देखता है उसका ऐसा ही चित्रण करे, चाहे वह कुरूप हो या सुंदर ।

प्रकृतवादी यथार्थवादी लेखक प्रकृति का यथातथ्य चित्रण करने में अक्सर व्यक्तित्वनिष्ठ होता है । वह समाज के प्रति घृणा, क्रोध, द्वेष, आक्रोश व्यक्त करते हुए समाज में स्थित कुत्सित, कुरूप, अप्रिय और नग्न दृश्यों का ही अधिकतर चित्रण करता है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रकृतवादी यथार्थवाद स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण की प्रति क्रिया है । स्वच्छंदतावादी जब किसी उपकरण वस्तु का ब्योरा देता है तो पाठक या दर्शक की भावुकता को उत्तेजित करने वाले और कल्पना के विकास में सहायक होने वाले होते हैं । इसके ठीक विपरीत प्रकृतवादी यथार्थवादी जान बूझकर उन्हीं वस्तुओं व उपकरणों का ब्योरा देता है जो घृणित और बीभत्स हो ।

प्रकृतवादी यथार्थवादी मानते हैं कि प्रकृति में कोई अच्छा या बुरा नहीं होता। लेखक को प्रकृति के कार्यों & या प्रक्रिया के संबंध में अच्छा या बुरा कहकर निर्णय करने का कोई अधिकार नहीं है। इस प्रकार प्रकृतवादी यथार्थवादी लेखक प्रकृति को यथातथ्य चित्रण करना ही साध्य माना है न कि साधन।

5.4. अतियथार्थवाद :

अतियथार्थवाद का जन्म फ्रांस में भौतिकवादी विचारधारा के विरोध में हुआ। यह दादावाद से अधिक प्रभावित हुआ है। दादावाद ने प्रथम विश्व युद्ध के कारण उत्पन्न निराशा, निस्पृहता, असहन और संकट से जन्म लिया है। फ्रेन्च भाषा में दादा बूढ़ाका का अर्थ है लकड़ी का धोटा। "व्यवस्था में फेले अन्याय को देखकर व्यवस्था को ही ध्वंस करने की प्रवृत्ति दादावाद का सार है। दादावादियों में प्रमुख ह्यूगसेन के स्वयं एक मनोवैज्ञानिक थे। वे फ्रायड द्वारा विश्लेषित मनोविश्लेषण पर अधिक आश्रित दिखाते थे। यही अतियथार्थवाद के आविर्भाव का कारण बना। यह वाद भी समकालीन समाज पर द्वेष के कारण ही पैदा हुआ है। रचना में स्थित यथार्थ को अलग अलग करके यथार्थ से परे अभिव्यक्ति को प्राप्त करना ही इस वाद का उद्देश्य है। इस वाद के समर्थकों के अनुसार यथार्थ को पारकरने वाला अतियथार्थ ही सच्चा यथार्थ (Absolute reality) है।

सन् 1918 ई० में अपोलिनेयर ने पहली बार "सुपर रियलिज्म" शब्द का प्रयोग किया था। 1924 में ब्रेतो ने अतियथार्थवाद की स्थापना की। प्रथम अतियथार्थवादी घोषणा पत्र 1924 में और दूसरा सन् 1930 में प्रकाशित हुआ था। प्रथम घोषणा पत्र में लिखा गया था कि - "अतियथार्थवादी का मूल विश्व मानसिक स्वयं चालन है। इसी के द्वारा यह

लक्षित करने की आ गई। इस वाद के कारण वैज्ञानिक तार्किकता की अवज्ञा की गई और व्यक्ति के मनोवृत्ति को स्वतंत्रता मिल गई। इस प्रकार वैज्ञानिक भौतिकवादी दृष्टि का पूरे जोर से विरोध किया गया है। अमेरिकन कलेज कोश की यह परिभाषा इस संदर्भ में द्रष्टव्य है -

A recent movement in literature and art (influenced by psychoanalysis) based on the expression of imagination uncontrolled by reason and seeking to suggest the activities of subconscious mind whether in dreams or during walking. (अध्यासः सिद्धांत और संरचना से उद्धृत)

अतियथार्थवादी लेखक अवचेतन मन को दबाकर रखना नहीं चाहता बल्कि उसे और भी भड़का कर अनावृत करके अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। यह रचनाकार की प्रकृतवादी यथार्थवादियों की भाँति मनुष्य को पशु के समान ही देखता है। "पशुसुख बहुत सी सुविधाओं के प्रति ईर्ष्यालु होता है और रति संबंधी सुविधाओं में तो वह पशुओं के समान सुविधाओं को प्राप्त करने या कराने का हामी है।"¹ इस प्रकार त्रिभुवन सिंह अतियथार्थवाद की परिभाषा देते हुए कहते हैं - "साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति जब समाज की मर्यादा एवं परम्परा की सीमाओं का अतिक्रमण करके अत्यन्त ही नग्न रूप धारण कर लेती है तो उसे अति यथार्थवाद, सररिथालिज्म, कहते हैं।"² और वे अतियथार्थवाद और प्रकृतवाद में अंतर स्पष्ट करते हुए करते हैं - "हमें अतियथार्थवाद को हम एक प्रकार से प्रकृतवाद की चरम अभिव्यक्ति कह सकते हैं। प्रकृतवादी साहित्य की अभिव्यक्ति जिस स्थान से अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त होती है, अतियथार्थवादी साहित्य उसी स्थान से अपनी अभिव्यक्ति आरम्भ करता।"

1. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. 61

2. -वही- -वही- पृ. 60

है, परन्तु प्रकृतवाद और अतियथार्थवाद में मौलिक अंतर है। प्रकृतवाद यथार्थवाद की चरम अभिव्यक्ति है परन्तु सररियलिज्म के अन्दर लेखक उन स्वप्निल तत्वों का तद्दत्त चित्र उतारता है जो उसकी कल्पना में आते हैं। इसका विकास मुख्यतः मूर्तिकला के माध्यम से हुआ है।¹

अतियथार्थवाद अव्यवस्था का सिद्धांत है। यह अपनी कल्पना के आधार पर मन चाहे निष्पत्ति का निर्माण करने के पक्ष में है। यह परम्परागत रुढ़ियों का कड़ा विरोध करता है। यह मनुष्य की निन्दोक्षिता में विश्वास करता है और यह मनुष्य के द्वारा की गई बड़ी से बड़ी गलती को भी सामान्य गलती समझता है। अतियथार्थवादी अपनी वर्तमान नियति से असंतुष्ट है और इस परिदृष्टि में उसे न्याय मिलने की संभावना नहीं है। अतएव वह उसके साथ सम्झौता नहीं करना चाहता है। मन को न तो इस जीवन में शान्ति मिल पाती है और न उसके बाद। अतएव यह यथार्थवादी उसका हल ढूँढना चाहता है। अतियथार्थवाद उस मानस की पुकार है जो अपने विस्मृत होता है।²

नारी को क्लृप्त और आकर्षण की वस्तु समझकर उसके रंग रूप का जो वर्णन साहित्य में परम्परागत रूप से होता था उसके विरोध में अतियथार्थवादियों ने नारी के अंग प्रत्यङ्ग तथा अंतःमन को अनावृत करके यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत किया ताकि कोई नारी को भोग क्लृप्त या आकर्षण की वस्तु न समझे। किन्तु यही अतियथार्थवादी लेखकों को विरोधियों का सामना करना पड़ा क्योंकि विरोधियों का आरोप था कि नारी के अंग प्रत्यङ्ग के यथातथ्य चित्रण के नाम पर उन लेखकों ने अपनी दमित कामवासनाओं को परदे के रूप में अद्विगलित कर लिया। यह कुछ

1. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. 60

2. शिखर सिंह - आलोचना के आधुनिकवाद और नयी समीक्षा - पृ. 22

हद तक सच है कि ये लेखक नारी के अवस्थाओं के चित्रण में सीमोलंघन करते हैं, फिर भी हम यह कहे बिना नहीं रह सकते हैं कि सत्यता के नाम पर आज वास्तविकता के उपर जो पर्दा डाला गया है उसे हटाकर उसके यथार्थ रूप को सामने लाने का प्रयत्न अतिथयार्थवादी साहित्य कर रहा है ।

५.५ : आदर्शोन्मुख यथार्थवाद :

यथार्थ और आदर्श में समन्वय होने से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का आविर्भाव हुआ है । साहित्य में "जो हो रहा है" यथार्थ है और "जो होना चाहिए" आदर्श है । समाज में जो घटित हो रहा है उसका ही चित्रण ज्यादातर निराशाजनक चित्रण करें तो साहित्य और अन्य शास्त्रों में कोई भेद नहीं रह जायेगा । कोई भी पाठक अपने दैनिक जीवन के कष्टों से उबा रहने पर उसे यदि उसी के कष्टों का ज्यों का त्यों चित्रण करके दिखाये तो वह और भी अधिक निरुत्साहित होगा । साहित्य का मूल उद्देश्य जीवन के स्तर को उँचा करना है । इसलिए आदर्शोन्मुख यथार्थवादी लेखक चाहते हैं कि रचनाओं में यथार्थ का चित्रण करते हुए उसकी परिणति आदर्श में हो । हालाँकि आदर्श एक कल्पना मात्र होता है । फिर भी वह कल्पना यथार्थ पर टिके रहने के कारण वास्तव में कुछ अंश खरे उतरने की संभावना रहती है । इसलिए आदर्शोन्मुख यथार्थवादी लेखक साहित्य में आदर्श और यथार्थ का समन्वय होना अनिवार्य मानते हैं । प्रेमचन्द उपन्यासों की उत्कृष्टता की कसीटी के संबंध में अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहते हैं - "वे ही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो । उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं । आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए, और अच्छे उपन्यास की

ही आदर्श- यथार्थ का समन्वय, विरोधता है ।¹ अन्यत्र प्रेमचन्द साहित्य में विष्णु यथार्थवाद को नकारते हुए यथार्थ के साथ आदर्श के समन्वय के महत्व को मनोवैज्ञानिक ढंग से बताते हुए कहते हैं कि - "मानव स्वभाव की विरोधता यह भी है कि वह जिस छल, झूठता और कपट से घिरा हुआ है, उसी की पुनरावृत्ति उसके चित्त को पसन्न नहीं कर सकती । वह थोड़ी देर के लिए ऐसे संसार में उठकर पहुँच जाना चाहता है, जहाँ उसके चित्त को ऐसे कुत्सित भावों से निजात मिले, वह भूल जाय कि भविष्यताओं के बन्धन में पड़ा हुआ है, जहाँ उसे सज्जन सहृदय उदार प्राणियों के दर्शन हो, जहाँ छल पकट, विरोध और धैर्य का ऐसा प्राधान्य न हो । उसके दिल में ख्याल होता है कि जब हमें किसी कहानियों में भी उन्हीं लोगों का सामना है जिनके साथ अठों पहर व्यवहार करना पड़ता है, तो फिर ऐसी पुस्तक पढ़े ही क्यों ?"²

आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की मुख्य विरोधता यही है कि साहित्य में जहाँ यथार्थवाद स्वीकृति और स्वाभाविकता लाता है, वहाँ आदर्शवाद सुन्दरता, प्रभावोत्पादकता और पथ प्रदर्शिता । इस संदर्भ में दोनों की उपयोगिता और प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं कि 'यथार्थवाद यदि अखि खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है ।'³

शिवकुमार मिश्र का कहना है कि जो सच्च यथार्थ होता है । उसी में आदर्श समा हुआ रहता है । यथार्थ और आदर्श अलग नहीं रहते । वे कहते हैं कि यथार्थवाद का विरोध आदर्शवाद से उसकी दार्शनिक चिन्तन

1. प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य - पृ. 57

2. - वही - - वही - पृ. 57

3. - वही - - वही - पृ. 58

६ । वह आदर्शवाद का तिरस्कार करता है, आदर्शवाद कहते हैं कि "यथार्थवाद का "आदर्शवाद" से विरोध उसकी दार्शनिक चिंतना को लेकर है । वह आदर्शवादी दर्शन को अस्वीकार करता है, आदर्श को नहीं । यथार्थवादी रचनाकार और विचारक इस तथ्य से परिचित हैं कि यथार्थ चित्रण यथार्थ जगत के व्यक्ति के ज्ञान पर निर्भर करता है । यदि यह जगत गतिशील है और व्यक्ति को उस गति की दिशा का ज्ञान है, वह उस दिशा के महत्व को समझता है जिसकी ओर वह उसे अग्रसर करना चाहता है तो निश्चित रूप से यह आदर्श उसके "यथार्थवाद" में निहित होगा ।"।

क्षेप में यही कह सकते हैं कि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद एक ऐसी दृष्टि है जिसमें सामाजिक व्यवस्था के छद्म फलों का उजागर करते हुए भी पाठक में निराशा उत्पन्न न होने के लिए और पाठक के जीवन को नवीन दिशा देने के लिए आदर्शात्मक अन्त किया जाता है ।

5.6. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद :

फ्रायड प्लर, युग जैसे प्रख्यात मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों के आधार पर विकसित हुई यथार्थवादी धारा को मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद कहते हैं । इस आ यथार्थवाद का मुख्य प्रतिपादन यही है कि मनुष्य का सम्पूर्ण अंकन मात्र बाह्य क्रियाकलापों और सामाजिक गतिविधियों के द्वारा नहीं किया जा सकता बल्कि उसके लिए मनुष्य की आन्तरिक मनःस्थिति का भी अंकन करना जरूरी होता है । क्योंकि अक्सर मनुष्य के व्यवहारिक गतिविधियों से उसके मन के भाव स्पष्ट नहीं होते । अतः मानव व्यवहितत्व में निहित सच्ची रुचियों और इच्छाओं को समझने के लिए उसकी स्वतंत्र

विविधस्त एव' समांगुलक क्षणों की क्रियाएँ ही सहायक हो सकती है । इस लिए मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का दावा है कि बिना मनुष्य के मनःस्थिति जाने उसका यथार्थ चित्रण नहीं किया जा सकता क्योंकि बाहरी चरित्र से अस्सी मानव दिखाई नहीं देता । इसी बात को त्रिभुवन सिंह इस प्रकार व्यक्त कर रहे हैं - "जहाँ तक यथार्थ चित्रण का प्रश्न है, उपन्यास - कार यदि मनुष्य के कार्यों का तद्वत् चित्र उतारना चाहेगा तो उसे उसके कार्य व्यापारों की भाँति ही उसके विचारों का भी लेखा जोखा लेना ही पड़ेगा कि वे करने के साह ही साथ सोच क्या रहे हैं । इस प्रकार उपन्यासकार को बाध्य होकर लोगों के मस्तिष्क से भी संबंध रखना पड़ेगा और उसके भीतर उपन्यासों में अधिक पृष्ठों की व्यवस्था उसे केवल मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मांतिक मानसिक क्रियाओं तथा दिवा स्वप्न आदि को चित्रित करने के लिए सुरक्षित रखनी होगी । मानव का क्रियाशील जीवन ही उसका संपूर्ण जीवन नहीं है, यहाँ तक कि वह सबसे महत्वपूर्ण जीवन भी नहीं है । सबसे अधिक महत्व है विचारों तथा भावनाओं से निर्मित आन्तरिक जीवन का । इसलिए उपन्यासों को यथार्थवादी बनने के लिए उन्हें मनोवैज्ञानिक बनना ही पड़ेगा ।"।

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की यह विशेषता है कि इसमें समाज का व्यापक फलक पर चित्रण नहीं होता बल्कि सीमित रूप से चित्रण होता है । सीमित रूप से चित्रण होने के कारण स्थितियों का तथा पात्रों का महत्तम रहस्यात्मक विचारों का सूक्ष्मांतिक चित्रण किया जाता है । प्रत्येक पात्र का सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अंकन किया जाता है ।

मनोवैज्ञानिक यथार्थवादियों का कहना है कि इच्छाओं का दमन और त्याग करके मनोवृत्तियों को सन्तुष्ट करना ठीक नहीं है। यदि मनुष्य को बन्द कैदी की तरह रखने के बजाय मुक्त रखा जाये तो वह अधिक सुख प्राप्त कर सकता है।

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद संबंधी उपन्यास लिखना आसान कार्य नहीं है। "वस्तुगत" यथार्थ पर आधारित उपन्यास लिखे जा सकते हैं उसका सूक्ष्म विवेचन किया जा सकता है किन्तु मनुष्य के मन को जानना पहचानना बहुत कठिन कार्य है और उसका यथार्थ चित्रण करना और भी चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसलिए अधिकतर इस वर्ग के उपन्यास अत्यंत व्यक्तियों के संबंधों में नहीं होते बल्कि असाधारण व्यक्तियों, स्वामी नारमल और अबनार्मल मेइण्ड के संबंध में होते हैं। इन उपन्यासों में यह अभाव है कि इन के लेखक संपूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण नहीं करते बल्कि व्यक्ति के आन्तरिक मनःस्थिति का ही विक्षिप्त रूप से चित्रण करते हैं।

इस प्रकार जहाँ प्रकृतवादी यथार्थवाद बाह्य स्थिति के चित्रण पर जोर देता है वहीं मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद आन्तरिक पक्ष के चित्रण पर जोर देता है।

5.7. ऐतिहासिक यथार्थवाद :

यथार्थवाद का यह और एक रूप है। ऐसे तो इस शब्द का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं होता। इसका सामान्य अर्थ यही हो सकता है कि बीता हुआ यथार्थ अर्थात् जो कल यथार्थ था वह आज-यदि परिस्थितियों में परिवर्तन आ जाए तो - ऐतिहासिक यथार्थ बन जायेगा। इसी तरह आज का यथार्थ भविष्य में ऐतिहासिक यथार्थ बन जाता है। साफ-साफ

शब्दों में कहें तो विगत युग का सामाजिक यथार्थ ही वर्तमान युग का ऐतिहासिक यथार्थ है। ऐतिहासिक यथार्थवाद के संबंध में चर्चा करते हुए मूलतः सामाजिक राष्ट्रीय परिस्थितियों को ही आधार माना जायेगा।

यह भी जान लेना आवश्यक है कि इतिहास और ऐतिहासिक यथार्थवाद के बीच भेद है। इतिहास घटनाओं तथा तिथियों को विशेष महत्व देता है जब कि ऐतिहासिक यथार्थवाद तिथियों को महत्व नहीं देता बस ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर ही तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करता है और उस काल के गुण दोषों का अंकन भी करता है।

ऐतिहासिक यथार्थवादी साहित्य का रचन करते समय लेखकों को यह बात ज्ञात रहना चाहिए कि मात्र प्रमुख राष्ट्रीय घटनाओं या महान राजाओं के कार्यक्लापों के आधार पर जय जयकार करते हुए रचनाएँ नहीं करना है बल्कि तत्कालीन वास्तविक परिस्थितियों का तथा जन जीवन का चित्रण यथार्थ दृष्टि से करना चाहिए तभी वह रचना ऐतिहासिक यथार्थवादी रचना कहलायेगी।

यह भी भूलना नहीं चाहिए कि जिस युग का यथार्थ चित्रण साहित्यिक कृति में किया जाता है, वह कृति हमेशा के लिए रह जाती है। अतः युग विशेष को चित्रित करते समय किसी एक पक्ष को विशेष रूप से चित्रित न करते हुए संपूर्ण युग का चित्रण यथार्थ के धरातल पर करना चाहिए। जिससे भविष्य के पाठक को ऐतिहासिकता के बारे में कोई सदिह उत्पन्न न हो। यह भी ध्यान रखने की बात है कि ऐतिहासिक यथार्थवादी रचना करते समय पात्रों के मुख से तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल संवाद करवाना चाहिए न कि आधुनिक उद्देश्यों को। ऐतिहासिक

उपन्यासों का सृजन करते समय रचनाकारों को निर्धारित दृष्टि को अपनाने की आवश्यकता होती है। यदि निर्धारित दृष्टि को न अपनाये जाय तो रचना में विकार आ जाने की अधिक संभावना रहती है। ऐतिहासिक यथार्थवादी रचना को कथा वस्तु के रूप में उसी धृष्टि को लेना चाहिए जो तर्क और संभावनाओं के कसौटी पर खरा उतरता हो।

किसी भी युग की वास्तविकता को समझ लेना ही सच्चा ऐतिहासिक यथार्थ है। ऐसी रचनाएँ करते समय लेखक को तत्कालीन युग की समस्त विशेषताओं - भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि - को समझ लेना अत्यंत आवश्यक है, नहीं तो ऐतिहासिक यथार्थ हंसी की वस्तु बन जायेगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ठीक कहते हैं कि - "किसी ऐतिहासिक उपन्यास में यदि बाबर के सामने हुक्का खड़ा जायेगा, गुप्त काल में गुलाबी और पुरोही रंग की साठियाँ, इत्र, मेख पर लगे गुलदस्ते झाल - पानूस लाये जायेंगे, सभा के बीच छछे होकर व्याख्यान दिए जायेंगे और उन पर करतल ध्वनि होगी, बात बात में धन्यवाद, सहानुभूति ऐसे शब्द तथा सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना ऐसे फिक्के पायेंगे तो काफी हँसनेवाले और नाक भी तिकड़ुने वाले मिलेंगे।"।¹ इसलिए ऐतिहासिक यथार्थवाद की रचना करते समय अत्यंत सावधानी बरतनी पड़ती है।

ऐतिहासिक यथार्थवादी लेखक निष्पक्ष और तटस्थ रहना चाहिए। मुख्यतः किंमत ऐतिहासिक यथार्थ पर आधारित रचनाओं का सृजन करते

समय वह किसी भी कर्ष के प्लेपात करते हुए या सहानुभूति रचना नहीं करनी चाहिए बल्कि संपूर्ण समाज का यथार्थ दृष्टि से आकलन करना चाहिए ।

व्यस्कुज: ऐतिहासिक यथार्थवादी साहित्य का उद्देश्य महान है । जब कभी वर्तमान समय में निराशा, निरपेक्ष की वातावरण छा जाती है तो अतीत के केवल और वीरता के छटनाओं का अवलोकन करने के लिए ऐसा साहित्य रचा जाता है ताकि उससे स्फूर्ति मिले ।

6. उपन्यास और यथार्थवाद :

उपन्यास आधुनिक युग के द्वारा साहित्य को दिया गया उपहार है । इस विधा का आविर्भाव आधुनिक काल के अनेकानेक आविष्कारों तथा बदलते हुए सामाजिक परिस्थितियों के कारण हुआ । वास्तव में उपन्यास का उदय यूरोप के नवजागरण, जिसने गद्य को जन्म दिया है, के कारण हुआ । साहित्य में गद्य का उद्भव एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है । जिसके कारण साहित्यिक गतिविधियों पर काफी प्रभाव पड़ा । इस प्रभाव से ही गल्प या आख्यान के स्थान पर उपन्यास आ गया । उपन्यास जन्दी ही एक ऐसे स्वातंत्र्य माध्यम के रूप में उभरकर सामने आया जिससे मानवीय जीवन के प्रत्येक कोण का स्वातंत्र्य चित्रण तथा मनोभावों को स्पष्ट रूप से उजागर करने में सफल रहा । यह इसके अतिरिक्त काफी पीछे रह गया क्योंकि उसमें आधुनिक मानव जीवन के अनुभूतियों का चित्रण करने की क्षमता नहीं थी । इस प्रकार कह सकते हैं कि आधुनिक काल के कारण यह का स्थान गद्य ने ले लिया और गल्प तथा आख्यान का स्थान छोड़ा आख्यान और उपन्यास का सीधा संबंध न हो, उपन्यास ने ले लिया ।

उपन्यास के उद्भव के संबंध अनेक विचार सामने आते हैं, किन्तु जिनमें मतभेद नहीं है। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि उपन्यास प्राचीन कथा का स्वाभाविक विकास है। किन्तु इस अभिप्राय पर विवाद नहीं किया जा सकता क्योंकि आधुनिक युग के उपन्यासों से प्राचीन कथाएँ या गल्प मात्र दो अंशों में साम्य रखते हैं वे भी सतही तौर पर-एक कथा का समावेश दूसरा गल्प जैसी भाषा का माध्यम। इसी प्रकार यह भी कह सकते हैं कि आज के उपन्यासों की कथा वस्तु शिल्प आदि से प्राचीन कथाएँ या गल्प पूरी तरह से मेल नहीं रखती। इस लिए अधिकतर विद्वानों उपन्यास को एक नवीन विधा के रूप में मानने के पक्ष में हैं। उनके कथानानुसार "उपन्यास का प्रारंभ विव साहित्य में यूरोपीय पुनः जागरण के पश्चात् हुआ। इटली से आरंभ होकर जागरण की यह लहर एक के बाद एक देश में प्रसार पाती गई। इस साहित्य रूप के विकास के लिए औद्योगिक क्रान्ति और उससे सम्भूत सुसभ्यता एवं जीवन की जटिलता ने अनुकूल पीठिका प्रदान की। यो पश्चिम में लॉगिनुस, हेलिओदोरस तथा पेत्रोनिअस से एवं मध्यकालीन गल्प प्रोमारियानों से और हमारे यहाँ संस्कृत के बाण कदाम्बरी दण्डी दशकुमारचरित आदि से उसका संबंध जोड़ने के प्रयत्न हुए हैं, किन्तु इन प्रयत्नों में आगति - अन्वेषण की दृष्टि से कोई अर्थवत्ता नहीं।" किन्तु ये दोनों धारणाएँ आंशिक रूप में ही सत्य लगते हैं। इनका समन्वय करने पर उपन्यास के उदय का सही समाधान निकलता है। यह सत्य है कि कथा कहना - सुनना प्राचीन काल से आ रही विधा है और यह

1. डा० नरेन्द्र - मार्निक्की पारिभाषिक कोश : साहित्य खण्ड :

संपादक - पृ. 180

भी सही है कि कथा को जो स्वरूप मिला है, वह नीतान्त आधुनिक है और उसकी शुरुआत यूरोपीय नवजागरण से हुआ है।

उपन्यास के उद्भव के संबंध में कुछ विद्वानों का मत है कि उपन्यास महाकाव्य का स्थानापन्न है। उनके मतानुसार महाकाव्य सामंती और अभिजात वर्ग की देन है तो उपन्यास पूँजीवादी युग की। महाकाव्य की कथा वस्तु बहुत ही सरल और उदात्त कल्पना से पूर्ण होती है। इसका नायक धीरोदात्त और सभी आदर्श गुणों से परिपूर्ण होता है। महाकाव्यों की रचनाकाल की परिस्थितियाँ भी सरल थी। सामाजिक जीवन विधान में कोई क्लिष्टता नहीं थी। सभी लोगों का जीवन विधान लगभग एक सा था। यदि उसमें कुछ भेद भी होता था तो मात्रा का होता था, गुण का नहीं। साहित्य समाज का दर्पण होता है। महाकाव्य में भी तत्कालीन सरल सामाजिक परिवेश का चित्रण हुआ है। उसमें क्लिष्टता, जटिलता और अलगाव जैसी प्रवृत्तियों को स्थान नहीं था।

18वीं शती का आरम्भ यूरोपीय नवजागरण से हुआ। "पुनर्जागरण" यूरोप की वह महान संक्रान्ति थी जिसने मध्ययुगीन जड़ता, स्टी और अन्धविश्वासों को, गार्थिक वास्तु विद्या को, संकीर्ण दृष्टिकोण को, ह्रासोन्मुखी अर्थ व्यवस्था को और सामन्तीय अराष्ट्रीयता को बहा दिया और उनके स्थान पर सन्देशवाद, व्यक्तिवाद, पदार्थवाद, मुक्ति, आत्म-भिव्यक्ति के साथ साथ एक गतिशील आर्थिक व्यवस्था और राष्ट्रीयता को प्रतिष्ठित किया। स्वभावतः ही इस संक्रान्ति ने धीरे धीरे एक ऐसे उद्वेलन का रूप लिया जिसमें सब प्रकार की गतानुगतिकता को तिल-जल दी जाने लगी। समाज में एक नई स्फूर्ति और सक्रिया प्रवृत्ति हुई जिसके फलस्वरूप नये-नये देशों की खोज की जाने लगी, धार्मिक मुद्दत के स्थान पर वैज्ञानिक का अनुशीलन प्रारंभ हुआ, व्यापार और उद्योगों

को नई गति मिली, नये नगर - राज्य स्थापित हुए, मठों और गिरजों के ढंग से निकलकर शिक्षा नई सरणियों में प्रवाहित होने लगी ।¹ ऐसे नवजागरण की प्रवृत्तियों को महाकाव्य अपने में अनुस्यूत करने और उन्हें रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने में सफल होने लगा । जिसके कारण इन प्रवृत्तियों को अपने में अनुस्यूत करने वाली विद्या के रूप में उपन्यास का उदय हुआ । इसलिए जार्ज लुकास ने महाकाव्य तथा उपन्यास में अन्तर स्पष्ट करते हुए ठीक ही लिखा है कि -- "महाकाव्य का स्वभाव बच्चे जैसा ही सरल होता है, जबकि उपन्यास इसके ठीक विपरीत - परिपक्व और स्थावत होता है ।"² यह सर्वविदित है कि सामाजिक व्यवस्था हमेशा सरलता से विलोपता की ओर अग्रसर होती रहती है । महाकाव्य सरल सामाजिक व्यवस्था की देन है तो उपन्यास संकलित सामाजिक व्यवस्था की । इस प्रकार आधुनिक परिवर्धित प्रवृत्तियों को अपने में अनुस्यूत करने में महाकाव्य विफल हो गया वही उपन्यास उनसे जुड़ने में सफल रहा ।

आधुनिक काल में उपन्यास विद्या का विकास निःसंदेह: अन्य साहित्यिक विद्याओं से तेजी से होने लगा । जिसके दो प्रमुख कारण हैं - एक मुद्रण यंत्र का आविष्कार जिसके कारण पुस्तकों की मुद्रण में तेजी आ गयी । दूसरा शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार जिसके कारण समाज में एक ऐसे वर्ग का आविर्भाव हुआ जो शिक्षा के कारण अपने जीवन स्तर को निम्नवर्ग से थोड़ा उंचा कर लिया । यही मध्यवर्ग था । मध्यवर्ग के उदय होने के कारण उपन्यास के पाठकों की संख्या ही अधिक नहीं हुई बल्कि

1. राजल साकृत्यायन - दर्शन - दिग्दर्शन - पृ. 296

2. जार्ज लुकास - उपन्यास का सिद्धांत - पृ. 84

ओपन्यासिक कथ्य भी उनके जीवन पर आधारित होने लगा । इस प्रकार उपन्यास मध्यकाल के जीवन तथा परिवेश को समग्र रूप से प्रस्तुत करने वाला एक मात्र सक्षम विधा के रूप में अवतरित हुआ । इसलिए हीगले ने उपन्यास को "दी एपिक आफ दी मिडल क्लास वर्ल्ड" कहा तो लुकास ने "बुज्जर्वा एपिक ।"

उपन्यास अधिक लोकप्रिय होने का यह भी कारण है कि प्राचीन या मध्यकाल के आख्यानो में भगवान के प्रति आस्था सम्बन्धी तथा परलौकिक आनन्द की बातें हुआ करती थी । अर्थात् इस लौकिक संसार से ये कृतियाँ बिल्कुल अलग रहती थी । किन्तु जब उपन्यास का उदय हुआ तो लौकिक ही जीवन ही को अधिक महत्व दिया जाने लगा । इन कृतियों में देवताओं या महाराजाओं के स्थान पर सामान्य मनुष्य नायक होने लगा । इस प्रकार यथार्थ के धरातल पर जीवन के सभी पक्षों को उजागर करने वाले कथा वस्तुओं के कारण आख्यानो का पतन और उपन्यासों का विकास तीव्रगति से होने लगा ।

वस्तुतः साहित्य में आदर्शवाद को तिलाजलि देना और यथार्थवाद को स्वीकार करना ही उपन्यास के उदय के पीछे मूल कारण है । पाठक का आदर्शवाद से जूझ चुका था । सामाजिक व्यवस्था अधिक जटिल हो रही थी । ऐसे समय पर आदर्शवाद के नाम पर बहलाना पाठक का को पसंद नहीं आया । वे चाहते थे कि उपन्यास में कुछ जीवन मुख्य ऐसे हो जो अपने जीवन के विकास में काम आये और वे यह भी चाहते थे कि उपन्यास का सम्बन्ध सामाजिक परिवेश से हो और उसका चित्रण यथार्थ के धरातल पर हो ।

इस प्रकार कह सकते हैं कि उपन्यास और यथार्थवाद का घनिष्ठ संबंध है । इसी संदर्भ में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि "उपन्यास

नाम्न साहित्यांग के यथार्थवादी होने में ही में उसकी सफलता मानता हूँ । कविता यथाई की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथाई को छोड़ाभी जा सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थवाद प्राण है ।^१ यथाई युग परिस्थितियों के आधारित होता है अर्थात् यह काल के अनुसार गतिमय और परिवर्तनशील होता है । यही उपन्यास और अन्य प्राचीन कथा विधाओं में भेद दिखाई देता है । आख्यानो में सर्वकालिक सत्य और आदर्श रहते हैं जब कि उपन्यासों में तत्कालीन युग की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण होता है।

उपन्यास और यथार्थवाद एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं । दोनों का आविर्भाव एक साथ हुआ है जिसके कारण साहित्य में तब से ज्यादा समाज का चित्रण उपन्यास विधा में होने लगा । शायद इसलिए साहित्य समाज का दर्पण है, कहने के स्थान पर उपन्यास समाज की अभिव्यक्ति है, कहा जाने लगा । इस प्रकार उपन्यास ने यथार्थवाद के कारण साहित्य में अपना व्यापक फलक बना लिया है । उपन्यास में यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण वस्तु और रूप में अनेक परिवर्तन आने लगे । यहाँ तक कि सामाजिक व्यवस्था के चित्रण करने में भी लेखक अपने अपने अनुभव ज्ञान एवं दृष्टि के सहारे समाज का चित्रण करने के कारण यथार्थ भी अनेक रूपों में उपन्यासों में दिखाई देने लगा । इस प्रकार उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद का समाजवादी यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, मनोविज्ञानिक यथार्थवाद, पशुवाद यथार्थवाद, अतिथार्थवाद आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद आदि रूपों में विकास हुआ । इन रूपों के कारण

उपन्यास साहित्य का बहुमुखी विकास होने लगा । सबसे पहले कथा वस्तु को ही उपन्यास के लिए चुना जाने लगा । इस कथा वस्तु के कारण उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर होने लगा ।

उपन्यास में सामाजिक क्लृप्त को एक पूर्ण इकाई के रूप में लेकर उसका चित्रण किया जाने लगा । न कि किसी कर्ण के प्रति क्लृप्तात या किसी पात्र के प्रति सहानुभूति । इस प्रकार समाज को संपूर्ण इकाई के रूप में देखने के कारण स्वतंत्र जीवन का चित्रण और मानव के सामाजिक संबंधों का चित्रण अधिक यथार्थ से होने लगा । इसके साथ-साथ उपन्यास में पूर्व व्यवस्थित बनाने में सहायक होने वाले तत्वों का बहिष्कार किया गया ।

उपन्यास में कथा वस्तु सामाजिक होने के कारण सामाजिक व्यवस्था में निहित क समस्याओं जैसे भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, आर्थिक क्लृप्त, दहेज, यौनाचार आदि पर पनी दृष्टि डाली जाती है । इस प्रकार उपन्यास में जन मानस की सच्ची अभिव्यक्ति के रूप में यथार्थ चित्रण के कारण ही सामने आता है । महान रचनाकार वही होता है जो अपने समसामयिक परिवेश का चित्रण यथार्थ दृष्टि से करता है ।

यथार्थवाद यथातथ्य नहीं होता । रचनाकार अपनी सृजनात्मक दृष्टि से यथातथ्य को अभिव्यक्ति प्रदान करता है । शिखरमर मिश्र का कथन है कि "सच्चा यथार्थवादी रचनाकार सजग होकर अपनी ज्ञानेन्द्रिय के माध्यम से बाह्य जगत से जुड़ता है, अनुभवों की एक समष्टि प्राप्त करता है और तत्पश्चात् जा कुछ भी इन्द्रिय बोध, भाव या विचारों के रूप में प्राप्त करता है उसे अपनी रचनात्मक कल्पना के सहारे ही,

पक्षों अपने मन में एक रूप देता है तत्परचात उसकी अभिव्यक्ति करता है । इस अभिव्यक्ति का सीधा संबंध बाह्य जगत की अपनी उक्तियों से होता है । जीवन का ठोस यथार्थ कलात्मक रूप में हमें प्राप्त होता है ।¹

यथार्थवादी उपन्यासों में प्रतिनिधि पात्रों के द्वारा समस्त सामाजिक व्यवस्था का चित्रण होता है । इसमें पात्र मात्र व्यक्त नहीं होते बल्कि एक विशेष वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं किन्तु पात्र का विशेष होने पर भी वह अपने नाम से कोई विशेष पात्र के रूप में आभासित न होकर सामान्य व्यक्ति के समान ही दिखाई पड़ते हैं । आयन वाट कहते हैं कि "उपन्यासकार एक व्यक्ति विशेष का चित्रित करने का मनो-भाव तथा अपने पात्र का नाम देता ही रख कर व्यक्त करता है जैसा कि नाम उस तरह के व्यक्ति का साधारण जीवन में होता है ।"² इन उपन्यासों में पात्र पूर्व नियोजित न होकर सज्ज और जीवन्त होते हैं जिनमें पाठक अपने को बड़ी सहजता के साथ देख सकता है । चरित्रों की चारित्रिक दुर्बलताओं तथा अंतर्भावों पर विशेष बल दिया जाता है ।

उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण केवल वर्तमान काल का ही चित्रण नहीं होता बल्कि उसके सहारे अतीत तथा भविष्य का भी निरूपण किया जाता है । सच्चा यथार्थवादी लेखक वही है जो सम्-सामयिक परिस्थितियों के द्वारा अतीत और भविष्य का सही आकलन करता है ।

यथार्थवाद के संबंध में यह एक भ्रांत धारणा है कि उपन्यासों में सामाजिक व्यवस्था का कुरूप और नग्न चित्रण ही अधिक किया जाता है ।

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ: 146

2. आयन वाट - उपन्यास का उदय : अनुवादक : डा० अर्जुन लाल सराीन

किन्तु ऐसा नहीं है यथार्थवादी उपन्यासों में समाज के सभी क्षेत्रों पर निगाह डाला जाता है। यदि कुरूपता का ही वर्णन अधिक किया गया है तो उसका कारण यही है कि उपन्यासकार यही अवगत करना चाहता है कि सामाजिक व्यवस्था पतन की दिशा की ओर अग्रसर है उसे हमें रोकना है।

यथार्थवाद की यह भी विशेषता है कि इसमें "आदर्श" भी अन्तर्निहित होता है। इसलिए उपन्यास में समाज का जो भी चित्रण यथार्थ के धरातल पर होता है उसमें एक उद्देश्य होता है, वह उद्देश्य एक आदर्श युक्त होता है। शिखरुमार मिश्र कहते हैं कि "यथार्थवादी रचनाकार और विचारक इस तथ्य से परिचित है कि यथार्थ चित्रण यथार्थ जगत के व्यक्ति के ज्ञान पर निर्भर करता है। यदि यह जगत गतिशील है और व्यक्ति को उस गति की दिशा का ज्ञान है, वह उस दिशा के महत्त्व को समझता है जिसकी ओर वह उसे अग्रसर करना चाहता है तो निश्चित रूप से यह "आदर्श" उसके यथार्थवाद में निहित होगा।"। इस प्रकार उपन्यास में यथार्थवाद सामाजिक व्यवस्था का समग्र चित्रण ही प्रस्तुत नहीं करता बल्कि वर्तमान स्थितियों से अवगत कराता हुआ विकासमय उद्देश्य को भी स्पष्ट करता है।

यथार्थवाद के कारण उपन्यासों में शैलीगत परिवर्तन भी हुए। मुख्यतः भाषा के स्तर पर बदलाव आने लगा। पात्रों की भाषा का प्रयोग किसी विशिष्ट भाषा न होकर जिस स्थान और काल की कथा वस्तु है उसी के अनुरूप वहाँ की बोलियों में होने लगा। इस प्रकार उपन्यास में सामाजिक स्तर पर बोली आने वाली भाषा का प्रयोग हुआ है जिससे पाठक को यह आभास करने में उपन्यासकार को सफलता मिली कि कथावस्तु के पात्र उसके हृदय गिर्द घूमने वाले ही हैं। वस्तुतः उपन्यासों में

में केवल भाषा के स्तर पर ही परिवर्तन नहीं आया बल्कि प्रस्तुतिकरण में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया। उपन्यास यथार्थ के अतिशक्तिशाली आभासित होने के लिए वर्णनात्मक, आत्मपरक, पत्रात्मक, ठाण्ठरी जैसे शैलियों में लिखे जाने लगे।

अतः इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उपन्यास और यथार्थ का अन्तः संबंध बहुत है। उपन्यास वर्तमान साहित्यिक विधाओं में इतना लोकप्रिय होने का कारण यही है कि उसमें जीवन के विभिन्न पक्षों का यथार्थ चित्रण होता है। अतः उपन्यास एक प्रकार से सामाजिक जीवन का लेखा जोखा प्रस्तुत करने वाला दस्तावेज है।

7. निष्कर्ष :

आधुनिक साहित्य में यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध शब्द अक्सर आते हैं। यथार्थ को विवेचित करने की वैज्ञानिक विचार धारा यथार्थवाद है। यथार्थ को देखने की दृष्टि तथा उसको दूसरों को बोध कराने की विधा यथार्थबोध है। आधुनिक युग का साहित्य कल्पना या आदर्श से ज्यादा यथार्थ पर आश्रित है।

वस्तुतः "यथार्थवादी" दृष्टिकोण पश्चात्य है। पश्चात्य साहित्य और दर्शन में "यथार्थ" के संदर्भ में पर्याप्त विचार विमर्श हुआ है। कार्ल मार्क्स, काउटेल, फ्लोबेर, जौला, हावर्ड, फास्ट, जेम्स, एलिज जैसे विचारकों का "यथार्थ" के विश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। "यथार्थवाद" का आगे विकास होते हुए उसके अनेक रूप अवतारित हुए। इन रूप में प्रमुख है - समाजवादी यथार्थवाद,

बालोचनात्मक यथार्थवाद, प्रकृतवादी यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, आदर्श-
मूलक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और ऐतिहासिक यथार्थवाद ।

उपन्यास साहित्य का यथार्थ से धनिष्ठ सम्बन्ध है । उपन्यास
और यथार्थ दोनों ने साहित्य में एक ही बार पदार्पण किया । ये
दोनों भी अन्योन्याश्रित हैं । यथार्थ का चित्रण जितना अच्छा उपन्यास
साहित्य में होता है उतना अन्य विधा में दुर्लभ है । इसी प्रकार उपन्यास
साहित्य को फुट एवं सुंठ करने में यथार्थ का जितना योगदान है उतना
कल्पना और आदर्श का नहीं ।

समकालीन उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थ उपन्यासकार के
दृष्टि, अनुभव और विचार के आधार पर होता है ।

अध्याय - दो

हिंदी उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध का चित्रण

अध्याय - दो

हिन्दी उपन्यासों में समसामयिक यथार्थवाध का चित्रण

1. पुस्तावना
2. पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थ वाध ॥सन् 1850 - 1915॥
3. प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थवाध ॥सन् 1916 - 1936 ॥
4. प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थवाध ॥सन् 1937 - 1980 ॥
 - 4.1. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास युग ॥सन् 1937 - 1960 ॥
 - 4.1.1. समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.2. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.3. ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.4. प्रकृतवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.5. अस्त्यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.6. आदर्शवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.1.7. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यास
 - 4.2. साठौत्तरी उपन्यास युग ॥सन् 1960 - 1980॥
 - 4.2.1. समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.2.2. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
 - 4.2.3. ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार
5. निष्कर्ष

अध्याय - दो

हिंदी उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध का चित्रण

पुस्तावना :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "हिंदी साहित्य का इतिहास" में लिखा है कि "जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वस्व में भी परिवर्तन होता चला जाता है ।"¹ उन्नीसवीं सदी की उत्तरार्द्ध में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार साहित्यिक क्षेत्र में भी पर्याप्त परिवर्तन होने लगे । हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर अब तक चला आ रहा पद्य यहाँ से कुमशः ह्रास होने लगा और इसके स्थान पर गद्य का विकास हुआ । गद्य के आविर्भाव के पीछे अनेक कारण हैं जैसे देश पर पश्चात्य प्रभाव, वैज्ञानिक आविष्कार, सामाजिक - सांस्कृतिक पुनर्जागरण आदि । सन् 1850 ई०खी० के बाद गद्य का विकास बहुत तेजी से होने लगा और इसके अनेक विधाओं का भी जन्म हुआ जैसे - उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, जीवनी, आत्मकथा, निबंध, रेखाचित्र, डायरी, रिपोर्ताज आदि ।

1. रामचन्द्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास - पृ० ।

गद्य की सभी विधाओं में उपन्यास सब से अधिक लोकप्रिय बना और उसने सब से ज्यादा विकास किया। इसका कारण यह है कि उपन्यास जीवन को सही रूप में अभिव्यक्त करने वाला एक सशक्त साधन है। उपन्यास का यथार्थ से अटूट सम्बन्ध है। इसलिए.....जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को उपन्यास जितने यथार्थ के साथ प्रस्तुत करता है उतना कोई और विधा नहीं।

ए.प्र. द्विवेदी ने ठीक ही कहा कि "कविता यथार्थवाद की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़ कर भी जी सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है।"

हिंदी उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध का चित्रण किस प्रकार हुआ है यह देखने के लिए यहां पर कुछ तत्कालीन प्रमुख उपन्यासों पर दृष्टिपात किया जा रहा है। अध्ययन की सुविधा के लिए समय सीमा के आधार पर हिंदी उपन्यासों को तीन भागों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार है :-

पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध § 1850-1915§

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध § 1916-1936§

प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध § 1937-1980§

2. पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थवाद :

हिंदी साहित्य के इतिहास के आधुनिक युग के आरंभ से लेकर प्रेमचंद के आगमन तक के काल को पूर्व प्रेमचन्द युग माना जाता है। अर्थात् सन् 1850 से लेकर सन् 1915 के आसपास तक इस युग की सीमा है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इस युग के हिंदी उपन्यासों में यथार्थवाद की धारा स्वच्छ रूप से मिलना दुर्लभ है। क्योंकि यह काल हिंदी उपन्यासों के लिए आरंभिक काल रहा है। इस समय हिंदी उपन्यासों का सृजन अभी परिपुष्ट नहीं हुआ था। वास्तव में "उपन्यास" की धारणा ही अभी हिंदी के क्षेत्र में पक्की नहीं थी। इस काल में जो कुछ भी हिंदी उपन्यास के नाम पर लिखा जाता था वह आख्यायिका का ही दूसरा रूप था। "उपन्यास" और "यथार्थवाद" ये दोनों शब्द पारश्चात्य अवधारणा से संबंधित शब्द हैं जिन्हें अंग्रेजी में "नॉवेल" और "रियलिज्म" कहते हैं। इसलिए हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में पारश्चात्य या आधुनिक अवधारणा युक्त यथार्थवाद को दृढ़ता छिट्टान्वेष के समान ही है। हाँ इतना कह सकते हैं कि आरंभिक दौर के उपन्यासकार पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखना घटा कर सामाजिक विषयों पर लिखने लगे। फिर भी इस काल के उपन्यासों का मूल उद्देश्य सुधारवाद, उपदेश, मनोरंजन, नीति - शिक्षा देना था।

इस काल के उपन्यासों का विवेचन करने से पता चलता है कि इस काल में तीन प्रकार के उपन्यास लिखे गये हैं जैसे ॥1॥ अंग्रेजी प्रभाव से लिखे गये अंग्रेजी के अनुदित या रूपान्तरित उपन्यास ॥2॥ बंगला के प्रभाव से लिखे गये बंगला के अनुवादित तथा रूपान्तरित उपन्यास ॥3॥ हिंदी के मौलिक उपन्यास जिसमें सामाजिक ऐतिहासिक, तिलिस्मी, जासूसी उपन्यास प्रमुख हैं।

पूर्व प्रेमचन्द युग सामाजिक दृष्टि से और राजनैतिक दृष्टि से एक क्रान्तिकारी युग था। इस काल में ही अनेक समाज सुधारकों ने जन्म लिया और सामाजिक आन्दोलन होने लगे थे। इसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में भी राजा, महाराजाओं का जमाना का हास हो चुका था। अंग्रेज राज की स्थापना हो चुकी थी। देश पर पारचात्य प्रभाव पड़ रहा था। फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति का प्रभाव तत्कालीन लेखकों को प्रभावित कर रहा था। देश में तरह-तरह की सामाजिक, राजनैतिक समस्याएं उत्पन्न हो रही थी। अधिश्वास, पारचात्य संस्कृति का अनुकरण शिखा समस्या, नारी समस्या, देश की दुर्दशा आदि समस्याओं पर बंगला आदि भारतीय भाषाओं में उपन्यास लिखे जाने लगे थे किन्तु दुर्भाग्यवश हिंदी साहित्य में ऐसी समस्याओं पर उपन्यास नहीं लिखे गये। तत्कालीन हिंदी उपन्यासकारों ने ऐसे विषयों पर लिखने में रुचि नहीं दिखायी। वे यदि लिखते तो भी आदर्श के मुछोटे के कारण ज्वलंत समस्या भी शिथिल हो जाती। वे लोग तिलिस्मी, ऐयारी आदि विषयों को ही अपने उपन्यासों के विषय बनाकर मनोरंजन हेतु उपन्यासों का सृजन करते थे। किन्तु जब से बंगला उपन्यासों का अनुवाद होने लगा तब से काल्पनिक, अतिरंजित चित्रों का रोमांस गर्भित चमत्कारों का, उपदेशात्मक उपन्यासों का लिखना कुछ कम होने लगा।

हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि "इस काल के बंगला उपन्यासों की हिंदी उपन्यास को एक निश्चित देन है। इन्होंने यदि एक ओर हमारे कथा साहित्य को अतिग्राह्य, अतिरंजित, घटना बहुत ऐयारीपरक उपन्यासों के मोह चाल से मुक्त किया तो दूसरी ओर उन्हें शुद्ध भारतीय संस्कृति का पाठ भी पढ़ाया।"¹

वस्तुतः प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यास पूरी तरह सामाजिक तत्त्वों पर आधारित यथार्थवादी उपन्यास नहीं है। इन उपन्यासों में ज्यादा से ज्यादा उपन्यास मरारंजन के लिए ही लिखे गए हैं। जो एकाध उपन्यास सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लिखा गया उसमें यथार्थ की झलक दिखाई देती है। सामाजिक समस्याओं को यथार्थरक दृष्टि से चित्रित किये गये उपन्यास भी इस काल में उपस्थित हैं। ऐसे ही कुछ प्रख्यात उपन्यासों के माध्यम से यथार्थका विवेचन किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि इस काल के उपन्यासों में "यथार्थवाद" को आज के संदर्भ में नहीं देखा जा सकता। फिर भी यथार्थवाद इन इन उपन्यासों में अंकुर के रूप में विकसित दिखाई पड़ता है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिककाल के आरंभ से पूर्व ही हिंदी कथा साहित्य सृजन होने लगा था। जिसे हम "उपन्यास" के परिभाषा में तो बांध नहीं सकते फिर भी ये उपन्यास के रूप ही हैं जैसा कि सेयूद ईशा आलम खां कृत "रानी केतकी की कहानी" का उल्लेख किया जाता है जो कि छड़ी बोली में लिखी गयी पहली कथा होने के कारण ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। ऐसे ही मुजुलाल कृत 'प्रेमसागर', सदन मिश्र कृत 'जासिकेतापेक्ष्यान' जिसका अनुवाद 1803 में हुआ है। उल्लेखनीय है।

इस काल के सामाजिक उपन्यासों में जो चित्रण हुआ है उसमें यथार्थ का स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। इस काल के अधिकतर उपन्यास आदर्शवादी दृष्टिकोण से लिखे जाने पर भी सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते समय उनका दृष्टिकोण यथार्थ परक रहा है। यही इस काल के उपन्यासों की विशेषता है। जैसा कि "भाग्यवती" उपन्यास जिसे कुछ

हिंदी विद्वान हिंदी साहित्य का पृथम उपन्यास मानते हैं, में उपन्यास-कार श्यामराज कुल्लोरी ने समाज सुधार की आदर्श भावना को व्यक्त करने पर भी सामाजिक समस्याओं को यथार्थ दृष्टि से चित्रण किया है। इस उपन्यास में आर्थिक व्यक्तिवाद के कारण संयुक्त परिवारों के विघटन पर प्रकाश डाला गया है और अनमेल विवाह का भी यथार्थ के धरातल पर विरोध किया गया है। इस उपन्यास में नायिका भाम्यवती के माध्यम से नारी जीवन की विवशताओं को दर्शाते हुए उसे झेलने के अटूट विश्वास को भी दिखाया गया है। "भाम्यवती बुद्धिमती होने के कारण अटूट आत्म विश्वास वाली है। भाई के विवाह के पश्चात् गृह कार्यों से मुक्त होकर यह अपना सारा समय अध्ययन में लगाती है और साहित्य शास्त्र आदि का अध्ययन आत्मविश्वास की भावना को और अधिक सुदृढ़ कर देता है। गृह कार्य और अध्ययन ज्ञान दोनों में सम्मन्न भाग्यवती का चरित्र लेखक ने आदर्श और यथार्थ दोनों से समन्वित चित्रित किया है। जहाँ एक ओर वह जीवन की कठोरतम परिस्थितियों से परिचित है, वहाँ दूसरी ओर वह काव्य रचना में भी रुचि रखती है। उसके चरित्र का विकास यथार्थतम दृष्टभूमि पर किया गया है। यथार्थ और आदर्श दोनों के समन्वय को उपन्यास में सफलता पूर्वक निभाया गया है।"

सन् 1882 में रचित लाला श्रीनिवास दास का महत्वपूर्ण उपन्यास है "परीक्षा गुरु"। इस उपन्यास को अधिकांश विद्वान हिंदी साहित्य का पहला उपन्यास मानते हैं और इस उपन्यास में सभी औपन्यासिक तत्व समाहित हुए मानते हैं। इसकी शैली विशेष महत्व रखती है। शैली का स्पष्टीकरण करते हुए स्वयं लेखक ने कहा है कि "नाटकों में जिसका वचन

होता है उसका नाम आदि में लिख देते हैं और वह पैराग्राफ उसका चरित्र समझा जाता है परन्तु इसमेंइंटरटिकोमा.....के भीतर कहने वाले का चरित्र लिखा जाता है और कहने वाले का नाम चरित्र के बीच में या अन्त में....अथवा नाम लिखे बिना...भी वह स्वतः स्पष्ट हो जाता है।¹ इस उपन्यास का कथा वस्तु सामाजिक है। सेठ मदन मोहन खिलासी जीवन बिताने वाले व्यक्ति हैं उसके चार मित्रों में से तीन मित्र उसकी कुपुत्रित्तियों को बढ़ाने वाले हैं। एक मात्र मित्र बुज्र किशोर सेठ मदन मोहन का कुपुत्रित्तियों से बचाने का प्रयत्न करते रहता है किन्तु सेठ उसकी एक नहीं मानता और बुज्र किशोर का परिहास करने लगता है। सेठ मदन मोहन बाजार में आये नये - नये खिलासी वस्तुओं को खरीदने में खूब धन खर्च करता है। अन्त में दिवालिया हो जाता है। उसे कुर्की आती है और सेठ जी को बन्दी बना लिया जाता है। उनके स्वार्थी मित्र सेठ जी के गिरफ्तार होते ही किसी न किसी बहाने से छिस्कने लगते हैं। अन्तः केवल बुज्र किशोर जी ही काम आते हैं और सेठ जी को छुड़ाते हैं। सेठ जी को अपने व्यवहार पर स्फांन होती है और वे अपनी इस स्थिति में यह समझ जाते हैं कि मित्र वही होता है जो समय पर काम आता है। "परीक्षा" उनका "गुरु" बनकर अन्त में विवेक जागृत कर देती है, जिससे वे अपना भावी जीवन सुख तथा सावधानी से काटते हैं। इस उपन्यास में मदन मोहन का चरित्र यथार्थ के आधार पर हुआ है। "मदन मोहन एक ऐसा पात्र है, जो आर्थिक विनाश की ओर निरन्तर बढ़ते हुए अपने किसी भी दृष्ट मित्र की सद्भावना की चिन्ता नहीं करते हैं। चूंकि लेखक स्वयं उस युग का था तथा उस वातावरण के संपर्क में रह चुका था, इसलिए मदन मोहन का चरित्र यथार्थ की दृष्टभूमि पर निर्मित है।"²

1. डॉ० शैलबाला - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ० 44

2. -वही-

-वही-

पृ० 65

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित "पूर्व प्रकाश और चन्द्रप्रभा" शीर्षक उपन्यास जो मराठी भाषा की एक रचना पर आधारित सामाजिक उपन्यास है। यह उपन्यास भी सामाजिक समस्याओं को यथार्थ के रूप में उद्गाटित करते हुए भी सुधार परक उपन्यास की कोटि में आ जाता है। इस उपन्यास में वृद्ध विवाहकी कुपुथा का विरोध तथा स्त्री शिक्षा का पूर्ण समर्थन किया गया है।

इसी काल का एक और प्रख्यात सामाजिक उपन्यास है जिसे बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है। उपन्यास का शीर्षक है "नूतन ब्रह्मचारी"। यह उपन्यास भी नीतिपरक उपदेशात्मक उपन्यासों के अन्तर्गत आता है। एक आशापालन करने वाला, कर्मशील, उत्साही एवं सत्यनिष्ठ तथा सच्चरित्र बालक धोरी करने जाये डाकूओं के सरदार का हृदय परिवर्तन करता है। यद्यपि इसकी रचना सामाजिक जीवन पर आधारित है परन्तु बाली-पयोगी होने के कारण इसमें जीवन की गहराइयों का चित्रण नहीं हुआ है।

बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखा गया दूसरा उपन्यास "सौ अज्ञान एक सुज्ञान" भी उपदेशात्मक सामाजिक उपन्यास की कोटि में आता है जिसमें दो युवकों को उनके गुरु पंडित चंद्रशेखर जी के माध्यम से अपनी पुरस्तेनी संपत्ति को किस तरह दूतों से बचाया जा सकता है। बताया गया है। "रचना का कथानक कल्पना पर आधारित है। इसमें सम्कालीन यथार्थ भी है, परन्तु उस पर भी लेखक के कवित्व की छाप है।.....कवि कभी प्राचीन साहित्य में विचरण करता है, कभी सम्कालीन जीवन में, कभी आदर्शपर विचार करता है, कभी यथार्थ पर।"। इस उपन्यास की रचना में उपन्यासकार बालकृष्ण भट्ट ने मूल उद्देश्य स्पष्ट करते हुए स्वयं लिखा

हे - "अन्त में हम अपने पढ़ने वालों को सुचित करते हैं कि आप लोगों में यदि कोई आबोध और अज्ञान होतो हमारे इस उपन्यास को पढ़कर आशा करते हैं, सुज्ञान अने । इस किस्से के अज्ञानों को सुज्ञान करने को चालू था और आप लोगों को हमारा यह उपन्यास होगा ।"।

पंडित जगमोहन सिंह द्वारा लिखित "श्यामा स्वप्न" उपन्यास, जो गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग इसमें हुआ है, भी इस काल के सामाजिक उपन्यासों के अन्तर्गत आता है । इस उपन्यास की विशेषता यह है कि उपन्यास कार ने स्वच्छन्द प्रेम को खल कर समर्थन दिया है । इस उपन्यास में नायिका श्यामा नायक श्याम सुन्दर से प्रेम करती है । नायक और नायिका के गन्धर्व प्रेम के प्रस्ताव द्वारा उपन्यास कार आधुनिक समाज के स्वच्छन्द और प्रेम विवाह की समस्याओं पर यथार्थ दृष्टि से विचार किया है । इसी समस्या पर विचार करते हुए लेखक ने स्त्री स्वातंत्र्य एवं प्रेम भावना की पवित्रता पर भी बल दिया है ।

"निस्तहाय हिन्दू" शीर्षक उपन्यास राधाकृष्ण दास द्वारा लिखा गया है । जिसकी कथा वस्तु गोरक्षा है । इस समस्या के चित्रण के कारण ही यह उपन्यास अपने समय का महत्वपूर्ण उपन्यास माना गया है । इस उपन्यास में पहली बार लेखक का दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख रहते हुए भी किसी समस्या या यथार्थ परक विवेचन किया गया है । "लेखक ने गोवध की समस्या को प्रस्तुत करते हुए समसामयिक जीवन और विविध वर्गों की विभिन्न मनोवृत्तियों के चित्र भी प्रस्तुत किये हैं । ब्रिज्जी शासन काल में भी हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक घमनस्य तो था ही,

परन्तु शासन की ओर से इस भक्ति में छूत भी पड़ता रहता था। हिन्दु मुस्लिम धर्मनिरपेक्ष के आधार पर हिंदी में अनेक उपन्यासों की रचना हुई। यहाँ तक कि प्रेमचन्द युग में भी यह समस्या कथा कृतियों का आधार बनी। परन्तु प्रस्तुत रचना में इस समस्या के जिस सैद्धांतिक और व्यावहारिक स्वरूप का निदर्शन किया गया है, वह कृति के महत्व का परिचायक है।¹

भुवनेश्वर मिश्र के "धराउ छटना" और "कलवन्त भूमिहार" उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण अद्भुत ढंग से हुआ है। "धराउ छटना" उपन्यास मनोरंजन की दृष्टि से लिखने पर भी मध्यकालीन गृहस्थ जीवन का अंकन बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से हुआ है। "हर माँ की यही अभिलाषा होती है कि वह अपने पुत्र का परिणय देख सके। इस उपन्यास में इस तथ्य का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। परिणय के दो तीन वर्षों के अन्दर पुत्र न उत्पन्न होने तथा उसके सम्बन्ध जादू टोने की बात का भी यथार्थ अंकन हुआ है। स्त्रियों के अभूषण प्रेम, अन्धविश्वास और पैसे के लिए छल छद्म करने की प्रवृत्ति को भी वास्तविक रूप में चित्रित किया गया है। अपद स्त्रियों की अदुरदर्शिता पर भी प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार उपन्यास का चित्रणक व्यापक और छटना व्यापार यथार्थवादी है।²

"कलवन्त भूमिहार" उपन्यास भी यथार्थपरक उपन्यास है जिसमें भूमिहार और जमींदार के बीच संघर्ष का चित्रण किया गया है। इसमें न तो नीतिपरक उपदेश मिलता है न अतिरंजित छटनाओं का समावेश यह

1. डा० रत्नबाला - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ: 74

2. डा० सच्चिदान्नन्द राय - हिंदी उपन्यास : सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना - पृ: 266-67

केवल बिहार के उत्तरांचल में निवास करने वाले जमींदारों के परिवारिक सामाजिक तथा जमींदारी सम्बन्धी समस्याओं को प्रस्तुत करता है। सभी समस्याओं को समान महत्व दिया गया है और जमींदार तथा किसानों के पारस्परिक संबंध पर भी प्रकाश डाला गया है।*

इस काल के उपन्यासों में अनेक उपन्यास नारी जीवन संबंधी अनेक समस्याओं को उद्घाटित किया गया है। श्री गोकुल नंद प्रसाद कृत "कमला" नामक उपन्यास नारी जागरण का स्दिश देता है। श्री बाल मुकुंद वर्मा कृत "मालती" शीर्षक उपन्यास अंधाभाव के कारण प्रेम में आने वाले बाधाओं को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में मालती और रत्नचन्द्र आपस में प्रेम कर लेते हैं किन्तु अंधाभाव से विवाह न होने के कारण दोनों विषपान करते हैं किन्तु चिकित्सक दोनों को बचाते हैं और अन्त में दोनों का विवाह होता है। नम्र हालांकि यह उपन्यास बादलोंमुख दृष्टिकोण से लिखा गया है। फिर भी नायक के साक अंधाभाव के कारण कैसी-कैसी समस्याओं उत्पन्न होती है। स्पष्ट रूप से बताया गया है और नायिका की मानसिक दशा का व्यापक फलक पर चित्रण किया गया है।

इस काल में अनेक ऐसे उपन्यास भी लिखे गये हैं जिनमें विधवा समस्या को स्थान दिया गया है। पं० राधा चरण गोरवामी ने "विधवा विषरित" नामक उपन्यास लिखा है जिसमें युगों से पीड़ित बाल विधवाओं के प्रति गहरी सहानुभूति जताई है। बालविधवाओं का दैनिक जीवन कितने यातनाओं से ग्रस्त होता है, कितना दुःखमय एवं निरसहाय बताया है। वे यह भी घोषित करते हैं कि उनके माथे पर लगाये जाने वाला कलंक का टीका निःसार और निरर्थक है। किन्तु इसमें लेखक ने प्राचीन मान्यताओं के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि विधवा विवाह समाज को वांछित

डा० सच्चिदानंद राय - हिंदी उपन्यास : सांस्कृतिक एवं मानववादी
धेतना - पृ० 267

नहीं है और विधवाओं को चाहिए कि अपने स्वीय पति का ध्यान करते हुए धर्म-कर्म का जीवन व्यतीत करें ।” ।

“पंडित लज्जा राम मेहता” ने अपने उपन्यास “सुनीला विधवा” में विधवा का मार्मिक चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया है । विधवा के प्रति समाज के दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत किया है । फिर भी उपन्यासकार ने परम्परावादी होने के नाते विधवा विवाह का विरोध किया है । उनका कहना है कि बाल विधवा धैर्य संयम और आत्मनिष्ठा के साथ जीवन व्यतीत करने पर स्वर्ग में पति प्राप्त होता है । पंडित लज्जाराम मेहता के अन्य उपन्यास ‘आदर्श दम्पति’ “धूर्त रत्नलाल” “स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी” “हिन्दू गृहस्थ” बिगड़े का सुधार और आदर्श हिन्दू हैं । ये सभी उपन्यास सामाजिक समस्याओं को यथार्थ दृष्टि से चित्रित करने पर भी समातन धर्म के आदर्शों पर लिखे गये हैं । रिम्नाथ शर्मा ने भी अपने उपन्यास “चूलदास” में कलियुग की अनेक सामाजिक कुप्रथाओं का चित्रण व्यापक फलक पर किया है ।

गोपाल राम “गहमरी” ने पारिवारिक परिच्छेद में दो उपन्यास “देवरानी जिठानी” और “केवल बीबी” क्रमशः 1901 और 1902 में लिखे हैं । दोनों में भी पारिवारिक समस्याओं के बारे में बहुत ही सूक्ष्म रूप से चित्रण किये हैं । “देवरानी जिठानी” में संयुक्त परिवार में किस प्रकार छोटी-छोटी बातों से समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और संयुक्त परिवार के विच्छेदन में किस प्रकार प्रेरकतरंग बन जाते हैं “गहमरी” जी ने बहुत ही संवेदनशीलता के साथ चित्रण किया है ।

गोपालराम "गहमरी" ६ जी का दूसरा उपन्यास "केवल बीबी" में भी पारिवारिक समस्या का चित्रण हुआ है। "इसमें लेखक ने एक व्यक्तित्व के दो विवाहों का चित्रण किया है। क्या नायक एक लम्बे काल का दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के पश्चात् भी जब निस्सन्तान रहने से निराश हो जाता है, तब सन्तान की लालसा से वह दूसरा विवाहकरता है। इस विवाह के बाद उसकी पहली पत्नी की मार्मिक योजनाओं एवं अनेक किष्कंधनात्मक परिस्थितियों का चित्रण है।" 1

कल्पनापूर्ण शक्ति के आधार पर लिखे गये सामाजिक उपन्यास के रूप में "सुन्दर सरोजनी" को अभिव्यजित कर सकते हैं। जिसके उपन्यासकार देवीप्रसाद शर्मा हैं। इसमें प्रेमी और प्रेमिका अपने अपने स्वप्न में एक दूसरे को देखकर आपस में प्रेम कर लेते हैं। नायक बेताब सेहतवार कर रही नायिका को मिलने के लिए एक स्मृति के आधार पर श्रीलंका पहुंच जाता है वहाँ पर नायिका नायक को मिलती है। इस उपन्यास का विश्लेषण करती हुई शैलबाला लिखती हैं कि "यद्यपि तिलिस्मी ऐश्वर्या और जादूशी द्वारा लेखक ने कोतुहल की दृष्टि नहीं की है फिर भी क्या कम रहस्यमयी नहीं है। ऐसा लगता है, मानो मध्ययुगीन कथा को आधुनिकता का आवरण देकर लेखक ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। तस्वीर के लिए अग्रिम पात्र की रचना जहाज पर घटते समय धर्म संकट, पति स्वीकार कर लेने पर भी जाति - पाति का भेद भाव और उस पर विचार तथा बिहारी व्यापारियों का लंका जाकर विवाह सम्पन्न करना आदि कथानक को नया रूप देते हैं।" 2

1. डा. शैलबाला - हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास - पृ: 82

2. - वही -

- वही -

पृ: 76

हनुमन्त सिंह रघुवीर ने आत्मपरक शैली में एक सामाजिक उपन्यास लिखा है जिसका शीर्षक है "मेरी दुष्ट गाथा"। इस उपन्यास की कथा वस्तु तत्कालीन युवाओं की समस्याओं पर आधारित है। अतः यह एक यथार्थ छटनाओं पर आधारित उपन्यास है।

सन् 1899 में प्रकाशित पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिवोध का उपन्यास "ठेठ हिंदी का ठाठ" भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। स्वयं उपन्यासकार ने कहा है कि यह उपन्यास ठेठ हिंदी में दूसरा है। यह भाषा के नये रूप का प्रदर्शन मात्र है। फिर भी यह एक आदर्शोन्मुख उपन्यास है जिसमें नारिका देवबाला देवनन्दन से प्रेम करती है किसी कारणवश देवबाला का विवाह रामनाथ नामक अशिक्षित से होता है। रामनाथ उसे अनेक प्रकार से यातनाएं देता है। फिर भी वह सह कर रह जाती है। उसके पास - ससुर का स्वर्गवास होता है। रामनाथ घर से निकल जाता है। देवबाला का एक मात्र पुत्र अस्वस्थ हो जाता है। ऐसी विपत्तिपूर्ण परिस्थिति में पूर्ण प्रेमी देवनन्दन वहाँ पर आकर उसकी सहायता करता है और देवबाला के पति रामनाथ को दूँद लाता है। रामनाथ और देवनन्दन के सामने ही देवबाला अपने प्राणों को छोड़ देती है। इस उपन्यास में "लेखक ने सामाजिक यथार्थ का जीवन्त निरूपण किया है। लेखक ने पछली बार जाति प्रथा से उत्पन्न सामाजिक कुरीतियों का सख्त और स्वाभाविक चित्रण किया है। आश्रिजात्य के चक्कर में पड़कर अनैसर्गिक विवाह और उससे उत्पन्न दुष्परिणामों की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया है। लेखक ने इस बात को दिखाया है कि इन सामाजिक प्रतिबंधनों के कारण देवबाला और उसके देवनन्दन का परिणय तो नहीं हो सका पर देवबाला और रामनाथ का अनैसर्गिक विवाह अक्षय हो जाता है। देवबाला छूट-छूटकर अपने जीवन का अन्त कर देती है। रखल रखने वाले रामनाथ को उसकी छेदनाओं की समझाने का अवसर भी नहीं मिलता। यह है क्रूरता और विद्वपता जिसके फंज में परका नारी अन्त काल से फंसी हुई है और असमय

ही अपना दम तोड़ देती है। उपन्यास के अन्त में दुराचारी रमानाथ भी देवनन्दन के सम्पर्क से सुधर अलग जाता है, पर इससे तो समस्या का समाधान नहीं हो पाता। उपन्यास यथार्थोन्मुख है, इसलिये उसमें हमें प्रभावित करने की क्षमता भी है। लेखक ने इसे आदर्शोन्मुख बनाने का प्रयत्न अलग किया है। इसमें संघटन सम्बन्धी त्रुटियाँ हैं, पर इसकी सामाजिक चेतना इस युग के अन्य उपन्यासों की तुलना में अधिक दीप्तिमान हो उठी है।¹

सन् 1907 में प्रकाशित हरिबोध जी का दूसरा उपन्यास "अंध खिला फूल" है। इसमें नारी जीवन की समस्याओं का चित्रण हुआ है। आदर्श नारी को समाज द्वारा पथ भ्रष्ट किये जाने वाले तत्वों का भी विश्लेषण किया गया है। दुराचारी, लम्पट पात्र के द्वारा लौकिक आह्वार पूर्ण तथा अन्ध प्रतिस्पर्धा के दुरुपरिणाम को सफलतापूर्वक दर्शाया है।

पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी का विशिष्ट स्थान है। आपने अनेक सामाजिक उपन्यासों का सृजन किया है। जिसमें से प्रमुख हैं - राजकुमारी ॥ 1902॥, चपला वा नव्य समाज चित्र ॥ 1903॥ पुनर्जन्म वा सौतिपाठा ॥ 1908॥ त्रिवेणी वा सीभाग्य क्रेणी ॥ 1907॥ लीलावती वा आदर्श सती माधवी माधव वा मदन मोहनी ॥ 1916॥ अंगुली का नगीना ॥ 1918॥। इसमें से ज्यादातर उपन्यास समातन धर्म के आदर्शों पर लिखे गए हैं। इसलिए इनमें पति भक्ति स्त्री शिक्षा विरोध, कार्यसमाज का विरोध दिखाई देता है।

"लीलावती वा आदर्श सती" उपन्यास के माध्यम से परम्परागठ समाज और नई चेतना से उद्भूत नये समाज की चेतना पर तुलनात्मक दृष्टि से

1. डा० सच्चिदानन्द राव - हिंदी उपन्यास : सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना - पृ. 266

विचार किया गया है और पश्चात्त्य सभ्यता को भारतीय समाज के लिए कल्याणकारी नहीं माना है ।

कनककुसुम वा मस्तानी, "पुनर्जन्म वा सीतिया ठाह" और अंगूठी का नगीना भी समातन धर्म के आदर्शों के आधार पर लिखे गये उपन्यास हैं । इनमें पति को पत्नियाँ दूसरा विवाह करने के लिए अनुमति देते हैं और पुनर्जन्म में विवाह रखते हैं । इस प्रकार किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास रोचक रहने पर भी परम्परावादी धारणाओं से गुंफित हैं ।

इसी काल के एक और उपन्यासकार चन्द्रशेखर पाठक हैं जिन्होंने लिखा हुआ उपन्यास "रमाबाई" एक असफल प्रेम कहानी है । रमाबाई और नारायण प्रेम करते हैं किन्तु नारायण का पिता क्षण ग्रस्त होने के कारण विवाहोत्तर नारायण का विवाह दूसरे स्थान पर कर देते हैं । रमा निराशा और विषाद में डूब जाती है ।

श्री कृष्णनन्दन सहाय कृत "अद्भुत प्रायश्चित्त" उपन्यास में आदर्शवादी दृष्टिकोण से परे सामाजिक यथार्थता का समावेश हुआ है । "वरण्य-बाला" १९१५ नामक उपन्यास में धार्मिक दृष्टिकोण की प्रकलता के बावजूद औद्योगिक प्रगति कृषि आदि में सुधार तथा समाज की विविध क्षेत्रीय प्रगति आदि को प्रमत्तता दिया गया है । इसमें विविध कौशिक आर्थिक असमानता का चित्रण हुआ है ।

मन्नन द्विवेदी कृत "रामलाल" और कल्याणी भी तत्कालीन सामाजिक उपन्यास हैं । "रामलाल" के माध्यम से लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आश्रयहीन बालकों का हमारे समाज में कोई स्थान नहीं रहता । वे हथर उधर ठोकर खाते हुए जीवन व्यतीत करते हैं । कल्याणी १९२० उपन्यास शिक्षाप्रद सामाजिक रचना है ।

इसी प्रकार और अनेक सामाजिक उपन्यासों की रचना इस युग में हुई है। सामाजिक उपन्यासों के समानान्तर ही ऐतिहासिक तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों का भी सृजन होने लगा था। ऐतिहासिक उपन्यासों में किशोरी लाल गोस्वामी कृत तारा व क्षत्र कुल-कमलिनी ॥ 1902 ॥ सुन्ताना रजिया बेगम वा रंगमल्ल में छलाहल ॥ 1904 ॥ "बुदय हारिणी वा आदर्श रमणी" ॥ 1904 ॥, "लोकलता वा आदर्श बाला" ॥ 1904 ॥ मल्लिका देवी वा बंग सरोजनी ॥ 1905 ॥ सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई ॥ 1904 एवं 1911 ॥ गुलबहार वा आदर्श भ्रातृ - स्नेह ॥ 1916 ॥ लखनऊ की कन्न वा शाही मल्लसरा ॥ 1917 ॥ आदि उपन्यास प्रमुख हैं। इसी प्रकार मथुरा प्रसाद शर्मा कृत नूरजहाँ बेगम वा जहांगीर ॥ 1905 ॥ ब्रजनन्धन सहाय कृत लाल चीन ॥ 1916 ॥ मिश्रबन्धुओं का पुण्यमित्र, विक्रमादित्य तथा वीरमणि ॥ 1917 ॥ प्रमुख उपन्यास हैं।

इस युग के तिलस्मी उपन्यासों में देवकी नन्दन खत्री कृत चन्द्रकान्ता ॥ संवत् 1944 ॥ तथा चन्द्रकान्ता संतती प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त हरेकृष्ण जोहर कृत कुसुमता, शंकर दयाल श्रीवास्तव कृत मदन मंजरी आदि प्रसिद्ध तिलस्मी उपन्यास हैं।

जासूसी उपन्यासों की परम्परा में गोपालराम "गहमरी" कृत "मेम की लाश" "छुनी का भेद", "काशी की घटना" प्रमुख उपन्यास हैं। इसी प्रकार राम प्रसाद लाल कृत "हम्माम का मुर्दा", बाबू जयराम दास गुप्त कृत - "काला चांद या सौतेली माँ", और "जंगहा छुनी" रामलाल शर्मा लिखित चालाक चोर, घटना घड़, जासूस के घर सुन तथा जासूसी कुत्ता और दुर्गाप्रसाद खत्री लिखित अनेक जासूसी उपन्यासों में रक्त मण्डल तथा "लाल पंजा" प्रमुख हैं।

इस प्रकार पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में सामाजिक उपन्यासों के साथ साथ ऐतिहासिक तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास भी लिखे गये हैं। पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों के विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपन्यास विधा का यह सुखाती दौर है इस लिए इस काल में उपन्यासों का पूर्ण विकसित रूप मिलना संभव नहीं है। इस काल के उपन्यासों में कहीं कहीं गद्य के सादृ पद्य का भी प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि इस काल में अभी गद्य का पूर्ण प्रचार-प्रसार नहीं हुआ है। जहाँ तक कथा वस्तु का प्रश्न है - इस काल के उपन्यासों में कई प्रकार की कथा वस्तु मिलती है जिनमें मुख्यतः सामाजिक, ऐतिहासिक तिलिस्मी और जासूसी हैं।

"उपन्यास" का संबंध पाश्चात्य अवधारण के अनुसार सामाजिक यथार्थ से होता है। इस बात की कमी इस युगीन सामाजिक उपन्यासों में है क्योंकि इस काल के उपन्यासों में विशेषतः सामाजिक उपन्यासों में विषय वस्तु उपदेशात्मक, नीतिपरक, स्थारात्मक या आदर्शमय है। इस कारण इन उपन्यासों में स्पष्ट रूप से यथार्थवाद का रूप दिखाई नहीं देता। यदि किसी उपन्यास में सामाजिक या नारी समस्या के बारे में चित्रण हुआ तो वह निरिक्त रूप से यथार्थ के धरातल पर होने पर भी उसकी परिणति आदर्शोन्मुख होती रही है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस काल के उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण तो सुनकर हुआ है किन्तु एक सीमा के अन्दर ही उसका विकास हुआ है।

स्पष्ट है पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के जरिए व्यापक धरातल पर हुआ है किन्तु उसकी एक स्पष्ट दिशा नहीं रही है। यह स्थापितिक अभाव के कारण हुआ है। हाँ इतना कह सकते हैं कि इस काल में यथार्थ की किरण तत्कालीन उपन्यासों की प्रगति का मार्गदर्शन कराती हुई उपन्यासों में निहित थी।

3. प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध सन् 1916 - 1936

सन् 1916 से सन् 1936 ई० तक का काल हिंदी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द युग नाम से जाना जाता है। वस्तुतः हिंदी साहित्य के इतिहास में उपन्यास का जन्म 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होने पर भी सही मायने में प्रेमचन्द का साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण करने के पश्चात् ही हुआ है। अर्थात् सन् 1912 के आस पास से हिंदी साहित्य के इतिहास में साहित्यिक मुक्तियों पर आधारित उपन्यासों का उदय हुआ।

उपन्यास का सीधा संबंध यथार्थ से है। मानव जीवन सामाजिक आर्थिक राजनैतिक एवं धार्मिक प्रभावों से अछूता नहीं रहता है। इन प्रभावों से मनुष्य को अलग करके देख नहीं सकते हैं। अतः मनुष्य के जीवन में विभिन्न प्रभावों के कारण अनेक उतार चढ़ाव आते हैं। इन्हीं उतार-चढ़ावों का उपन्यासों का वस्तु बनाकर यथार्थ के आधार पर प्रेमचन्द ने लिखना आरंभ किया। इसी कारण प्रेमचन्द को न केवल उपन्यास क्षेत्र का बल्कि समस्त कथा साहित्य का श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रेमचन्द के पूर्व युग में जो उपदेशात्मक, तिलस्मी, ऐयारी या मनोरंजनकारी उपन्यास लिखे जाते थे जिनमें जीवन मुक्तियों का पूर्णतः हास था उनको सामाजिक जीवन से जोड़ने का सफल प्रयास किया। प्रेमचन्द के कारण ही उपन्यास क्षेत्र में यथार्थ के विभिन्न रूपों का समावेश हुआ और उनका विकास भी हुआ। सन् 1916 ई० से सन् 1936 ई० तक अनेक ऐसे उपन्यासकारों का आधिकारिक हुआ जिन्होंने सामाजिक यथार्थ को अपने अपने नजरिये से देखा और परखा। परिणामस्वरूप अपने विचार अपनी दृष्टि के माध्यम से पाठकों को यथार्थ का बोध करवाया। हाँ, इतना अवश्य कह सकते हैं कि जिस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यास क्षेत्र में यथार्थवाद के विभिन्न रूपों जैसे आदर्शवादी यथार्थवाद समाजवादी यथार्थवाद

आलोचनात्मक यथार्थवाद, प्रकृतिवादी यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, मनो-
वैज्ञानिक यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद आदि को देख सकते हैं, ऐसे
यहाँ पर नहीं देख सकते। यहाँ इन यथार्थ के आयातों के स्थूल रूपों को
देख सकते हैं या मिश्रित रूप। कहने का मतलब यही है कि इस युग में यथार्थ
के रूपों का स्पष्ट रूप से विभाजन नहीं हुआ है।

इस युग के उपन्यासों में भारतीय समाज के प्रायः सभी काँ
ग्रामीण तथा नागरिक जीवन के यथार्थ पहलुओं, सामाजिक, राजनीतिक
आर्थिक और धार्मिक समस्याओं का कलात्मक निरूपण किया गया है।
आर्थिक शोषण, दहेज प्रथा, विधवा समस्या, विवाह प्रथा, अनेक
विवाह प्रथा, जेया समस्या, दूलादुत की समस्या, ब्रिटिश नीति, राष्ट्रीय
आन्दोलनों, साम्प्रदायिक संघर्षों आदि को इस काल के अनेक उपन्यासों
में चित्रण किया गया है। इस प्रकार इस युग के उपन्यासकारों ने उपन्यास
साहित्य को सामाजिक जीवन के यथार्थ से जोड़ा है। ऐसे उपन्यासकारों
में प्रमुख हैं - प्रेमचन्द, किशोर्भरनाथ शर्मा कोशिक, जयदेव प्रसाद,
शुभाचरण जैन, सियारामचरण जैन, जेम्स कुमार, बेचन शर्मा "उग्र", चतुरसेन
शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, भावती चरण वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
इलाचन्द जोशी, भावती प्रसाद वाजपेयी, उषादेवी मिश्रा।

प्रेमचन्द इस युग के प्रेरणा स्रोत हैं। उनके जितने भी उपन्यास
हैं उनमें एकाग्र होकर सब के सब सामाजिक यथार्थ से जुड़े हैं। उन्होंने
भारतीय समाज को समग्र रूप से अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।
विशेषतः भारतीय समाज में फैले विभिन्न समस्याओं को इस प्रकार चित्रित
किया है कि पाठक उसे पढ़कर आत्मविषीर हो जाता है। इस प्रकार
पाठक को प्रभावित करने की क्षमता प्रेमचन्द के उपन्यासों में मात्र इसलिए

नहीं है कि उनमें मानव जीवन को शक्ति और सुन्दरता प्रदान करे।
 सोददेश्यता होती है। बल्कि इसलिए है कि उनके उपन्यासों में यथार्थ की सही पकड़ है। इसी पकड़ के कारण ही प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य को मानव जीवन से जोड़ा है। यथार्थ के संबंध में प्रेमचन्द ने ठीक ही लिखा है -- "यथार्थवाद का यह आशय नहीं है कि हम अपनी दृष्टि को अंधकार के सिवा और कुछ ही क्या सकता है ? बेकार छुटकियाँ लेना, यहाँ तक की नज़र लगाना भी कभी - कभी आवश्यक होता है, लेकिन देखिक व्यथा चाहे नज़र से दूर हो जाए, मानसिक व्यथा सहानुभूति और उदारता से ही शान्त हो सकती है, किसी को नीचे समझकर हम उसे उंचा नहीं बना सकते, बल्कि उसे और नीचे गिरा देंगे। कायर यह यह कहने से बड़ादुर न हो जाएगा कि तुम कायर हो। हमें यह दिखाना पड़ेगा कि उसमें साहस, जल और धैर्य - सब कुछ है, केवल उसे जगाने की जरूरत है। साहित्य का संबंध सत्य और सुन्दर से है यह हमें न भूलना चाहिए।"।

उपरोक्त प्रेमचन्द के उद्धरण से पता चलता है कि प्रेमचन्द साहित्य में यथार्थ को स्पष्ट रूप से दिखाते हुए भी पाठक को निराश और उदास नहीं करना चाहते हैं। इसी कारण अपने आरंभिक उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को यथार्थ के धारातल पर खोलकर चित्रण किया है किन्तु उनका पट श्रेष्ठ आदर्शों के साहस हुआ है। उदाहरण के तौर पर "सेवा सदन", "प्रेमाश्रम", "कर्मशुनि", आदि में आदर्श भावनाएँ हृदय परिवर्तन को देख सकते हैं। सेवा सदन की नायिका सुमन है जिसके माध्यम से "कैया जीवन को एक सामाजिक संदर्भ में देखा गया है। कैया जीवन पुरुष के लिए एक सुभावनी

चीज के नीचे छिपी नारी जीवन की गहनतम प्रतारणा, अवमानन को उद्घाटित कर उन मूल कारणों पर प्रकाश डाला जो हमारे मध्यकालीन स्त्री समाज को केरा बना देने के लिए विवश कर देते हैं। और लेखक ने हमारे पुरुष समाज के रंग बिरंगी नवरत्न पहने हुए तमाम धार्मिक राजनीतिक, सामाजिक पुण्य पुण्यों को भारी सड़क पर नंगा कर दिया और उन सामाजिक बुरातियों पर रोशनी डाली जो हमें ऊपर से शरीफ और नीचे से जानवर बनाये हुए हैं।¹⁰ प्रेमचन्द ने अपने आरंभिक आदर्शवादी या सुधारवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप सामाजिक समस्याओं का समाधान भी देने का प्रयास किया है। केरा समस्या का समाधान उन्हें आश्रमों, अनाथालयों आदि की स्थापना में दृष्टिगत होता है। किन्तु प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासों में विचारधारा के आधार पर काफी बदलाव आया है। जैसे देखें समस्या, अन्धेले विवाह समस्या, विधवा समस्या, हरिजन [अधुत] समस्या आदि को सजग रूप से चित्रित करते हुए भी अन्त में जो समाधान देनेकी पद्धति थी उसे परवर्ती उपन्यासों में तिलांजलि दिया है। यदि हम प्रेमचन्द के उपन्यासों में चिंतन का विकास देखें तो क्रमशः सेवासदन, पेमाश्रम, रंगभूमि कार्यालय निर्माता, गहन, कर्मभूमि और गोदान और मंगलसूत्र तक आते आते यथार्थ की अभिव्यक्ति अधिक होती गई है और आदर्श या सुधारवादी भावनाओं से मोहभंग हो गया है। यथार्थ के धरातल पर लिखा गया उनका सखीछठ उपन्यास "गोदान" है जिसमें प्रेमचन्द भारतीय किसान का यथार्थ चित्रण होरी नामक किसान के

जरिये किया है। जिसमें गुण और दोष, अभाव और शक्ति एक साधारण भारतीय किसान के जैसे ही है। प्रेमचन्द की आस्था यथार्थवाद में किस तरह बढ़ती गयी है और आदर्श की भावना किस प्रकार ह्रास होती गई है ठाणू शिव कुमार मिश्र की इस उद्धरण से स्पष्ट होता है। वे लिखते हैं कि "शोषण, 'प्रेमाश्रम' के किसानों का भी होता है, हारते हैं, परन्तु वहाँ वे हकट्टे होकर सार्वभौमिक शक्ति से जुड़ते भी हैं, जबकि 'गोदान' का किसान एकदम अकेला है और जिन्दगी के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई में उसके कर्ष के लोग, उसके भाई तक उसका साह नहीं देते। शोषणकी प्रक्रिया भी यहाँ 'प्रेमाश्रम' के समान स्थूल न होकर अत्यंत महीन है। यहाँ किसान एक ही बार में समाप्त नहीं होता, वह धीमे-धीमे, रगड़-रगड़ कर मारा जाता है और विडंबना यह है कि अंतिम समय तक उसे इस तथ्य का एहसास नहीं होता कि आखिर उसे मारने वाला है कौन ? उसके हत्यारे यहाँ अधिक सावधान हैं और मीठी-मीठी बातें करते हुए उसे रेत-रेत कर मारते हैं।"¹

कुल मिलाकर हम इतना कह सकते हैं कि प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में चाहे वह 'ग़लब' हो, 'निर्मला' हो, या अन्य कोई और हो प्रत्येक उपन्यास में यथार्थ का चित्रण पूरे जीवन्तता के साथ किया है। जिस सामाजिक यथार्थ का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है, वह मात्र उनका देखा हुआ ही नहीं उनका भोगा हुआ भी है। उनकी कृतियों में चित्रित यथार्थ मात्र स्तब्ध पर उतराने वाला यथार्थ नहीं है, वरन् गहराई में जाकर जीवन की सही छवि को उजागर करने वाला है।²

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ: 180

2. -वही- -वही- पृ: 179

इस प्रकार हम प्रेमचन्द के उपन्यासों के विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि प्रेमचन्द आलोचनात्मक यथार्थवाद के पक्ष में आने वाले कथाकार हैं। वस्तुतः प्रेमचन्द एक ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य में उपन्यास विधा को एक प्रमुख स्थान दिलवाया। शिवकुमार मिश्र प्रेमचन्द के बारे में लिखते हैं कि "कतिपय सीमाओं के बावजूद जो उनके अपने युग की सीमाएँ भी हैं, उनकी देन इतनी भास्वर है कि उसे कतई नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता। बहुत स्तर पर चल रहे सामाजिक अन्धकार के खिलाफ इतनी सशक्त आवाज़ आगे भी नहीं गुंजी है। यह अगली पीढ़ी के कथाकारों का अवमूल्यन नहीं प्रेमचन्द के क मूल्यवान् प्रदेय के प्रति सहज प्रवृत्ति है। आगे के कथाकारों में से अनेक ने उन्हें प्रेरणास्त्रोत के रूप में अपनाकर यथार्थ चित्रण के क्षेत्र में नये अध्याय जोड़े हैं, किन्तु यह निर्विवाद है कि प्रेमचन्द से बड़ी मानवीय संविदना अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुई। यही प्रेमचन्द का युग प्रवर्तन है, यही उनका महत्त्व है।"

इस युग के अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कोशिक" एक हैं। कोशिक जी भी प्रेमचन्द के परम्परा के ही लेखक हैं और प्रेमचन्द जैसे ही यथार्थ के धरातल पर सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी करते हैं किन्तु कोशिक जी "प्रेमचन्द की गहराई नहीं पा सके हैं। प्रेमचन्द चाहे कोई समस्या लेते हों, चाहे समस्याओं का जाल, उन्हें जीवन यथार्थ की गहरी जटिलताओं से गुज़ारते हैं। उन्हें अपने समय की बहुत गहरी पहचान है, उसकी बुनियाद को भी और उसकी व्याप्ति की भी। सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन यथार्थ के परस्पर जड़े हुए

संज्ञित रूप को उभारने में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है लेकिन कौशिक जी के उपन्यासों में समस्याएं रूप में आयी हैं। इन उपन्यासों में न तो चरित्र या सामाजिक यथार्थ संक्षेपी गहराई है और न संश्लिष्ट व्यक्तित्व ही।¹

"कौशिक" जी के दो उपन्यास मुख्य हैं एक भिन्नारिणी १९२९, दूसरा माँ १९२९। "भिन्नारिणी उपन्यास तत्कालीन सामाजिक रुढ़ियों के विरोध में संघर्ष को चित्रित करता है। विशेषतः इस उपन्यास में अन्त-जातीय विवाह के कारण, पीढ़ियों के बीच उत्पन्न होने वाला टकराव का संपूर्णता के साथ चित्रण किया गया है। इस उपन्यास के नायक रामनाथ के माध्यम से उपन्यासकार स्वाधीन और कामुक युवकों का पदपिपास करता है। ऐसे युवकों का प्रेम प्रेम नहीं होता वह वासना को वृद्ध करने के लिए छेले जाने वाला नाटक है। उपन्यास की नायिका के माध्यम से लेखक एक आदर्श चरित्र की स्थापना करता है। उसमें "जस्सो स्त्रीजनोचित गुण पराकाष्ठा को पहुँच जाते हैं। वह अपने प्रेमी रामनाथ को अत्यन्त विवाह करने की संधर्ष अनुमति देकर, सुहागरात के दिन, उसकी नववधू का शृंगार स्वर्ण करती है। उसका यह त्याग असाधारण है। इतना ही नहीं, वह वह अपनी सारी सम्पत्ति दान कराकर पुनः भिन्नारिणी बन जाती है।"² इस प्रकार की भिन्नारिणियाँ समाज में बहुत कम मिल पाएंगी। "जस्सो के पात्र के द्वारा आदर्श की स्थापना करने का प्रयास किया गया है।

कौशिक जी का दूसरा उपन्यास "माँ" है। जो "माँ" का आदर्श रूप को प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में जन्म देने वाली माँ और गोद लेने वाली माँ के बीच का भेद स्पष्ट किया गया है। जन्म देने वाली माँ के पास अपने बच्चे के लिए जो प्यार, स्नेह और ममता होती है वह गोद

1. रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्ग्रन्थ - पृ: 60

2. डा० मोहनलाल "रत्नाकर" - प्रेमचन्द युग का हिंदी उपन्यास-पृ: 261

लेने वाली माँ के पास नहीं होती । इस उपन्यास में यह भी स्पष्ट किया गया है कि माँ योग्य निर्देशन से ही बालक का भावी जीवन निर्मित होता है । कुलोचना एक आदर्श माँ है और उसके दो बच्चे हैं - शम्भुनाथ और श्यामनाथ । श्यामनाथ को सावित्री नाम एक सम्पन्न स्त्री के द्वारा गोद लिया जाता है । श्यामनाथ को उचित मार्ग निर्देशन न मिलने के कारण वह लंपट, आवारा और क्षयागामी बन जाता है और इधर शम्भुनाथ अपने आदर्श "माँ" कुलोचना के छत्र-छाया में योग्य व्यक्ति बनता है । वह छिप्टी क्लबटर हो जाता है । इस प्रकार इस उपन्यास का कथा वस्तु सामान्य है । सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण करते समय क्षयाग्रों के जीवन और क्षयागमन को बुराईयों का उद्घाटन किया गया है । उपन्यास के अन्त में श्यामनाथ और उसके मित्र अपनी भूल अनुभव कर लेते हैं और ठीक रास्ते पर आ जाते हैं ।

इस प्रकार कह सकते हैं कि "कोशिक" आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण को, उस रूप में तो अभिव्यक्त नहीं कर सके हैं, जिस रूप में प्रेमचन्द अभिव्यक्त करते हैं । किन्तु उनका प्रयास यही रहा है कि वे सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करके, उच्च आदर्शों की स्थापना करें । सामाजिक असंगतियों एवं व्याभिचार का विरोध करके, स्वस्थ एवं आदर्श जीवन की कामना करें ।*

सामाजिक यथार्थ को उजागर करने वाले उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद भी एक हैं । इनके कंकाल, तितली, इराकी उपन्यास प्रमुख हैं । जिन्होंने यथार्थ को स्पर्श करता हुआ कथा आगे बढ़ता है । आलोचक प्रसाद के उपन्यासों में यथार्थवादी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी और स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण को खोजते हैं । डा० त्रिभुवन सिंह के अनुसार "कंकाल" में दो

प्रकार की प्रवृत्तियों का सन्धि स्थल है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की जो धारा अग्रतिष्ठत केा से बहती चली आ रही थी "कंकाल" ने उसे विभाजित कर दो धाराओं में परिवर्तित कर दिया। "कंकाल" के अन्दर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तथा प्रकृतिवादी विचार धारा का सामंजस्य मिलता है। संभवतः इसी उपन्यास के द्वारा हिन्दी में प्रकृतिवादी उपन्यासों का इतिहास आरम्भ हो जाता है। लेखक ने इसके अन्दर सामाजिक कुरूपताओं को दिखाकर एक आदर्श समाज की कल्पना की है। इसमें प्रायः सभी पतित पात्रों का अन्त में फलकर सुधार कर लिया गया है।¹ किन्तु प्रख्यात आलोचक शिवकुमार मिश्र के अनुसार "कंकाल" को "प्रकृतिवाद" की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। वे कहते हैं कि "यह सही है कि उस उपन्यास में प्रसाद जी ने समाज को निरावरण किया है और व्यक्ति के सही विकास के लिए इस तथ्य की कालत भी की है कि उसे अपनी मूल वृत्तियों के आधार पर विकास की सुविधा मिलनी चाहिए, किन्तु इन बातों के होते हुए भी "कंकाल" में प्रसाद के स्वच्छेदतावादी आदर्शवादी संस्कार भी उभरे हैं, जिन्हें "प्रकृतिवाद" का नाता नहीं है। "कंकाल" में प्रसाद के पात्र प्रायश्चित्त भी करते हैं, अपने पापों के लिए क्षमा भी बहाते हैं। "कंकाल" उपन्यास को अधिक से अधिक "प्रकृतिवादी" जीवन दृष्टि से अन्तः प्रभावित माना जा सकता है जो कि प्रधानतः वह स्वच्छेदतावादी सार्वात्मिकता का प्रदर्शन ही अधिक है।² यस्तुतः "कंकाल" में धर्म के बाह्य में वैमतिक कार्य जैसे व्याभिचार आदि धार्मिक क्षेत्रों में किस तरह होते रहते हैं दिखाना ही

1. डा० किमुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. 227

2. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृ. 162

प्रसाद जी का प्रधान उद्देश्य रहा है। इसी कारण जहाँ प्रेमचन्द के उपन्यासों में जर्जर भारतीय सामाजिक व्यवस्था का चित्रण हुआ है वही प्रसाद के इस उपन्यास में धार्मिक हेल में होने वाले अनेक कार्यों का यथार्थ चित्रण हुआ है।

"तिल्ली" जयशंकर प्रसाद जी का और एक उपन्यास है। इसमें भारतीय कृषक जीवन के परिप्रेक्ष्य में गाँवों की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। "यह उपन्यास सामन्तवाद के पतन, ग्राम्य जीवन की आर्थिक कठिनाइयों, कृषकों और श्रमिकों पर होने वाले अत्याचारों सरकारी कर्मचारियों, जमींदारों आदि द्वारा ग्रहण किए गए हथकंडों और अन्तर्जातीय विवाह जैसी समस्याओं को प्रधानता देता है।" इसी कारण कंकाल की अपेक्षा इस उपन्यास में यकाई का चित्रण अधिक स्थिति के साथ हुआ है।

प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों में पाण्डेय देवन शर्मा उग्र जी का नाम भी उल्लेखनीय है। "उग्र" जी सामाजिक जीवन को यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया है। कहा जाता है कि इस युग में यथार्थवाद ली ली आदर्श का पर्जा छुड़वा ले रहा था तो उग्र जी एक कदम आगे चल रहे थे। वे यथार्थवाद का भाग अति यथार्थवाद और प्रकृतवाद की सीमा तक पहुँच गए थे। इसी कारण साहित्य के क्षेत्र में इनके उपन्यासों पर दृढ़ फलता रहता है। इनके उपन्यासों में अनेकता, अश्लीलता, जीवन के कुत्सित वर्गों का चित्रण का भरमार रहता है। 'दिल्ली का दलाल', 'चन्द हसीनों के खतून', 'बुध्वा की बेटा', 'शराबी' इनके मुख्य उपन्यास हैं।

"दिल्ली का दलाल" तत्कालीन हिन्दू समाज की कुरीतियों पर प्रहार करता है - उसकी भैतिकता के छद्म का अनावरण करता है। इस उपन्यास

के कारण उग्र जी को सम्मान और अपमान दोनों भी मिला । "भक्तित्वावादियों ने उसे अलीन, कुचिपूर्ण और उपेक्षित कृति घोषित किया । यथार्थवादियों ने उसके प्रतिपाद्य विषय तथा शिल्प की मुक्त कंठ से प्रशंसा की । वस्तुतः यह उपन्यास स्वस्थ यथार्थवाद की सीमाओं का कहीं-कहीं उल्लंघन करने के कारण ही उपेक्षित समझा गया है । इसका मूल उद्देश्य व्यभिचार कृत्तियों के प्रति विद्रोह एवं छुआ उत्पन्न करना ही है । किंतु उपन्यास में कृत्तित्त बंगों का सीधा सादा विस्तृत विवेचन सामाजिक मर्यादाओं और भक्ति बंधनों को तोड़ देता है । उससे पाठक कुप्रभाव भी ग्रहण करते हैं । उपन्यासकार अपने सुधारवादी दृष्टिकोण से विचलित सा हो गया है ।¹

इसी प्रकार "चन्द हसीनों के खत" में हिन्दू और मुसलमान धर्म के युक्त और युवती के प्रेम की कथा है । इस कथा के आधार पर दोनों साम्प्रदायों के बीच के टकरावों और धार्मिक रुढ़ियों का चित्रण यथार्थ के साथ किया है और मानवीय प्रेम को सत्य के रूप में स्थापित किया है । "बछुआ बेटी" नामक उपन्यास में सम्प्रदायीन सामाजिक परिवेष्टा में नारी समस्या और ब्रूतोद्धार की समस्या का चित्रण हुआ है । ब्रूत समस्या जागरण की और नारी के मूल में स्थित सामाजिक धार्मिक और आर्थिक पहलुओं पर विचार किया गया है । "शराबी" उपन्यास में शराब पीने के कारण उत्पन्न होने वाले कुपरिणामों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर हुआ है । इस प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र जी यथार्थवादी विचारधारा से प्रतिक्रिया होने के कारण ही वे प्रकृतवादी विचारधारा के क्षेत्र में भी पादरपण किये हैं ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री भी इसी युग के महान उपन्यासकार है। इनके उपन्यासों का विभाजन दो भागों में किया जा सकता है - सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास। सामाजिक उपन्यास प्रेमचन्द युग में लिखे गये हैं और ऐतिहासिक उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर युग में लिखे गये हैं। प्रेमचन्द युगीन प्रमुख उपन्यास है - 'हृदय की परख', 'हृदय की ध्यास', 'अमर अभिलाषा' या 'बहते आँसू' और 'आत्मदाह'।

"हृदय की परख" चतुरसेन शास्त्री की प्रथम रचना है। इसमें जारज संतानों की समस्या का उल्लेख किया गया है। इस समस्या को प्रथम बार हिंदी साहित्य में उठाया गया है। "हृदय की ध्यास" उपन्यास में भारतीय आदर्श के अनुसार दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया गया है। "हृदय की ध्यास" की कथावस्तु यथार्थ जीवन से संबंधित होने पर भी आदर्शवादी परिपक्वता लिए हुए है। उपन्यासकार ने मानव हृदय के भीतर छिपे हुए लक्ष्मण-वृत्तियों और अश्लक्ष्ण-वृत्तियों के संघर्ष को दिखाकर लक्ष्मण-वृत्तियों की क्लृप्ति दिखाई है। उपन्यास में कहीं कहीं प्रणय झूठारों का नग्न वर्णन भी मिलता है जिसका लक्ष्य पाठकों को आकृष्ट करना जान पड़ता है।¹

"अमर अभिलाषा या बहते आँसू" उपन्यास में उच्चत विधवा समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास में विधवा स्त्री पर होने वाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण किया गया है और विधवा विवाह का समर्थन किया गया है। "आत्मदाह" उपन्यास में भी व्यक्ति के जीवन में आने वाले विपत्तियों के बारे में चित्रण किया गया है। इस प्रकार कह सकते हैं कि चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास सामाजिक यथार्थ को लेकर आने पर भी उसमें

सुधारवादी दृष्टिकोण रहने के कारण यथार्थ का सैद्धांतिक परिश्रम में विवेचन न हो पाया ।

इस काल के अन्यतम उपन्यासकार कृष्णधर जैन अपने समकालीन सामाजिक विस्तारितियों और अभिजातों के आधार पर रचनायें की हैं । इनका दृष्टिकोण भी बेचन शर्मा उग्र के जैसा ही घोर यथार्थवादी दृष्टि - कोण रहा । डा० गोपाल राय के अनुसार ये प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों में हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों में उग्र की तरह समाज के नग्न यथार्थ का वर्णन करने का साहस दिखाया था। समाज में फैले व्यभिचार और कुरीतियों का जिस साहस के साथ इन्होंने उद्घाटन किया, वह अभूतपूर्व था । यही इनकी प्रसिद्धि का कारण भी था और उपन्यासकार के रूप में इनकी मृत्युका भी । समाज के अनुदधाटित व्यभिचार कृत्यों को प्रकाश में लाने के जोश में, ये भूल गए कि सामयिकता के चित्रण से कोई उपन्यासकार तत्कालीन पाठकों के बीच चाहे जितना लोकप्रिय हो जाए, उसका व्यवितत्व स्थायी नहीं हो सकता ।¹ कृष्णधर जैन अनेक उपन्यास लिखे हैं जिनमें दिल्ली का व्यभिचार, भार्गव, रहस्यमयी, भाग्य, मन्दिर दीप, तपोभूमि और सत्यग्रह हैं । सत्यग्रह राजनैतिक यथार्थ पर आधारित उपन्यास है और बाकी के सामाजिक हैं ।

"दिल्ली का व्यभिचार" उपन्यास का मुख्य उद्देश्य दिल्ली में फैले व्यभिचार का यथार्थ के धरातल पर चित्रण करना है। इस उपन्यास के संबंध में डा० गोपाल राय लिखते हैं कि "लेखक की एक "होआ कमेटी" है, जिसके 12 सदस्य हैं । इस कमेटी का सभा पति स्वयं लेखक है । "कमेटी" के सभी सदस्य दिल्ली के व्यभिचार से सम्बद्ध एक एक कहानी सुनाते हैं । इन्हीं

कहानियों का संग्रह के रूप में यह उपन्यास है।¹ 'भाई' उपन्यास ग्रामीण जीवन के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है जिसमें आपस का बंधन-बंध, सामाजिक विवर्तनियाँ और हिन्दू - मुस्लिम संघर्ष का चित्रण अधिक यथार्थता के साथ किया गया है। "रहस्यमयी" उपन्यास में दिल्ली के अभिजात वर्गीय समाज में चलने वाली व्यभिचार का पर्दाफाश किया है। "भाग्य" उपन्यास भाग्यवाद को प्रोत्साहित करता है। "मन्दिर दीप" उपन्यास में लपट व्यभिचारी युवक के माध्यम से सामाजिक अनेतिकता का वर्णन किया गया है। तपोभूमि उपन्यास में चार कहानियाँ हैं जो आत्म-कथानक शैली लिखी गयी है और परस्पर ध्वनिट संबंध रखती है। इनके माध्यम से भारतीय समाज के उन्नत समस्याएँ - "हिंदू विधवा की दयनीय स्थिति पुरुष की व्यभिचारी - वृत्ति, पुरुष द्वारा नारी का तिरस्कार, पुरुष की अहमन्यता एवं नर-नारी का कलह आदि पर विचार हुआ है। "सत्याग्रह" उपन्यास में अंग्रेज और पूँजीवाद के विरुद्ध किये गए सत्याग्रह का चित्रण है।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि कृष्णचरण जैन के उपन्यासों में यथार्थ का जो चित्रण हुआ है उसमें अलीलता का झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। किन्तु सामाजिक समस्याओं का चित्रण ज्यों का त्यों निरंतरता के साथ चित्रित करने का साहित्यिक कार्य किया है।

प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा लगभग 20 उपन्यासों का सृजन किया है। इसमें कुछ सामाजिक उपन्यास हैं तो कुछ ऐतिहासिक। प्रेमचन्द युगीन सामाजिक उपन्यासों में 'लगन', 'संगम', 'प्रत्यागत', 'कुण्डली चक्र', और 'प्रेम की भेंट' मुख्य हैं। "लगन"

में देख ज प्रथा की समस्या का चित्रण हुआ है। "संगम" में ठाकू जीवन की मूल समस्या का चित्रण है और उसके माध्यम से ग्राम जीवन में उभरती हुई विषमता का उद्घाटन किया गया है। "प्रत्यागत" में सामाजिक धार्मिक और साम्प्रदायिक विषमताओं, कुरूपताओं तथा टकरावों का चित्रण है। "कुण्डली चक्र" में ग्राम समाज में व्याप्त कुरीतियों, अज्ञानजन्य मान्यताओं, भूतप्रेत भैरवासी आदि का चित्रण है। "प्रेम की भेंट" ग्राम जीवन की कुछ समस्याओं के बीच एक असफल प्रेमकथा का विधान करने वाला उपन्यास है।¹

इस काल के अन्य गणमान्य उपन्यासकारों में राधिकाशरण प्रसाद गुप्त भी है। इनका "राम रहीम" बृहत् उपन्यास है इसके माध्यम से भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कारों के बीच में टकरावों को दिखाया गया है। इनके अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास है - 'तरंग'।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने भी इसी युग में उपन्यास लिखना आरंभ किया। यद्यपि ये इस युग में मात्र दो - 'विदा' और 'विजय' उपन्यासों की रचना की। बाद प्रेमचन्दोत्तर काल में अनेक उपन्यासों का सृजन किया। "विदा" उपन्यास में भारतीय सभ्यता तथा संस्कारों का समर्थन और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कार का विरोध आदर्श स्त्रियों के माध्यम से किया गया है। "विजय" उपन्यास विधवा समस्या पर आधारित है। चन्डी प्रसाद इंदरेश का उपन्यास "मनोरमा" में भी आदर्शवादी है और कथा के केन्द्र में दो विरोधी - प्रवृत्तियों की स्थिति है, जो त्यागवादी और भोगवादी दृष्टियों का विरोध प्रकट करती है। मनोरमा प्रलोभनों से आकूट होकर पथभ्रष्ट हो जाने वाले और विधवा शान्ता अनेक प्रलोभनों के फन्दे काटकर अपने धर्म पथ पर चलने वाली नारी है।²

1. डा० रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्ग्रन्थ- पृ. 64

2. - वही-

- वही-

पृ. 65

"गौद" नामक उपन्यास में सियाराम्राज गुप्त अपहरण की गयी स्त्री की समस्या को उठाया है। अपहरण की गई स्त्री फिर घर लौट आने पर अमानवीय रुढ़ियों के कारण जो अवमान को सहन करना पड़ता है इस उपन्यास में उद्गाठित किया गया है। इसी उपन्यासकार का और एक उपन्यास अग्रिम आकांक्षा है जिसमें निम्नवर्गीय व्यक्ति के प्रति सामाजिक एवं धार्मिक विवर्तितियों का चित्रण यथार्थता के साथ हुआ है।

वस्तुतः इस काल के उपन्यासकारों में कुछ लोगों छोड़कर अधिकतर लोग यथार्थ के साथ कथानक का चित्रण करते हुए भी उपन्यास का अन्त सुधारवादी या आदर्शवादी दृष्टिकोण से किये है। इस कारण शायद पूर्व प्रेमचन्द युगीन संस्कार हो सकते हैं। इस काल में सामाजिक समस्याओं और राजनैतिक मुद्दों को केन्द्र में रखकर लिखने वाले अन्य प्रमुख उपन्यासकार हैं- जगदीश झा विमल, पं. टी. काराम सदाशिव तिवारी, पुरुष कुमारी अनुप मंडल, गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, एम. एल. सोजितिया प्रभात किरण मन्मथ द्विवेदी, मदनारी लाल गुप्त आदि। इनके अतिरिक्त और कुछ ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं आधार पर उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थवाद देखने को मिलता है। यही ऐतिहासिक यथार्थवाद इन उपन्यासकारों के परवर्ति उपन्यासों अधिक स्मृति के साथ आया है। अर्थात् इन उपन्यासकारों के प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थवाद अधिक मुखरित होकर आया है। अतः इस काल में लिखे गए एकाध प्रमुख उपन्यास हो तो प्रेमचन्दोत्तर युग के भाग में उसका विवेचन करेंगे। इस युग के ऐतिहासिक यथार्थवाद के आधार पर लिखने वाले उपन्यासकारों में सुन्दावनलाल शर्मा 'गढ़ कुण्डार', 'विराट की पद्मिनी', जयशंकर प्रसाद - 'हरावती', चतुरसेन शास्त्री - 'अवास का व्याह' अथवा 'पूर्णवृत्ति', निराला - 'प्रभावती', भगवती चरण वर्मा - 'पतन', गोविन्द वल्लभ पंत - 'सूर्यास्त' आदि हैं।

इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक धरातल पर यथार्थ का विवेचन करने वाले साहित्यकार भी इस युग में थे किन्तु इनका विकास प्रेमचन्दोत्तर युग में ही हुआ। यद्यपि इस युग में कुछ उपन्यास मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के आधार पर भी लिखे गए पर उनका समुचित विकास प्रेमचन्दोत्तर युग में ही हुआ। अतः रचनाकार को समय - सीमा में बाँधकर उनके द्वारा लिखे गए तत्कालीन एक दो उपन्यासों पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। इसकारण इन उपन्यासकारों पर भी विवेचन प्रेमचन्दोत्तर काल में ही करना ठीक रहेगा। इस युग में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद पर लिखे उपन्यासकार और उनके उपन्यास इस प्रकार हैं - इलाचन्द जोशी - 'धृष्टामयी' [लज्जा]

जेनेन्दु कुमार - 'परस', 'स्पर्धा', 'सुनीता', भगवती प्रसाद वाजपेयी - 'प्रेमपथ', 'अनाथ पत्नी', 'त्यागमयी', 'पिपासा', निराला - 'अधरा', 'अलका', 'निरुपमा', भागवती चरण वर्मा - 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', उषा देवी मित्रा, 'वचन का मौल'।

प्रेमचन्द युग के उपन्यासों का समग्रतः अनुशीलन करने पर स्पष्ट होता है कि इस युग के एक दो उपन्यासकारों को छोड़कर बाकी के सभी उपन्यासकारों में यथार्थ का ग्रहण और यथार्थ का बोध कराने के सही दृष्टिकोण का अभाव लगता है। क्योंकि यथार्थ का चित्रण किस प्रकार करना चाहिए ये जानते ही नहीं हैं। इसी कारण यथार्थ के नाम पर अलीलता का वर्णन और अनेतिक कार्यकलापों का वर्णन ज्यादा कर बैठे हैं जो पाठक को मोहित करके उसकी दृष्टि प्रमित कर देते हैं। किन्तु इसी युग के कुछ उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ऐसी गलती कभी नहीं की है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी व्यभिचार जैसे अनेतिक व्यवहारों का उल्लेख हुआ है किन्तु उनका वर्णन पाठक को आकर्षित नहीं करता बल्कि सोचने के लिए विवश कर देता है। इसका

कारण यही है कि "जिस सामाजिक यथार्थ का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है, वह मात्र उनका देखा हुआ ही नहीं उनका भोगा हुआ भी है। उनकी कृतियों में चित्रित यथार्थ मात्र सतह पर उतराने वाला यथार्थ नहीं है, वरन् गहराई में जाकर जीवन की सही छवि को उजागर करने वाला है।" ऐसी यथार्थ की एक बहुत कम उपन्यासकारों में देखने को मिला है। इस युग की दूसरी विशेषता यह है कि अधिकतर उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं - दहेज, विधवा समस्या, अशिक्षित समस्या - का चित्रण तो यथार्थ के धरातल पर हुआ है किन्तु ज्यादातर उपन्यासकारों ने इन समस्याओं का आदर्शवादी या सुधारवादी तरीके से समाधान देने प्रयास किया है। जिसके कारण उपन्यास में यथार्थ का चित्रण फीका पड़ जाता है। प्रेमचन्द के आरम्भिक उपन्यास भी इस तत्त्व से वंचित नहीं है। इसका कारण युग और परिस्थितियाँ ही हो सकती है। तीसरी विशेषता यह है कि इस युग के उत्तरार्द्ध में पूर्णतः यथार्थवादी अवधारण के आधार पर ही उपन्यास लिखे जाने लगे। जिसके फलस्वरूप शनैः शनैः यथार्थवाद के लगे जैसे ऐतिहासिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, अस्तित्ववाद आदि का भी उपन्यास के क्षेत्र में पदार्पण करने लगे।

4. प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में यथार्थबोध: 1937 - 1980

हिंदी उपन्यास साहित्य को प्रेमचन्द ने जो सुदृढ़ बुनियाद तैयार की थी उसी के आधार पर प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य का स्वस्थ विकास होने लगा। प्रेमचन्द के युग में यथार्थ का एक स्थूल चित्र उपन्यासों

में देखने को मिलता है। हाँ यह बात भी सही है कि प्रेमचन्द अपने युग पुर्वृत्तियों और चिंतन से एक कदम आगे थे। इसी कारण उनके उपन्यासों में यथार्थवाद का कुम्भिक विकास ही नहीं मिलता बल्कि यथार्थवाद के विवक्षित आयाम भी दृष्टिगत होते हैं। जैसे प्रेमचन्द के उपन्यासों में हमें सामाजिक समस्या के समाधान के रूप में आदर्शान्मुखी यथार्थवाद और पात्रों के अन्तःगमन का चित्रण करते समय मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का दृष्ट तो मिलता ही है, इसके अतिरिक्त उनके परवर्ती उपन्यासों में समाजवादी यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद का झलक मिलता है। वस्तुतः प्रेमचन्द आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखक हैं। कहने का अभिप्राय यह कि प्रेमचन्द के युग में ही यथार्थवाद का उत्थान शुरू हुआ और प्रेमचन्दोत्तर युग में इसका विकास अनेक आयामों में विभाजित होकर विकसित होने लगा।

प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों ने बदलती हुई परिप्रेक्ष्य को अपनी ज्ञान, दृष्टि और अनुभव के आधार पर ग्रहण किया। जिसके कारण प्रत्येक उपन्यासकार का अपना अपना दृष्टिकोण का निर्धारण समाज के प्रति होने लगा। इसी कारण यथार्थवाद के कई आयाम उत्पन्न हुए। जिनमें प्रमुख हैं :-

1. समाजवादी यथार्थवाद
2. आलोचनात्मक यथार्थवाद
3. पुरुषवाद
4. अतिथार्थवाद
5. आदर्शान्मुखी यथार्थवाद
6. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद
7. ऐतिहासिक यथार्थवाद

जैसा कि सर्वविदित है कि प्रेमचन्दोत्तर युग का मतलब है प्रेमचन्द के देहान्त के बाद-वर्तमान तक का युग । किन्तु कुछ विद्वान अध्ययन की सुविधा के लिए इस युग को सन् 1947 ई० तक सीमित करते हैं और उसके आगे का युगको स्वातंत्र्योत्तर युग कहते हैं । इस प्रकार विभाजन ठीक नहीं लगता क्योंकि प्रेमचन्द के देहान्त के बाद अर्थात् 1937 से सन् 1947 ई० तककाल बहुत कम है । इस दस वर्ष के काल में कोई भी साहित्यिक प्रवृत्ति में परिवर्तन होना संभव नहीं है । यदि कोई नई प्रवृत्ति का शुरुआत भी हुआ तो दस वर्षों में ही समाप्त नहीं होता उसकी गति चलती ही रहती है । राम्दरश मिश्र कहते हैं -- "मनोवैज्ञानिक और समाजवादी - सामाजिक उपन्यासों की जो परम्परा स्वाधीनता पूर्व शुरू हुई थी वह स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी चलती रही । जैनेन्द्र अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी जैसे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों, यशपाल, अरुण भगवती चरण वर्मा जैसे सामाजिक चेतना के उपन्यासकारों के उपन्यास स्वाधीनता पूर्व आ चुके थे, उन्हीं की परम्परा में उनके स्वाधीनता परवर्ती उपन्यास आये । इनके परवर्ती उपन्यासों में कोई दृष्टिकोण या संरचना मूलक अन्तर नहीं उभरा, अन्तर केवल स्वाधीनता पूर्व और स्वाधीनता परवर्ती जीवन यथार्थों का है जो इनमें विद्यमान हुए हैं ।" अतः अध्ययन की सुविधा के लिए प्रेमचन्दोत्तर युग को सन् 1960 ई० तक एक भाग के रूप में सन् 1960 से वर्तमान काल तक दूसरे भाग में विभाजित करना ठीक रहेगा ।

सन् 1960 ई० साहित्य में एक ऐसा बिन्दु है जो यही से साहित्यिक प्रवृत्तियों में भिन्नता आ जाती है । स्वतंत्रता पूर्व देश के सामाजिक

1. डॉ० राम्दरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्दृष्टि

राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ जैसे थी स्वतंत्रता के बाद भी अर्थात् सन् 1960 तक भी वैसे ही थे। भारतीय जनता में स्वाधीनता के प्रति मोह था। वे समझ रहे थे कि आजादी मिल गई अब सारे समस्याएँ हल हो जायेंगे। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। अपने भ्रष्टाचारी नेताओं के कारण जनता का मोहभंग हो गया। इसी मोहभंग के परिप्रेक्ष्य में सन् 1960 से हिंदी उपन्यास क्षेत्र में व्यक्तिवाद और समाजवाद के आधार पर ऐसे उपन्यास आये जिसमें सामाजिक विभीषिका, संश्रम, कुष्ठा, छूना आदि का चित्रण विस्तृत रूप में होने लगा। इस काल के उपन्यासों में से आदर्शवाद पलायन कर चुका था। अधाभाव, आर्थिक वैमनस्य का चित्रण विशेषतः मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के पात्रों के माध्यम से होने लगा। नारी के बहुविध रूपों का सुला चित्रण उसके समस्याओं के साथ होने लगा।

अतः प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का विभाजन सन् 1960 को केन्द्र बिन्दु मान कर करना ही समुचित होगा।

1. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास युग - 1937 - 1960

2. साठोत्तरी उपन्यास युग - 1960 - 1980

4.1. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में यथार्थबोध : सन् 1937 से सन् 1960 ई तक।

सन् 1937 से सन् 1960 तक का समय भारतीय समाज में बहुत उथल पुथल का समय रहा। इस काल में घटित घटनाओं से भारतीय समाज बहुत प्रभावित हुआ। इस काल के प्रमुख घटनाएँ हैं द्वितीय महायुद्ध बंगाल का अकाल, भारत छोड़ो 1942 का आन्दोलन, स्वतंत्रता प्राप्ति, देश गम्रतंत्र होने, प्रथम आम चुनाव और नेहरू जी का प्रधान मंत्री बनना।

इन घटनाओं के कारण तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों में काफी परिवर्तन आ गया। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण भारतीय जनता में युद्ध के प्रति घृणा होने लगा। जनता व्यक्ति का महत्व हास होते देखकर निरुत्साहित होने लगी। सामाजिक परिवेश में रुढ़ियों तथा अन्य कुरातियों के प्रति विद्रोह की भावना जागृत हो चुकी थी। बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर के कारण अशुभ समस्या अहं मूढ़ता बन गया था। राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति की आकांक्षा लोगों में बढ़ती गई जिसका प्रमाण सन् 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन है और अंगाल के अकाल का भीमत्स भी तत्कालीन समाज पर अपना गहरा छाप छोड़ा। अनेक समस्याओं का हल स्वतंत्रता प्राप्ति से ही होता है। कह कर तत्कालीन नेता लोगों में विश्वास पैदा किये थे। उसी के अनुरूप जनता ने भी भारत गणतंत्र होने के पश्चात् 40 नेहरू को भारी बहुमत से प्रधान मंत्री बनाया। इसी परिप्रेक्ष्य में हिंदी उपन्यास साहित्य का सृजन यथार्थता के साथ हुआ है।

इस काल में उपन्यासों में यथार्थ का बोध विभिन्न स्तरों में होने लगा जिसके परिणाम स्वरूप, उपन्यासों में समाजवादी यथार्थवाद, मनो-वैज्ञानिक यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद, प्रकृतवाद, अतिमयथार्थवाद, आदर्शानुसंग यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद का उदय हुआ।

4.1.1. समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

समाजवादी यथार्थवाद मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित है। यह व्यक्ति की समाज से अलग सत्ता नहीं स्वीकारता। उसके अनुसार

समाज की अविभाज्य इकाई व्यक्ति है। इस प्रकार समाजवादी यथार्थवाद अछूटता की व्यापक भावना पर आधारित है। समाजवादी यथार्थवाद पूँजीवाद, सामंतिवादी तथा उपनिवेशवादी व्यवस्थाओं का विरोधी है।

हिंदी उपन्यासों में इस विचारधारा का जगजन प्रेमचंद युग में हुआ किन्तु इसका विकास प्रेमचंदोत्तर युग में हुआ। प्रेमचंद युग के समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासकारों में यशपाल, नागाजुन, भैरवसाह मृपत ।

समाजवादी यथार्थवाद के सशक्त उपन्यासकार के रूप में यशपाल को देखा जाता है। उनके प्रमुख उपन्यास जैसे दादा कामरेड [1941] देशद्रोही [1943] पाटी कामरेड [1946] मनुष्य के रूप तथा झूठा सब [प्रथम 1959, द्वितीय 1960] आदि राजनैतिक और सामाजिक दृष्टिभूमि पर आधारित सकल उपन्यास हैं। इन उपन्यासों के माध्यम से भारतीय सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का समाजवादी यथार्थवाद के आधार पर विचार किया है। दादकामरेड, देशद्रोही उपन्यासों के माध्यम से यशपाल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के क्रान्तिकारी मोर्चे का वर्णन, वर्गीय हित, वर्ग संघर्ष, वर्ग सहयोग और साम्राज्यवादियों का यथार्थ मूल्यांकन किया है। "मनुष्य के रूप [1949]" उपन्यास में लेखक ने "सामन्ती पूँजीवादी वर्गीय स्वार्थ तथा वर्ग चरित्र, साम्राज्यवादी उपनिवेशवादियों द्वारा आर्थिक शोषण, पुलिस की कामुकता और अत्याचार, परम्परागत नैतिक मान्यताओं तथा अंधविश्वास के जाल में ग्रसित नारी की विवशता, धोखी धार्मिक मान्यताएं और पाखण्ड, मध्यवर्गीय चरित्र, असुरवादिता और उसके आर्थिक खोलापन का साम्यवादी दृष्टि से यथार्थ मूल्यांकन किया है।"

1942 ई० के आन्दोलन के समय से लेकर 1946 ई० के आम चुनाव तक कम्युनिस्ट पार्टी किन कारणों से देश की जनता की गलतफहमियों की शिकार बनी रही, इन्हीं बातों का विवेचन "पार्टी कामरेड" में किया गया है।

"झूठा - सच" यशमाल का बहुत उपन्यास है जिसके दो भाग हैं - एक - घतन और देश, दूसरा देश का भविष्य।" इस उपन्यास में भौला पांथे गली के मध्यवर्गीय जीवन, नेताओं की स्वार्थपूर्ण राजनीति, जमींदाराना शोषण, वर्ग - विषमता, विवाह और तलाक की समस्याएँ, राजनीति, जमींदाराना स्वाधीनता के हाथों में खेलती हुई सांप्रदायिकता, सांप्रदायिक दंगों में होने वाले रक्तपात, आजादी के बाद के विस्थापित लोग, कांग्रेस का वर्ग चरित्र, अक्सरशाही, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, सरकारी मशीनरी का भ्रष्टाचार, समस्याओं का समाधान न करके उन पर दिए जाने वाले लम्बे चौड़े झूठे भाषणों आदि का सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया गया है।" यह उपन्यास सन् 1942 से लेकर 1957 ई० तक के भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का यथा तथ्य चित्रांकन किया है। जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त कुर्बाना मनोवृत्ति का पदार्पण करते हुए समाज को पूरी निर्ममता से धक्का देकर जगाने का प्रयत्न किया है और जीवन जीवन मान्यता तथा समाजवादी समाज व्यवस्था बनाने का आह्वान किया है।

राहुल सांकृत्यायन जी भी प्रखर समाजवादी विचारधारा के उपन्यासकार हैं। अतः इनके उपन्यासों में भी स्पष्ट रूप से समाजवादी

यथार्थवादी का वैलक मित्रता है। इनके उपन्यासों में सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं का उजागर होता है और इन समस्याओं का समाधान समाजवादी विचारधारा के अनुसार देते हैं। इनके प्रमुख उपन्यास हैं - "जीने के लिए" § 1939§ और "भागो नहीं, दुनिया को बदलो"। इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं।

"राहुल जी ने अपने उपन्यासों में मार्क्सवादी सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए शोष और शोषित का संबंध, आर्थिक विषमता, वैयक्तिकता की भावना का निषेध, जन शक्ति में विश्वास, इन्द्रात्मक भौतिकवाद की मान्यता, ईश्वर और धर्म में अविश्वास, बौद्ध एवं ब्राह्मण दर्शन की मार्क्सवादी व्याख्या को प्रस्तुत किया है।"¹ इनके उपन्यासों - "जयप्राप्ति" और "मधुर स्वप्न" में शोष रहित, वर्ग विहीन समाज की कल्पना की है।

"राहुल सांकृत्यायन ने जीने के लिए § 1939§ उपन्यास में राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए चल रहे आन्दोलन, विभिन्न राजनीतिक दलों की भूमिका, जातिवाद का विरोध, प्रथम विश्वयुद्ध, साम्राज्यवादी सामन्ती उत्पाचार, किसान मजदूर, आन्दोलन, गांधीवाद और कांग्रेस का कर्णीय चरित्र, धार्मिक कुरीतियाँ, स्वतंत्र प्रेम, आदर्शवाद तथा अहिंसा आदि का सजीव तथा यथार्थ चित्रण मार्क्सवादी दृष्टिभूमि में किया है।"²

1. डॉ० प्रभाकर मिश्र: महारक्षित राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य - पृ० 366

2. डॉ० गोपाल कृष्ण शर्मा: मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास - पृ० 69

ग्रामीण प्रान्तों में जमींदारों के द्वारा किसान खेतों पर मजदूरों का शोषण किस प्रकार किया जाता है। बाबा नागार्जुन अपने आंचलिक पट्ट लिए उपन्यास 'रतिनाथ की चाची', 'बालचनमा', 'बाबा कटसरनाथ' और 'वस्त्र के बेटे' में उजागर किया है। इनके उपन्यासों में रतिनाथ की चाची से लेकर वस्त्र के बेटे तक वर्गीय संघर्ष का क्रमिक विकास हुआ है। अपने उपन्यासों में नागार्जुन सामंती व्यवस्था के प्रति विद्रोह जाति पात का विरोध रीति-रिवाजों, धार्मिक अन्ध विश्वासों, नैतिक मानदण्डों और अभिजात्य वर्ग के अहम का सुला विरोध किया है। डॉ० इन्दुनाथ भट्टान के अनुसार "नागार्जुन ही शायद अकेले उपन्यासकार हैं, जिन्होंने समाजवादी बोध को सहज एवं अनायास रूप में आत्मसात किया है और वह बोध इनके पौर-पौर तथा रंग रंग से निःसृत है।" ¹ नागार्जुन नवयुक्तों में उभरती हुई सामाजिक चेतना को आंचलिक परिवेश की समृद्धता के साथ यथार्थवादी दृष्टिकोण से "नई पीढ़ी" उपन्यास में किया है। इस उपन्यास में सामंती मूल्यों के विरोध में और स्त्री समस्याओं जैसे अनमेल विवाह आदि का विद्रोह पूर्ण समाधान प्रस्तुत किया है। "प्रेमचन्द और उनके युगीन साहित्यकारों ने जहाँ अनमेल विवाह समस्या के समाधान का आदर्शवादी सुधारवादी प्रयास किया है, वहाँ नागार्जुन ने समाजवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण के आधार पर नई पीढ़ी का विद्रोह कराकर समाधान भी प्रस्तुत किया है जो वास्तव में एक आगे का कदम है।" ²

1. डॉ० सुरेश सिन्हा - हिंदी उपन्यास उद्भव और विकास - पृ० 510

2. डॉ० गोपाल कृष्ण शर्मा : मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास - पृ० 118

नागार्जुन की भाँति भैरवपुसाद गुप्त ने भी भारतीय ग्रामीण परिवेश के आधार पर उपन्यास सृजन किया। इन्होंने भारतीय किसानों की अभावों का साक्षात् चित्रण किया है। गाँवों होने वाले शोष, अत्याचारों का यथार्थ चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। "गंगा मेया", "जंजीरे और नया आदमी", 'सती मेया का चौरा' आदि उपन्यासों में गुप्त जी ग्रामीण पुरातनों में सामंतों, जमींदारों के द्वारा होने वाले शोष का चित्रण किया है। इसी प्रकार अपना प्रथम उपन्यास "मंजाल" में सर्वहारा के वर्गीय संघर्ष को पहली बार विस्तृत साम्यवादी चेतना के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया गया है। इसमें मजदूर वर्ग के संघर्ष एवं साम्यवादी चेतना को स्वर मिला है।

प्रेमचन्दोत्तर युग के समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासकारों में रागेय राघव भी एक है। समाजवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण के आधार पर इन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं जिनमें से प्रमुख हैं - 'घरादे' ॥ 1946 ॥ 'विषादम्' ॥ 1946 ॥, 'मूँ का टीला' ॥ 1948 ॥, 'सीधा सादा रास्ता' ॥ 1951 ॥ 'कब तक प्यार' ॥ 1957 ॥ आदि। "घरादे" में नारी समस्याओं को उजागर किया है। "जिसमें उसने ॥ लेखक ॥ समाजवादी चेतना के आधार पर पूँजीवादी व्यवस्था की विषमता तथा मध्यवर्गीय अहम को उजागर कर साम्यवादी व्यवस्था की ओर संकेत किया है।" 1 "विषादम्" उपन्यास में बंगाल का अकाल का यथार्थ परक चित्रण किया है। "सीधा सादा रास्ता" में सन् 1930 के सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है।

"रागेय राघव ने अपने उपन्यास "कब तक प्यार" ॥ 1957 ॥ में राजस्थानी और ब्रज प्रदेश की सीमा के ग्रामीण अंचल "बेर" के करन्टों ॥ अर्थात् ॥ के जीवन की समस्या को विस्तार के साथ उठाया है।" 2 इस उपन्यास

1. डॉ० गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास - पृ० 174

2. -वही-

-वही-

पृ० 192

में कर्मों के संबंध में रहे अनेक समस्याओं को उठाया गया है। और उसका समाधान मार्क्सवादी दृष्टि के आधार देने का प्रयास किया गया है।

4.1.2. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

मनोवैज्ञानिक धारणाओं के आधार पर यथार्थवाद का चित्रण होता है। इस कारण उपन्यासों में पात्रों के व्यापक वर्णन की जगह गहराई से वर्णन किया जाता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद मानव को पशुधर्मी स्वीकार करता है और उसके मन का विश्लेषण अधिक करता है। इस कारण साहित्य में कृत्स्न, धूर्णित तथा विकृत मन वालों का अधिक चित्रण हुआ है। विशेषतः उपन्यासों में। जिसके कारण परम्परागत सामाजिक, सांस्कृतिक आदर्शों को ठेस पहुंचा और पारिविक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला।

हिंदी उपन्यास साहित्य में जेनेन्दु कुमार, इलाचन्द जोशी, अश्वी आदि इस प्रवृत्ति के उपन्यासकार हैं।

जेनेन्दु की रचनाओं में 'परब' १९२०, 'सुनीता' १९३४, 'त्याग पत्र' १९३७, 'कन्याणी' १९३९, 'सुखदा' १९४८, 'विवर्त' १९५३, 'व्यतीत' १९५३ आदि प्रमुख उपन्यास हैं। 'परब' उपन्यास में मानसिक द्वंद्वों और मानसिक संघर्षों का सूक्ष्म अवलोकन किया है।

"सुनीता" में दार्शनिकता के आधार पर जीवन संघर्ष की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का चित्रण सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक यथार्थ के तरीके से हुआ है। त्यागपत्र में मृगाल के माध्यम से नारी जीवन की मनोविकसलेष्णात्मक अध्ययन हुआ है। इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में भी व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने

वाले मानसिक संघर्षों का वर्णन जैनेन्द्र के उपन्यासों में मिलता है। रामन्दरश मिश्र के अनुसार "जैनेन्द्र का व्यक्ति बहुत कुछ सामाजिक यथार्थ से निरपेक्ष एक विशिष्ट दायरे में घूमता हुआ दिखायी पड़ता है। कथा की दुनिया व्यक्ति मन के भीतर अधिक चलती है बाहर कम। इसीलिए घटना की स्थूलता, बहुलता और विविधता के स्थान पर उसकी सूक्ष्मता और स्वल्पता ग्रहीत होती है। सारा संघर्ष भीतरी होता है अर्थात् वह समाज के भीतर नहीं, व्यक्ति के मन के भीतर चलता है।"¹

इलाचन्द्र जोशी भी प्रख्यात मनोविश्लेषणवादो उपन्यासकार है। कहा जाता है कि "जोशी जी के पात्र व्यक्ति होते हैं किन्तु वे समाज से जुड़ते हैं - सामाजिक हित के लिए नहीं, बल्कि उनकी विसंगतियाँ उजागर करने के लिए उनके अहं का अनावृत करने के लिए, उनके आचरण के वैषम्य को दिखाने के लिए।"² जोशी के प्रमुख उपन्यास हैं 'सन्ध्यासी', 'पदों की रानी', 'पुत और छाया', 'निर्वासित', 'जिप्सो', 'जहाज का पंछी', 'लज्जा', 'मुक्तिपथ' आदि। "पदों की रानी" उपन्यास में वेश्या से भोग करने के लिए बाप बेटे - संघर्ष करते हैं। इसी वासना में बेटा इन्दुमोहन अपनी पत्नी शीला की हत्या कर देता है और वेश्या से अपमानित होकर आत्महत्या कर लेता है। "पुत और छाया" में हीनता ग्रिथि की विकृत अवस्था का व्यापक वर्णन किया गया है। "निर्वासित" में यौन कुष्ठा ग्रस्त व्यक्ति का चित्रण हुआ है। इसी समस्या को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रखकर अनेक समस्याओं

1. रामन्दरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्धानि - पृ. 90

2. -वही-

-वही-

पृ. 104

को उजागर किया है। "जिप्सी" में मनोविश्लेषणवाद और समाजवाद का अद्भुत समन्वय है और साथ में स्त्री चेतना का भी उजागर हुआ है। "जहाज का पंछी" में मध्यवर्गीय जीवन संघर्ष का चित्रण है।

हिंदी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद को प्रादुर्भाव देने वाले व्यक्ति अश्वेय है। इनके उपन्यासों में शेर : एक जीवनी [दो भाग 1941-44] नदी के द्वीप [1951], अपने अपने अजनबी [1961] प्रमुख हैं। "शेर एक जीवनी" में वैयक्तिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ देन माना गया है। "शेर : एक जीवनी" में "शेर का व्यक्तित्व अनेक व्यक्तित्वों के सम्पर्क में आकर उनके घात-प्रतिघात से कि प्रकार प्रभाव ग्रहण करता चलता है, विकसित होता चलता है, और उसकी संवेदनाएं किस प्रकार नये-नये आयामों को छूती चलती है, अपनी वेदना के भीतर से उसे कैसे जीवन का नया रस प्राप्त होता चलता है, इन सबका बड़ा ही सूक्ष्म और मार्मिक उद्घाटन हुआ है।" इस उपन्यास में व्यक्ति मन के सूक्ष्माति सूक्ष्म भावनाओं को अन्तर संघर्षों को उलझी हुई संवेदनाओं का बहुत मार्मिकता के साथ विश्लेषण किया गया है। "नदी के द्वीप" उपन्यास में यौन संबंधों का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

"अपने अपने अजनबी" में अस्तित्ववादी दर्शन के माध्यम से मनोविश्लेषण किया गया है। इस उपन्यास में दो अजनबी स्त्रियों का मानसिक संघर्ष का चित्रण हुआ है।

4.1.3. ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

ऐतिहासिक यथार्थवाद भी यथार्थ को परखने का एक आयाम है अतीत

की घटनाओं को यथार्थ दृष्टि से विवेचन करना ही ऐतिहासिक यथार्थवाद का उद्देश्य है। इस प्रवृत्ति के उपन्यासों में पात्रों से ज्यादा तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण अधिक होता है।

हिंदी में ऐतिहासिक यथार्थवाद के उपन्यासों की एक लम्बी परंपरा रही है। प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में भी इस प्रवृत्ति के उपन्यास अनेक आये हैं। ऐतिहासिक यथार्थवाद के आधार पर लिखने वाले उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, वृन्दावन लाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, भगवतीचरण वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामेय राघव आदि प्रमुख हैं।

जयशंकर प्रसाद प्रेमचन्द युग के उपन्यासकार होने पर भी उनका अंतिम उपन्यास जो ऐतिहासिक यथार्थवाद पर आधारित है, "हरावती" 1937 ई. प्रेमचन्दोत्तर युग में आता है। इस "उपन्यास में जीवन रस को सोखने वाले बौद्ध धर्म की कठोर, ठण्डी व्यवस्था, उष्मा को निगलने वाली उसकी खोखली अहिंसा नीति तथा विलासी कमजोर राजा के राज्य में उत्पन्न होने वाली अव्यवस्था, असुरक्षा के भाव, षड्यंत्र आदि का जीवन्त चित्रण हुआ है।"¹

इस युग के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा हैं। इन्होंने अनेक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। जिनमें प्रमुख उपन्यास हैं - 'गढ़ कुण्डार', 'विराट की पद्मिनी', 'कचनार', 'मुसाहबधु', 'लक्ष्मी बाई'

‘मृगनयनी’, ‘माधव जी सिंधिया’, ‘भुवन विक्रम’। “गढ़ कूण्डार” में मुख्य कथा छंगारों का नाश एवं बुन्देलों का कूण्डार पर आधिपत्य स्थापना ही है।¹ इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में भी ऐतिहासिक परिवर्तन में लिखे गये हैं। मृगनयनी उपन्यास में राजनीतिक और प्रेम का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में भगवतीधरण वर्मा कृत “चित्र लेखा” का भी महत्व है। इस उपन्यास में पाप और पुण्य का टंढ चलता है। इसकी कथा गुप्त काल का है। इसमें “सामन्ती भाँग - विलास, तरस्वियों का आधिपत्य, नर्तकियों का समाज में स्थान, उत्सवों में पुरुष और महिला वर्ग का अलगाव आदि बातें गुप्तकाल के अनुरूप ही हैं।²

राहुल सांकृत्यायन में सिंह सेनापति, ‘म्हूर स्वप्न’, ‘जय योधेय’ और ‘विन्मृत यात्री’ नामक चार उपन्यास लिखे हैं। “सिंह सेनापति” उपन्यास बौद्धकाल का है। डॉ० सक्का धवन का मत है -- “राहुल ने अपनी प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास कृति “सिंह सेनापति” में लिच्छवि गणतंत्र के सामाजिक जीवन की घटनाओं तथा पात्रों के आधार पर निजी दृष्टि विचारों को प्रकाशित किया है। उपन्यास में लेखक का व्यक्तित्व जो बुद्ध और मार्क्स के सिद्धांतों से प्रभावित है, नायक के चरित्र में प्रतिमूर्त होता है।³ जय योधेय उपन्यास योधेय गणराज्य का परिचय देता है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण है।

1. डॉ० रामदरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्दृष्टि - पृ० 188

2. -वही-

-वही-

पृ० 194

3. डॉ० सुक्का धवन - हिंदी उपन्यास - पृ० 366

आचार्य चतुरसेन शास्त्रीने अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं जिनमें वेगाली की नगर वधू, कथं रबीरामः और सौमनाथ प्रमुख हैं। वेगाली की नगर वधू में बौद्ध कालीन भारतीय गणतंत्र व्यवस्था का चित्रण किया गया है जो पतनोन्मुख थी। इसमें अम्बगालो की महिमा स्थापित की गई है और तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। "सौमनाथ" उपन्यास में महम्मद गजनवी के द्वारा सौमनाथ मंदिर ध्वंस होने की घटना है। "कथं रबीरामः" उपन्यास में "प्राग्दे" काल की कथाएं हैं।

यक्षपाल कृत "दिव्या उपन्यास" भी ऐतिहासिक यथार्थवाद पर आधारित है। किन्तु लेखक स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्त और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है।" "दिव्या" में बौद्ध कालीन कथा वस्तु है। उस समय समाज में व्याप्त शोषण प्रवृत्ति "दिव्या" पात्र के द्वारा उजागर किया गया है। दिव्या जो इस उपन्यास की नारी पात्र है, का शोषण दास प्रथा और सामंत प्रथा के सभी आचारायों से होता है। "यक्षपाल ने "दिव्या" में पतनोन्मुख बौद्धकालीन भारत के सामन्ती जीवन तथा समाज के वर्ग परक स्वरूप को समाजवादी दृष्टिकोण से अंकित करने का प्रयत्न किया है तथा यह दिखाने की चेष्टा की है कि हमारा अतीत जिसे हम प्रायः स्वर्ग समझ लेते हैं, वस्तुतः स्वर्ग नहीं है, उसकी वर्गमूलक समाज व्यवस्था में जन समुदाय का अधिकांश भाग जीवन की सुविधाओं से वंचित था और हतर जनों के जीवन का मुख्य अभिजात वर्ग के सुख का उपकरण मात्र था। अपने इस प्रयत्न में यक्षपाल को सफलता मिली है और "दिव्या" की कथा के माध्यम से तत्कालीन जीवन और समाज का चित्र अपने

अपने यथार्थ रूप में सजीव हो उठा है। ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि में भी लेखक को सज्जता मिली है और तत्कालीन जीवन पद्धति वेश-भूषा, धर्म - दर्शन, समाज व्यवस्था आदि के यथार्थ चित्रण से वह जीवंत बन सका है।¹

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के चार ऐतिहासिक यथार्थवाद संबंधित उपन्यास हैं - बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचन्द्र लुभ, पुनर्नवा और अनामदास का पौधा। संस्कृत के महाकवि एवं गजकार बाण भट्ट के चरित्र के आधार पर बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास लिखा गया है। "चारुचन्द्र लुभ" में मध्यकालीन भारत का समग्र चित्र प्रस्तुत किया गया है जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन हुआ। पुनर्नवा समुद्र गुप्त के काल का कथानक है जिसमें नारी के प्रति आदर सम्मान दिखाया गया है। अनामदास का पौधा में रेवत आख्यान है।

रांगेय राघव का "मूढ़ों का टीला" उपन्यास भी ऐतिहासिक यथार्थवादी रचना है। "इसमें मोहन जोदड़ों की संस्कृति और सभ्यता को उपन्यास का आधार बनाया गया है। श्रेष्ठ ईरान आदि से दास-दासियाँ क़य करते थे। दास - दासियों के साथ पशुओं का सा व्यवहार करते थे। दासियाँ उनकी सेवा भी करती थीं और उनकी पार्श्व कामनिप्ता की तृप्ति भी और फिर भी उनका जीवन नदी की धारा में बहते हुए तिनके सा कम्पित और अनिश्चित रहता था। लेखक ने इन विनासी व्यापारियों की घृषित वासना और अत्याचार का नंगा रूप अनावृत किया है।¹ इस उपन्यास में शोषण के विरुद्ध जनता का ज़िद्दोह दिखाया गया है।

4.1.4. प्रकृतवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

प्रकृतवाद ठाविन के विकासवाद पर आधारित है। एमिल "जोला" के अनुसार यह यथार्थवाद का सुधरा हुआ रूप है। "ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकृतवाद यथार्थवाद के बाद का आन्दोलन है वह यथार्थवाद का सुधारक और इसी का विकसित रूप कहा जाता है। जोला के सन् 1880-81 के लेखों में इसकी सर्वोत्तम व्याख्या उपलब्ध होती है।"¹ प्रकृतवादी उपन्यासकार यथार्थ के अतिवादी चित्रण में विश्वास रखते हैं। वे समाज को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का प्रयास करते हैं। किन्तु वे लोग समाज के कुत्सित, धृष्टित पक्षों का ही अधिक चित्रण करते हैं। "कहा जाता है कि प्रकृतवादी उपन्यासों के जनक "जोला" ने यह व्यवस्था दे रखी है कि लेखकों का धर्म है, वे जीवन के गन्दे से गन्दे और कुसूप से कुसूप चित्र खींचें। मनुष्य की नैतिक दुर्बलताओं, रोगों और विक्तियों का वर्णन करते समय उन्हें कहीं भी अंश छौड़ना नहीं चाहिए।"² हिंदी उपन्यासों पर भी प्रकृतवाद का प्रभाव पड़ा है। हिंदी के उपन्यासकार कुम्भवरण जैन, पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" तथा आचार्य "चतुरसेन शास्त्री" के उपन्यासों में इस वाद का प्रभाव देखा जा सकता है।

कुम्भवरण जैन के उपन्यासों में हम समाज के पीठित दलित लोगों का नाग्न चित्रण देख सकते हैं। इनके प्रमुख उपन्यास हैं - 'चम्पाकली', 'हिज हाइनेस', 'हर - हाइनेस', 'मयखाना' और 'तीन इक्के'। चम्पाकली उपन्यास में वैराग्य

1. डा० त्रिभुवन सिंह : हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. 54

2. डा० रामचन्द्र तिवारी - हिंदी गद्य - साहित्य - पृ. 131

के जीवन की अन्तर्वेदना, तथा व्यथा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। "हिज हाइनेस" उपन्यास "शिव को दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है, पर उन्होंने समाज की गंदगी का, यौन संबंधी समस्याओं का और इसी प्रकार अन्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण जिस सफाई से किया है, वह उल्लेखनीय है।" "हर हाइनेस" में भारतीय नरेशों का विलासिता का वर्णन व्यापक स्तर पर किया गया है। मयखाना और तीन इसके उपन्यासों में शराब के तुर्गुनों का रहस्योद्घाटन और जुआ के तुष्यरिणाम की चर्चा हुई है।

पाण्डेय ब्रह्म शर्मा "उग्र" के उपन्यासों में भी हमें प्रकृतवाद की झलक दिखाई पड़ती है। उनके 'सरकार तुम्हारी, आँखों में और जीजी जी/ मे हम प्रकृतवाद के लक्षणों को देख सकते हैं "सरकार तुम्हारी आँखों में" उपन्यास में धर्मपुर के महाराजा मदन सिंह की विलासिता, कामुकता और ऐयासी का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। "जीजी जी" एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें अनमेल विवाह के दृष्यरिणामों का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में व्यभिचारी पुरुष का नारी के प्रति दुर्व्यवहार करने का चित्रण यथार्थता के साथ किया गया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के कुछ उपन्यासों में भी प्रकृतवादी लक्षणों को देख सकते हैं। मूलतः ऐतिहासिक रचनाकार होने पर भी एक दो सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। इनके सभी उपन्यासों में आंशिक रूप से प्रकृतवादी विचार धारा दिखाई देता है। "लैक अवे को मानवता का नहीं, मानव का पूजारी मानता है और वे क्षुब्ध, पापी, अपराधी, सूनी, डाकू - हत्यारे, व्यभिचारी तथा पागल मनुष्यों को अपना देवता मानते हैं। मनुष्य के प्रति यह दृष्टि भी

1. डॉ० रामशोभिन्द्र प्रसाद सिंह - हिंदी उपन्यास: प्रेमचन्दोत्तर काल

है। उपेक्षित मनुष्य मनुष्य के भीतर सौन्दर्य देखने की यह पुवृत्ति नवीन युग की देन है। शास्त्री जी ने आधुनिक जीवन मूल्यों से प्रेरित होकर एक और हमारे इतिहास की कुलीन और धर्मोच्चैः कहीं जाने वाली सभ्यता और मान्यता की कल्पना और विभत्सता को उद्घाटित किया है, दूसरी और उपेक्षित, क्षुण्ण, पापी, मनुष्यों के भीतर सौन्दर्य देखा है। शास्त्री जी इसलिए अश्लीलता की परवाह न करते हुए या उसे अश्लीलता न मानते हुए एक वस्तु को पुक्त रूप में सुनने देते हैं।¹

4.1.5. अतिथयार्थवाद और पुष्ट उपन्यासकार :

अतिथयार्थवाद का जन्म भी फ्रांस में ही हुआ। "अतिथयार्थवाद का प्रयोग ओपलेनियर के सिद्धांतों के आधार पर ऐसी सत्ता के अर्थ में किया गया, जो दृश्यमान वास्तविकता से परे हो। इसकी पुवृत्ति अधिकांश रूप में मानसिक विकृतियों से सम्बद्ध है।"² इसका कारण यह है कि प्रथम विश्व युद्ध की विभीषिका के कारण मनुष्य में निराशा, कष्ट, धृष्ट की भावनाएं उत्पन्न हुए। ये भावनाओं के कारण मनुष्य यथार्थ का जो चरम अभिव्यक्ति पुक्तवाद में देखा था। उसका चरम अभिव्यक्ति अति यथार्थ के रूप में देखने लगा। वस्तुतः "अतिथयार्थवाद प्रथम महायुद्ध - जनित विभीषिका का पुतिपालन था। महायुद्ध - जनित, विश्रुतता से उबकर नवीन लेखकों के नग्न यथार्थ से दूर हटकर एक स्वप्नों की दुनिया बसाने का प्रयत्न किया था। ये भगनाशा मग्न मन व्यक्ति कठोर यथार्थवाद का आघात सहन न करके मन के रहस्यमय गहवारों में पुवृष्ट होकर सुष्टि के

1. डॉ० रामदरश शर्मा : हिंदी उपन्यास : एक अंतर्धाना - पृ० 198

2. डॉ० सुरेश सिन्हा : उपन्यास - शिल्प और पुवृत्तियाँ - पृ० 176

उपादानों को दूढ़ने का प्रयत्न करने लगे थे ।¹ अतिथयार्थवादी उपन्यासकार सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों में विश्वास न रखकर समाज में व्याप्त असंगतियाँ, विद्वताप, और कृपताओं का चित्रण व्यापक रूप से करता है ।

हिंदी साहित्य में अतिथयार्थवादी उपन्यासकार नहीं है । आचार्य चतुरसेन शास्त्री और पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" जैसे उपन्यासकारों के उपन्यासों में अंशतः इस प्रवृत्ति को परिलक्षित किया जा सकता है ।

4.1.6. आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यासों में जीवन का यथार्थ चित्रण किया जाता है और अन्त में एक आदर्श को प्रस्तुत किया जाता है अर्थात् इस प्रवृत्ति के उपन्यासों में जीवन के और समाज के ब कट से कट परिस्थितियों का वर्णन तो किया जाता है किन्तु भविष्य के प्रति आस्था भी रखा जाता है । इसलिए उपन्यासों में दृष्ट पात्रों का भी हृदय परिवर्तन अन्त में करके एक आदर्श को स्थापित किया जाता है ।

हिंदी उपन्यास साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी प्रवृत्ति प्रेमचन्द पूर्व युग से ही है । प्रेमचन्द के काल में एतना विकास और परमात्कर्ष भी हुआ । स्वयं प्रेमचन्द ने भी अपने आरंभिक उपन्यासों में इस प्रवृत्ति को उभारा है । प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों, जो प्रेमचन्द के परम्परा के हैं - में भी यह प्रवृत्ति दिखायी देती है । इस काल के प्रमुख आदर्शोन्मुख

यथार्थवाद उपन्यासकार है - भगवती चरण वर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौत्सिक", भगवती प्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल नागर, उषा देवी मिश्रा आदि ।

4.1.7. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

आलोचनात्मक यथार्थवाद उपन्यास की न केवल समाज में व्याप्त विकृतियों और विसंगतियों का चित्रण करने प्रेरित करता है बल्कि उसकी आलोचना भी करता है । इस वाद की विशेषता यह है कि यह किसी विशेष विचारधारा पर आधारित नहीं है जैसा कि अन्य यथार्थवादी धाराएं हैं । यह मात्र उपन्यासकार की ज्ञान, दृष्टि और अनुभव पर आधारित रहती है । इसीलिए उपन्यासकार स्वतंत्र रूप से समाज उसे जो विकृति, कुत्सित और विसंगति लगा उसका चित्रण यथार्थ के साथ करते हुए उस पर आलोचनात्मक व्यंग्य प्रहार भी करता है ।

हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक यथार्थवाद का आरंभ प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासों से हुआ है । "गोदान" उपन्यास इस प्रवृत्ति का सशक्त उदाहरण है । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में भी इस वाद का पुनर्जनन हुआ है । इस धारा के प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रमुख उपन्यासकारों में उषा देवी मिश्रा, अमृतलाल नागर, रामेय राघव, भगवती चरण वर्मा आदि हैं ।

4.2. साठोत्तरी उपन्यास युग [सन् 1960 - 1980]

हिंदी उपन्यास साहित्य में साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों का विशिष्ट स्थान है । इस काल के उपन्यासों में समाज का चित्रण अधिक नज़दीकी से

हुआ है। अतः इस काल के उपन्यासों में यथार्थ तादात्म्य हो गया है। उपन्यास की संरचना में कल्पना का महत्वपूर्ण योग रहता है। इस काल के उपन्यासों में कल्पनात्मक भावनाएं भी यथार्थ के साथ ही रही हैं। अधार्थ इस काल के उपन्यासों की सृजनशीलता का मूल आधार यथार्थ ही रहा है।

साठौत्तर युग के पूर्व हिंदी उपन्यासों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द पूर्व काल में उपन्यास यथार्थ को आधार बनाकर लिखने पर भी उसे यथार्थवादी उपन्यासों की कोटि में नहीं रख सकते क्योंकि उसमें यथार्थ से ज्यादा आदर्श, सुधारवादी, नीतिरसक, उपदेशात्मक कथा वस्तुओं का गुंजन रहता था। किन्तु उपन्यास के इतिहास के दूसरे चरण में अर्थात् प्रेमचन्द युग में उपन्यासों में यथार्थ को समुचित स्थान मिला। फिर भी इस युग के उपन्यासों से आदर्शवादी, सुधारवादी धारणाएं पूरी तरह से छूट नहीं पायीं। उपन्यास के इतिहास के तीसरे चरण - प्रेमचन्दौत्तर काल 1937 - 1960 में उपन्यास क्षेत्र से आदर्शवाद का लगभग सफाया हो गया और यथार्थवाद का पूरी तरह से उपन्यास पर वर्चस्व हो गया। इस प्रकार यथार्थवाद का वर्चस्व बनने के पीछे प्रगतिवाद और प्रयोगवाद जैसे तत्कालीन साहित्यिक विचार धाराओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त अनेक पारचात्य विचार धाराओं का प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ने के कारण उपन्यास क्षेत्र में यथार्थवाद का महत्व और अधिक होने लगा।

साठौत्तर 1960 - 1980 के काल में यथार्थवाद अपनी पूरी शक्ति के साथ उपन्यास साहित्य को आपरित कर दिया। वह उपन्यास का सामाजिक संवेदनाओं का चित्र बना दिया।

उपन्यास साहित्य में जैसे जैसे यथार्थ का महत्व बढ़ने लगा वैसे वैसे यथार्थ को देखने की वैचारिक दृष्टि भी भिन्न भिन्न होती गई। इसी के परिणामस्वरूप इस काल में सामाजिक परिस्थितियाँ, व्यक्ति संवेदनाओं का चित्रण होने लगा जो आज तक साहित्यिक उपन्यास क्षेत्र के लिए अछूता रहा। इस काल के उपन्यासों की यही विशेषता है कि इस से पूर्व उपन्यासों में यथार्थ का स्वभाव फैलता जा रहा था अर्थात् यथार्थ व्यापक होता जा रहा था। किन्तु इस काल में यथार्थ का रूप अधिक गहराई की ओर जा रहा है। इसी कारण आज तक का उपन्यास पहले की अपेक्षा अधिक संश्लिष्ट होता जा रहा है और उसका यथार्थ स्थूल नहीं बल्कि सूक्ष्म होता जा रहा है। प्रख्यात भौतिकवादी दार्शनिक कार्ल मार्क्स का कहना है कि सामाजिक व्यवस्था की गति सरलता से विलुप्तता की ओर बढ़ती जाती है। आज आदिम साम्यवाद से पूँजीवादी व्यवस्था की ओर समाज बढ़ रहा है। इस पूँजीवादी सभ्यता की विशिष्टता यह है कि पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को औद्योगिकरण पर निर्भर किया। जिसके कारण सामाजिक ढाँचा जो अब तक दो वर्गों - उच्च वर्ग और निम्न वर्ग - में विभाजित था अब तीन वर्गों में परिवर्तित हो गया। मध्य वर्ग का जन्म हुआ। मध्यवर्ग एक ऐसा वर्ग है जिसका जीवन बहुरूपी होता है और इसने आयाम होते हैं कि अन्य किसी वर्ग में नहीं होते। इसी कारण उपन्यासों में यथार्थ का गहराई से अनुशीलन इसी वर्ग के माध्यम से हुआ है।

साठौत्तरी उपन्यास पर तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव भी पड़ा है जिसके फलस्वरूप उपन्यास की कथावस्तु और भी संविष्ट होता गया। सन् 1960 ई० के

के बाद सभी दृष्टियों से जनता का मोहभंग होने लगा । जिसके कारण जनता में एक प्रकार से खोखलापन जन्म लिया । अंग्रेजों ने ही लिखते हैं कि -बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एक अजीब, असंतोष, अविश्वास, अस्वीकार, बौद्धिक तथा वैचारिक संघर्ष, मानसिक कलमकलम और परंपरागत जीवन पद्धति के खोखलेपन के एहसास का जन्म दाता है ।¹

इस प्रकार मनुष्य में अनेक मानसिक विकृतियों का जन्म होने लगा । स्वाधीनता के बाद देशीय राजनैतिक परिस्थितियों में स्वार्थ, भ्रष्टाचार और सत्तालोलुपता आदि बढ़ने के कारण देश में अनुशासनहीनता, नैतिक मूल्यों का पतन और देश के प्रति समाज के प्रति आस्था उठने लगा । जिसके कारण मध्यवर्गीय जनता और निम्नवर्गीय जनता संकटों में धुलसने लगी और उनका आकुंचन सने वाला कोई नहीं रहा । ऐसे परिस्थितियों में युवा साहित्यकारों ने उपन्यास क्षेत्र में आगमन किया । जिन्होंने समाज का चप्पा चप्पा छाना था जिसके कारण उनके उपन्यासों में युवापीढ़ी का मोहभंग, आक्रोश और विद्रोह दिखाई देता है । इस प्रकार ... सन् साठ के बाद साहित्य में उपन्यास में एक प्रकार का सामाजिक विद्रोह का भाव जागृत हुआ । "यह जो विद्रोह साहित्य में आया उसमें उतावलेपन की स्तर कम परन्तु ठोस इरादे अधिक हैं । यह विद्रोह संपूर्ण बौद्धिक, मानसिक तथा भावनात्मक शक्ति के साथ उजागर किया गया है । अर्थात् इसमें भी कोई संदेह नहीं कि कुछ युवा साहित्यकारों का विद्रोह महज परिपक्व विद्रोह न होकर असहायता के परिणामस्वरूप उत्पन्न लिए आक्रोश मात्र ही होता है । लेकिन सांस्कृतिक रूप से देखने पर इन युवा साहित्यकारों का विद्रोह एक संशक्त विचारधारा की भूमि पर उठा हुआ पाया जाता है ।"²

1. हिंदी विभाव - एने विद्यापीठ - साठोत्तर हिंदी साहित्य का
परिचय - पृ. 54

2. -वही- पृ. 55

इस युग के उपन्यासकार तत्कालीन समाज का पूरा अनुशीलन करने के कारण वे यथार्थ के व्यक्तित्व बोध, भावबोध, युगबोध और नये संवेदन के धरातल पर देखने का प्रयास किया। इसके कारण इस काल के उपन्यासों में यथास्थिति के स्थान पर संघर्ष और विद्रोह का आह्वान हुआ है।

इस युग के उपन्यासकार यथार्थ का अनुभव पुरस्कारों के माध्यम से नहीं बल्कि स्वयं अनुभव किया और स्वयं विसंगतियों तथा विद्रुपताओं को भोगा। "इसलिए ये उपन्यासकार अनुभूति के छिसे-पिटे रूप को अस्वीकार कर देते हैं और युगीन यथार्थ एवं ईमानदार अनुभूति के असली रूप को स्वीकारते हैं। आज का उपन्यास इतनी विभिन्न दिशाओं की और नये प्रयोगों के साथ बढ़ रहा है क्योंकि समय बदल चुका है तथा युग की मांग भी बदल गई है। इसलिए साठौत्तर हिंदी उपन्यास अपने पूर्ववर्ती परंपरागतमान्यताओं, मूल्यों तथा जीवन गत समस्याओं के साथ वहीं नहीं रुका प्रत्युत उससे बहुत आगे, बहुत आगे बढ़ गया है।"¹

इस काल के उपन्यासकारों की यह भी विशेषता है कि उन्होंने किसी विचारधारा, वाद या शैली को कभी साध्य नहीं माना बल्कि साधन मात्र माना। इसलिए "इन उपन्यासकारों पर न तो पूर्ण रूप से मार्क्सवादी तत्व लिपटे हुए हैं, न फ्रायड, एडलर, युंग आदि के सिद्धांतों की हूब-हू परत चढ़ी है और न तो ये अतिप्रभार्थवाद, प्रकृत्ववाद, अस्तित्ववाद, समाजवाद आदि के आवरण से पूर्णतः आवेष्टित हैं। साठौत्तर उपन्यासकार भी अर्थ तथा काम के आधार पर राजनीतिक, सामाजिक

1. साठौत्तर हिंदी साहित्य का परिप्रेक्ष्य - सं० हिंदी विभाग, पुणे विश्वविद्यालय - पृ० 55 - 56

ऐतिहासिक एवं यथार्थवादी आदि विविध विषयों पर उपन्यास की रचनाएं कर रहे हैं परन्तु यह पुराना पारंपरिक वर्गीकरण आज के संदर्भ में कोई अर्थ नहीं रखता । साठौत्तरी युवा उपन्यासकारों ने अपनी चिकित्सक बौद्धिकता से इन सबका अनुशीलन तो किया है किन्तु उसे पचाकर विशुद्ध बौद्धिक स्तर पर अपनी सर्वथा अलग शैली में उसे स्थापित किया है । इस अर्थ में साठौत्तरी उपन्यास बौद्धिकता से विशुद्ध बौद्धिकता की ओर अग्रसर हो रहा है ।¹

साठौत्तरी उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए डॉ० दंगल क्रान्टे लिखते हैं कि "उपन्यास का अब यह उद्देश्य माना जाने लगा है कि उसके माध्यम से मनुष्य का अपने भोगों² हुए यथार्थ से साक्षात्कार हो और प्रकृति, परिवेश, सामाजिक व्यवस्था तथा अंतरंग भावना के बीच नया अर्धपूर्ण सामंजस्य स्थापित हो सके । यह उपन्यास अब समाज के वर्ग से हटकर व्यक्ति तथा उसकी अंतःचेतना के अत्यधिक प्रधानता दे रहा है । व्यक्ति और उसकी सूक्ष्म मानसिक जटिलताएं, समस्याएं अथवा विशिष्ट चेतना साठौत्तरी उपन्यास का लक्ष्य है ।"²

वस्तुतः संपूर्ण साठौत्तरी उपन्यास साहित्य यथार्थवाद पर आश्रित है । इसकाल के उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण संविष्ट और सूक्ष्म भावनाओं पर आधारित है । इसी प्रकार यथार्थवाद के कई आयाग होने पर भी इस काल के उपन्यासों में किसी में भी किसी एक आयाग का आधिक्य

1. साठौत्तर हिंदी साहित्य का परिप्रेक्ष्य - सं० हिंदी विभाग पुणे

पृ० 56

2. -वही-

पृ० 56 - 57

या महत्व दिखाई नहीं देता । कारण स्पष्ट है कि यथार्थ का चित्रण सामाजिक परिवेश के सूक्ष्ममातिसूक्ष्म विषयों पर हो रहा है । कभी - कभी एक उपन्यास में एक से अधिक यथार्थवाद के आयाम उजागर होकर सामने आते हैं । ऐसे समय में किसी उपन्यास में किसी यथार्थवाद के आयाम का अधिक्य है कह कर नहीं कहा जा सकता । अतः यहाँ पर इस काल के चर्चित उपन्यासों का विवेचन करेंगे ताकि इस काल के उपन्यासों में यथार्थवाद का चित्रण किस रूप में हुआ है स्पष्ट हो सके ।

4.2.1. समाजवादी यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

साठोत्तरी उपन्यासों में सामाजिक उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है । जिसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है । विशेषतः सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप विकसित हुआ मध्यवर्ग को केन्द्र में रखकर उच्च और निम्न वर्गों का विवेचनात्मक विवरण किष्ट होने के कारण इसका सैद्धांतिक पक्ष को उलग नहीं देख सकते । अतः यथार्थवाद विभिन्न आयामों का सम्मिश्रण इन उपन्यासों में मिलता है ।

इस काल के प्रमुख समाजवादी यथार्थवादी उपन्यास हैं - अमृतराय, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, श्रीलाल शुक्ल, भीष्म सहानी, महीप सिंह, मोहन राकेश, हिमांशु जोशी, जगदम्बा पुसाद दीक्षित, काशीनाथ सिंह, राजेन्द्र खवस्थी, यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" और धीरेन्द्र "अस्थाना" ।

इस काल में समाजवादी यथार्थवाद को उपन्यासों में स्थान देने वाले सशक्त रचनाकारों में अमृतराय का स्थान महत्वपूर्ण है । जिनका "बीज"

उपन्यास हिंदी साहित्य का अमर कृति रहा है। इसी प्रकार वाराणसी को केन्द्र में रखकर देश में व्याप्त निराशा, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार आदि को "धुआ" उपन्यास के माध्यम से चित्रित किया है। चाहे "बीज" हो या चाहे "धुआ" अमृतराय ने सामाजिक समस्याओं को उठाया है किन्तु उनका औपन्यासिक विन्यास पारम्परिक और स्मार्ट है। प्रगतिवाद की स्थूलता उनमें प्रमुख हो उठी है, अन्तरंग गहरे भाव - आवर्त कम ही आ पाये हैं।¹

कमलेश्वर "एक सड़क सत्तावन गलियाँ" उपन्यास में एक कस्बे की जिन्दगी के अनेक विसंगतियों, समस्याओं का चित्रण समाजवादी यथार्थवादी ढंग से किया है। इस में उपन्यास में उस कस्बे में रहने वाले लोगों के अनुभवों को उपन्यास जीवंतता प्रदान की है। राजेन्द्र यादव कृत "उछटे हुए लोग", उन देखे अनजान पल" उपन्यास भी प्रमुख है। "उछटे हुए लोग" में लंपट, पूँजीवादी नेता देशबन्धु के काले कारनामों पर युवा पीढ़ी के लोगों के माध्यम से प्रहार किया गया है और युवा पीढ़ी के सुन्दर भविष्य के प्रति विश्वास व्यक्त किया है।

श्रीलाल शुक्ल साठौत्तरी हिंदी उपन्यास के एक सशक्त रचनाकार है जिन्होंने "राग दरबारी" की रचना करके तत्कालिन साहित्यिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि राजनैतिक क्षेत्र में भी शौर मचाया था। "रागदरबारी" के कथ्य के संदर्भ में स्वयं उपन्यासकार लिखते हैं "रागदरबारी का संबंध एक बड़े नगर से कुछ दूर असे हुए गाँव की जिन्दगी से है जो पिछले बीस

वर्षों की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने धिस्त रही है। यह उस जिन्दगी का दस्तावेज है।¹

भारत विभाजन के समय भूखे साम्युदायिक दंगों पर आधारित भीष्म साहनी की रचना "तमस" है। इसमें लेखक ने भारत विभाजन के कारणों और उत्पन्न हुई स्थितियों के संबंध में ब्यापार पुस्तुत किया है।

मोहन राकेश का "अंधेरे बन्ध कमरे" नयी दिल्ली के अभिजात जीवन पर आधारित उपन्यास है। इनका अन्तिम उपन्यास अन्तराल व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के सम्बन्धों को उद्घाटित करता है।

जगदम्बा पुसाद दीक्षित कृत "मुरदा घर" में नियाँन लाइट से जगमगा सफ़ेद इमारतों वाली सफ़ेदपोश बस्ती के कॉन्स्ट्रुट में बम्बई की एक गंदी, घिनौनी, संडास से भरी हुई बापखट्टी की सच्ची यथार्थ तस्वीर को लेखक ने इस सूजी से उभारा है कि हमारे सभ्य समाज की परत दर परत खुलती गई है और वह अपने नग्न स्वस्थ के साथ चेतना की संवेदनशीलता के कठघरे में आकर उपस्थित हो जाता है।²

राजेन्द्र अवस्थी कृत "बीमार शहर" में बम्बई की अकैलेयन की चित्रण किया गया है "इस उपन्यास में भी सेक्स व्यापार के प्रति बढ़ते हुए आकर्षण का मूल कारण व्यक्ति की आत्मकीन परिस्थितियाँ हैं। इसका एक दूसरा कारण आर्थिक अभाव भी है। लैभ के व्यक्तिकरण से सामाजिक

1. श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी : लेखकीय वक्तव्य.

2. डॉ० वास्कान्त देसाई - साठोत्तर हिंदी उपन्यास - पृ० 163

जीवन में व्यक्तित्वम उपस्थित होता है। वैभव एवं जीवन यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं के अभाव में देह व्यापार आवश्यक धर्म हो जाता है। इसमें नारी देह के व्यापार का मर्मस्वर्णी चित्रण मिलता है।¹

“एक और मुख्य मंत्री” श्री यादवेन्दु शर्मा “चन्दु” का उपन्यास है जिसमें स्वतंत्रता के पश्चात् देश की राजनीति में होने वाले मूल्यों का ह्रास का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, स्वार्थरता, राष्ट्र-द्रोहिता, दल-बदल राजनीति की विठम्बनाओं पर यथार्थ चित्रण किया गया है। इसी उपन्यासकार का “हजार घोटों का सवार” उपन्यास में शोषित एवं दलित वर्ग की समस्याओं का समग्र चित्रण किया गया है। धीरेन्दु अस्थाना कृत “समय एक शब्द भर नहीं है” उपन्यास में “युवापीढ़ी के जन आन्दोलन तथा युवा पीढ़ी के नक्सली आन्दोलन और सत्ता का अधापन दर्शाया गया है। आज के जीवन में भ्रष्ट राजनीति के दबाव से नयी पीढ़ी किस तरह तबाह हो रही है, इसमें मुख्यतः वर्णित किया गया है।² महीप सिंह का “यह भी नहीं” उपन्यास भी बम्बई के युवापीढ़ी पर आधारित यथार्थ रचना है।

इस युग में लिखने वाले अन्य लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं -
लक्ष्मीनारायण लाल, नरेश मेहता, अमृतलाल नागर, गुलेश्वर शानी, निर्मलवर्मा,

1. डा० रामविनायक सिंह - आठवें दशक के हिंदी उपन्यास - पृ० 27

2. कृष्णकुमार बिस्सा “चन्दु” - साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना - पृ० 24

गिरिराज किशोर, गिरीश अस्थाना, गोपाल उपाध्याय, राही मासूम रजा, विष्णुपुभाकर, पुभाकर माधवे, मन्मथनाथ गुप्त, राज कमल चौधरी कृष्णा सोबती, जगदीश चन्द, डा० रामदरश मिश्र, उषा प्रियंवदा, शिवानी बदी उज्जमा ।

लक्ष्मीनारायण लाल कृत "बड़ी चम्पा, छोटी चम्पा" उपन्यास वैश्या जीवन के संदर्भ में उत्पन्न होने वाले सामाजिक विसंगतियों को बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है ।

नरेश मेहता कृत "यह पथ बन्धु था" उपन्यास में मध्यवर्ग के टूटते हुए व्यक्ति की यातनाओं को उजागर किया है । अमृतलाल नागर अपने उपन्यास अमृत और विष, बूंद और समुद्र आदि उपन्यासों में मध्यवर्ग की विसंगतियाँ और युवा वर्ग की त्रासदियों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर हुआ । इसी प्रकार "नाच्यो बहुत गोपाल" नामक उपन्यास में अश्रुत समस्या को उठाया गया है । गुलशैर शानी "काला जल" नामक उपन्यास में मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवारों के समस्याओं को उठाया गया है । "यह उपन्यास आज के जीवन पुरानों, मूल्य संबंधों और निरंतर सामाजिक संबंधों के बदलाव की चेतना को स्थापित करने के स्थान पर अपने को पारिवारिक समस्याओं तक सीमित रखता है और इन परिवारों का टूटना किसी भी तरह आज के परिवारों की नयी पुरानी पीढ़ियों के संबंधों और उनकी चेतना की टकराहट का प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि जो कि इसमें तीन पीढ़ियाँ आई है ।"

"वे दिन" उपन्यास में निर्मल वर्मा "यूरोप की महायुद्धोत्तर नयी दिशा - हारा पीढ़ी के संश्रय, छूटन, तनाव, मूल्यहीनता अर्थहीनता और उसके रीतापन को स्थापित करने वाला उपन्यास है । शीर्षक से

ही यह बोध हो जाता है कि उसका सम्बन्ध पात्रों के अतीत से है, परन्तु यहाँ पात्रों की दृष्टिपूर्ण नियति यह है कि अतीत "सावन धन सघन बरसते" वाला न होकर, युद्ध की अभिभाप्त छाया से जुड़ा हुआ है। युद्ध की इस छाया से प्रत्येक पात्र आक्रान्त है। युद्ध न केवल कुछ लोगों को खत्म कर देता है, प्रत्युत अपने पीछे एक काली विषाक्त अवसाद में डूबी हुई शान्ति को छोड़ जाता है, जिसे भोगने वाले व्यक्ति जीवित होते हुए भी संवेदना के स्तर पर मूर्तों के समान होते हैं।¹ गिरिराज किशोर द्वारा रचित "लोग" उपन्यास में कुछ विशिष्ट लोगों की कहानी है "जो भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति की संभावना के समय असुरक्षा अनुभव करते हुए अपने छूटते हुए वर्तमान और अदृश्य भविष्य के बीच लटक रहे थे।"²

गिरिश अस्थाना के उपन्यास "धूप छाहीं रंग" दो छण्डों में विभक्त महाकाव्य उपन्यास है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की अनुभूत गाथा पेश करता है। पहले छण्ड में युद्ध की विभीषिका का चित्र है, दूसरे में शान्त सुविधापूर्ण जीवन की विसंगतियाँ चित्रित की गई हैं।³

"एक टुकड़ा इतिहास" में गोपाल उपाध्याय अछूतों की समस्या को उठाया है। हरिजनों की मुख्य समस्या आर्थिक है या सामाजिक? इस प्रश्न पर विचार किया गया है। इसके साथ साथ समाज में हरिजनों की दशा पर भी प्रकाश डाला गया है।

1. डॉ० पास्कान्त देसाई - साठौत्तरी हिंदी उपन्यास - पृ० 149-150

2. डॉ० रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अंतर्दृष्टि - पृ० 166-167

3. -वही-

-वही-

पृ० 169-170

राही मासूम रजा का "कटरा बी आजू" उपन्यास आपात्काल की घटनाओं पर आधारित है ।

विष्णु पुभाकर का उपन्यास "कोई तो" मध्यवर्ग की यौन नैतिकता का पुरन उठता है "दरसल यह उपन्यास नारी प्रधान है । इसमें समाज और पुरुष से प्रताडित अनेक नारियों की व्यथा कथा है और उसके माध्यम से पुरुष समाज के कुरूप चेहरे पर से नकाब हटाया गया है । पुरुषों की यौन पिपासा और नकली नैतिकता के आतंक से बरबाद की गयी कितनी औरतें यहाँ से वहाँ तक बिबरी है ।"।

डा० पुभाकर माचवे के कई उपन्यास हैं जिनमें प्रमुख है, "जो" 'किसलिये' 'साँचा' आदि । "जो" अमरीकी नीग्रो जाति की जीवंत चित्रण है । 'किसलिये' में मध्यवर्ग की मानसिकता को दर्शाया गया है और 'साँचा' में मशीनीकरण के कारण मनुष्य का अतमून्य किस प्रकार हो रहा है बताया गया है ।

मन्मथनाथ गुप्त आई सी एस अफसरों का देश के प्रति गह्वारी वगेरा कारनामों को "शहीद और शोहदे" नामक उपन्यास में बहुत ही स्पष्ट रूप से पदार्पण किया है । राजकमल चौधरी के उपन्यास "नदी बहती थी", शहर था शहर नहीं था, देहगाथा और मछली मरी हुई यौनाचार के समस्याओं पर आधारित है ।

"धरती धन न अपना" पुस्त्यात पुगतिजीन उपन्यासकार जगदीश चन्द का है । "इसमें लेखक ने पंजाब के एक छोट्टे से गाँव "घोडेवाहा" को केन्द्र

में रखकर सदियों से पुताडित, साधनहीन, पराश्रित, भाग्यवादी, अपद "बमार" जाति के जीवन का ऐसा अन्तरंग चित्रण किया है कि वह भारत के करोड़ों हरिजनों के जीवन का सच्चा दस्तावेज बन पड़ा है ।¹

डा० रामदरश मिश्र का उपन्यास "जल टूटता हुआ" का मूल कथ्य स्वातंत्र्योत्तर मोह भग की अवस्था है । उपन्यासकार भूमिका में लिखा है - "स्वाधीनता प्राप्त के पश्चात् भारतीय गाँव के संबंधों तथा मूल्यों के तनाव विघटन और उसके जीवन संघर्ष एवं व्यथा की कथा क है - "जल टूटता हुआ" । इसका भू-भाग वही कठार अंचल है जो पानी के प्राचीर [पृथम उपन्यास] का है, किन्तु समय की चेतना दोनों को अलगती है । इनके पात्र, इनकी कथाएं, इनकी चेतना और संरचना सभी अपने-अपने हैं । समय के फलक पर इन्हें एक भू-भाग का पूर्वाह्न और उत्तराह्न कहा जा सकता है, किन्तु अपनी अपनी सत्ता में सर्वथा स्वतंत्र ।² "सूखता हुआ तालाब" डा० रामदरश मिश्र का ग्राम्य जीवन के टूटते मूल्यों एवं यथार्थ को व्यंग्यार्थ से सम्योक्ति करने वाला प्रतीकात्मक लघु उपन्यास है ।³

इसी प्रकार बंदी उज्जमा का एक घृहे की मौत, उषा प्रियंवदा का "स्कोगी नहीं राधिका", शिवानो का कृष्णा कली, कृष्णा सोबती का "मित्रों मरजानी" प्रमुख उपन्यास हैं ।

4.2.2. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

इस काम के कुछ उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का प्रभाव अधिक रहा है । ऐसे उपन्यासों में अक्षय का अपने अपने अलनबी [1961]

1. डा० पास्कान्त देसाई - साठौत्तरी हिंदी उपन्यास - पृ. 97

2. -वही- -वही- पृ. 92

3. -वही- -वही- पृ. 95

रांगेय राधव का 'पतञ्जर', डाँठ देवराज के 'अजय की डायरी' 1960 और 'दोहरी आग की लपट', कमलेश्वर के "वही बात" और 'ठाक बंगला', धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता', 'हुबले मस्कूल', लक्ष्मीकान्त वर्मा का 'तीसरा पुसंग', मन्नु भंडारी का 'आपका बंटी' और मृदुला गर्ग का "उसके हिस्से की धूस" आदि प्रमुख हैं।

इन उपन्यासों में मनुष्य के अन्तःचेतना के संवेदनाओं का चित्रण हुआ है। अज्ञेय अपने उपन्यास अपने अपने अजनबी में मृत्यु भय का मानसिक तनाव का चित्रण बहुत ही सशक्त रूप से किया है। "विवाह संबंधों में आधुनिक प्रगतिशील दृष्टिकोण के मान्यता दी जाने लगी है। नारी पुरुष के सह जीवन तथा उन्मुक्त दृष्टिकोण को मान्यता दी जाने लगी है। रांगेय राधव के "पतञ्जर" में प्रेम विवाह के क्षेत्र में स्वतंत्र अधिकार की आकांक्षा व्यक्त की गई है।" डाँठ देवराज का अजय की डायरी में मध्यवर्गीय छोखले प्रेम का उद्घाटन किया गया है। "दोहरी आग की लपट" में डाँठ देवराज नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की छोज से उत्पन्न समस्याओं पर विचार किया है। "विवाह के उपरान्त पत्नी द्वारा किसी अन्य पुरुष को चाहने पर पति स्वतंत्रता का परिचय देता हुआ संबंधों को समाप्त करने में हिचकिचाहट नहीं करता। उसके संबंधों को उदारतापूर्वक स्वीकार करता है। कमलेश्वर के "वही बात" में इस परिवर्तित मानसिकता को व्यक्त किया गया है। समीरा के नुकूल की ओर आकृष्ट होने पर उसका पति प्रशान्त उन दोनों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता है। वह सहर्ष नुकूल के लिए समीरा और अपने पद का त्याग कर देता है। इधर

1. पुभा वर्मा - हिंदी उपन्यास : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया
और स्वरूप - पृ. 187

स्त्री भी ऐसे सम्बन्धों को अपने पति के सामने स्वतंत्रतापूर्वक स्वीकार करने लगी है क्योंकि विवाह आज के संदर्भ में नैतिक नहीं वरन् सामाजिक समझौता है।¹ "ठाक बंगला" उपन्यास में कमलेश्वर आधुनिक नारी जीवन की अनेक विसंगतियों को रेखांकित करते हैं। "वासना की उद्दाम नहरों के समुद्र को अपने हृदय में संजाये हुए अनेक नारियाँ निरन्तर मानसिक व्यभिचार करते हुए भी तथाकथित शारीरिक पवित्रता को बरकरार रख पाती हैं क्योंकि समाज और परिस्थितियाँ द्वारा पुद्गल रक्षा का कवच उन्हें हर समय बचाए रखता है, जबकि दूसरी और कुछ ऐसी नारियाँ भी होती हैं जो मन से किसी एक की होने के बावजूद परिस्थितियाँ उन्हें अनेक की अंक शायिनी होने के लिए विवश करती हैं।"² "विज्ञान पूँजीवाद एवं सामाजिक संघर्षों ने व्यक्त को आत्म केन्द्रित संघर्षशील, मृत्यु के प्रति सचेत और अस्तित्व के प्रति भयभीत बना दिया है। परम्परागत संस्कारों एवं रुढ़ियों को तोड़ना तो चाहता है किन्तु उसके लिए सामाजिक क्रांति नहीं करना चाहता। उस "गुनाहों का देवता" का चन्दर इसका उदाहरण है।"³ यह उपन्यास प्रेम की असफलता के कारण मानसिक कुंठा का वर्णन करता है। "भावना जीवन का आदर्श है और वासना उसका यथार्थ। प्रेम के इन दोनों पक्षों में गुनाहों का देवता भटककर जीवन का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है। आधुनिक शिक्षित मध्यवर्गीय समाज में कुंठा एवं निराशा से आक्रान्त व्यक्त किस प्रकार अपने आदर्श को स्थिर

1. प्रभा वर्मा - हिंदी उपन्यास : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वल्प - पृ. 188

2. डॉ० पास्कान्त देसाई : साठोत्तर हिंदी उपन्यास - पृ. 135

3. प्रभा वर्मा - हि० उ० सा० प० की पृ० और स्वल्प - पृ. 198

रखने के लिए छटपटता है, इसका सूक्ष्म चित्रण है।¹ "झूठे मस्तूल" में धर्मवीर भारत रंजना के माध्यम से विधवा संधवा के नियमों से नारी को मुक्त करना चाहती है। लक्ष्मीकांत वर्मा² द्वारा कृत "तीसरी पुसंग" उपन्यास में पुरुष स्त्री को मात्र सेक्स की दृष्टि से देखता है। "आपका बंटी" में मन्नु भंडारी नेबाल मनोवैज्ञानिक चित्रण पूरे यथार्थ के साथ किया है। यह उपन्यास जितना मनोवैज्ञानिक लगता है उतना ही सामाजिक है। "इसमें अकेलेपन से मुक्ति के लिए संघर्षशील नारी मन की व्याकुलता की पहचान का सफल प्रयास किया गया है। बंटी का अकेलापन और उससे उत्पन्न टीस भरी जिन्दगी केवल किसी की व्यक्तिगत रुचि से नहीं बनी है, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण की उपज है। नारी की अकुलाहट उसके जीवन की घनीभूत वेदना तथा दूसरों को पराजित करने वाली उसकी इच्छा शक्ति आधुनिकता बोध से बनी है।²

4.2.3. ऐतिहासिक यथार्थवाद और प्रमुख उपन्यासकार :

साठोत्तरी उपन्यास काल में भी ऐतिहासिक परिवेश से जोड़कर उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे उपन्यासों में प्रमुख हैं - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'चारुचन्द्र लेख' और 'पुनर्जात', अमृतलाल नागर के 'शतरंज के मोहरे', 'मानस का हज़', 'खंजन नयन' आदि, आनन्द प्रकाश जैन कृत 'कुठाल की आँखें', नरेन्द्र कोहली का 'दीबा' और वीरन्द्र कुमार जैन कृत 'अनुत्तर योग'।³ तीन खण्ड।

1. कांति वर्मा : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास - पृ. 141

2. डॉ० रामविनायक सिंह : आठवें दशक के हिंदी उपन्यास - पृ. 10

हजारी पुसाद द्विवेदी चारुचन्द्र लेख उपन्यास की ऐतिहासिकता के संबंध में लिखा है कि "ऐतिहासिक दृष्टि से कथा में असंगति नहीं है। ऐसा लगता है कि किसी ने सोच विचार कर तथ्यों को इसमें पिरोया है। फिर भी उज्जयिनी के राजा सातवाहन का कोई प्रमाण नहीं है।" इस उपन्यास के माध्यम से द्विवेदी जी विभिन्न हुए देश को संघ शक्ति के रूप में उभारने की कोशिश की है। "पुनर्नवा" में द्विवेदी जी चौथी शताब्दी में भारतीय संस्कृति के पराभूत स्वरूप का विश्लेषण किया गया है।

अमृतलाल नागर के अनेक उपन्यासों में भारत के अतीत के घटनाओं का सुन्दर वर्णन हुआ है। "शतरंज के मोहरें" नागर जी का एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो अथर्व की गदर पूर्व के सामन्तशाही शासन अत्याचार, भोग-विलास, अनाचार आदि का बड़ी ही यथार्थ परक लेखा - जोखा प्रस्तुत करता है। "सुहाग के मूर" में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान सामाजिक समस्याओं का चित्रण हुआ है। "सात धूँटवाला मुड़ड़ा" में इतिहास के एक चरित्र बेगम खमरा के इतिहास तत्वों तथा अन्य प्रचलित किम्वदंतियों का कल्पनापूर्ण चित्रण है। "एकदानेमिफारण्ये" उपन्यास पौराणिक घटनाओं पर आधारित रचना है। जिसके द्वारा भारतीय संस्कृति में भावात्मक चेतना, लाने का प्रयास किया है। इसमें पुराण, इतिहास, जनश्रुति और कल्पना का ऐसा अद्भुत मिश्रण नागर जी ने किया है कि इनमें से किसी एक को अलग कर अलग कर लेने की न तो आवश्यकता महसूस होती है न ही वह संभव दीखता है। इस प्रकार इस उपन्यास में भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दर्शन व जन जीवन को प्रभावित

करने वाले केवल चिन्तन की आधारभूमि भविष्यारण्य को आधार बना कर लिखा गया है। "मानस का ईस" मुगल कालीन पृष्ठभूमि पर आधारित तुलसीदास के साहित्य तथा भारतीय संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा है। इसमें तुलसी की साहित्य साधना, साम्प्रदायिक सद्भावना तथा सांस्कृतिक एकता को दर्शाया गया है। नागर जी का मुख में लिखते हैं - "समाज संगठनकर्ता की हेतुसयत से सभी को कुछ न कुछ व्यवहारिक समझोते भी करने पड़ते हैं। तुलसी और हमारे समय में गांधी जी ने भी वर्ण-धर्मियों से कुछ समझोते किये पर उनके बावजूद इनका धनवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। तुलसी ने केवल वर्णाश्रम धर्म का पोषण भले ही किया हो पर संस्कारहीन, कुकर्मों ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को लताड़ने में वे किसी से पीछे नहीं रहे। तुलसी का जीवन सर्व्व विद्रोह और समर्पण से भरा है। इस दृष्टि से वह सब भी प्रेरणादायक है।"। "खलन नयन" सुरदास के जीवन चरित्र को केन्द्र में रख कर तत्कालीन समाज का चित्रण किया है। "करवट" और पीढ़ियाँ गत दो शताब्दियों का भारतीय इतिहास और सामाजिक संरचना पर आधारित उपन्यास है।

वानन्द प्रकाश जैन "कुणाल की अग्नि" नामक उपन्यास में अशोक के पुत्र कुणाल के माध्यम से "प्रियदर्शी" अशोक की यश लिप्ता, शान्ति और अहिंसा की नीति के नीचे कसमसाती उसकी ईसक अशान्त दुस्ति देश में आरोपित शान्ति के साम्राज्य के विरुद्ध उफनती जनता की द्युत्सा और धर्म के विस्तार के अन्तर्गत में अट्टहास करती अधार्मिक लीला और अमानवीय शोषण को बहुत केलाग भाव से उभारा है।²

1. अमृतलाल नागर - मानस का ईस - "कामुख"

2. रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्गता - पृ. 221

रामकथा पर आधारित "दीक्षा" उपन्यास के लेखक नरेन्द्र कोहली हैं। इस उपन्यास में राम के विवाह तक का कथा है। इस कथा को आज के राष्ट्रीय, अन्तराष्ट्रीय मानवीय प्रश्नों से जोड़ा है। उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली "राम को शुरू से ही अपने परिवार में पीड़ित और उपेक्षित दिखाते हैं। वे एक बहुस्त्री - कामी पिता द्वारा उपेक्षित स्त्री के अभिशाप्त पुत्र हैं, इसी उपेक्षा और अभिशाप के भीतर उनकी संविदना और ऊर्जा विकसित पाती है। वही पारिवारिक पीड़ा उन्हें किव पीड़ा से जोड़ती है।"।

वीरेन्द्र कुमार जैन कृत "अनुस्तर योगी" ५ तीनों खण्डों महावीर के जीवन पर आधारित उपन्यास है।

५० निष्कर्ष :

हिंदी कथा साहित्य अनेक पड़ावों से गुजरते हुए आज एक बृहतरूप को धारण कर चुका है। विशेषतः हम उपन्यास क्षेत्र को ध्यानपूर्वक देखें तो स्पष्ट होता है कि उपन्यास साहित्य के विकास में अनेक उतार - चढ़ाव आये हैं। तब कहीं जाकर यह विधा अभिव्यक्ति की एक स्वतंत्र माध्यम बनी है।

यदि हम उपन्यास साहित्य को विकास क्रम को ऐतिहासिक धरातल पर देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि आरम्भिक दिनों में उपन्यास अपरिपक्व था। उपन्यास का उदय १९वीं शती के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। यह काल एक प्रकार से उपन्यास का शैक्षणिक काल था। जिसमें

विचारों की अभिव्यक्ति उसने स्पष्ट रूप से नहीं हो पाती थी जितनी आज होती है। इस काल में उपन्यास का ध्येय मात्र पाठकों का मनोरंजन करवाना था। इस कारण इस काल में ऐसारी - तिलस्मी उपन्यास अधिक लिखे गये। कुछ - कुछ समाज सुधार सम्बन्धी उपन्यास भी आये मगर समाज के प्रति इन उपन्यासों में उतनी लगाव नहीं था। इसका कारण यह है कि इस काल के उपन्यासकारों में यथार्थ की पहचान और उसका उपन्यास में चित्रण करने की शक्ति का अभाव था। यह स्थिति प्रेमचन्द पूर्व युग की थी।

हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचन्द के पदार्पण से उपन्यास साहित्य को एक सही ओर नयी दिशा मिली। अब तब मनोरंजन के लिए कल्पना-लोक में विचरण करने वाला उपन्यास साहित्य को इस काल में यथार्थ का आधार मिला और यथार्थ के धरातल पर सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण होने लगा। इस प्रकार इस काल में उपन्यास सही अर्थों में समाज का दर्पण बन गया।

“प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य में यथार्थ का चित्रण बहु रूपों में होने लगा। प्रेमचन्द युग का उपन्यास साहित्य कल्पना के स्थान पर यथार्थ की महत्व दिया तो इस युग का उपन्यास साहित्य यथार्थ के अनेक रूपों का चित्रण करने लगा। समाजवादी यथार्थवाद, आलोचना-त्मक यथार्थवाद, प्रकृतवाद, अतिथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और ऐतिहासिक यथार्थवाद के रूप में उपन्यासों में यथार्थ का बोध होने लगा। इस प्रकार इस युग की विशेषता यह है कि यथार्थ का चित्रण बहुत गहराई के साथ हुआ।

प्रेमचन्दोत्तर काल के बाद साठोत्तरी उपन्यासों में भी यथार्थ का चित्रण बहुत ही बारीकी के साथ होने लगा। जहाँ प्रेमचन्दोत्तर

काल के उपन्यासों में सरलता के साथ किसी एक रूप में यथार्थ का चित्रण होता था । वहीं साठोत्तरी उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण यथार्थ के अनेक रूपों के सम्मिश्रण के रूप में संश्लिष्ट रूप से होने लगा ।

वस्तुतः यह कह सकते हैं कि हिंदी उपन्यास साहित्य अपने शैलावस्था के कल्पनावद्ध रचनाओं को त्याग कर आज समाज के यथार्थ को यथातथ्य प्रस्तुत करने के लिए दृढचित्त है । ऐसे साहित्य का कोई विशेष ढाँचा या रूप नहीं होता । जिस प्रकार के समस्याएँ आयेगी ऐसे ही चित्रण साहित्य में किया जाता है और पाठक को रचनाकार के क्षमता के अनुसार वस्तुस्थिति के समीप ले जाने का प्रयास होता है । इसी कारण साहित्य में किसी एक धारणावाद या स्थिति के आधार पर रचना नहीं हो सकती । हाँ किसी धारणा या चिंतन का प्रभाव अधिक पड़ सकता है । यही स्थिति आज के उपन्यासों के साथ भी है । आज के उपन्यासकार पाठक को समाज का जीता - जागता यथार्थ को दिखाने के लिए अध्याधिक उत्सुक रहता है जिसके कारण उसकी रचना में यथार्थ के अनेक रूप उपस्थित होना स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी है ।

अध्याय - तीन

डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थवाद: वर्गीय दृष्टभूमि

और आर्थिक संदर्भ में

1. पुस्तावना
2. वर्ग
3. वर्ग का उदय
 - 3.1. वर्ण
 - 3.2. जाति
 - 3.3. वर्ग
4. वर्ग विभाजन
 - 4.1. उच्च वर्ग
 - 4.2. मध्य वर्ग
 - 4.3. निम्न वर्ग
5. डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में वर्ग चेतना
 - 5.1. उच्च वर्ग
 - 5.2. मध्य वर्ग
 - 5.3. निम्न वर्ग

अध्याय - तीन

डा० गृभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थबोध: वर्गीय

पृष्ठभूमि और आर्थिक संदर्भ में

तृतीय अध्याय

ठ 10 प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में समसामयिक यथार्थबोध : कर्णीय

पृष्ठभूमि और आर्थिक संदर्भ में

1. प्रस्तावना :

मानव सभ्यता के विकास क्रम को दुनिया के अनेक प्रसिद्ध दार्शनिक वैज्ञानिक और विद्वानों ने अपनी - अपनी क्षमता के आधार पर व्याख्यायित किया है। सभी विद्वानों का एक ही मत है कि मनुष्य को जब से ज्ञान का अभाव हुआ तब से सभ्यता का विकास शुरू हुआ और इसी के साथ मनुष्य में अपनापन की भावना या स्वाई की भावना उत्पन्न होने लगी।

कार्लमार्क्स ऐतिहासिक दृष्टात्मक भौतिकवाद की व्याख्या करते हुए करते हैं कि आदिम साम्यवाद से दास प्रथा का जन्म स्वाई के कारण ही हुआ है। या बुद्धि के परिणति का कारण है। इस प्रकार संसार में "वर्ग" की भावना उत्पन्न होने के पीछे अपनी सुखी सुविधा तथा सुख मूल तत्वों के रूप में काम करते हैं।

प्राचीन भारतीय सभ्यता में भी वर्ण भेद तथा जाति भेद के पीछे यही मूल कारण निहित है। वर्तमान परिस्थितियों में वर्ग विभाजन के वे पहले के मानक नहीं रहे हैं अब नये मानक आये हैं वे हैं - "अर्थ पर

आधारित उपकरण । जिसके पास अधिक धन है वह उच्च वर्ग में आता है जिसके पास कुछ भी धन नहीं है या बहुत कम है वह निम्नवर्ग में आता है और इन दो वर्गों के बीच में जो है वे मध्यवर्ग के अन्तर्गत आते हैं । यह विभाजन आधुनिक युग की देन है जो आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है ।

2. वर्ग :

"वर्ग" शब्द का अर्थ होता है, श्रेणी, क्लास, दल ।¹ सामान्यतः आकार प्रकार से भिन्न किन्तु किसी एक सामान्य धर्म को रखने वालों का समूह वर्ग ही कहलाता है जैसे - मनुष्य वर्ग, मजदूर वर्ग इत्यादि । वर्ग शब्द की व्याख्या करते हुए "वर्ग" को सामान्यधर्मियों का समूह भी कहा जाता है । "हिंदी बृहद कोश" के अनुसार - वर्ग स्वजातीय या समान धर्मियों का समूह, दल एक स्थान से उद्धारित होने वाले वर्गों का समूह ग्रंथ का विभाग, ज्ञेयार्थ, समान अंश का घात, वह सम्मिश्र चतुर्भि जिसकी लंबाई चौड़ाई बराबर हो, शक्ति, क्षेत्र अर्थ, धर्म आदि है ।² राजनीति कोश में "वर्ग" का अभिप्राय "वर्ग" "व्यक्तियों का वह समुदाय है जो उत्पादन प्रक्रिया में एक ही भूमिका का निर्वहण करता है और जिनके संबंध उत्पादन प्रक्रिया में स्तरीय दूसरे व्यक्तियों के साथ एक से होते हैं ।"³

वस्तुतः "वर्ग" अंग्रेजी शब्द "क्लास" का पर्यावाची है । "जिसका अर्थ था रंगस्टों का समूह था श्रेणी । मैक्सिमिलियन ग्लुकर ने संपत्ति के आधार

1. डा० ओमवती लक्ष्मी - प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यासों में वर्ग संज्ञा-पृ० ।

2. कालिका प्रसाद - संपादक - हिंदी बृहद कोश - पृ० 1219

3. डा० सुभाष कश्यप तथा विवेक प्रकाश गुप्त - राजनीति कोश - पृ० 56

पर समाज को पाँच श्रेणियों या वर्गों में बाँटा था जिसमें से हर कोई सेना के लिए एक निश्चित मात्रा में सैन्य टुकड़ियाँ ॥ शत सैनिक दल ॥ देता था और उन्हें एक निश्चित ढंग से शस्त्र सज्जित करता था । आगे चलकर क्लास ॥ वर्ग ॥ शब्द का व्यापक प्रचलन हुआ और लोगों के बड़े समूह को इंगित करने लगा ।¹

असल में "वर्ग" की अवधारणा मार्क्सवादी समाज दर्शन की है । मार्क्सवादी दर्शन आधुनिक काल का एक सन्नत दर्शन है जो "समाज के ऐतिहासिक राजनीतिक और आर्थिक से लेकर सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों तक में एक ऐसी एक सुव्रता स्थापित कर देता है कि फिर भी हम उन्हें एक दूसरे से अलग कर के नहीं देख सकते । मार्क्सवाद का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है ।"² मार्क्सवाद के अनुसार ऐसे मनुष्यों का समूह जो के साधनों की दृष्टि से आपस में ऐसा आर्थिक संबंध रखते हैं, जिसके कारण उनका किसी अन्य समूह से स्पर्ध होता है, वर्ग है । उदाहरण के लिए सामन्ती समाज में जमींदार और किसान हैं तथा पूँजीवादी समाज में पूँजीपति और मजदूर वर्ग हैं ।

कार्ल मार्क्स ने इकानामिक्स - फिलासाफिकल मेनुस्क्रिप्ट में "वर्ग" के संबंध में अपने विचार स्पष्ट किया है । "मार्क्स ने वर्ग संबंध को आर्थिक संबंध माना है । वर्ग संबंध सत्त्वतः आर्थिक संबंध है और मार्क्स के अनुसार मनुष्य केवल आर्थिक आवश्यकतानुसार या नियमानुसार ही उत्पादन नहीं करता प्रत्युत वह सौन्दर्य के नियमों के अनुसार भी उत्पादन करता है । यही मनुष्यों की पक्षों से जीवितता है ।"³

1. प्रगति: ईंडात्मक ऐतिहासिक भौतिकवाद की सरल रूप रेखा-पृ. 373

2. जेनेवर वर्मा- हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - पृ. 19

3. प्रतापनारायण टंडन- हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना - पृ. 37

वर्गों के संबंध में कार्ल मार्क्स के विचारों को और अधिक विकास करके लेनिन ने इस प्रकार परिभाषित किया है - कुँवरपाल सिंह लेनिन के हवाला देते हुए लिखते हैं कि - "वर्ग लोगों के ऐसे बड़े-बड़े समूहों को कहते हैं जो सामाजिक उत्पादन का इतिहास द्वारा निर्धारित किसी पद्धति में अपने अपने स्थान की दृष्टि से, उत्पादन के साधनों के साथ अपने संबंधों जो अधिकांश मामलों में कानून द्वारा निश्चित तथा निरूपित होता है। की दृष्टि से और फलस्वरूप सामाजिक सम्पदा को प्राप्त करने की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होते हैं।"¹

प्रतापनारायण टंडन "वर्ग" की परिभाषा बहुत सरल ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार "वर्ग शब्द का एक विशेष पारिभाषिक अर्थ है। यहाँ हम मनुष्यों के केवल उसी समूह या श्रेणी को वर्ग कहेंगे, जिनके आर्थिक हितों में कोई असमानता न हो। हम इसे यों स्पष्ट करने का प्रयत्न करें -

प्रत्येक समूह या श्रेणी के विभिन्न आर्थिक हित होते हैं। किसी समूह या श्रेणी में जितने मनुष्य होंगे, उनके समान हित होंगे। उदाहरण के लिए हम जमींदार, भू-मालिक और मजदूर वर्ग को ले सकते हैं। इन तीनों वर्गों में प्रत्येक में जितने भी लोग होंगे, उन सबके अपने-अपने वर्गों के अनुसार समान आर्थिक हित होंगे। और इस प्रकार इन आर्थिक हितों में समानता होना ही वर्ग का प्रमुख लक्षण है।"²

1. कुँवरपाल सिंह - भारतीय मध्यवर्ग चरित्र और भूमिका [लेख]

मधुमति सितम्बर, 1989

2. प्रतापनारायण टंडन - हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना - पृ. 36

मार्क्स के अनुसार प्रत्येक वर्ग का अपना दार्शनिक भेदिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण होता है। जिसका निर्माण उसकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति से कहीं न कहीं अव्यय संबंध रखता है। उन्होंने साफ शब्दों में कहा है कि "मानव जीवन की सत्ता का निर्धारण उसकी चेतना द्वारा नहीं होता बल्कि चेतना उसके सामाजिक अस्तित्व के द्वारा निर्धारित होता है।" अतः स्पष्ट है कि मनुष्य की सत्ता का निर्धारण उसके सामाजिक अस्तित्व का निर्धारण करने के लिए समाज से उसका संबंध किस प्रकार का है ज्ञात होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति कैसी है स्पष्ट होना चाहिए। इसके लिए हमें समाज को वर्गों की दृष्टि से विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। "वर्ग की अवधारणा" इसी कारण आधुनिक समाज में अपना विशिष्ट महत्व रखता है। "वर्गों" के माध्यम से ही समाज का संपूर्णतः विश्लेषण व मूल्यांकन किया जाता संभव है।

यदि भारतीय परिदृश्य में "वर्ग" को देखे तो पता चलता है कि इस के मूल में वर्ण, और जाति का महत्वपूर्ण स्थान है। "वर्ग" जो मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार आर्थिक स्थिति पर निर्भर रहती है - भारत के संबंध में जन्म तथा कर्म के आधार पर प्राचीन काल में निर्मित होता था। अतः वर्ग के उदय के परिदृश्य में वर्ण, एवं जाति व्यवस्था के संबंध में संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करना यहाँ पर अनिवार्य न होगा।

3. वर्ग का उदय :

भारतीय सामाजिक जीवन के परिदृश्य में यदि वर्ग के उदय के बारे में देखे तो सबसे पहले वर्ण व्यवस्था पर विचार करना होगा। चूंकि

भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मूलधार वही है। वर्ण व्यवस्था।
परिवर्तित काल के नियमानुसार जाति व्यवस्था का रूप धारण किया।
जाति व्यवस्था ही आधुनिक समाज के आर्थिक पक्षों के आधार पर
पश्चात्य दृष्टिकोण से वर्गों का रूप ले रही है।

3.1. वर्ण :

भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में ऋग्वेद भगवद्गीता तथा
मनुस्मृति आदि महत्वपूर्ण ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। इन तीनों ग्रंथों में
ही वर्ण व्यवस्था के मूल स्रोत है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में एक कार्त्तिक
कहानी है जिसमें वर्णों की उत्पत्ति के बारे में बताया गया है। "जब
देवताओं ने मनुष्य को अपना शिखार बनाकर बलि दी और उसका
विभाजन किया। उसका मुख ब्राह्मण बना उसकी भुजाओं से क्षत्रिय बने,
उसकी जघ्नि क्षेत्र्य बनी और उसके पैरों से शूद्र का जन्म हुआ।" यही
वर्ण व्यवस्था के संबंध में मिलने वाली प्रथम जानकारी है। इसके पश्चात
श्रीमद् भगवद्गीता में वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में श्री कृष्ण कहते हैं -

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः ।

तस्य कर्तरि मयि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥²

अर्थात् गुण कर्म के आधार पर मेरे द्वारा ही चारों वर्णों - ब्राह्मण,
क्षत्रिय, क्षेत्र्य, शूद्र की सृष्टि हुई है। उनकी सृष्टि करनेवाला होने पर
भी मैं कर्ता और अव्यय, अक्षय अपरिणामी ॥

इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य के गुण तथा कर्म के आधार पर
वर्ण का निर्धारण होता था न कि जन्म के आधार पर।

1. रोमिला थापर - भारत का इतिहास - पृ. 28

2. हनुमान प्रसाद पोद्दार - गीता चिंतन - ज्ञानयोग अध्याय-4 पृ. 42

वर्णव्यवस्था को उल्लेख करने वाला तीसरा प्रमुख ग्रंथ

मनुस्मृति मनु द्वारा लिखा गया हिन्दुओं की आधार सीढ़ी है। ...
 ने समाज में अराजकता व्याप्त न होने के लिए हिन्दू धर्म में व्याप्त
 वर्ण व्यवस्था को एक निर्दिष्ट नियमों के बंधन में बांध दिया। इन
 नियमों के अनुसार ब्राह्मणों के लिए अध्ययन, ज्ञानोपार्जन, यज्ञ यागादि
 धार्मिक अनुष्ठानों को संपन्न करने का कार्य निश्चित किया गया था।
 क्षत्रियों के लिए शासन, सीमा सुरक्षा, प्रजा पालन, इत्यादि सामाजिक
 नियम के उत्तरदायित्व दिया गया था। वैश्यों का काम सभी वर्गों
 के लोगों के लिए जीवनोपयोगी वस्तुओं को उपलब्ध कराना था। कृषि
 गोक्षा और वाणिज्य के काम इस वर्ण के लिए निर्धारित किए गये थे।
 शूद्र का काम सबसे कठिन था जो उपर्युक्त तीनों वर्गों की सेवा सुधारा।

कालान्तर में सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होने लगा मनु के
 नियमों का उल्लंघन होने लगा। राज्य की प्रभुसत्ता और शासन व्यवस्था
 ब्राह्मण और क्षत्रियों के हाथ में आ गई। वैश्य इन दो वर्गों का सहायक
 बना रहा। इस प्रकार अधिकार और आर्थिक सत्ता दोनों इन तीनों
 वर्गों के पास रह गया। जिसके फलस्वरूप शूद्र वर्ण समाज का अभिन्न
 अंग होते हुए भी लगभग सभी मानवीय एवं सामाजिक अधिकारों से वंचित
 कर दिया गया। यहाँ तक कि धार्मिक उपासनाओं में भाग लेने, मोक्ष
 प्राप्ति के लिए तपस्या करने तथा सम्पत्ति संवय करने का अधिकार भी
 नहीं था।

वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन का परिणाम है¹ जो प्रत्येक वर्ण के
 लिए विशिष्ट कर्तव्य एवं दायित्व निर्धारित कर दिये गये थे किन्तु
 वह धीरे धीरे मर्यादा के रूप में हिन्दू समाज की छरपरा बन गई और

विभाजित वर्णों को एकदूसरे के पूरक कहकर उसे न्याय संगत सिद्ध प्रयास किया गया । किन्तु समय के व्यतीत होने के साथ साथ वर्ण व्यवस्था - ब्राह्मणों की साजिश के कारण - कर्म के आधार पर न रह कर केवल जन्म के आधार पर ही मानी जाने लगी । इसके परिणाम वर्ण व्यवस्था से जाति व्यवस्था का उदय हुआ ।

3.2. जाति :

मनु के स्पष्ट कथन के बावजूद कि "जन्मना जायते शुद्रः वर्मणा द्विज उच्यते ।"¹ वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर स्तिब्ध हो गई । जिसके फलस्वरूप विभिन्न कर्म करने वालों के विभिन्न समूहों का निर्माण हुआ जिसे वर्ण न कह कर जाति कहा जाने लगा । जाति हिन्दू धर्म की एक विशेषता है । असमानता इसका लक्षण है । जाति की परिभाषा देना कोई सरल काम नहीं है । फिर भी एक कामचलाऊ परिभाषा देते हुए इतिहासकार हरफान हबीब कहते हैं कि "कोई जाति एक सुस्पष्ट और अलग समुदाय के जिसके सदस्य आपस में अंतर्विवाह और अन्तर्गमन विवाह के संबंधों में बंधी होते हैं । प्रायः उनके बीच किसी वास्तविक या कल्पित साझेदारी व्यवसाय का भी संबंध होता है ।"² जाति के नाम पर भिन्न क्षेत्रों में लोग बंट जाने के कारण सामाजिक स्थिति में कोई मूलभूत परिवर्तन होना लगभग असंभव हो गया । "जाति समाज में वैचारिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति का व्यवसाय जन्म के साथ

1. अर्थात् मनुज जन्म से शुद्र ही पैदा होता है । गुण, कर्म, स्वभाव और संस्कारों से द्विज ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कहलाता है ।
डा० धनीराम शास्त्री, प्रावचन, अस्पृश्यता एवं मानवता - ए एन भारद्वाज - पृ. 19

2. हरफान हबीब - भारतीय इतिहास में जाति और मुद्रा - पृ. 9

निधारित हो जाता है अर्थात् जो जिस जाति में जन्म उसका व्यवसाय हो जाता है, जैसे नार्ड के घर में जन्म लेने वाला नार्ड का काम करेगा, धोबी के घर जन्म लेने वाला धोबी का काम करेगा । कोई व्यक्ति अपने जन्मगत व्यवसायों को सरलता से बदल नहीं सकता है ।¹ इस तरह जाति व्यवस्था के कारण किसी को भी जाति के नियमित ढाँचे से हटना संभव नहीं था । इस से समाज के उच्च जाति वर्गों के लोगों ने अपने से निम्न रहने वालों पर आधिपत्य जमाए रखा ।

जाति व्यवस्था के उदय के संबंध में विचार करने पर पता चलता है कि उत्पादन और दस्तकारी की विकास के साथ जातियों का भी विकास हुआ । दस्तकारी के लिए कार्यक्षम लोगों की आवश्यकता हुई जिसके कारण विभिन्न पेशों से विभिन्न लोग जुड़ गए । इस प्रकार की व्यवस्था पेशों के आधार पर क्रमशः जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गई । हरफान हबीब कहते हैं - "जाति प्रथा को मुख्यतः एक दम क्रम में उपजी विभिन्न सामाजिक संरचनाओं में उसकी भूमिका के आधार पर व्याख्यायित किया जाना चाहिए । कोई सामाजिक संरचना "श्रम की प्रक्रिया" के किसी रूप पर आधारित होती है और इसलिए वह तब उत्पन्न होती है जब समाज के उत्पादक "अतिरिक्त उत्पादन" में समर्थ होते हैं । यह सोचना व्यर्थ है कि इस चरण से पहले भी जाति प्रथा जैसी संस्था का अस्तित्व रहा होगा ।"² इस संबंध में डा० राम किशन शर्मा का मत भी उल्लेखनीय है । वे लिखते हैं - श्रम विभाजन के प्रारंभिक दौर में दो, तीन या चार वर्गों के काम चल जाता है, किन्तु जैसे जैसे दस्तकारी की शाखाओं का विकास होता है और कुछ

1. शम्भुरत्न त्रिपाठी - भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति-पृ० 103

2. हरफान हबीब - भारतीय इतिहास में जाति और मुद्रा - पृ० 12

कुटुम्ब किसी एक शाखा से पीढ़ी दर पीढ़ी जुड़े रहते हैं, वेसे वेसे का निमाण होता है और वे रुटिबद्ध होती है। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण उत्पादन में भाग नहीं लेते, उनमें "जातियाँ" नहीं हैं, सभी ब्राह्मणों की एक "जाति" ब्राह्मण है, सभी ठाकुरों की एक "जाति" ठाकुर है। विनिमय से संबद्ध एक "जाति" बनी "बनियाँ", बाकी सभी "जातियों" का संबंध उत्पादन और संस्कृति की शाखाओं अथवा सेवाकार्यों से है। ऐसे से अलग जो "जाति" है, वह वास्तव में "जाति" है ही नहीं, वह किसी पुराने कबीले, उसकी शाखा या गोत्र का नाम है। उत्पादन और संस्कृति की विभिन्न शाखाओं के विकास के साथ ऐश्वर्याली "जातियों" का निमाण स्वाभाविक है।¹

पाश्चात्य समाज शास्त्रियों के सम्मने आया। जिसके अनुसार मनुष्य की पहचान या मनुष्य की समाज में स्थिति को उसकी आर्थिक स्थिति के आधार पर देखा जाता है।

3.3. वर्ग :

मानव सभ्यता के इतिहास को वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन करने का श्रेय प्रख्यात दार्शनिक कार्ल मार्क्स को मिला है। मार्क्स ने मानव जाति के अति इतिहास को ऐनात्मक भौतिकवाद के आधार पर विश्लेषित किया है। इस सिद्धांत के अनुसार वस्तुवादी विवेचन के अतिरिक्त तद्-युगीन वैज्ञानिक विकास को भी देखा जा सकता है। "इस प्रकार उन्होंने ऐनात्मक भौतिकवाद को ऐसा व्यापक रूप दिया जो जीव, सजीव और मानव स्तर सबके विकास के सामान्य और विशिष्ट नियमों की

खोज करता है। उन्होंने एक ओर तो वस्तुवाद को मानव समाज पर लागू किया और सामाजिक विकास के नियमों की खोज की तथा दूसरी ओर इसे मात्र चिंतन की एक पद्धति, एक दृष्टिकोण से आगे ले जाकर सामाजिक परिवर्तन के प्रभावशाली शस्त्र का रूप भी प्रदान किया। अतः उनका दृष्टांतर्क भौतिकवाद संसार की व्याख्या का ही नहीं, उसे बदलने का भी प्रयत्न करता है।¹

इस प्रकार कह सकते हैं कि संसार में प्रत्येक वस्तु में दो परस्पर विरोधी तत्व विद्यमान रहते हैं। इन दो तत्वों में निरंतर संघर्ष चलता रहता है। संघर्ष से ही परिवर्तन होता है। मार्क्स ने वर्ग जाति धर्म आदि को नकारते हुए विद्यमानव को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया है - शोषक वर्ग और शोषित वर्ग, पूँजीवादी समाज में शोषक, शोषित वर्गों को कुँड़ा और सर्वहारा के नामों से जाना जाता है। इन वर्गों के अतिरिक्त एक ओर वर्ग है जिसे निम्न पूँजीपति वर्ग कहते हैं। इसे मार्क्स ने 'पेट्रीकुँड़ा' कहा है। यह वर्ग आधुनिक वैज्ञानिक समाज में मध्यवर्ग के रूप में विकसित हुआ।

मार्क्स ने दृष्टांतर्क भौतिकवादी प्रणाली को मानव सभ्यता के इतिहास पर लागू किया है। इसे ऐतिहासिक भौतिकवाद कहते हैं। *मार्क्स के अनुसार सामाजिक व्यवस्थाओं में उत्पादन प्रणाली ही प्रमुख है तथा सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक फल का ही मात्र हाथ है। यही वह शक्ति है जो उत्पादन के साथ साथ सामाजिक व्यवस्थाओं के स्वरूप को निर्धारित करती है तथा उनके विकास एवं परिवर्तन के लिए उत्तरदायी

होती है ।¹ अतः उत्पादन की प्रणाली के प्रत्येक परिवर्तन के सा-
 सामाजिक व्यवस्था में पाँच परिवर्तन हुए हैं । इन परिवर्तन के अलग-
 अलग युग माने जाते हैं । मार्क्स के अनुसार इन युगों में अब तक का
 इतिहास निम्नलिखित है । ये युग इस प्रकार हैं :- 1. आदिम साम्यवादी
 2. दास प्रथा का युग 3. सामन्तवादी युग 4. पूँजीवादी युग और
 5. समाजवादी युग ।

“समाज के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य के जो विभिन्न
 वर्ग बने थे उनका आधार श्रम नहीं था । उस समय लोगों के हित और
 आर्थिक स्वाई परस्पर विरोधी नहीं होते थे । लोगों के दैनिक जीवन
 की आवश्यकताएँ बहुत सीमित थी । इसी कारण उत्पादन के साधन
 बहुत सीमित थे और उनका विकास नहीं हो पाता था । बाद में
 ज्यों ज्यों मनुष्य का जीवन संकर्मिय होता गया त्यों-त्यों मनुष्य ने कुछ
 अन्य कार्य - खेती बारी तथा पशु पालन आदि प्रारम्भ किये । लेकिन
 इस दिशा में यह प्रयास मनुष्यों के एक समूह द्वारा ही किया गया
 होगा और सारे समाज द्वारा नहीं । आगे चलकर यह समूह अकेलावत
 अधिक सभ्य होता गया होगा । लेकिन एक विशेष प्रकार के कार्य को
 प्रारम्भ करने का कारण उस वर्ग के लोगों के सामने श्रम विभाजन की
 आवश्यकता होगी तथा विभिन्न कार्यों को करने वाले लोगों के सामने उनके
 श्रमों के फलस्वरूप हुई वस्तु के बटवारे की समस्या आई होगी । संभवतः
 इसी के कारण वर्गों की उत्पत्ति हुई होगी । बाद में विनियोग के
 सिद्धांत का प्रचार होने पर उनका विभाजन निश्चित वर्गों में हो गया
 होगा ।”²

1. डा० ओमवती सक्सेना - प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष
 पृ. 42

2. प्रतापनारायण टंडन-हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना - पृ. 50-51

आदिस साम्यवादी युग में मनुष्य बर्द्ध हो रहा था । कल... रहता था । "व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना नहीं थी और उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार था ।" यहाँ पर कर्ष की भावना नहीं थी । इस युग के पश्चात् दास प्रथा का युग आता है जिसमें मनुष्य अपनी बुद्धि के माध्यम से श्रम भार कम करके सुख-सुविधाओं को अधिक बढ़ाने के प्रयास करने लगा । जिसके कारण ही आदिस साम्यवादी युग से "जागे" फलकर जब मनुष्य ने पशुपालन और खेती आदि को सीखा और धातु के तरह तरह के औजारों का प्रयोग करने लगा तो उत्पादन के इस बढ़ते हुए ढंग ने दास व्यवस्था को जन्म दिया । उत्पादन के साधनों पर दास स्वामियों का अधिकार होता था । पराजित शत्रुओं को दास बना कर उनसे परिश्रम कराया जाता था और पशुओं के समान क्रय विक्रय होता था । इस प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति का उदय हुआ । "2 व्यक्तिगत सम्पत्ति का आधार आर्थिक व्यवस्था था ।" इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि दास प्रथा शोषण की विकट अवस्था थी, शोषण का आरंभ था परन्तु यह भी मानना होगा कि वह अपनी पखली जंगली अवस्था से विकास का भी प्रबल प्रमाण थी । "3 दास प्रथा युग के पश्चात् सामन्तवादी युग का जन्म होता है । इसमें सामन्त और किसान दो वर्ग विकसित रहते हैं । सामन्त किसान का शोषण करता है । कभी कभी जमींदारों और भू-स्वामियों के शोषण और दमन के विरोध में इस काल में किसानों का संघर्ष यत्न होता था भी किन्तु सामन्ती व्यवस्था शक्ति रहने के कारण उनके आन्दोलन सफल नहीं हुआ करते थे । इसी बीच औद्योगिकरण शक्ति होने के कारण नये - नये उद्योग बंधी विकसित होने लगे । कल कारखानों से अधिक उत्पादन होने के कारण

1. जाग्रत वर वर्मा - हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - पृ. 82

2. - वही- - वही- पृ. 82

3. यादव - मार्क्सवाद - पृ. 12

धनी लोगों ने अपनी पूँजी को उद्योग धन्धों में लगाने दिया.

किसान और अन्य लोगों ने मजदूरी के लिए कल कारखानों की श्रम .

इस प्रकार समाज व्यवस्था में एक और पहले युगों से भी सीरिलकट युग का अवतरण हुआ । इस युग को पूँजीवादी युग कहा जाता है ।

पूँजीवादी युग में भी दो वर्ग रहते हैं - पूँजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग । मार्क्स ने इन वर्गों को कुर्बाना और सर्वहारा की संज्ञा दी है ।

"पूँजीपति से मतलब आधुनिक पूँजीपति वर्ग, अर्थात् सामाजिक उत्पादन साधनों के स्वामियों और उजरती श्रम का उपयोग करने वालों से है ।

सर्वहारा से मतलब आधुनिक उजरती मजदूरों से है, जिनके पास उत्पादन का अपना छद्म का कोई साधन नहीं होता, इसलिए जो जीवित रहने

के लिए अपनी श्रम शक्ति को बेचने को विवश होते हैं ।" पूँजीपति अपने कल-कारखानों के द्वारा होने वाले उत्पादन को अपना व्यक्तिगत संपत्ति

के रूप में स्वीकार करता है । मजदूरों के मुलभूत अव्यक्तताओं को भी पूरा नहीं करता है । इस प्रकार पूँजीपति अपनी आय में वृद्धि करने के

लिए श्रमियों का शोषण करता है । एंगेल्स का हवाला देते हुए जेम्स शर्मा लिखते हैं - "श्रमियों और कारखानों में जो सामान बनता है वह

किसी व्यक्ति के नहीं बरन सम्पूर्ण श्रमिक समुदाय के परिश्रम का फल है । क्योंकि उसके उत्पादन में सभी अपने अपने ढंग से योग दिया है । उनमें

1. कार्लमार्क्स एंगेल्स - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र 1888 के अंग्रेजी संस्करण में एंगेल्स का नोट॥ पृ. 35

से कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि यह वस्तु मेरी बनाई हुई है। इसका उत्पादन कर्ता भैंस।¹ स्पष्ट है कि पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत अनेक मजदूरों के सहारे होने वाले उत्पादन पर पूँजीपति का अधिकार होता है और श्रमियों को श्रम का फल नहीं मिलता। इस प्रकार श्रमियों का शोषण होता रहा है। इस शोषण प्रक्रिया के विरोध में सर्वद्वारा संघटित होकर पूँजीपति वर्ग के विरोध में क्रांति करने से वर्ग विहीन, राज्यविहीन समाज का निमग्न होता है। यही मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद की अंतिम कड़ी समाजवादी युग है।

समाजवादी युग का उदय पूँजीवादी समाज के दिनाश से होता है। मार्क्स के अनुसार "इस युग में उत्पादन के सभी साधनों पर पूरे समाज का अधिकार होगा तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार सुविधाएँ प्रदान की जायेगी। इस समाज में पूर्ण समानता होगी, शोषक और शोषित, निर्धन और धनी वर्ग नहीं रहेंगे तथा वर्ग और शोषण न होने के कारण राज्य भी नहीं रहेगा। जब यह स्थिति सब देशों में आ जायेगी तब सारी पृथ्वी में साम्य स्थापना हो जायेगी। इस प्रकार साम्यवादी अवस्था वर्ग विहीन एवं राज्यविहीन आदर्श अवस्था होगी।"²

4. वर्ग विभाजन :

आधुनिक समाज शास्त्रियों ने समाज को आर्थिक व्यवस्था पर आधारित होने के नाते तीन भागों में विभाजित किया है तथा संपूर्ण समाज को इन तीन भागों के माध्यम से ही विश्लेषित किया है। ये

हेतना

1: जनेश्वर वर्मा - हिंदी काव्य में मार्क्सवादी - पृ: 152

2: डा० भवतराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिंदी कविता - पृ: 20

तीन भाग है - 1. उच्च वर्ग, 2. मध्य वर्ग और 3. निम्न वर्ग। कार्ल मार्क्स ने ऐतिहासिक भोक्तृवादी दर्शन के अंतर्गत समाज में हमेशा मुख्यतः दो वर्ग - शोषक और शोषित - रहने की बात कही थी। शोषक और शोषित वर्गों को आज के संदर्भ में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग कह सकते हैं। मार्क्स ने मध्य वर्ग जैसा कोई वर्ग का अस्तित्व समाज में रहने के दावा से इन्कार किया है। हाँ, वे इतना मानते हैं कि समाज में एक अस्थायी रूप से निम्न पूँजीवादी वर्ग अस्तित्व में रहता है और सर्वहारा के नेतृत्व में होने वाले क्रान्ति के समय उसका सहयोग करता है। मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा है कि "उन देशों में जहाँ आधुनिक सभ्यता का पूरा विकास हो चुका है, निम्न पूँजीपतियों का एक नया वर्ग बन गया है जो सर्वहारा वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच झूला करता है और पूँजीवादी समाज के एक पुरक अंग के रूप में सदा अपने को ताजा करता रहता है। लेकिन दौड़ की चक्की में पिसकर इस वर्ग के अलग अलग सदस्य टूट-टूट कर बराबर सर्वहारा वर्ग में शामिल हो जाते हैं।"।¹ किन्तु वर्तमान समाज को देखने से ऐसा नहीं लगता की पेटी कुर्बाना निम्न पूँजीवादी वर्ग या मध्यवर्ग एक दिन सर्वहारा या निम्न वर्ग में आकर मिलता है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात मध्यवर्ग का विकास निम्नवर्ग से हुआ है और उसकी स्थिति निम्न वर्ग से बेहतर है।

यहाँ पर उच्च वर्ग, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के विशेषताओं को देखें।

4.1. उच्च वर्ग :

उच्च वर्ग का उदय समाज में व्यवस्थागत संपत्ति के इकट्ठा करने की प्रवृत्ति से ही हुआ है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के परिदृश्य में उच्च वर्ग का इतिहास देखे तो स्पष्ट होता है कि आदिम साम्यवादी युग को छोड़कर - क्योंकि इस युग में व्यवस्थागत संपत्ति इकट्ठा करने की प्रवृत्ति नहीं थी। बाकी सभी व्यवस्थाओं में उच्च वर्ग विद्यमान रहा है और उसका स्वभाव क्रमशः अन्य वर्गों प्रति कठोर होता गया है। दास प्रथा के युग में उच्च वर्ग स्वामी के रूप में, सामंतवादी युग में सामंत, जमींदार महाजन आदि के रूप में पूँजीवादी युग में पूँजीपति और उद्योगपति के रूप में विद्यमान रहा है।

उच्च वर्ग का एक मात्र लक्ष्य है अपने स्वार्थों की पूर्ति करना। इस के लिए निम्न वर्ग की जनता का शोषण करता है। इस वर्ग का संबंध मात्र धन से है। आर्थिक व्यवस्था पर यह अधिकार जमाने का प्रयास करता है। इसके लिए वह जनता को अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न करता है। सामंतवादी व्यवस्था में भी उच्च वर्ग की यही नीति थी। "ग्रामों की अशिक्षित अंधाधुन जनता की विवशता एवं विश्वास का फायदा उठाकर उच्च वर्ग हमेशा उसे फँसता रहा। गरीब, निर्धन, किसानों, मजदूरों एवं अकलाओं पर इन दिनों अनेक अत्याचार डोये गये। सामन्तों में अहंभाव, स्वार्थ लिप्सा एवं निर्धनों के प्रति घृणा भाव दीख पड़ता है। गरीब जनता को फँसकर उनसे मुफ्त में श्रम लेने की प्रवृत्ति दूसरे के श्रम पर षोष करने की इच्छा, अपने सुख में कमी आने पर निर्धनों पर क्रोध उतारने की प्रक्रिया, अधिकार प्रदर्शन के हेतु असमय किये जाने वाले अत्याचार वासना तृप्ति के लिए अकलाओं पर किये जाने वाले कलात्कार आदि का समुच्चय इस वर्ग में स्पष्टतः प्राप्त होता है।¹

पूँजीवादी समाज व्यवस्था में तो इस वर्ग के अमा-
 और अधिक हो गये। पूँजीपति या उद्योगपति मात्र यही सोचता है
 कि किस प्रकार अपनी पूँजी की वृद्धि करें। उसे अन्य विषयों से कोई
 संबंध नहीं है। यहाँ तक कि अपने कल-कारखानों में काम करने वाले
 श्रमिकों के स्वास्थ्य का ध्यान तक रखता नहीं। इस वर्ग पर पैसों का
 भूत सवार रहता है। धन के मोह के कारण वह स्नेहहीन और भावना-
 रहित हो गया है। मार्क्स और एंगेल्स ने ठीक ही लिखा है - पूँजीपति
 वर्ग ने पारिवारिक संबंधों के ऊपर से भावुकता का पर्दा उतार फेंका है
 और पारिवारिक संबंध को केवल द्रव्य के संबंध में बदल डाला है।¹

सामाजिक परिदृश्य में देखने पर इस वर्ग के कुछ विशेषताएँ इस
 प्रकार हैं - यह वर्ग हमेशा निम्नवर्ग का शोषण करता रहता है। इस वर्ग
 में धन का मोह अधिक रहने के कारण मानव मूल्यों में कोई महत्त्व नहीं
 होता। उसमें धन की संपन्न वृद्धि और कंजुसी अधिक रहती है। यह
 काला बाजार और भ्रष्टाचार में कोई कसर नहीं छोड़ता। धन अधिक
 रहने के कारण जीवन विनाशपूर्ण बिताने की प्रवृत्ति और वासनामयता इस
 वर्ग की विशेषता है।

4.2. मध्य वर्ग :

मध्यवर्ग पूँजीवादी व्यवस्था की उपज है। इससे पहले के व्यव-
 स्थाओं में मात्र दो वर्ग प्रमुख रूप से थे। किन्तु पूँजीपति सभ्यता की
 शुरुआत जिस औद्योगिक क्रांति से हुई उसी क्रांति की उपज के रूप में
 मध्यवर्ग का विकास हुआ। मध्यवर्ग सामन्तवादी व्यवस्था में नहीं पाया
 जाता क्योंकि उस समय जमींदार तथा किसान का सीधा संबंध था।
 परन्तु पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल कर दिया

कर दिया है कि एक मध्यवर्ग की आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संगठन के सूत्र को संभाल सके।¹ इस प्रकार मध्यवर्ग का जन्म आधुनिक पूँजीवादी समाज में हुआ। एक ही पाम के अनुसार - "18वीं शताब्दी के अन्त में छोटे-छोटे भू-स्वामी तथा किसान इस मध्यवर्ग से सम्बद्ध हो गये थे, परन्तु मध्यवर्ग नाम सन् 1812 ई० से पहले किसी वर्ग के लिए प्रयुक्त नहीं किया गया था।"² इस प्रकार 19वीं सदी के आरंभ से मध्यवर्ग समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान को पाकर विकसित होने लगा।

मध्यवर्ग उच्च तथा निम्न वर्ग के बीच का वर्ग है। यह वर्ग विशिष्ट मनोवृत्तियों वाला है। "वर्तमान युग का मध्य वर्गीय व्यक्ति निरिधत और बंधी आमदनी वाला - कर्क अक्षयापक या इसी श्रेणी का व्यवसाय करने वाला व्यक्ति है। निम्न वर्ग की अपेक्षा धन की दृष्टि से इसकी स्थिति कुछ ठीक है, किन्तु इस वर्ग की अखि उच्च वर्ग की ओर लगी होती है। बौद्धिक विकास इस वर्ग में स्थाई असंतोष भर देता है। यही कारण है कि वह वर्ग अपनी आर्थिक चिन्ताओं से हमेशा पीड़ित रहता है।"³

उपरोक्त विशेषताओं के अलावा मध्यवर्ग की कुछ अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएँ इस प्रकार हैं - "वर्गीय विवेकलता, कायरता, अपनी अवस्था के प्रति असंतोष एवं अग्राप्य की तीव्र लालसा इस वर्ग की विशेषताएँ हैं।

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा - हिंदी साहित्य कोश - पृ: 564

2. डा० मूलचन्द गोतम - हिंदी नाटक की भूमिका ॥ मध्यवर्ग के संदर्भ में पृ: 26

3. डा० सुधाकर गोकाकर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी-पृ: 65

परिस्थिति के प्रति असंतोष रहने पर भी इस वर्ग के व्यक्ति में समाज से लड़ने की शक्ति नहीं होती है। कायरता से उसमें बहुतनी भरी रहती है कि वह अपनी छाया तक से डरता है। शारीरिक पीडा, पारिवारिक संकट एवं आर्थिक अभावों से दूर भागने की उसकी क्षिति ही उसे ऊपर उठने नहीं देती। अपनी जान बचाने के लिए वह दूसरे की गर्दन फाँसी के फन्दे में फँसाने को प्रस्तुत करता है। स्वाई साधन के लिए वह उच्च वर्ग के साथ किसी भी स्तर का सम्बन्ध कर सकता है, विद्रोह की छाती में खूँर भोंक सकता है विद्रोहियों में भेद एवं भ्रांति निर्माण कर सकता है। अतः इस वर्ग के व्यक्ति में अकर्म्य असंस्कृता एवं निराशा-जन्य का पुंस्थता प्राप्त हो जाती है।¹

4.3. निम्न वर्ग :

आर्थिक स्थिति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में निम्नवर्ग तीसरा और कनिष्ठ वर्ग है। अनादिकाल से उच्च वर्ग - स्वामी सम्मत, पूँजीपति के द्वारा अनेक प्रकार से शोषित होता आ रहा है। मार्क्सवादी दर्शन में इस वर्ग को सर्वहारा कहा गया है। मार्क्स और एंगेल्स ने सर्वहारा वर्ग के उदय के संबंध में लिखा है - जिस अनुपात में पूँजीपति वर्ग का, अर्थात् पूँजी का विकास होता है, उसी अनुपात में सर्वहारा वर्ग का, आधुनिक मजदूर वर्ग का, उन श्रमजीवियों के वर्ग का विकास होता जो तभी तक जिन्दा रह सकते हैं जब तक उन्हें काम मिलता जाये, और उन्हें काम तभी तक मिलता है, जब तक उनका श्रम पूँजी में वृद्धि करता है। ये श्रमजीवी, जो अपने को अलग अलग बेघरे के लिए लाचार है, अन्य

व्यापारिक माल की तरह खुद भी माल है, और इसलिए ये होठ के हर उतार चढ़ाव तथा बाजार की हर तेजी मन्दी के शिकार होते हैं।¹

अधाभाव के कारण सामाजिक संरचना में निम्नवर्ग की परिस्थिति बहुत ही दयनीय रहती है। इस वर्ग के लोगों का निश्चित आय जैसे मध्यवर्ग के लोगों का होता है - भी नहीं होती। चपरासी ठाकुर, लाइन मैन, आदि लोगों का निश्चित आय होने पर भी यह उनके पारिवारिक निर्वह में पर्याप्त नहीं होती। इस कारण यह वर्ग हमेशा श्रम करता रहता है। इस वर्ग में कुछ ऐसे लोग भी रहते हैं - "जिसकी आय का न कोई निश्चित साधन है और न कोई निश्चित मात्रा। इनमें ऐसे लोग भी हैं जिन्हें महीने में कई दिन बेकारी के साथ संघर्ष करना पड़ता है, जिनके परस्पर बातलाप का विषय प्रायः मजदूरी और धनाभाव होता है, मजदूरी मिलने पर ही जिनके खाने का प्रबंध होता है। जो आधुनिक नागरिक जीवन की साधारण सुविधाओं से भी प्रायः वंचित हैं।² ऐसे स्थिति में सामाजिक व्यवस्था में शोषित निम्न वर्ग एक जुट होकर संघर्ष करना चाहिए। जब तक अपने पर हो रहे अत्याचार अन्याय, और वर्ग वैभ्रमकी भावना के विरोध में यह वर्ग संघर्ष नहीं करता, तब तक उच्च वर्ग द्वारा इनका शोषण होता ही रहता है। शायद इसलिए ही मार्क्स और एंगेल्स न कदा है कि - "सर्वहारा के पास खोने के लिए अपनी बेठियों के सिवा कुछ नहीं है। जीतने के लिए सारी दुनिया है। दुनिया के मजदूरों एक हो।"³

निम्न वर्ग का जीवन बहुत ही दुर्भर रहता है। उद्योग धंधे शहर में आरंभ होने से निम्नवर्गीय किसान और अन्य दस्तकारी के काम के

1. मार्क्स एंगेल्स - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषण पत्र - पृ. 44

2. डा० हेमराज "निर्मम" - हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग - पृ. 21

3. मार्क्स एंगेल्स - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषण पत्र - पृ. 80

करने वाले मजदूर बनकर शहर में रहने लगे। शहरों में आर्थिक अभाव के कारण मजदूर झुग्गी झोपड़ियों में रहने लगे। इनका जीवन कीड़े-मकोड़े की तरह अत्यंत बेय बनता गया। निम्न वर्ग में शिक्षा दीक्षा से वंचित रहने के कारण घर परिवार के अभाव एवं व्यापारपूर्ण जीवन के कारण से कभी स्नेह, सोहार्द के वातावरण से दूर हुआ, लड़ना और झगड़ने के बीच फलने के कारण कई आवारा बन गए। माँ-बाप हीन, स्नेह-संबंधियों से अलग बालक बचपन ही से फटकार छुकी और हुआ के आदि बनते रहे। अतः उनमें उच्च वर्ग के प्रति एक तरह से पैदावशी नफरत ही रही। अर्पण या बेकार या श्रम से बचने वाले भिखारी बन गए जो गाली हुआ और छिठकी सहकर हाथ फैलाए रहने में माहिर हो गए। इस प्रकार शहरों में एक ओर बिजली के प्रकाश से चमकती उंची-उंची अट्टालिकाएँ दीख पड़ती हैं तो दूसरी ओर दिन के उजाले में भी अंधकार फैलने वाला, गंदी, टूटी-फूटी झोपड़ियाँ दीख पड़ती हैं। बड़े बड़े शहरों में तो लाखों परिवार फुटपाथों पर फूलों के नीचे अपनी गृहस्थी बसाते और वहीं व्यतीत करते हैं। इस स्थिति के कारण शहरों के इस निम्न वर्ग के कई प्रश्न निर्मित हो गए हैं।*

कुल मिलाकर निम्नवर्ग के संबंध में हम इतना ही कह सकते हैं कि यह वर्ग हमेशा अभावभाव से ग्रसित रहता है। जिसके कारण वह निरंतर श्रम करता है फिर भी समुचित प्रतिफल उसे नहीं मिलता। इस क्रम से वह विवशता पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। मार्क्सवादी दार्शनिकों के अनुसार इस वर्ग में वर्ग चेतना को जागृत करके इसे अपने वर्ग शत्रु की

पहचान कराना आवश्यक है। इसके पश्चात् अपने वर्ग राज्य पूँजीपति वर्ग के विरोध में क्रांति करने के लिए तैयार होना चाहिए। तब ही निम्न वर्ग को समाज में अपने अधिकार मिल सकेंगे।

5. ठाठ प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में वर्ग चेतना :

आधुनिक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार समाज का विश्लेषण आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर होता है। समाज में व्यक्ति का स्तर निर्धारण भी आर्थिक स्थिति के अनुसार ही होता है। वर्तमान मानव समाज को आर्थिक दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया गया है। इन तीन भागों में जिस वर्ग के पास उत्पादन के उपकरण और अतिरिक्त धन है, वह उच्च वर्ग है। जिसके पास श्रम के सिवा और कुछ नहीं है और वह अपने श्रम पर ही विश्वास करके उसे बेच कर अपनी जीविका का प्रबंध कर लेता है वह निम्न वर्ग है। और इन दोनों के बीच में जो व्यक्ति रहते हैं वे मध्यवर्ग के अंतर्गत आते हैं। मध्यवर्ग का व्यक्ति निम्नवर्ग से अधिक और उच्च वर्ग से कम आर्थिक स्थिति में रहता है। उसके पास जीविका कमाने की मात्र गारंटी है और अन्य सुविधाएँ उसे आकाश कुसुम के समान हैं।

ठाठ प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में तीनों - उच्च, मध्य, और निम्न - वर्गों का चित्रण हुआ है। ठाठ माधवे बहुमुखी प्रतिभा शाली रचनाकार हैं वे अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं। प्रत्येक वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं को बहुत यथार्थ के साथ चित्रण किया है। हाँ, यह सच है कि प्रत्येक उपन्यास में तीनों उच्च, मध्य और निम्न वर्गों

का चित्रण नहीं हुआ है। कुछ उपन्यासों में उच्च वर्ग का चित्रण हुआ है तो कुछ में मध्य या निम्न वर्ग का। कुछ ऐसे उपन्यास भी माधवे जी ने लिखे हैं जिनमें इन तीनों वर्गों के समस्याओं से ऊपर उठकर नारी समस्या को केन्द्र में रखा है - जैसे 'एकतारा', 'ब्रामा', 'लक्ष्मीदेन' आदि उपन्यासों में पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति का सुंदर अवलोकन किया गया है। स्त्री समस्या प्रधान उपन्यासों के माध्यम से माधवे जी स्पष्ट करना चाहते हैं कि पुरुष चाहे वह उच्च वर्ग का हो या फिर मध्यवर्ग का या निम्नवर्ग का, वह स्त्री के प्रति एक समान दृष्टि ही रखता है। इस प्रकार समाज में स्त्री की समस्याएँ सभी एक प्रकार के होने के बावजूद प्रत्येक वर्ग में कुछ नारी समस्याएँ विशिष्ट होती हैं जो अन्य वर्गों के स्त्री में नहीं होती। जैसे उच्च वर्गों महिला समाज में व्याप्त समस्याएँ निम्नवर्ग में नहीं होती हैं।

वस्तुतः प्रभाकर माधवे के द्वारा लिखित उपन्यासों में वर्ग चेतना का चित्रण किस प्रकार हुआ है - यहाँ पर विवेचन करना है। इस लिए उपन्यासों के आधार पर उच्च वर्ग मध्यवर्ग तथा निम्न वर्ग का चरित्र चित्रण किस प्रकार हुआ है देखना समुचित होगा।

5.1. उच्च वर्ग :

उच्च वर्ग सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से सम्मानित और संपन्न वर्ग है। एक प्रकार से समाज के आर्थिक ढाँचे का संचालन इसी वर्ग के हाथ में रहता है। जनसंख्या की दृष्टि से कम होने पर भी प्रशासन व्यवस्था पर उनका वर्चस्व होता है। हिन्दी उपन्यासों में उच्च वर्ग का चरित्र चित्रण प्रेमचन्द युग से बहुत ही सशक्त रूप में होता रहा है। प्रेमचन्द के युग के उच्च वर्ग "सामंत" के रूप में व्यवस्थित था। इस जमाने

के उपन्यासों में सामंतशाही दुर्गुणों का व्यापक रूप से चित्रण है। इस काल में सामंतवादी संस्कृति समाप्त होने और पूँजीवादी सभ्यता आने के कारण सामंतों का चित्रण कम और पूँजीपतियों का चित्रण अधिक होने लगा। इस काल में पूँजीपतियों के द्वारा किये जाने वाले शोषण, निम्नवर्ग पर अत्याचार आदि का समग्र चित्रण उपन्यासों में हुआ है।

डा० प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में भी उच्च वर्ग का चित्रण हुआ है। हाँ यह बात सही है कि इनके उपन्यासों में उच्च वर्ग का समग्र अनुशीलन नहीं हुआ है। इस का कारण यह है कि माधवे जी मूलतः वैचारिक रचनाकार हैं। वे कथ्य से ज्यादा विचार को प्रधानता देते हैं। अपने विचारों को पाठक तक पहुँचाने के लिए उपन्यास शैली को चुना है न कि उपन्यास लिखने के लिए विचारों को कथ्य रूप दिया है। इस कारण माधवे जी के उपन्यास साधारणतः लघु हैं। इस प्रकार लघु उपन्यास लिखने का कारण स्वयं बताते हुए वे कहते हैं कि — “मैं अब तक पाँच उपन्यास लिखे हैं। 1950 से 1965 तक क्रम से — “परन्तु”, “एकतारा”, “दाभा”, “साया” और “जो”। मेरे मन में कई बार और बड़े उपन्यास लिखने की बात भी उठी। पर अधिकतर मैंने कई अध्याय लिखकर पाठक के दिये — क्योंकि मेरे मन का पूरा समाधान नहीं हुआ।”¹ इनके उपन्यास लघु होने पर भी उच्च वर्ग का जो चित्रण इनके उपन्यासों में विहंगम दृष्टि से हुआ है वह अद्भुत है। उच्च वर्ग की सभी सामियों जैसे स्वार्थपरता, अन्ध्याय, क्लृप्तासी आदि को बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रण किया है।

1. डा० प्रेमचंदनागर - हिंदी उपन्यास शिल्प बदलते परिदृश्य : पृ. 264

[लेखक - का उपन्यासकार भेंट: प्रश्नों का लिखित उत्तर: 7-6-68]

वरुतः ठा10 प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में चित्रित उच्च वर्ग में जमींदार, पूंजीपति, सेठ और निम्न मालिक आते हैं जो निम्न वर्ग की जनता का रक्त चुसते हैं। उनका शोषण अमानवीय है। इस वर्ग के पात्रों का चित्रण देखने से पता चलता है कि वे धन प्राप्त करने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाते हैं। चाहे भ्रष्टाचार के प्राण ही क्यों न जाय। उनके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता। इस प्रकार उच्चवर्गीय संस्कृति और सभ्यता का चित्रण हम माधवे जी के उपन्यासों में देख सकते हैं।

ठा10 प्रभाकर माधवे का प्रथम उपन्यास है - "परन्तु"। इस उपन्यास में जमींदार बाबू निखिल सेनगुप्त, उनके पुत्र अमिय, प्रभातचंद्र उनकी पुत्री अनीता, सेठ लक्ष्मीचन्द्र आदि उच्च वर्ग के पात्र हैं। इन पात्रों के माध्यम से लेखक ने उच्च वर्गीय कुलसंस्कृति का पर्दा फाश किया है। उच्च वर्ग हमेशा सुविधाभोगी जीव है। यह उसकी विशेषता है। वह न दूसरों की परवाह नहीं करता है और न दुःख दर्द ही बाँटता है। वह मात्र अपने आपसे लीन रहता है। इसी का चित्रण इस उपन्यास में चित्रकार अमिय, जो जमींदार बाबू निखिल सेने गुप्त के पुत्र है, के माध्यम से किया गया है। वह सुविधाभोगी है। इसलिए वह न कला में दुःख का चित्रण करना चाहता है और न ही दुनिया के दुःख के बारे में सोचता चाहता है। वह कला के बारे में इतना ही सोचता है कि "दुनिया में दुःख बहुत है, गन्दगी बहुत है, सरतापन बहुत है। अतः कला के सौन्दर्यलोक में चलो जहाँ सुख ही सुख है, दुःख है भी तो वह सुख से समुत्थित है। सब कुछ साफ सुथरा, मन की मीज के अनुसार राजसी और समृद्ध है। वहाँ कुछ कमी नहीं है, क्योंकि वह स्वप्नलोक है कलकार की "आत्मा" की हाथी दाँत की कुर्जों से संरक्षित "यूटोपिया" है।"

इस प्रकार उच्च वर्ग के लोग दुःख के नाम मात्र से पलायन करते हैं उसके पास नहीं जाना चाहते हैं । हमेशा सुविधायोगी जीवन को व्यतीत करता चाहते हैं । इस उपन्यास की पात्र अनीता भी सुविधायोगी जीव है । वह जमींदार प्रभात चन्द्र की पुत्री है तथा खुश निवृत्ति में पड़ती है और संगीत में रुचि रखती है । इसका परिचय अमिय से होता है जो एक चित्रकार है । एक दूसरे की अभिरूचियों के कारण वे परस्पर आकर्षित होते हैं । अमिय सोचता रहता है कि वह अनीता से विवाह करें किंतु "ब्याह शादी और चक्की चुन्हे के चक्कर में न पड़ने तथा निष्काम प्रीति का आदर्श रखने वाली अनीता, अपने परिचित अमिय को छोड़ कर अज्ञात लक्ष्यति के बेटे से अकस्मात् शादी कर लेती है । इस प्रकार "अर्थ" में आदर्श की एक न चलने दी और छिपी काम क्षुब्ध ने उसके विवाह न करने के संकल्प को शीघ्र ही लुखटा दिया ।" अमिय की स्थिति भी अनीता से भिन्न नहीं है । वह भी एक लक्ष्मीचन्द जैसे पूँजीपतियों के कला के व्यावसायिकरण करने लक्ष्मी धारणियों को सुनकर कला के लिए कला के आदर्श को तिलाजली देकर एक जी के पब्लिसिटी का प्रमुख भेनेजर होने के सपने देखता है ।

ग्रामीण इलाकों में जमींदार लोग निम्नवर्ग की जनता को शोषण के साथ-साथ अपनी वासना की पूर्ति भी कर लेते हैं । जमींदारों के पास अर्थ का दंभ रहने के कारण वे अपनी इच्छा के अनुसार गाँवों में मनमानी करते हैं । किसी भी युवती को अपने साथ ले जा सकते हैं । इस उपन्यास में एक ग्रामीण युवती के अशोध के साथ साथ निर्धन परिवार से सम्बद्ध है, उस की एक निवृत्ति जमींदार के लड़के से शादी कर दी जाती है । वह कुछ ही दिनों के बाद मर जाता है । हेम विधवा हो जाती है ।

हेम विधवा हो जाती है। हेम अपने दुर्भाग्य के संबंध में सोचना भी नहीं चाहती। "उसका पति, जिसे वह पूरी तरह से देख भी न पाई थी, एक उधवा, बेकार, निम्नजाति जमींदार का झिगड़ल लड़का, वह जिया-मरा, एक सा था पर तिनदूर उसके ललाट से फूँट चुका है, झुठियाँ फोड़ी जा चुकी है। माँग अब सुना पड़ी है और आजीवन उसे उसी एक निकम्मे के नाम की याद में अपना यौवन अपनी आकांक्षाएँ, अपनी सुखभा की वचनाएँ लेकर साँसों का बोझ ढोना है।"¹ इस तरह जमींदारों की हवस पूरी करने के लिए निम्न वर्गीय स्त्री को अपनी मान मर्यादा को न्योछावर करना पड़ता है। यह उच्च वर्गीय कुलस्कारों को मात्र एक उदाहरण है।

शहरी उच्च वर्ग के लोग भी जमींदारों से कम नहीं है वे भी अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए जिस स्त्री को देखें उस स्त्री को अपना पास आने के लिए विवश करने का सामर्थ्य रखते हैं। "परन्तु" उपन्यास के सैठ लक्ष्मीचन्द ऐसे ही है। जब हेम अपने मामा के साइ कलकत्ता जाती है और रास्तेमें सैठ जी बंगले के पास थोड़ी देर विवश के लिए अपने मामा के साइ ठहरती है तभी सैठ जी की निगाह हेम पर जाती है और वे अपने नौकर सेक्रेटरी सरचुपाई को सूचना देते हैं कि किसी तरह उस लड़की को ले आओ। उसके बाद सैठ जी के यहाँ बच्चों की देखभाल करने की नौकरी के लिए आर्थिक विषयना हेम तैयार होती है। इस प्रकार वह सैठ जी के जाल में फँस जाती है। सैठ जी ने उसके श्रम को ही नहीं, सतीत्व को भी जबरदस्ती खरीद लिया और यौवन के विकास के प्रथम पौर में ही उस पर "तुम्हारपात" हो गया।² इस प्रकार युवतियों

1. परन्तु - पृ. 90

2. डा० सत्यपाल त्रिः प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिखर विधि-पृ. 79।

का जिंदगी नाश करने वाले ये पूँजीपति अपने आपको दोष-मुक्त मानते हैं। कर्म सिद्धांत को अपने अनुसार मोड़कर व्याख्या करते हैं।

सैठ लक्ष्मीचन्द्र का नारी जाति के प्रति कैसा अभिप्राय है देखिए - "सैठ जी का विश्वास है कि ये ५ हेम ५ ऐसी सब युवतियाँ उनके सुखोपभोग के लिए पैदा हुई हैं। उन्हें कृत्त होना चाहिए कि एका में वह उन्हें रुपये दे देते हैं। अन्य लोग तो वह भी नहीं देते। इस प्रकार क्लात्कार करा लेना जैसे इस कर्मा की बनाया दरिद्रा रूपवतियों का जन्म सिद्ध अधिकार है।"¹

इस प्रकार के विचार उच्च कर्मा के मन में रहना कल्पनातीत है। इस कर्मा के लिए दो ही विषय प्रमुख हैं - एक धन दूसरा - काम तृप्ति। "परन्तु" के सैठ जी जो अनेक प्रकार के समाज सेवी कार्य दिखावा के लिए करने पर भी उसकी छवि मात्र धन लोलुप और काम पिपासी के रूप में उभर कर सामने आती है। "वह राष्ट्रीय नेता, सरकार का सहायक, भगवान - भक्त, संगीत कला प्रेमी सब कुछ है और वस्तुतः कुछ भी नहीं" अर्थ और काम ही एक मात्र उसके काम के है। अपने पैसे से वह खूदधारी सिद्धांत-वादी सम्पादक को खरीद सकता है और कला का अभिमान करने वाले कलाकारों को भी। अपने नित्य नुतन का प्रेम सिद्ध करने के लिए यथानाम घंछल स्वभाव वाले सैठ लक्ष्मीचन्द्र किसी भी नारी तक हाथ बढ़ा सकते हैं क्योंकि सब युवतियाँ उनके सुखोपभोग के लिए पैदा हुई हैं। फिर भी वह इतने हज्जतदार आदमी बने रह सकते हैं कि महान देश भक्त और त्यागवीर श्री नित्यानन्द तथा स्वामी अद्वैतानन्द उनसे प्रभावित हुए रहते हैं।² ऐसे पूँजीपतियों के हाथों में स्वतंत्रता आंदोलन की बागडोर जाने के कारण ही शायद राष्ट्रीय एकता का आदर्श खोखला हुआ है। माचवे जी

1. परन्तु - पृ. 99

2. डा० सत्यपाल त्रिपाठी - प्रेमचन्दोत्तर - उपन्यासों की शिष्ट विधि-पृ. 792

के इस उपन्यास का एक पात्र अविनाश के यही विचार व्यक्त करता है । अविनाशकृता है कि "हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के मूल में ही यह पूँजी-वादी धुन लगा हुआ है । इसने हमारे राष्ट्रीय एकता के आदर्श को खोजला और बाहर से छिड़ित कर दिया है ।"¹

उच्च वर्ग की एक ओर विवेकता को माघवे जी सेठ लक्ष्मीचन्द के माध्यम से व्यक्त करते हैं । उच्च वर्ग के लोग धन को खर्च करना नहीं चाहते श्रम करने पर भी मजदूर को मजदूरी नहीं देना चाहते और उसके लिए बहुत ही चालाकी से बातें करते हैं । सेठ अपने पूर्वजों के चित्र बनवाना चाहता था । वह अमिय के मित्र से बातकरता है, पर मेहनत की रकम देना नहीं चाहता । इसलिए वह उस चित्रकार से कहता है - "तस्वीर में कौन सी मेहनत पड़ती है । यह हिसाब का काम है क्या ? यह तो मन की मोज का काम है । आप यह नहीं देखते कि मेरी बैठक में आपके नाम का बना पोर्ट्रेट टंगा होने पर कितना बड़ा विज्ञापन हो जाता है । आपको धर बैठे सेठों आठर जो मिलेंगे । रही बात दाम की तो हमारे कन्सुमियर्स पैटर आजकल यहाँ नहीं हैं, नहीं तो ये काँच पर फूलों के गम्भीर दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह रुपये में बना कर दे गये थे ।"²

"परन्तु" उपन्यास के सेठ लक्ष्मीचन्द्र के समान ही "दर्द के पैलन्द" नामक उपन्यास में सेठ फूलचन्द है । सेठ लक्ष्मीचन्द को जो शोक है वही शोक सेठ फूलचन्द को भी है । जब से एक कोठी भी जाने नहीं देते और समाज में सम्मान पाने की इच्छा रखते हैं । साहित्य सेवा करना चाहते हैं - शोक के लिए । इसलिए "भावना" नामक पत्रिका भी छपवाते

1. परन्तु - पृ. 113

2. परन्तु - पृ. 117

हे और स्वयं संपादक हैं । यह सैठ ऐसा व्यक्त है अपने बाप की सम्पत्ति जो अपने और बहिन के बीच बाँट दी गई है, पूर्ण रूप से स्वयं छुपना चाहता है । इसके लिए वह अपनी बहन का ब्याह भी नहीं करवाता है । श्रुता से अपने बारे में सैठ फूलचंद जी कहते हैं - "हमारे कई काम होते हैं । छापाखाना है । तम्बाकू का कारखाना है । कपड़े की दुकान है । एक भाई ब्याज बगैर पर कर्ज देत है, गहने गिरवी रखते हैं । मुझे पिताजी से बहुत रुपया बहिन और मेरे बीच में ये जायदाद बाँट दी है । मैं चाहता हूँ वह शादी करके छत्ती न जाये, तभी सारा पैसा मुझे मिले । पर वह विरह से सूझकर काँटा हो रही है । अपने आपको बड़ी साहित्यिका समझती है । टलती ही नहीं इस संसार से...।" वस्तुतः धन का भूत न पारिवारिक नाते रिरते देखता है और न ही पराये लोगों को । पूँजी-पतियों का जो एक मात्र लक्ष्य है पूँजी को सुरक्षित रखना और कमाना । इसके लिए यहाँ सैठ जी अपनी खास बहिन की वैवाहिक जीवन का ही बलि देते हैं । उनकी बहिन की भी वही हछाप वही भावनाएं हैं जो अन्य व्यक्तियों में होती है । किन्तु सैठ जी द्वारा इन सब को अनदेखी करते हुए उसकी मौत का हन्तजार करते रहना मानव जाति पर कर्त्तक है । जायदाद के लिए पारिवारिक सदस्य की मौत का हन्तजार करना उच्चर्का द्वारा ही संभव है ।

"एकतारा" प्रभाकर माचवे का एक लम्बत उपन्यास है । जिसमें नायिका "तारा" सैठ की एक मात्र संतान है और उसकी माँ का बचपन में ही देहांत हुआ । तारा विछोही स्वभाव की थी । वह स्वतंत्र व्यवहार वाली थी । किन्तु घर में उच्च कर्त्त के मर्यादानुसूल स्त्रियों को बाहर धूमने की स्वतंत्रता नहीं थी । उन्हें घर के चार दिवारों के बीच

में ही रहना पड़ता है। इस उच्चवर्गीय संस्कार के कारण तारा के भीतर स्थित रचनात्मक कार्यों को कोई परवा नहीं है। इसकी मानसिक स्थिति को समझते हुए तारा की सहेली सिन्धु तारा को एक पत्र लिखती है। जिसमें ख़लील जिब्रान का "मसीह का बगीचा की कविता" लिख कर भेजती है - कविता इस प्रकार है -

1. "काश में एक अच्छी बाधड़ी होता, सुखी ओर पत्रों से भरी, जिसमें जाने जाने वाले पत्थर ही फेंकते। मुझे रज है तो इसका कि मैं एक भरा हुआ सरोवर हूँ और मेरे पास कोई च्यास ही नहीं आता।"
2. "काश में एक सुखा दूँठा होता, जिसमें अंकुराने की कोई शक्यता ही नहीं हो परन्तु मैं तो एक फलों से लदा वृक्ष हूँ जिसकी छाया में आज तक कोई पथिक ही नहीं आया, जो भूले से मेरा एक बाध टपका हुआ फल खाता।"
3. "काश में काठ होता तो, किसी से काई शिकायत और ग़िला तो न होती। परन्तु मैं उस स्वर्ण की सुन्दर वीणा की तरह हूँ, जिसे आज तक किसी ने नहीं बजाया, जिसके तार बहते हैं जिसका मालिक बहरा है और उसके हाथ कटे हुए हैं।"

ख़लील जिब्रान की कविता की तरह ही उच्चवर्ग के संस्कारों के कारण कई स्वतंत्र व्यक्तित्व रखने वाली युवतियाँ समाज में नहीं आ पाती। विचित्र बात है कि उच्च वर्ग के पुरुष कहीं भी कभी भी धूम सकते हैं। दूसरी स्त्रियों से संबंध रख सकते हैं किन्तु अपने घर परिवार की स्त्रियों को घर से बाहर जाने नहीं देते।

पूँजीपति अपने व्यापार के व्यवहार में किसी को नहीं मानते । व्यापार को सर्वोच्च मानते हैं । अपने परिवार के लोगों को भी व्यापार की खातिर छोड़ सकते हैं । 'एकतारा' में "तारा" समाजवादी विचारधारा से आकर्षित होने के कारण क्रांतिकारी दल से मिलाकर आती है । जिसके परिणाम स्वरूप तारा के घर पर पुलिस ने एक दो बार छापे मारा और सेठ जी को सचेत किया कि यदि उनकी बेटी "तारा" क्रांतिकारी गति-विधियों में भाग लेगी तो ठीक न होगा । सेठ जी को भय हुआ कि जो ब्रिटिश सरकार से माल उत्पादन करने से आर्टिस मिलाते वाले हैं यदि न मिलें तो बहुत धाटा होगा । इसलिए सेठ जीने अपनी पत्नी के मत के अनुसार "तारा" को अपने व्यापार की खातिर घर से निकाल दिया । यह उच्चकणीय संस्कृति है जिसमें धन के मोह में नाते रिरहते देखे नहीं जाते ।

"तारा" क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा गिरफ्तार हो जाती है । जिस जेल में तारा रहती है उसी जेल में स्वतंत्रता आन्दोलन की कई स्त्रियाँ भी थी जो जेल आना उनके लिए एक यात्रा थी । उन स्त्रियों को बाहर से भोजन के साथ साथ अन्य सुविधाएँ भी उपलब्ध होती थी । वे उच्च वर्ग के स्त्रियाँ होने के नाते अपना आर्थिक दम को वहाँ पर बताते थे । अन्य स्त्रियाँ उनके धन के मोह में उनके हर्द-गिर्द घुमा करती थी । तारा को जेल की दुनिया में आकर लगा कि - "आदमी आदमी के रिरहते आर्थिक और आज केवल आर्थिक है, जो जयंत कहता था, वह बहुत ज्यों में सही था ।" "परन्तु" उपन्यास के अविनाश भी इसी अर्थ में कहता था कि पूँजीवादी लोग राष्ट्रीय एकता के आदर्श को खोखला बना दिये हैं । "तारा" जेल में रहकर देखती है कि उच्चकणीय निरी आजादी की लड़ाई और उनके हर्द-गिर्द घुमने वाले उनके चमचे किस

प्रकार धन पर लट्टू हो गये है। तारा कहती है कि "भैंस इस जेल में आकर साफ देख रही है कि प्रेम भी बिजली की चीज बन गया है। जैसा दाम जैसा दूध, सस्ता चाहोगे तो ओर पानी मिला दिया जाएगा। जैसे ही यहाँ प्रेम का हिसाब है। अमीर से सब प्रेम दरसाते हैं गरीब के प्रति दिखाते समय कुछ पानी मिला दिया जाता है।"¹ इस प्रकार उच्चवर्ग के लोग धन के दंभ पर प्रेम का भी पण्य परन्तु में बदल देना चाहते हैं। ठीक इसी तरह के विचार "ढाभा" उपन्यास के एक पात्र निर्मल अपनी डायरी में लिखता है। वह उच्च वर्गीय युवक है। "प्रेम" को वह भी आर्थिक दृष्टि से देखता है। वह अपनी डायरी में लिखता है - "सच्चाई यह है कि आदमी के प्रेम का बैरोमीटर आर्थिक दबाव के सहारे घटता उठ-रता है। ओर प्रेम की पवित्रता का टिंढोरा पीटा जाय, श्री ओर मेरे बीच में अमिता मुझे ही इसलिए पसन्द करेगी कि करेगी कि मैं घर का अच्छा हूँ, मरान जायदाद है, बैंक अकाउंट है, रहन-सहन आलीशान है और मेरे लिए जैसी अमिता, जैसी केतकी - फर्क क्या पड़ता है १ सभी स्त्रियाँ एक ही होती हैं।"² उच्च वर्ग में पैसे का धमक अधिक होता है। वह पैसे के माध्यम से कुछ भी खरीदना चाहते हैं। यहाँ तक की जो प्रेम है, मानवीय मूल्यों को उजागर करते हुए मानव को उच्च स्तर पहुँचाता है, उसे भी यह वर्ग पैसे से खरीदना चाहता है। यह वर्ग हमेशा धन जुटाने के चक्कर में रहता है न इसे किसी का दुःख है और न सिद्दना। धन जुटाने के चक्कर में रहता है, न इसे किसी का दुःख है और न सिद्दना। वस, धन कमाना इसका एकमात्र लक्ष्य है। युवक निर्मल अपनी डायरी में लिखता है - "कमाने की राह। मेरे लिए वह सीधी सुनी है। आज

1. एकतारा - पृ. 44

2. ढाभा - पृ. 54

फस्टक्लास एम.एस-सी, इर्रिगा, कल पी सी एस परसों डिप्टी क्लबटरी या बिजिनेस । पिताजी का रीब काफी है और माहवार बारह सौ से उपर बाय धर बैठ आ जावेगी । पर बंगाल का काल पीठित...छोटी भी उसे । मे अमिता की तरह सेटिमेंटल थोड़े ही हूँ । काल पर रोते बैठना स्त्रैपता है । वह श्री को सहती है । मेरे लिए परीक्षा है और ये हाइसेन वर्ग, 'जैक जीम्स और भाभा ।'¹ इस प्रकार उच्च वर्ग का युवक समाज के प्रति लापरवाह होता है वह अपना करियर देखता है न की सामाजिक विभिन्निका । उच्चवर्ग के युवक को सिर्फ अपने क्लासी जीवन तथा उसे क्या क्या खरीदना चाहिए बायि की ही सोच सताती रहती है । सामाजिक कार्यों में भाग लेना तो दूर उसके बारे में कभी सोचता तक नहीं है ।

"सूत" उपन्यास में सेठ धन्नेमल के माध्यम से उच्च वर्ग में व्याप्त कामुकता तथा निम्न जातियों के प्रति अशुद्ध भावना का उजागर किया गया है । सेठ धन्नेमल क्लासी जीवन बिताने वाले है । "उन्होंने तीन चार बीबीयाँ की । एक के मरने के बाद दूसरी ।"² उनका एक लड़ला बेटा था श्याम बाबू । सेठ जी के घर में एक काम करने वाली नौकरानी रहती थी जिसका नाम था कलिया जो मंदिर में नाचने का काम भी करती थी । सेठ जी कलिया पर लट्टू हो गये । एक दिन श्याम बाबू गाँव लौट आया जो शहर में पढ़ाई के लिए गया था । वह कलिया पर आकर्षित हो गया और उसे अपने क्ला में कर लेना चाहता था किन्तु कलिया श्याम बाबू से कहती है -- "आपके बापू हैं न, इन्हें बुढ़ापे में ऐसा नहीं करना चाहिए । वे मुझ से बहुत कुछ करते हैं, जो उन्हें नहीं करना

1. भाभा - पृ. 53

2. सूत - पृ. 51

चाहिए ।¹ श्याम्बाबु कहता है कि मैं माँ से कह दूँ, तो कलिया कहती है -- "नहीं नहीं बाबू ऐसा अन्याय मत करना । सेठ जी से मैं बहुत रुपये लिये है । मुझे उनका कर्ज चुकाना है । ऐसे ही तो सेवा टकल से कर्ज चुक जायेगा । जैसे भी मेरे बाप के समान बराबर है ।"² माचवे जी लिखते हैं "बूटे सेठ धम्मोम्ल को बेटे की हरकतों का पता न हो, ऐसी बात नहीं थी । पर वे सोचते थे कि छुट्टियों के बाद वह फिर शहर चला जायेगा । इस तरह की बातें जमींदार साहूकार परिवारों में होती ही रहती थी । उन पर क्या ध्यान देना । सेठानी ओशीनरी की तरह सब देखती रहती ।"³ एक दिन श्याम बाबू ने अपने पिता के सामने कलिया से ब्याह करने का प्रस्ताव रखा । बाप बहुत आग बबूला हुआ -- "तुमहारी मति मारी गई है ? यह नीच जात नचनी और हमारा अग्रवाल देख्यों का बड़ा उचा चूँ । कोई जोड़ है भला ? यह नहीं हो सकता । मैं मर जाऊँ तो फिर उसे घर में लाना ।"⁴

सेठ धम्मोम्ल, श्याम्बाबु और कलिया के इस त्रिकोणीय वासनायुक्त प्रेम प्रकरण से स्पष्ट होता है कि उच्च वर्ग अपनी वासना को तृप्त करने के लिए पैसों का जाल बिछाता है चाहे वह कर्जों के रूप में हो या नौकरी के रूप में हो । दूसरी बात यह है कि इस वर्ग की काम-क्रियाओं में भक्ति मूल्यों की मर्यादा नहीं है । पिता और पुत्र एक निम्न जाति की स्त्री को अपना रिश्तारत बनाते हैं । तीसरी बात यह है कि जब श्याम्बाबु कलिया को ब्याह करना चाहता है तो सेठ जी सबत विरोध इस कारण करता है कि वह एक निम्न जाति व्यूत की स्त्री है और अपना उच्च संस्कार वाला परिवार है । सेठ जी अपने पुत्र को यह भी धम्की भी देता

1, 2, 3. छूत - पृ. 53

4. छूत - पृ. 54

है कि वह ५ सेंच जी० मर जाने के बाद ही उसे घर में लाना । इस संदर्भ में डा० राम विनोद सिंह का वक्तव्य महत्वपूर्ण है - वे लिखते हैं कि - "कुर्बाना संस्कृति भुविधाभोगी संस्कृति है । इसलिए इस संस्कृति में फलने वाले व्यक्ति भोगी युवतियों या दूसरे वर्ग की उपेक्षित जातियों की औरतों के साथ सहवास करने में कभी अपनी मर्यादा की हानि नहीं समझते हैं । उन औरतों के साथ शारीरिक खेल में उनका जन्मना उच्चवर्गीय संस्कार कभी व्यवधान उपस्थित नहीं कर पाता । लेकिन उस सहवास के परिणाम को स्वीकारने के अक्सर पर उनका जातीय अभिमान या कर्णीय संस्कार उभर जाता है ।"¹

गाँव में बाढ़ आने का कारण भी कलिया ही मानते हैं, गाँव का मुखिया कहता है -- "कुछ लोगों का कयाल है कि गाँव में जो बाढ़ आई वह उस ५ कलिया ५ जैसी पापिनी की वजह से ही आई । कुछ बड़ी जातवाले उसे पानी में बहा देने वाले थे । पर दादा ने रोका ।"² दोपदी हँसकर बोलती है -- "गाँव का यह अच्छा नियम है । खुद ही बुराई करें और उसके रिश्तार को अपनी विपत्ति का कारण समझें । खुद ही गंदगी फैला दें और सफाईवालों को अशुभ समझें । यह विचित्र न्याय है ।"³

"साँघा" ओलोगिकरण सभ्यता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए कल-कारखानों के जीवन पर आधारित उपन्यास है । इसमें मिल्-मालिकों द्वारा मजदूरों का शोषण किस प्रकार होता है और ग्रामीण किसान मजदूर इस मिल् के कारण शहर की ओर किस प्रकार आकर्षित होते हैं बहुत ही यथार्थ के साथ चित्रण किया गया है । केशो नामक ग्रामीण माँझ्या नामक अपने ही गाँव के व्यक्ति के साथ इन्दौर जाने के लिए खाना होता है । बीच

1. डा० रामविनोद सिंह - अठार्वे दशक के हिन्दी उपन्यास - पृ० 112

2. 3. सूत - पृ० 29

में दोनों उज्जैन में उतरकर काली माता का दर्शन कर लेते हैं और वहाँ
 अनेक मंदिरों में भी जाते हैं । एक जगह देवता की चढ़ाई में से चोरी से
 तिलके मांग्या लेता है किन्तु अबोध ग्रामीण केशों इसे महापाप समझता है ।
 तब चालाक मांग्या केशों को बतता है कि शहर में पूँजीपति धन इकट्ठा
 कैसे करते हैं । उसने सख्त हल्के भाव से कहा — "इसमें कोन सा पाप है ।
 केशो तुम कुछ के कुछ रहे - शहर में तो यह आम रिवाज है । एक आदमी
 दूसरे की जेब के पैसे अपनी जेब में कैसे ले आए । उसकी आँखों में धूल धँककर
 हाथ की सफाई से यही तो सब विधा यहाँ पढ़ाई जाती है । जो जितनी
 चतुराई से दूसरे की जेब से पैसा निचाल सकता है, उतना ही बड़ा व्यापारी,
 उतना ही बड़ा कमील - बारिस्टर, उतना ही बड़ा डाक्टर कहलाता है ।
 यहाँ पढ़ाई - चढ़ाई सब इसी बात की होती है । समझे ।" पूँजीपति
 को प्रेम है उस धन से, मोह है सम्पत्ति का, अन्य सभी संबंध उसकी दृष्टि
 में तुच्छ हैं । मजदूर उसके लिए पूँजी निमार्ण का साधन है, समाज वस्तु
 को खरीदने का आधार है । अगर मजदूर विद्रोह करेगा, समाज प्रगति
 की मार्ग करेगा तो उसके पास सड़ाई, अकाल, साम्प्रदायिकता एवं कृत्रिम
 लंघी निमार्ण करना आदि हथियार हाजिर हैं । इनकी सहायता से
 उभरते विरोध एवं उगते विद्रोह को वह खूँकलता आया है । समाज को
 हमेशा अपने अधीन रखने के लिए वह नित्य नये शक्तिजों की खोज में रहता
 है । वह साम्प्रदायिकता दारिद्र्य, दैन्य, अशिक्षा, अज्ञान, अंधधुंध आदि
 को धुँटा बढ़ाकर, खाद देकर उगाता - कुँकलता आया है । विज्ञान की
 प्रतिदिन बढ़ती प्रगति ने उसकी साम्राज्यवादी वृत्ति को स्पष्ट कर दिया
 है ।¹ ठीक यही अभिप्राय साँचा उपन्यास में मनोहर व्यक्त करता है -
 "तो दंगा करता कोन है ? हिन्दू कहते हैं, मुसलमान करते हैं, मुसलमान

1. साँचा - पृ. 25

2. डा० सुधाकर गोकाकर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी-पृ. 45

कहते हैं, हिन्दू करता है, काग्रेसी कहते हैं - अंग्रेज करता है । मैं समझता हूँ - सब झूठ कहते हैं । दंगा कराने वाला पैसा है ।”

प्रभाकर माधवे जी ने पूँजीपति देश अमरीका में व्याप्त रंग भेद समस्या पर मन को झकझोर देने वाला उपन्यास लिखा है । उपन्यास का नाम “जो” है । “जो” नीग्रो है और इस उपन्यास का नायक है । इस उपन्यास में उपन्यासकार ने पूँजीवादी समाज में व्याप्त पारिवारिक विघटन का एक दृश्य खींचा है । जिसके माध्यम से स्पष्ट करना चाहता है कि पूँजीवादी देशों में कू माता-पिताओं की देखभाल स्वयं संतान ही नहीं कर पा रही है । नौजवान अपने रोमान्स में डूबते जा रहे हैं और उनके माता-पिता, जो कू हैं, जीवन के अन्तिम दिनों को बहुत ही यातनाओं के साथ काट रहे हैं । यह समस्या पूँजीवादी देशों की विकराल समस्या है । जिसके कारण मानवीय मूल्यों का हास होना पारिवारिक संबंध मात्र जैविक हो जाना हो गया है । “जो” उपन्यास में एक कू लक्ष्मण चतुर्वेदी से योगा सीखती रहती है । वह डॉक्टर रामन से लक्ष्मण चतुर्वेदी के संबंध में कहती है कि - “यह कहते हैं कि इनके पास पढ़ने आने वाली बूढ़ी स्त्रियाँ, बूढ़े लोग ज्यादा हैं । यह इस मुल्क की बड़ी समस्या है । घरों में इन बूढ़ों को स्थान नहीं दिया करें ?”

“तीस बालीस पचास” उपन्यासों में भी एक जगह उपन्यासकार माधवे जीने पूँजीवादी अमरीकी देश की “लड़ाई करवाओ धन कमाओ” नीति का पर्दाफाश किया है । पूँजीवादी समाज में दूसरों से कोई मतलब नहीं रहता । अपना व्यापार किस प्रकार चल रहा है उसी से उनका मतलब है । इस उपन्यास में एक अमरीकी कू दम्पति मि-ठिक और श्रीमती होप से वल्लुदेव और उनकी पत्नी सरला का सेन फ्रान्सिस्को के एक गाँव में

मुलाकात होती है। उसी समय एक नीग्रो युवक यु. विरोधी, एम्बम के विरोध में मोर्चे के लिए बन्दा मांगने आता है। तब वसुदेव एक सिक्का उसकी टोपी में डाल देता है। मि. ठिक तथा श्रीमती होप इस तरह पैसे न देने की बात करते हैं। वसुदेव कहते हैं कि — "पर उनकी बातों में तो बड़ा बाधावाद है। वे यु. के विरुद्ध कुछ करना चाहते हैं। मि. ठिक— सब भारतीय नारी सरला आरुच्य व्यक्त करती हुई कहती है कि — "तो यहाँ लड़ाई भी एक रोजगार की तरह चलती है। बाप रे बाप !"² इस प्रकार पूँजीवादी देशों में यु. भी एक व्यवसाय हो गया है। यु. हो या शांति उससे पूँजीपतियों का कोई सरोकार नहीं। उन्हें तो सिर्फ धन चाहिए।

"दशभुजा" उपन्यास में दो ऐसे पात्र हैं जिनके माध्यम से उपन्यासकार माधवे जीनेउच्च वर्ग के क्लृप्ताजी जीवन, रहन-सहन और उनकी हठछाओं पर प्रकाश डाला है। ये दो पात्र हैं — सेठ गेन्दालाल और श्रीमती देवी ठाकुर। दोनों चम्पादडिया के बारे में उपन्यासकार ने लिखा है कि वह जब मारवाड़ से चले थे तो उनके पूर्वज एक लोटा लेकर यहाँ आये थे। और दो वर्षों के भीतर ही "आज सेठजी के पास एक आलीशान कोठी, कुछ पिकर नहीं, ऐसाकारोबार और अनेक धार्मिक - अध्यात्मिक, सांस्कृतिक साहित्यिक आदि आदि संस्थाओं में विपुल बन्दा दान से अकूट संपत्ति और यश भी, उन पर, लक्ष्मी की कृपा के साथ साथ बराबर बरसता रहा।"³ सेठ गेन्दालाल की रहन सहन के बारे में उपन्यासकार वर्णन करता है — "बुन्-टदार धोती, मलमल का कुर्ता, सोने के बटन, इत्र लगाकर सेठ जी चांदी

1. तीस-चालीस-पचास - पृ. 68

2. -वही- पृ. 69

3. दशभुजा - पृ. 21

की झुठवाला बेंत लिए अपनी "टमटम" में कभी धुमने जाया करते थे । जब एक बड़ी इम्पोर्टेंट "कार" ले लो है । विक्टोरिया मेमोरियल के पास गाड़ी ठहराकर तीस चालीस कदम टहल लेते थे । इधर डाक्टरों ने सब तरह के परहेज लगा दिये हैं, वना पहले खाने के बड़े शौकीन है । महफिलों में पीने के भी रहे । ऐसा कोन बड़ा गाने वाला या गाने वाली कलकत्ते में आई या रही , जिस पर उन्होंने हजारों रुपये कुरबान^म कर दिये हैं । संगीत के जलसे, मज़ते, बैठकबाजी उनकी बड़ी प्रिय हाबिया थी । फिर संगीत के वे पहचानने की विशेष तमीज उनके यहाँ नहीं थी । पर संगीतकारों के "संस्कार" और "पेदन" कलाने का बड़ा भारी शौक था ।^१ ऐसे सेठ जी यदी कोई पुस्तकें बेचने वाली लड़की धर पर आई तो उस युवती के रूप को देखने के लिए उसके पास से पुस्तकें खरीदते हैं न की पढ़ने के लिए । प्रो महीधर सेठ जी से यही प्रश्न करता है कि यह अरविंद ग्रंथाकरी क्यों खरीदी ? तो सेठ जी उत्तर देते हैं - "बया बतायें प्रोफेसर साहब, बेचने के लिए जो लड़की आई थी यह बेहद सुरूपा थी, यथानाम । हमने इस आशा से खरीदा कि कभी तोदुबारा मिलने आयेगी । पर उसने बाद में प्यार नहीं दिये । कई देवियों का ऐसे ही सफ़ात्कार हो जाता है । हम अपनी दक्षिणा चढ़ा देते हैं ।"^२ एक दिन ऐसे सेठ जी के पास कोई साहित्यिक संस्था वाले एक पेज विज्ञापन मांगने आये थे । किन्तु सेठ जी बहुत ही चतुराई से कहा दिया कि अब कारोबार सब कुछ बंदे जमाई संभावते है । वहाँ मुनीम से मिलो ।" किन्तु संस्थावाले कह रहे हैं कि हम उद्घाटन के लिए हिंदी के स्वनामधन्य कविवर... एक बड़ा लोकप्रिय नाम बाताना चाह रहे हैं । किन्तु सेठ जी को गुस्ता आ गया और कल्ले लगा -

१. दशभुजा - पृ. 22

२. -वही- पृ. 23

"अरे, क्या रक्खा है, उद्घाटन फुद्घाटन में। क्या बोले इस साल प्रेमचन्द की शताब्दी मना रहे हो, और फल-फला का सम्मान करने जा रहे हो। अरे उन मरे हुओं का क्या सम्मान करते हो ? यहाँ ज़िंदा आपके सामने मालिक ए-मीसीकी, "शाह-ए-शायरी" सैठ गेन्दालाल बैठा है, और आप कौन परेमचन्द-फरेमचन्द का नाम ले रहे हो। वो तो हर कोस लुक पढ़ने वाला बच्चा जाने है। पर गेन्दालाल मर जायेगा तो कौन फिर वह कहानी सुनायेगा कि गोहरजान कैसे गाती थी और बेगम अक़तर की पहली काफ़रेस में क्या हुआ कलकत्ते में...?"¹ चन्दा माँगने वाले पहले अवाक हो गये फिर संभलकर सैठ जी से कहने लगे कि आप ही केकर-कमलौ से गीतकार कवि सम्मेलन का उद्घाटन होगा तो सैठ जी ख़ुश हो गये। जब ये लोग चन्दा देने के लिए कहने लगे तो सैठ जी कहते हैं कि - "अरे हमसे उद्घाटन भी करवाओगे और चन्दा भी माँगोगे ? भला यह कोई बात हुई। लोग क्या कहेंगे ? उद्घाटन और सम्मान हमारा करो करवाओ .. पर पैसे टके की बात मत करो। ये इस्ते सारे सुसरे चुनाव जल्दी जल्दी देश में हो जाया करे हैं - क्या चुनाव बिना चन्दों के हो जाते हैं, और चन्दे आते कहाँ से हैं ?"² चन्दा माँगने वाले हाथ जोड़ कर चले गये। इस प्रकार के होते हैं उच्च वर्ग के लोग। अपने घर से एक कोठी जाने की नहीं देते पर मान सम्मान की आशा करते हैं।

इसी उपन्यास में उच्च वर्ग की दूसरी पात्र है श्रीमति देवी ठाकुर। रहस्य तथा अपने को रवीन्द्रनाथ ठाकुर से दूर दरार का संबंध बताती है।

चिन्माला और कविता जैसे ललित कलाओं की जिदूधी अपने आप को मानती है। नौकरों के संबंध में श्रीमति देवी ठाकुर के घर महिमा और ई अदिति जाते हैं तो महल को देखकर अचम्बे हो जाते हैं - "जैसे उतारकर बाहर रख

1. दशमूजा - 25

2. दशमूजा - 25

रख दिये गये । मोटे कालीनों पर पतलियाँ छँसी जा रही थी - मानो समुद्र के किनारे बालू पर चल रही हो । नीले जामुनी परदों पर जरी का कसीदा हो रहा था । दीवार पर बड़े बड़े पेंटिंग थे । एक बड़े से चित्र में सिर्फ दो कबूतर बने हुए थे - एक दीवार पर बैठा था, दूसरा नीचे आँगन में, बड़ी शांति थी । छत से कानून लटक रहे थे । लगा कि जैसे वह बीसवीं सदी के कलकत्ते में न रहकर किसी अठ्ठारहवीं शती के राजमहल के भीतर आ गई होर वहाँ कोई अज्ञात आत्मा हवा में भटक रही है ।¹ इस तरह के घर में रहने वाली अभिजात स्त्री को अपने आप पर गर्व और श्रम है कि वह एक अन्तर द्वितीय कृत्याति प्राप्त करने वाली कवयित्री है । वह अपने अँगूठी में लिखी दो तीन कविताएँ एक के बाद एक सुनाती रही । बेचारी महिमा और अदितिवा होकर कर सुनती रही । ऐसे भी उच्च वर्ग के लोग होते हैं जो अपने आपको समाज सेवा और साहित्य सेवा करने वाले समझ लेते हैं । उनके लिए ऐसे कार्य कैशन के लिए मात्र होते हैं या फिर समाज में एक स्टेटस पाने के लिए ।

इसी उपन्यास में एक और छोटा सा पात्र है जिसका नाम है सेठ दूधनाथ । वह दूध का व्यापार करता था और दोहरी चाल चलता था । "एक ओर वे सस्ते दूध की "को-ऑपरेटिव डेअरी" चलाते थे । दूसरी ओर कहीं-उन्हे पैसे किसी ऐसी विदेशी फर्म के साथ जुड़े थे, जो विदेशों को ठिब्बा बंद गो-मार्स निर्यात करती थी...प्रपिता को रायबहादुरी मिली हुई थी, इन्हें स्वतंत्रता सेनिक की पेशा । जिस भी रूप में हो, सार्वजनिक संस्थाओं से पैसे बचाकर ये मुनाफा घुपके से ब्याज के रूप में, अपनी जेब में डालते जाते थे । यह सोदा बड़े सभ्य ढंग से चलता था - पैसे किसी बड़ी फेठी में लगाया । यह दिखाने के लिए आठ प्रतियोगिता ब्याज कागज

पर दे रही है, उपर चुपके से दो-तीन प्रतियां हन्धें, बीच में "बिचोलिये" की तरह मिला जाता था। लाखों की इस तरह आमदनी अनेक नामों से, अनेक मार्गों से, नंबर दो में, हो जाती थी। गये महायुद्ध के बाद बर्लिन, बंगाल के काल के बाद से ही यह काम खासा बढ चुका था।¹

लापता उपन्यास में भीस्ट मफ्तलाल भी पैसे के लिए तड़पने वाले व्यक्ति हैं। वे एक बार अपनी विवाहयोग्य बेटी की विवाह बंयों नहीं हो रहा है एक ज्योतिष से पूछते हैं तो वे ग्रहशान्ति करने की बात कहते हैं। किन्तु सेठ जी के लिए "बेटी से बढ़कर उनका एक ही देवता है-पैसा। पैसे के लिए वे कुछ भी कर सकते थे। पैसा हो तो एक वर क्या अनेक वर प्राप्त कर लिये जा सकते हैं।"² इस लिए वे पैसा खर्च करने की बात सुनते ही वहाँ से निकल गये। अरविन्द म-म मन्होत्रा जो अब वालाकनकर के नाम से है जो क्लायत जा रहा है, उसके साठ अपनी बेटी उषा का विवाह कर देना चाहते हैं। जब वालाकनकर पूछते हैं कि आप विवाह का मुहूर्त कौन नहीं देखते हैं? तब सेठ जी कहते हैं -- "वह तो सेठानी को राजी करने के लिए सब "तर्तीगों" करने ही पड़े हैं। उसकी आप परवा मत करो। जसा सा पैसा ज्यादा दिया कि सब ग्रह नष्ट अनुकूल कराके जो चाहे वह महीना, हफ्ता, दिन, घंटिकर हम पैसे से ते कर सकते हैं। पुरोहित और मुहूर्त तो अपनी झुई में है।"³

5.2. मध्य वर्ग :

मध्यवर्ग संपन्न वर्ग और निर्धन वर्ग के बीच में जाता है। "जिसमें परिवेक्षा को सीमित करना कठिन कार्य है। इस वर्ग का विस्तार स्पष्ट है

1. लापता - पृ. 26

2. दशमूत्रा - पृ. 87

3. लापता - पृ. 27-28

और इसी कारण निश्चय के धरातल पर टिका यह वर्ग कभी उच्च वर्ग के समीप लगता है तो कभी निम्न वर्ग के निकट । वास्तविक स्थिति इस वर्ग की यह है कि "त्रिशङ्कु" की तरह समाज के इस केंद्रिकरण के मेल पर लटका हुआ है । अनेक बातें हैं जिनके कारण यह वर्ग समाज के अन्य दोनों वर्गों से भिन्न प्रतीत होता है । कौटुम्बिक तथा सामाजिक मर्यादा, वंश, रहन-सहन, जीविका, शिक्षा, आय एवं सम्पत्ति के आधार पर यह वर्ग दोनों वर्गों से पृथक् होता चला जाता है । धन की भूमिका महत्वपूर्ण है तो भी मात्र अर्थ ही वर्ग विभाजन का आधार मान लिया जाये यह भूल होगी । मानते हैं समाज में व्यक्ति का स्थान आर्थिक स्तर द्वारा निर्दिष्ट होता है तथापि सौरभ स्ट्रेस के आधार पर मध्यम वर्ग की सीमा में सभी जाति और वर्ग के लोग सम्मिलित किये जा सकते हैं ।¹

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में मध्यवर्ग का चित्रण व्यापक स्तर पर हुआ है । माचवे जी अपने उपन्यासों विशेषतः नगरीय जीवन के संबंध कथा प्रस्तुत करने के कारण नगरीय मध्यवर्ग का चित्रण अधिक हुआ है । जिसमें शहरी मध्यवर्ग की समस्याएं और जीवन स्थिति पर यथार्थ के साथ चित्रण हुआ है । माचवे जी शहरी समस्याओं पर ही अधिक बयान लिखे हैं । इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -- "मे निपट देहातों में बहुत कम रहा हूँ । यद्यपि एक गाँव के वातावरण को लेकर एक दो कहानियाँ लिखी हैं । मेरे देहात से अधिक कस्बों के छोटे शहर - रतलाम, उज्जैन आदि और बड़े नगर नागपुर, इलाहाबाद, अहमदाबाद आदि अब गये बीस पच्ची सत्रों में दिल्ली बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और दुनिया के और बड़े शहर जैसे बर्लिन, कैलीफोर्निया में सैन, विसकॉन्सिन में रहा हूँ । मेरे उपन्यासों का परिवेश और समस्याएँ नितान्त शहरी हैं, महानगरीय हैं, यह मेरी सीमा में मानता हूँ ।"² फिर

1. भूसिंह भूरेन्दु - मध्यवर्गीय चेतना और हिंदी उपन्यास-पृ. 11।

2. डॉ० कृष्ण रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ. 91।

भी अपने उपन्यासों से माचवे जी ने यंत्र तंत्र ग्रामीण मध्यवर्गीय जीवन का भी चित्रण किया है। माचवे जी के किसलिए, कहाँ से कहाँ, साँचा, दामा, दशभुजा, लापता कफ जैसे उपन्यासों में हम मध्यवर्ग का चरित्र चित्रण देख सकते हैं।

“परन्तु” उपन्यास का अविनाश निम्न मध्यवर्ग का युवक है। वह सिद्धांततः आदर्शवादी है और उसी के अनुकूल जीवन व्यतीत करने का प्रयास करता है। वह कला को जीवन के लिए समझता है तथा राजनीति में सक्रिय भाग लेता है। पर उसके आदर्श को अर्थकामाभाव की सहज प्रवृत्तियों से संघर्षशील रहना पड़ता है। वह आर्थिक दृष्टि से सुविधाभोगी तथा अनीता से रोमांस लड़ने वाले, अपने सहपाठी अभिय से ईर्ष्या करता है, अपने अभावों को देशभक्ति में भूलाता और अनोखपन की साधन - किन्तु बाद में विधवा हेम - को सहानुभूति दिखाते - दिखाते उसके प्रति वासना - वशीभूत होकर अपने आदर्श से गिर जाता है। माचवे जी का मनोवैज्ञानिक निष्कर्ष है - “बेचारा आदर्शवादी अविनाश ॥ वह भी आखिर हाठ मांस से बना शरीर का आदमी ही तो था। और वासना आदि स्वाभाविक प्रकृति है तो उससे इतनी छिन, इतना मुकराना क्यों ? परन्तु - तात्पर्य यह है कि मूल प्रवृत्तियों को उचित स्थान दिए बिना आदर्श मुख्य इसी तरह पराजित होते रहेंगे और गतिरोध उत्पन्न होता रहेगा।”¹ इस कथ्य से यह स्पष्ट होता है कि मध्यवर्गीय युवक के जितने विक्षेपाएँ होती हैं उनमें से अधिकतर परन्तु के अविनाश में है। वह आदर्शवादी रहना चाहता है किन्तु उसके विपरीत कार्य करता है। वह कला को जीवन के लिए मानता है। सुविधाभोगी सहपाठी अभिय से ईर्ष्या करता है। ये सभी प्रायः मध्यवर्गीय

युवाओं में निहित लक्ष्य ही है जिन्हें माचवे जीने-अपने ढंग से अपना पहले उपन्यास में चित्रित किया है ।

एकतारा उपन्यास में कुछ क्रान्तिकारी युक्त होते हैं जिनका संबंध मध्यवर्ग से होता है । मध्यवर्ग के ये युक्त अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र लड़ाई गुप्त रूप से करना चाहते हैं और इनके आदर्श भी उच्च हैं । किन्तु इनके आदर्श केवल भाषणों तक ही सीमित थे । इस दल का एक युक्त जिसका नाम है सुरेश - जो आधुनिक फैशन वाली लड़की उवशी से नज़रत करता था - एक दिन उसी के साथ रात में रहता है । इस दल के नेता जयंत है जो समाजवादी सिद्धांतों पर लम्बे लम्बे व्याख्यान देता था, स्त्री को भी पुरुषों के समान स्वतंत्र होने का पक्ष लेता था, परन्तु वह भी "तारा" पर सन्देह करता है जो वस्तुतः असत्य है । अपने कुछ राजनैतिक कार्यों के माध्यम से जयन्त स्वतंत्र भारत में मंत्री पद हासिल करता है । इस प्रकार मध्यवर्ग की जनता जल्द से जल्द उच्च वर्ग जैसी सुविधा भोगी जीवन बिताना चाहती है जिसके लिए वे अपने आदर्श, अपने नैतिक मूल्यों को भी छोड़ने में पीछे नहीं हटते ।

तारा वेमैन्डु से शादी कर लेती है और उसकी नाटक कंपनी को ग्रामीण आँखों से ले जाना चाहती है किन्तु नाटक कर्मों एक एक करके कंपनी को छोड़कर जाने लगे । ग्रामीण आँखों में ऐसे देकर नाटक देखने वाले कम होते हैं । अतः नाटक कंपनी को सर्व भी अधिक होने के कारण काम करने वालों को वेतन कम मिलने लगा । इसलिए वे अपनी जीविका के लिए दूसरी नाटक कंपनियों को छोड़ने लगे । स्पष्ट है मध्यवर्ग के सामने सबसे मुख्य मुद्दा जीविका का होता है । जीविका के लिए वे कहीं भी जा सकते हैं ।

मध्य वर्ग की एक और विशेषता यह है कि आर्थिक विपन्नता के कारण कई बार पति - पत्नी के बीच तलाक भी हो जाता है। एकतारा उपन्यास में "तारा" हालांकि जमींदार की लठकी है किन्तु वह घर छोड़कर आजादी की लड़ाई में भाग लेती है। वह वैमेन्दु के साथ शादी कर लेती है। किन्तु जब परिवार में आर्थिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं तो वैमेन्दु तारा से दूर-दूर रहने लगता है। एक दिन "घर पहुंचने पर तारा को डाक से नोटिस मिली। उसके पति वैमेन्दु ने उससे तलाक मांगा था। तारा फिर अकेली रह गयी।"¹ इस प्रकार मध्य विस्तीय परिवारों में आर्थिक विपन्नता की स्थिति में तलाक भी दिये जा सकते हैं।

"दाभा" उपन्यास की नायिका आभा एक मध्यवर्गीय शिक्षिका है जिसका पति एक पक्षी को देखकर चला गया है। आभा अपने पति की दूरी छोड़ने पर भी उसकी आराधना करती है। उसे मन में हमेशा डण्ड रहता है कि कभी श्री से द्वेष ईर्ष्या करती है तो कभी परांपरिक मूल्यों का निर्वहण करते हुए उसकी पुतिमा को पूजती है। वह कभी सोचती है - "क्यों न उठाकर जैक तू १ यह सब पूजा अर्चना, यह सब युग युग का छलावा, यह जन्म जन्मान्तर की पुर्वचना, यह इक्ष्वाकु, पुत्याशाहीन, पुतिदान रहित, निरंतर देते ही जाना..."² मध्यवर्गीय परिवार में नारी ससुराल में जाकर अनेक बंधनों में बंध जाती है। "आभा" ससुराल में पहुंचकर ऐसा ही अनुभव करती है। "यहां ससुराल में आभा के मन के विपरीत सब कुछ है। यहाँ पढ़ाई है। यहाँ घर की चारदीवारी है, यहाँ पढ़ने को कुछ नहीं है, उसकी प्रिय रुचि संगीत के विकास के साधन नहीं है। पति है, परन्तु संगीत के लिए उनके कान शून्य हैं।"³ इस प्रकार पढ़ाई आदि के कारण उसके कौशलों का विकास नहीं

1. एकतारा - पृ. 74

2. दाभा - पृ. 11-12

3. दाभा - पृ. 64

होता । इस प्रकार आभा के मन में द्वन्द्व है जिसके कारण वह पारंपरिक मूल्यों को छोड़ नहीं पाती और न नवीन संस्कार ग्रहण ही कर पाती है । यह मध्यवर्गीय नारी की विशेषता है । इस उपन्यास का नायक "श्री" है जो चंचल मन का मध्यवर्गीय युवक है । वह अकारण आभा को छोड़ देता है । एक संतान होने पर भी । श्री के लिए आभा कोई विशेष नहीं थी । वह और कई स्त्रियों में से एक थी । उसका संबंध अमिता, श्यामा, शुक्ल और औरों से था । इस प्रकार "श्री" एकनिष्ठता के अभाव में गुमराह हो जाता है । "युद्ध में जाकर श्री ने अपना नाम विजय लिखाया था । पर डीमाव होकर विजय फिर से घर लौटा ।" ¹ और वहाँ बचै तिरपेन रुपये, पन्द्रह आने लेकर घर की ओर निकल पड़ा । "विजय आगे की बातें सोचने लगा । घर जाकर आठ दस आशितों का पेट पालना है । किस भरोसे ? वह मामूली डिमाऊँ छुट्टी पाया हुआ सैनिक है, वह अन्धाधुन्ध काँज का नेताई सिपाही भी तो नहीं है कि जेल से लौटा, खदर टोपी सिर पर रख ली, अहिंसा को शब्द रूप में अपना लिया और प्रांतीय सरकारों में उसके लिए स्थान सुरक्षित....." ² इस प्रकार एक मध्यवर्गीय युवक आर्थिक विपन्नता में अपने परिवार का पालन पोषण करने की तरकीब सोचता है । उसकी विवशता है कि वह युद्ध में अंग्रेजों के पक्ष में सैनिक था यदि वह आजादी की लड़ाई में जेल जाकर आया हो तो वह बड़ा नेता बन जाता और राज्य सरकारों में शामिल हो जाता । किन्तु वह विवश था । वह सोचता है - वह एक निम्न मध्य वर्ग का मामूली, महज सिपाही था,

1. आभा - पृ. 73

2. आभा - पृ. 75

अब एक जवान आदमी है। बस। क्या होगा उससे ? या उसका ? नाँकर के लिये दरवाजे पर कोई छड़ा करेगा नहीं। लौटे हुए सिपाहियों से सभी सन्देह करते हैं, नफरत करते हैं।¹ इस प्रकार सोचते सोचते वह हताश हो गया और इस आर्थिक समस्या का समाधान मौत ही समझा। क्योंकि "बेकारी या अर्द्ध बेकारी निम्न मध्यवर्गीय समाज को लंगड़ा बना रही है। इससे आर्थिक स्थिति बिगड़ती ही जाती है। बेकारी से ही यह वर्ग अधिक अशान्त है। इसी के कारण उसके जीवन में अस्थिरता तथा असन्तोष उत्पन्न होते हैं।"² इस कारण विजय का मन करता है, ऐसे जीने से मरना क्या बुरा है ? रेलवे के पहिये भारी हैं - सिर्फ एक ही तो समूह की बात है फिर यह बेकारों की चेतना रहेगी भी कहाँ ?³ किन्तु उसमें इतना साहस नहीं है कि आत्म हत्या कर ले। यही बात माधव जी कहते हैं - "परन्तु आत्मघात करने के लिए जो दृढ़ता, जो श्रमता चाहिए इस युद्ध में वह सौ झुका है। युद्ध उसे नैतिक दृष्टि से ठोकरा बना दिया है। वह अब किसी से नहीं डरता और सब कुछ से डरता है।"⁴ अधिभाव से वह तरह - तरह से सोचने लगा - वह सोचने लगा - जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है। जिन्दादिली भी एक आर्थिक सुविधा से पैदा होने वाली एक ठोस किस्म की स्नाइपरी है एक झूठा लोक दिशावाही है। दिल अभी तक जिन्दादिल है, जब तक उस पर जेब गर्म हो और वह गर्म की जाने पर आप चाहे किसी को लडा लीजिये। पहले जमाने में तीतर बटेर लडाए जाते थे। आजकल देश-देश के जवान।⁵ इस प्रकार बेकारी, आर्थिक विवशता, नाँकरी की

1. टाभा - 75 576

2. डॉ० हेमराज निर्मम - हिंदी जन्यासों में मध्यवर्ग - पृ० 176

3. 4. टाभा - पृ० 76,

5. टाभा पृ० 77

अप्राप्ति, कसीलेबाजी, अयोग्य के चुनाव आदि कारणों से युवक, समाज, शासन और जीवन के प्रति रिक्तता लिए जीता जाता है ।¹

माचवे जी का एक और उपन्यास है "साँचा" जिसमें औद्योगिकीकरण के कारण मानवीय गुणों के बाष्प बन जाने की गाथा है । यात्रिकीकरण के कारण पूँजीपतियों और मजदूरों के बीच मध्यवर्ग का भी उपस्थित होना अवस्थाभक्ति था । क्योंकि उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच दलाल मध्यवर्ग के ही होते हैं । इस उपन्यास में भगवान जाबर ऐसा ही व्यक्ति है जो म्लि में मजदूरी दिलाने के लिए मजदूरों से कमीशन लेता है । माचवे जी लिखते हैं - "भगवान जाबर धनी मूढ़ी, ताँबे के रंग की आँखों का गुँडे जैसा जान पड़ने वाला आदमी था । सब जानते थे कि वही "ब्दलो" दे सकता है और हर नए मजदूर को कमाई का निश्चित अंश उसे देना ही पड़ता था । आज तक भगवान माच का यही काम साधारण रहा है । वह मनुष्य की कमाई का हिस्सा छाता चला आ रहा है । वह भी उर की धमकी के भरोसे ।"² स्पष्ट है कि जब शोषण करने का अवसर आ जाता है और अर्थ की आवश्यकता होती है तो मध्यवर्ग निम्न वर्ग का शोषण करने से पीछे नहीं हटता । हालाँकि मध्यवर्ग का भी उच्च वर्ग के द्वारा शोषण होता है । डॉ० हेमराज "निर्मम" लिखते हैं - "मध्यवर्ग शोषक भी है और शोषित भी । उच्च वर्ग तथा उच्च वर्गनिम्न मध्य वर्ग का शोषण करते हैं और निम्न मध्यवर्ग अवसर आने पर निम्नवर्ग का शोषण करता है । परस्पर शोषण की क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है । एक ही वर्ग के लोग भी परस्पर शोषण करने का प्रयत्न करते हैं । धन लालसा ही मध्यवर्ग को शोषण में प्रवृत्त करती है ।"³

1. डॉ० सुधाकर गोकाककर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी - पृ० 76

2. साँचा - 51

3. डॉ० हेमराज "निर्मम" - हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग - पृ० 166-67

इस उपन्यास में मनोहर एक ऐसा पात्र है जो एम.ए. फिलासफी उत्तीर्ण हुआ है। नौकरी कहीं नहीं मिली है और वह अपने आदर्शों के अनुरूप मजदूर संघ में भर्ती होकर मजदूरों की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता रहता है। मनोहर बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। वह उसके घर से कई मील दूर पर रहने वाले मिशनरी कादर ठिक्कन से और उसकी पुत्री लिजा के पास जाकर दर्शन शास्त्र पर ही नहीं अन्य विषयों पर बहस करता था। वह लिजा के प्रति आसक्त हो गया था किन्तु कादर ठिक्कन और लिजा की और से प्रतिकूल उत्तर मिलने से अपना हरादा बदला और मजदूरों की सेवा करने के लिए इन्दाौर चला गया। वहाँ उसने बाँठ भरा - "मैं प्रतिभा करता हूँ कि आजीवन 30 रुपये महावार में मजदूर संघ की सेवा करता रहूँगा, विवाह नहीं करूँगा, राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखकर यह संस्था ही मेरा घर होगा।"¹ यद्यपि उसका मन इस मजदूर संघ में नहीं हुआ पर वह बार बार विद्रोह करता था। वह अकेला हो गया था उसका मित्र शरण था उसका भी साथ छोड़ दिया। "मनोहर बड़ी आशा से अहमदाबाद आया था कि यहाँ कम से कम उसे काम कुछ न कुछ मिल ही जायेगा। यह बड़ा व्यापारी शहर, गुजरात की नाक, अस्सी मिलें, यहाँ चलती है और कहीं न कहीं तो उस एमए पास, बोलने में कुछ हकलाने वाले नौजवान को, जिसकी हड्डियाँ चाहे तो आप गिन लें इतना वह कमजोर है - कोई काम जरूर मिल जायेगा। वैसे चाहे वह कुछ भी पास हो, उसे सिवा थोड़ा बहुत गाने गुन-गुना लेने के और जाता ही क्या था 9 आज की दुनिया में धन निकलने के लिए जो गुण चाहिए - मक्कारी, जासेबाजी, सुशाम्द, अपना ही उल्लू सीधा करने की खुदगर्बी - इनमें से एक भी गुण तो उसके पास नहीं था।"² यह युवक जब भूख

1. साँचा - पृ. 47

2. साँचा - पृ. 113-114

से अहमदाबाद की सड़कों पर घूम रहा था तो वहाँ दंगा हो गया और पुलिस इसे पकड़ कर ले गई। "मनोहर" सी" बलास का कैदी बन गया। दंगा से भी ही किसी को नुकसान होता है, लेकिन मनोहर जो बेकार था उसे काम मिल गया। मनोहर चक्की पीस रहा है और दीवारों में बंधा आसमान का टुकड़ा देख रहा है। वह अब राजनीति, हिन्दू-मुस्लिम, आर्थिक कारण, बेकारों को रोह बाते नहीं सोचता। कंधों में और खुदों में जो दर्द हो रहा है और उसे अब जो दिन का खाना घंटी बजने पर मिलने वाला है, उसकी ओर उसका ध्यान जा रहा है।¹

"तीस चालीस पचास" उपन्यास में माचवे जी ने पीढ़ीगत वैषम्यों का सुन्दर चित्रण किया है। इसमें तीन पीढ़ियाँ हैं जिनको क्रमशः वासुदेव और सरला, मोहन और रुक्साना, अनिरुद्ध और उषा प्रतिनिधित्व करते हैं। वासुदेव और सरला प्राचीन परम्परा और मूल्यों को निभाने वाले हैं। उनके पुत्र और बहू मोहन और रुक्साना इन संस्कारों को न ही छोड़ पाते हैं और न नये संस्कारों को ग्रहण करते हैं। मोहन का पुत्र अनिरुद्ध, जिसने विदेशी उषा से शादी की है, नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है और नये संस्कारों को ग्रहण करने वाला है। इन्हीं के बीच में मध्यवर्ग के परिवारों में होने वाले संघर्षों का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। वासुदेव जो पुराने पीढ़ी के हैं अनोखे ज़िन्दगी के बारे में बताते हैं कि -- "मेरी स्कूल की मास्टरी बेमानी हो गई थी। जीवन अस्त व्यस्त था पर सरला थी कि वह बराबर मेरे जीवन के सुख - दुख में, ज़तार और भाटे में, अंधरे और उजियाने पकवाड़े में, एक - सा साथ देती रही। उसने अपने आप धूल - छुलकर मिट जाना स्वीकार किया, उस तक नहीं की।"² इस तरह पुराने मध्यवर्गीय परिवार

1. साविता - पृ. 119-120

2. तीस चालीस पचास - पृ. 8

मे प्रति पत्नी एक दूसरे के साथ सदा के लिए रहते थे । दूसरी पीढ़ी के प्रतिनिधि मोहन के माध्यम से माघवे जी शायद कहते हैं - "हर क्रांतिकारी अनो अलग राह के लिए छूट चाहता है - वह मन्सा सही अर्थ में क्रांतिकारी नहीं होता । यह तथ्य उपन्यास का एक सशक्त पक्ष है ।"¹ तीसरी पीढ़ी अनिरुद्ध और उषा के माध्यम से समाज में फैलने वाली अराजकता, विद्रोहता आदि का चित्रण हुआ है । इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए डॉ० चंद्रकांत बांदिवडेकर लिखते हैं - "माघवे जी के सामने एक भारतीय बौद्धिक समाज का चित्र है । यह बौद्धिक समाज स्वतंत्र, गांधीवाद, समाजवादी, तरह तरह के संस्कार लेकर आगे बढ़ रहा है । यह वह दलमूल्यकीनी वर्ग है जो किसी सिद्धांत को मनःपूर्वक न स्वीकारता है, न उसे अंतिम सीमा तक जाकर गहराई से जी लेता है । यह खास भारतीय मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी समाज है जिसकी रीढ़ की हड्डी ही कमजोर है, जो आत्मशक्ति से प्रतिनिधिपूर्ण परिवर्तन से अलग पड़ गया है । सब परिधर्मी विचारधाराओं को वह अपना लेता है परन्तु ये विचार उसे कहीं भिगो नहीं देते - ऊपर से छिटककर छिस्क जाते हैं । विज्ञान, टेक्नोलॉजी, बुद्धिवाद, उद्योगीकरण, नागरीकरण, भूल्यभ्रष्टता से उत्पन्न दोष - सभी आघातों से यह वर्ग बड़ी अनिश्चित अवस्था में है । वह कोयले में रत्नखन की खोज करना चाहता है, काले बादल की स्वर्णमय रेखा को देखना चाहता है । उसने अमरीका के जीवन का सुख-सुविधापूर्ण और भयानक रूप देखा है, रूसी जीवन की अच्छाइयों, बुराइयों से वह परिचित हो गया है । उसके सामने प्रश्न है - उसकी "सेवापुरी" में उसके लिए इनमें से क्या क्या लाभदायक और स्वास्थ्य हो सकता है । माघवे के पास भी उत्तर नहीं है ।"²

1. चंद्रकांत बांदिवडेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास:सृजन और आलोचना-पृ. 22

"दर्द के पैबन्द" उपन्यास में माचवे जी नेतृयाकिक पत्रिका के संपादकों, जालोचकों और हिंदी विभाग के प्रोफेसरों पर तीखा व्यंग्य किया है। माचवे जी ने इस उपन्यास में एक जगह फूलचंद सेठ जी द्वारा संचालित एवं संचालित भावना पत्रिका के सह-संपादक नरिंदर के बारे में उल्लेख किया है। वह एक मध्यमकीय व्यक्ति है जिसके पाँच बच्चे हैं और पत्नी हिस्टीरिया रोग से पीड़ित है। किन्तु नरिंदर अपने पेश में हुंवा रहता है और अपने आपको बहुत साहित्यकार एवं अध्यात्मवादी मानता है। उनके बारे में उपन्यासकार का कथन है - "नरिंदर साहब तो रात-दिन सिगरेट शराब और शायरी में धुत रहते हैं। अपने आपको जीनियस समझते हैं। "नीली औरत" उनका पछला काव्य संग्रह अपने से पहले ही उन्होंने उन सब जालोचक दोस्तों से उस पर दस लेख लिखवा लिये और छपवा लिये थे, जिनकी रचनाएँ वे "भावना" में छापते हैं। अधिकतर जालोचक बात यूरोप या अमेरिका के किसी अज्ञात नाम कवि से शुरू करते, फिर अपने ससुर, दामाद, साढ़ू, सरहज आदि की रचनाओं से और रिरतेदार बहुत "आश्चर्य" न हो जायें इसलिए अपने जातवाले नौजवान कवियों की कुछ संदर्भ से कटी हुई तेल - सरारि, पंक्तियों के उद्धरणों से भर देते हैं। और इस अंजाज से बात करते कि अलावा इन गिने घुने महान युग परिवर्तकारी कवियों के औरों की पहचान भी उन्हें नहीं है। और सच्चे पारखी तो हमी है या हमारी कविता कुछ के सदस्यगण। ऐसे नरिंदर बड़े अध्यात्मवादी भी अपने आपको मानते हैं।"

मध्यर्क के अन्तर्गत प्रोफेसर तथा अध्यापक वर्ग भी जा जाता है। माचवे जी ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार मध्यमकीय प्रोफेसरों, अध्यापकों ने हिंदी विभाग को अपने सगे-संबंधियों से भर डाला। साहित्य के नाम

पर कैसे कैसे साहित्यिक और निरी प्रशंसा से युक्त पत्रिकाएँ छाती है और किस प्रकार अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए प्रकाशक से भ्रष्टता पूर्ण सीदेबाजी की जाती है। इन सबका व्यंग्य के साथ इस उपन्यास में चित्रण किया गया है। उत्तर प्रदेश के एक छोटे से नगर के संबंध में कहते हैं — नगर की बस्ती प्रखर निखर भट्टाचार्य थी। सिनेमा घर सस्ते गाने जोर-जोर से लाउठ स्पीकर पर रेंकते जाते। उसके बिल्कुल पास के लड़कियों के हन्टर कोलेज में अध्यापक डाक्टर खेन जी बच्चियों को उपदेश देते जाते। यह सब किरपट सीमित ब्रह्म मत करो दुष्टताओं। वह अलील है। प्रेम की व्यापक अनुभूति समग्रजन के शरीरातीत इत्यादि इत्यादि। लड़कियाँ उबासियाँ लेती, प्रोफेसर की लिखी कुँजियाँ रटकर पास होती, प्रोफेसर अपनी ही लठकी को निन्यानन्ते प्रखर मार्ग दिलवाते, फिर धीरे धीरे प्रोफेसर की बेटी, बेटे, दाम्पत्य और उनके बेटे बेटियाँ भी हिंदी विभागों में बराबर ऊँच स्थान पाते जाते और यह मनोपोली बीस बरस से चल रही थी। धीरे धीरे साहित्य की समालोचना की पुस्तकों में विद्वार्थी सिर्फ प्रोफेसर मूलपुस्तक और उसके कुन्ने की साधारण रचनाओं के उद्धरण याद करके प्रथम टिप्पणी पाते। और हिंदी साहित्य के इतिहास पर जो छल लिखे जाते, वे भी ऐसी ही सिफारिशी पिच्छों से लिखवाये जाते। एक छल को सौबार दुहराने से वह सच हो जाता है, गोपबेनस का यह वचन और कहीं सच न हो, हिंदी साहित्य के इन स्वातंत्र्योत्तर दो दशकों के में बड़ा स्त्रीक साहित्य होता नजर आता। जो लोग इस तरह "व्यवस्था" के विरोधी थे, वे भी वही टेकनीक अपनाते। एक छोटी पत्रिका चलाते जो छह महीने में दो ऊँच प्रकाशित करके बंद हो जाती। उसमें "अ" "ब" की प्रशंसा में लिखता, "स", "ज" और "ब" को सबसे महान "जीनियस" बताता और इस तरह से वही, पुनर्मूल्यांकन और नव-समीक्षा के आयाम और परिदृश्य और परिश्रम और ऐसे ही

सुपरिचित शब्द फेंके जाते। असलियत यह थी कि चार्ल्स सक्लैंस सीमित जादुई दुनिया के बाहर कोई उन लोगों को नहीं जानता था। ये अध्यापक और उनके विद्यार्थी अपने आपको बहुत बड़ा शून्वादी और चारित्रिक दृष्टि से औरों से श्रेष्ठ और ऊँचा समझते जाते। शिक्षा का स्तर और फिछता जाता और भ्रष्टाचार सिर्फ राजनैतिक नेताजन ही करते थे, ऐसा घोर बाजार करने वाला बनिया कहता। और नेता और बनिया दोनों को ये अध्यापक वर्ग के "नव ब्राह्मण" कोसते जाते- असली भ्रष्टाचारी तो वे थे। जब खुद प्रकाशकों से रिश्ते होते और कोर्स बुक कमेटियों में किताबें अपने ही चमचों की लगाते जाते।¹

उपरोक्त उद्देश्य से स्पष्ट होता है कि आज के अध्यापक और प्रोफेसर पैसे के चक्कर में किस प्रकार पड़ गये हैं। कारण यह है कि वर्तमान व्यवस्था में अध्यापक और प्रोफेसरों को समुचित वेतन नहीं मिला पा रहा है तथा उनकी बन्धायों की पूर्ति नहीं हो पा रही है। दूसरे व्यवसायों में अन्य कार्य करके भी धन कमा सकते हैं किन्तु शिक्षकों को ऐसा अवसर नहीं है। वे या तो प्राइवेट ट्यूशन करें या पुस्तकें लिखें या फिर किसी पत्रिका को लेख देकर लिखें। इसके अलावा वे अन्य कार्य नहीं कर सकते। बढ़ती हुई महंगाई और आजकालीन व्यक्तियों के अनुरूप धन कमाना जरूरी हो जाता है। इसी कारण कभी कभी यह मध्यम गलत रास्तों को अपनाता है।

"किसलिन" उपन्यास में माचवे जीनेसमस्त मध्यम वर्ग की विवशताओं को एक जगह रख दिया है। इस उपन्यास में दिल्ली के एक उपनगर के एक ऐसे बड़े बालमुमा घर की कल्पना की गयी है जिसमें "नौ परिवारों या

छरौदों की नोरतन छत्ती स्वरूप मिली हुआ है। "सब में मध्यवर्ग के विविध पेशों के लोग रहते हैं। जाहिर है कि यह मकान हमारे मध्यवर्गीय समाज का प्रतीक है जहाँ भिन्न भिन्न स्वभाव और पेशों के लोग रहते हैं। ठेकालग अलग भी है और उनकी सामूहिक हकाई भी है। लेखक ने इस समाज की कथा अधर्म, अनर्थ और अकाम तीन छण्डों में बाँट कर कही है। धर्म, अर्थ, काम, इन तीन पुरुषार्थों के आगे अ उपसर्ग लगाकर यह कहना चाहता है कि ये तीनों अपना सही अर्थ खो चुके हैं। अधर्म, अनर्थ और अकाम से पीड़ित इस समाज के विविध संघर्षों और पात्रों को उपस्थित कर लेखक ने हमारी आज की जिन्दगी का यथार्थ स्फुरित किया है।" कथा यात्रा के दौरान लेखक ने सिन्धी सरकारी अपसर ललवानी और उसकी धार्मिक धर्मपत्नी, उनका लड़का आवारा छु, पंजाबी नवजादय कपूर, सरकारी नौकर मि. वर्मा, जर्नसिन्धी लोहिया - समर्थक पत्रकार सिद्धेश्वर बीजापुरे, इन्टर कालिज में हिंदी के लेक्चरर और उग्र समाजवादी जनवारी लाल त्रिवेदी जैसे पात्रों के आवाज रिपुदमन और वस्तुतः, अम्बा आदि की अत्यन्त गत जिन्दगी की कहानी "अ" लेखक, और "ब" चित्रकार के हृदय गिर्द बुनी है।

इस उपन्यास में प्रत्येक छटना मध्यवर्ग की ज़िन्दगी को दर्शाती है। उदाहरण के लिए एक छटना देखिए जिसमें पार्वती नामक हरिजन महिला इन सभी घरों में आकर काम करती थी। एक दिन इसकी बेटी राधिया को एक फ्लोस के घोरी के आरोप पर पुलिस पकड़ कर ले गई। उसे अपनी बेटी को छुड़वाने के लिए सो रुपये की जरूरत थी। पास किसी तरह राधिया का बाप जुटा लिया पर पचास रुपये ५ पाँचों घरों से दस-दस रुपये मिल जाएँ तो मामला निपट जाता किन्तु ये मध्यवर्गीय परिवार के

लोग ! कोई नीति, उपदेश, कोई गाली देता रहा मगर कोई पैसा नहीं दिया । किन्तु इसी मध्यवर्ग का व्यक्ति त्रिवेदी जाकर उसे छुड़ा देता है । पार्वती जब रुपये माँगने जाती है "लालवानी साहब ऊपर से बोले - अरे इसको एक पैसा मत देना । ये यों ही बहाने बनाकर पैसा माँगती है । सब ऐसे शहाबी जुबानी बादमी उठा देता है । मिस्टर कर्मा उधर से चिड़के - भे कहता नहीं था, शुरू से ही कि हरिजन नौकर मत रखिए । इन सालों के मिर्जाज बहुत बढ़ गए हैं । यह सब गलती वो गांधी ने शुरू की । सबको बराबरी का दर्जा देने गए । लो अब भुगतो उसके दुष्परिणाम । मिस्से कपूर चुप क्यों रहती, वे किसी सेकम थोड़े ही थी - पैसे की कोई बात नहीं । दस के बदले हमी सी दे देते । पर प्रश्न सिद्धांत का है । हमारे धर्म में कहा है कि नीच जात को सदा नीच जात की तरह ही रहना चाहिए । अब तो सब लोगों ने धर्म छोड़ दिया । उसी का यह नतीजा है ।"¹

मध्यवर्ग की एक और विशेषता है कि वह अपने साथ काम करने वालों से मीठी-मीठी बातें करके काम निकाल लेता है । यही प्रवृत्ति इस बंगले के सभी स्त्रियों में थी । जब उनके यहाँ कोई अधिक काम है तो काम करने वाली पार्वती और उसकी पुत्री राधिका से मीठी-मीठी बातें करती है । तब माँ बेटा सम्झाते हैं कि "कुछ सौदा झुक बाजार से लाता है, या अतिरिक्त काम बिना पैसे दिए कराना है, इसीलिए ये सब मीठी-मीठी बातें हैं ।"²

मध्यवर्ग के सरकारी नौकर या छप्पर जो लोग होते हैं, इनके लिए तो मात्र धनार्जन और मान सम्मान प्राप्त करना ही एक मात्र उद्देश्य होता है । इसकी खातिर वे पारिवारिक समस्याओं को भी अँधेरी कर सकते हैं । यहाँ तन् की पत्नी के गुम जाने पर भी पुलिस या अन्य किसी को

1. किसलिए - पृ. 28

2. किसलिए - पृ. 31

ख़बर नहीं' करते क्योंकि उनका जो मर्यादा सम्मान इससे जुड़ा है। वह नष्ट हो जाता है और जाने वाला प्रमोशन स्क जाता है। इस उपन्यास में बल्लरी के पिता ऐसे ही अफसर हैं जो कि पत्नी आत्महत्या करने गई तो वह 'ब्लोसियों - फ्लोसियों' को अपनी पत्नी के श्रेष्ठ गुणों का बखान करते नहीं अधा रहे हैं। आँसू बहा रहे हैं और चीख रहे हैं।¹ एक सम्प्रदाय फ्लोसी ने कहा कि माँ से मिलने गई होगी। जरा आप दक्षिण की ग्राँड ट्रंक एक्सप्रेस के स्टेशन मास्टर को तार या ट्रंक टेलीफोन पर बात कीजिए। किन्तु 'अब सुखदुःखमय यह बात करने को राजी नहीं' है। क्योंकि उस दशा में उनकी बदनामी हो जाती और अगला प्रमोशन स्क जाता। उन्हें प्रमोशन पत्नी से अधिक प्रिय था।²

बल्लरी रेडियों के शिक्षण के संबंध में जर्मनी गई थी। वहीं उसका परिचय ओरिया भाषी जगन्नाथ से हुआ और वे विवाह भी कर लिए। किन्तु जगन्नाथ धोखेबाज निकला जो बाते बल्लरी को उसने बतायी थी वे सब झूठ थी। यह बात कटक जाने पर पता चला 'वह न जमींदार था न अनेक मकानों का मालिक और न अनेक छिग्रीधारी बड़ा लेखक। वह सिर्फ एक लोफर था।'³ बल्लरी को बहुत कष्ट पहुँचाता था। इसलिए वह निश्चय की कि अपने परिचित मि. सिंह के यहाँ चली गई। 'बाद में पता चला कि वह दुष्ट शहाबी जगन्नाथ अपनी पत्नी से वैयावृत्ति कराने पर तृप्त था। वह उसे बाध्य कर रहा था कि उसके जो मित्र आए उनका भी वह मनोविनोद करे। जब हालत इस सीमा तक पहुँच गई, वह बेचारी एक दिन वहाँ से भाग कर चली आई।'⁴ इस प्रकार मध्यकाल

1. किसलिए - पृ. 37

2. -वही- पृ. 46

3. -वही- पृ. 48

4. -वही- पृ. 57

छूटी शान में जीवन बिताता है और जब उसका पदफाश हो जाता है तो वह अर्धशा रह जाता है। आर्थिक अभाव में वह अपनी पत्नी कोभी बेचा बनानेमें पीछे नहीं हटता।

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी अपने स्वार्थ के लिए स्वयं अपने द्वारा स्वीकार किए गए सैद्धांतिक विचारधारा या मान्यताओं को भी त्याग देने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसा ही पात्र डॉ. कालिज में हिंदी के लेक्चरर श्री बनवारीलाल त्रिवेदी है। "प्रो. त्रिवेदी कनोजिया ब्राह्मण है और बाबूद मावर्सवादी - लेनिनवादी कम्युनिस्ट धारा से प्रभावित होने के, वे कृत पठने पर अपने कनोजियापन का भी लाम उठा लेते हैं।" ¹ जहाँ तक लक्ष्मी का संबंध है, वे रोज सवेरे उठकर उसकी तसवीर को प्रणाम करते हैं। जिस टेबल बुक कमेटी में मुख्य किताब लगाने वाले बड़े डाक्टर साहब हैं, उसी को वे सवेरे प्रणाम करते हैं। अब वे लक्ष्मी से इसलिए बहुत नाराज हो गए हैं कि विभागाध्यक्षा के चरण छु-छुकर, उनकी सब तरह से सेवा कर, यानी कि उनके लिए किताबें और भाषण लिख-लिखकर देने पर भी बेचारे त्रिवेदी जी ऐसे भी फटेहाल रहे थे। इसका कारण भारतीय दर्शन के अनुसार वे अपने पूर्वजन्म पर या भाग्य पर न ठालकर, सीधे पूँजीवादी व्यवस्था के अंतिम दौर में से भारत का गुजरना बताते हैं। उसकी सहाय और विकृत अंतर्विरोधात्मक प्रकृति के मत्ते मढ़ते हैं। ²

मध्यवर्गीय के लोग धन कमाने के लिए तरह तरह के तरीके सोचते हैं। पत्रकार बीजापुरे पत्रिकाओं के लिए लेख लिख-लिख निराशाह्व वयोंकि कोई भी उन्हें लेख छापता नहीं था तो उन्होंने एक नई प्रणाली शुरू की। "पैसे जुटाने का और एक रास्ता बिजापुरे जी ने खोज निकाला। वे सब नेताओं

1. किसलिए - पृ. 57

2. इसलिए - पृ. 58

मंत्रियों, उप मंत्रियों, संसद सदस्यों के जन्म दिनों की एक तालिका बना लाए और उन उन दिनों पर उनके फोटो इंटरव्यू आदि मांगने शुरू करने लगे। कुछ धनी नेता आत्मप्रचार के लिए कुछ अतिरिक्त धन बिजापुरे जी को देने लगे। उन्होंने और एक संधा शुरू किया। कोई पचास वर्ष का हुआ, किसी की घिछि घूर्ति हुई कि सम्मान - अभिनंदन आदि समारोह आयोजित कराना। उसमें भी उन्हें थोड़ी-थोड़ी तो करनी पड़ती थी, पर कामदनी भी हो जाती थी। नगर में आये बाहर के साहित्यकारों के लिए गोष्ठियाँ भी ये ठेके पर आयोजित करते, और जैसी जिसकी जजमान के प्रति श्रद्धा रहती, चाय-पान से लगाकर बड़े-बड़े भोज्यों तक उत्सव हो जाते।¹

यदि मलयार्क के पास छोटा ज़्यादा धन रहा तो अपने आपको उच्च वर्गीय व्यक्ति समझते हैं और अपने परिवार को दूसरों से अलग विशिष्ट मानते हैं। यहाँ तक कि बच्चों को भी अन्यो से अलग रखने का प्रयास किया जाता है। "श्री कपूर के दोनों बच्चे अक्सर पेसे के मामले में बहुत सतर्क हैं। उन्हें पग पग पर पढ़ाया गया है कि वे अमीरमाता-पिता की संतानें हैं, उन्हें अपने आपको गरीबों की संतानों से अलग रखना है। मलयार्क के सब होते हैं, पर कपूर के बेटे बचपन से कार, फ़्रिज, टेलीविजन आदि के आदी हैं। उनके लिए ये सब जिनके पास न हों, उनके बच्चों से क्या बात की जाए? सो कुमार कपूर और कुमारी कपूर अपनी दुनिया में और दोस्तों में खूबी रहती हैं।² "कपूर की बेटा कल्पना कर्मा जी की ममता की हम उम्र हैं। पर दोनों सख्त भाव से एक दूसरे से झिझ नहीं पाती। कल्पना हर बार अपनी कार या टेलीविजन या फ़्रिज का जिद्ध किए बिना नहीं रह सकती - और इस तरह दूसरी बच्ची के सामने अपनी

1: इसलिए - पृ: 69

2: -वही- पृ: 70

विशिष्टता का अख्यान करती रहती है। कपूर साहब का अन्तिम बंगालियों के माटू को हमेशा हिकारत से देखता है और नीचा दिखाने का यत्न करता है। उधर मल्लता या माटू के मन में यह भाव जड़े जगाता है कि संपत्ति का दिखावा ही आदमी को बड़ा नहीं बनाता। विद्या और दूसरे गुण भी हैं, जो मनुष्य को विशिष्ट बनाते हैं।¹

मध्यवर्ग की विशेषता यह है कि इस वर्ग में स्त्री पुरुष में समानता नहीं होती, स्त्री के कुछ विशिष्ट दायरे होते हैं वह घर के बाहर नहीं निकल सकती। मध्यवर्ग, विशेषतः पुरुष प्रधान समाज है। इसका उल्लेख आलोच्य उपन्यास में उपन्यासकार माधवे लेखक "अ" से कराता है। "अ" "ब" चिह्नकार से कहता है - "हमारा सारा स्त्री पुरुष के बारे में विचार हमारी परिस्थितियों में से उपजा हुआ है। मध्य वर्ग की पुरुष प्रधान भक्तिता को हम अपना मान्य मानकर चलते हैं। असल में न आदिवासी समाजों में, न हरिजनों, गिरिजनों में न किसान मजदूरों में यह भेदभाव है। वहाँ सब एक सा श्रम करते हैं। उन्हें करना ही पड़ता है। यहाँ तक कि कानून की मनाही होने पर भी बच्चे भी उसी श्रमरूपी विराट चक्की में धरावर पीसे जाते हैं। तो ऐसी दुनिया में ये सब जो तुम मानकर चलते हो, वे "बायोलाजिकल" प्राणिशास्त्रीय या जैविक भेद स्त्री - पुरुष में कहा है १²

मध्यवर्ग में नौकरशाही वर्ग विशिष्ट है। उसके विशेषताओं को माधवे जी श्री लालवानी के माध्यम से चित्रित किया है - "श्रीलालवानी पहले से भी ज्यादा फादलों में दूबे रहते। नौकरशाही की सब बुराइयों के वे प्रतीक बन गए। किसी भी काम को दफ़्तद में जल्दी करना वे पाप समझते थे। बोलते जैसे ही कम थे, अब और भी मीनी बाबा बन गए। सवेरे दफ़्तर जाने में आधा घंटा देर लगाते। साठे ग्यारह बजे चाय के

1. इसलिये - पृ. 70-71

2. - वही - पृ. 181

बहाने चार दोस्तों से मौसम या ताजा राजनैतिक स्केल पर गप लड़ाते । लंच के समय घर आते । दो घंटे बाद लौटकर जाते । चार बजे फिर चार । कभी दफ्तर से पाँच बजे उठते ही नहीं थे । टार्विपिस्ट और स्टेनोग्राफर को छः सात बजे तक नहीं छोड़ते । एक एक फाइनल पर "नोटिंग" कराने में तीन-तीन बार द्वापूर बदलते । अपने से नीचे के लोगों के साथ बुरी तरह पेश आते । और अपने से ऊँचे अफसरों की बेहद मीठी भाषा में ख़ामन्द करके, तन्पु चाटते । यों वे बराबर तरबकी पाते रहते । ऊपर की ख़ामदनी से भी उन्हें परहेज नहीं था । पर यह सारा कमाया हुआ पैसा जाता कहाँ ? तो श्रीमती लालवानी के हाथों से किसी बाबा, स्वामी, गुरु या पंडित हुए सिद्ध के चरणों में, या फिर ज्यु के हाथों चरस - कोकीन, फल एस ठी की ख़रीद में । जैसे मार्ग से धन आता, वैसे ही मार्ग से जाता । श्री लालवानी बेचारे बीच में असंप्रवृत्त कारण मात्र थे । जैसे हलधे की कढ़ाई में कलठी । उसके बिना हलुआ बनता भी नहीं, और वह हलुआ खा भी नहीं सकती ।¹

मध्यम वर्ग की विरोधताओं के संसंध में "धृत" उपन्यास में भी चर्चा हुई है । गाँव के डेमास्टर और द्रौपदी मध्यमवर्गीय विरोधताओं के किस्से सुनाते हैं । डेमास्टर ने कहा - "मध्यमवर्गीय संस्कार कहाँ नष्ट हो पाते हैं । इन भलेमानुसों ने जनता का नाम लेकर, उनके लिए जो लोक संगीत मंडल खोले तो उसमें वही मध्यमवर्गीय बातें आ गई । एक विदेशी महिला जो उत्कृष्ट नाचती थी, एकबहुत अच्छे नर्तक से आकृष्ट होकर यहाँ आई । इस आदमी ने उससे प्रेम का नाटक किया । बाद में अपनी ही भाषा बोलने वाली, अपनी ही जाति और प्रेक्षण की लड़की से शादी कर ली, जो उस विदेशिनी के नख के बराबर भी नहीं थी । विदेशिनी ने दुःखी होकर नाचना ही छोड़ दिया ।"² द्रौपदी ने कहा -- "कई ऐसे किस्से हैं ।

1. इसलिए - पृ. 191

2. धृत - पृ. 61

ये तथाकथित मध्यक्रीयीय क्रांतिकारी अपने घरे से बाहर जा ही नहीं सकते । मुँह में राम बगल में छुरी की तरह मुँह से ये दुनिया भर के शोषितों की एकता की बात करते हैं, पर प्रत्यक्ष आचरण में ये लोग अपनी छेटी के अन्य धर्माजिम्बी से प्रेम या शादी करने के प्रस्ताव को सुनते ही, उसे पिस्तौल से गोली मारने को भागते हैं । फिर चाहे वह लड़की पागल होकर आत्म-हत्या ही क्यों न कर लो ।¹ इस प्रकार मध्यक्रीयीय व्यवक्तियों के दोहरे रूप होते हैं । समाज में प्रतिकृता पाने के लिए बड़े-बड़े आदर्शों का बखान करते हैं पर जब अपनी बात आ जाती है तो पीठ दिखा देते हैं । ऐसी दोहरी मानसिकता के कारण ही मध्यक्रीयीय समाज खोखला होता जा रहा है ।

"कहाँ से कहाँ" उपन्यास में ऐसे बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया गया है जो किसी सेमिनार या सम्मेलन में भाग लेकर ऐसी चर्चा करते हैं जिन में ठेरे सारे विदेशी ग्रंथों से उद्धरण रहते हैं । ये अस्सी समस्या को छोट कर अनन्त शब्दाजल में और उसकी अर्थशून्यताओं के तन्तु जाल में अपने आपको उलकाते रहते हैं और भारतीय बुद्धिजीवियों की मनःस्थिति ऐसी थी कि वे कोई हिंदी में बोलता तो सुन नहीं पाते थे । ग्राम् समाज सुधारक जितेन्द्र बोल रहा था तो "विद्वानों के मुँह एकदम उतर गये । चूँकि वह हिंदी में बोला था । कई विद्वानों ने तो ऐसा चेहरा बना लिया "वाट हज दिस आर्टिफिशियल सेस्कृतावज्ज "जागन" दिस जैटलमैन इस स्पीकिंग १" एक भारतीय ने अजनबी की तरह फूटा ।¹ और कई विद्वानों ने छापस में ऐसे ही कहने लगे । गाँव से जितेन्द्र जैसा गया था वैसा ही लौट आया । कोरा का कोरा । साथ में आधा किलो कागजों का भर

1. धृत - पृ० 61

2. कहाँ से कहाँ - पृ० 86

जसर बढ गया था - "कहाँ साइक्लोस्टाइल पेपर्स थे ।"। ऐसे सेमिनारों ऐसे कक्षाओं पर जितना खर्च होता है, वह सब व्यर्थ है । माधवे जी सोचते हैं कि - "क्या सचमुच इस देश में पढा लिखा, हजार से ऊपर तनखा पाने वाला, एक ऐसा वर्ग है, जो इस देश से कटा हुआ है । वह समझता है कि वही सांस्कृतिक नेतृत्व, शासन, जन - प्रचार, माध्यमों का नियंत्रण और पूरी नई पीढ़ी का मानस बनाने का अपने ऊपर उत्तरदायित्व ओढ़े हुए हैं । उसके बिना शिक्षालय, विश्वविद्यालय, सचिवालय, बड़े सरकुलेशन के अखिरी, अखबार, अन्तर द्वितीय विचार गोष्ठियाँ, सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल की यात्राएँ कुछ नहीं कर सकतीं...२

सरकारी कार्यालयों में फैली ग़ुलामगिरी और अकरशाही का भी इस उपन्यास में माधवे जीलेपदक्षिण किया है । नौकरी दिलाने के नाम पर ग्रामवासियों का भरपूर शोषण करना ही इनका काम है । माधवे जी अपसरों की दैनिक कार्यक्रम बताते हैं - "कैसे-सी ऐसी अपसरशाही । एक ओर अपसर रोज संधेरे उठकर योग और ध्यान में चार छद्म बिताते हैं - चार से आठ बजे तक । पर दूसरे में सब तरह के ग़ुलामगिरी को प्रश्रय देते हैं - मातहतों से मुक्त फल और सम्बन्धियाँ, शक्कर और चाकल मँगवाते हैं । वाक्यशक्ति पढ़ने पर "रिसेप्शनिस्ट" लड़की का भी उपयोग करते हैं और ऊपर से सबको अध्यात्म का उपदेश फिलाते रहते हैं । क्या दोहरी जिन्दगी है ।"३

इस उपन्यास में भी संपादक और प्रोफ़ेसर जैसे बुद्धिजीवियों के खोखलेपन का चित्रण यथार्थ के साथ किया गया है । वार्षिक स्थितिसुधारने के लिए वे अपने विचारधाराओं को छोड़ सकते हैं तथा सम्झौतावादी नीति को अपनाते

1. कहाँ से कहाँ - पृ० 86

2. -वही-

3. -वही- पृ० 133

है। संपादक वर्ग के संबंध में लिखते हैं कि "क्रांति का वे समर्थन उसी मात्रा में करते थे जितना तक उनके मालिकों को पसन्द था।" ¹ और शिक्षकों के संबंध में लिखते हैं कि "प्रोफेसरों का यह हाल था कि वे पढ़ाना कम, अन्य मार्गों से आय बढ़ाने में लगे रहते थे। कोर्स की पुस्तकें लगवाने के लिए पैसा खाते थे। गुमनाम से कृजियों जैसी किताबें लिख देते, और क्या-क्या नहीं करते। उनकी अपनी कोई विचारधारा नहीं थी। "जैसे वैसे बयरि पीठ तब तेसी दीजे" उनकी नीति थी।" ²

"दशभुजा" उपन्यास में भी बौद्धिक नलिकान्त का चित्रण किया गया है जो एक बौद्धिक समाज से कटा हुआ, किताबें बहुत पढ़ता था, दर्शनास्त्र के ग्रंथ, साहित्य के ग्रंथ पढ़ता था। अमरीकी और रूसी साहित्य इतिहास के बारे, क्लकत्ते क्रांतिकारियों के बारे में बौद्धिक रूप से जानते थे। "अंग्रेजी ही उनकी अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम थी, चूंकि वे अपने आपको "अपस्टेट" यानी "खड़ा हुआ जादनी" मानते थे।" ³ इस उपन्यास में पंचानन जैसे युवकों का भी चित्रण हुआ है जो अपने आपको महान क्रांतिकारी समझता है। असलियत तो यह है कि ऐसे युवक जो स्वाधीन होते हैं। पंचानन अंग्रेजों को हटाने के लिए कम बनाने वाले ब्यक्ति है। इससे अदिति का परिचय हो जाता है और अंग्रेजों से सम्बन्धित है कि "पापु केवल आदर्शवादी कलाकार नहीं है। एक दोहरा ब्यक्तित्व है। भीतर से वह गहरा स्वाधीन और कमीना भी है। वह स्फुर्यु स्त्री लंपट नहीं था। पर वह उससे भी बुरा निष्ठा। वह अदिति को बाधार बनाकर अपने दफ्तर में, जहाँ वह "किरानी" था, वहाँ अपने छोटे "सेक्रेटरी" को सुना करना चाहता था।" ⁴ पंचानन एक बार अपने अफसर श्री सेन से अदिति को मिलवाने दफ्तर के केबिनेट में ले गया। पंचानन ने जाकर पश्चिम दिया तो अदिति

1. 2. कहां से कहां - पृ. 136

3. दशभुजा - पृ. 28

4. दशभुजा - पृ. 37

को लगा कि बाहर आग उगलने की भाषा बोलने वाला वह "विप्लवी" युवक कहीं लुप्त हो चुका है और यहाँ छिपाने वाला एक किरानी अपने प्रमोशन के लिए दस्तबस्ता खड़ा है और उस छोटे से स्वार्थ के लिए वह चाहे जो बड़ा अपराध सहज कर डाल सकता है ।¹

श्रीसेन का मध्यवर्ग का अफसर है जो क्रांति में विश्वास रखता है और नौकरी भी छोड़ नहीं सकता । इसके बारे में अदिति जब बुद्धिजीवी नलिनी कांत को बताती है तो वह कुछ गंभीर होकर श्रीसेन जैसे व्यक्तियों के बारे में कहता है कि -- "अदिति, इसमें कोई अचरज मुझे नहीं हुआ । यह "बलास" कैरेक्टर है । बलास वन का यह अफसर है । अपनी नौकरी छोड़ सकता नहीं । क्रांति जरूर करना चाहता है । शक्ति उसमें है नहीं । वह पंचानन जैसे लोगों को अपना साधन बनाता है । जब तक मनुष्य मनुष्य को साध बताता रहेगा कोई महत्कार्य हो नहीं सकता । सारी राजनीति की "हार" इसी में है । वह एक विराट पैमाने पर कुछ मूढ़ी भर लोगों द्वारा बहुत बड़ी जटिल जनता को मूर्ख बनाने का धन्धा है ।"²

इस उपन्यास में माधवे जीनेकु ऐसे युवकों का चित्रण किया है जो निम्न मध्यवर्ग के हैं और समस्त सामाजिक ढाँचे को बदलने की आकांक्षा से प्रतिबद्ध हैं । वे "ब्लैर ग्राउंड" बस बनाने वाले, सर्व स्थिति द्वारा अतिव्याम युवकों की टोली एकदम अद्भुत थी । अदिति देख रही थी कि "वहाँ सभी निम्न मध्यवर्ग के युवक हैं । किसी में भी बड़ा दम नहीं था । न पैसे का, न बुद्धि का, न रूप का, न अपने नाम का ।"³ ऐसे युवक देश की सामाजिक आर्थिक समस्याओं पर चर्चा कर रहे हैं । देश में मूल्यों का पतन और भ्रष्टाचार

1. दशभुजा - पृ. 38

2. दशभुजा - पृ. 42-43

3. दशभुजा - पृ. 68

का फेलाव मात्र आर्थिक विपन्नता के कारण ही हो रहा है। ऐसा इन युवकों और युवतियों का विचार था। एक कह रहा था "इस देश में पुलिस सबसे कम तनख्वाह पाती है और सबसे ज्यादा भ्रष्टाचर वहीं से शुरू होता है।" दूसरा कह रहा था "इस देश में नेतिकता के मान बढल रहे हैं। अब ठाकिया गाँव की अकेली बुढ़िया को उसके मनीबार्डर के पैसे नहीं पहुँचता, खुद की जेब में डालता है और किसी भी लठकी के बँगूठे के निशान लगाकर रसीद वापिस भेजने वाले के पास भिजवा देता है। आज किस-किस को कहाँ तक रोकियेगा।" 2

माधव जी का "लापता" उपन्यास मध्यमगीय युवक की मानसिक स्थिति को स्पष्ट करने वाला है। इस उपन्यास के माध्यम से रचनाकार ने हीन भावना से ग्रसित, अकेलेपन को महसूस करने वाले युवक का चित्रण किया है। अरविंद मल्होत्रा दिल्ली में रहने वाला युवक है और घर में प्यार न मिलने के कारण वह घर छोड़कर भाग गया था। वह एक अजनबी की तरह देश के घोरों और घुमता था। अपनी पहचान मिटाना चाहता था। किन्तु वह मिटा नहीं पाया। वह हमेशा दुःखी रहता था। "कहीं न कहीं गहरे में उसके मन में यह पीठा थी कि वह बिना छहों का निम्न, विच्छिन्न एक तरह की अमरबेल का सा जीवन बिता रहा है। फिर उसने यूरोप में गत महायुद्ध के बाद रेफ्यूजियों के जहाँ तति लग गये, और जिन-जिन देशों में विनाश के बाद पुनर्निर्माण का कार्य भी बड़े पैमाने पर हुआ, वह देखा और उसके मन में यह एकाकीपन उसे और भी सालने लगा।" 3 अरविंद मल्होत्रा बार बार अपने नाम और देशभूषा बदलकर अपनी पहचान को समाप्त करना चाहता था किन्तु कर नहीं पाता था क्योंकि भीतर ही भीतर उसको एकति बहुत खलता था। "अकेला होने पर उसका मन

उसको खाने लगता था। बार बार उसे अपने परिवार की याद आती। सौतेली ही क्यों न हो, माँ कैसी है, कहाँ है ? और सब रिश्तेदार ? आधी आते ही पक्षी भाग नहीं जाते है ? दरिद्र का भी ऐसा ही होता है। फिर पेठ पर पत्ते आये कि पक्षी चहचहाने आ जुटते हैं। पैसे वालों के पास लोग हर तरह जमा हो जाते हैं। जहाँ होंगे कण, वही जुटेंगे जन।¹

"जब व्यक्ति आत्म स्थापन से न कर सके तो हीनता ग्रही से जकड़े होने के स्पष्ट लक्षण हैं।"² अरविंद मल्होत्रा में भी हीनता की भावना थी क्योंकि उसे घर में प्यार नहीं मिलता था। सौतेली माँ थी और पिता भी सदा छोटे भाई का पक्ष लेते थे। उसे सम्मान की कौशिला ही कोई नहीं करता था। वह अपने भाई के बारे में बताता है जो उससे एकदम उल्टा था - "वह मारपीट करता। घर पर आकर झूठ बोलता। सबकी सहानुभूति पाता। छोटा था न। झूठे सब दूरदुराते। सब चाहते थे कि मैं पढ़ाई पूरी करने से पहले ही कमाने लग जाऊँ। यह कैसे संभव था ? मेरी किताबें वह चुराता। पन्ने फाट डालता मेरे होम वर्क के। मेरे अपमानित होने में उसे बड़ा आनन्द मिलता था।"³

अरविंद मल्होत्रा जब आशुतोष नाम से कभी कभी ठायरी लिखता था। ठायरी में भी अकेलेपन के बारे में ही लिखा करता था - "आदमी अकेला रहना चाहता है। उसी में उसे सुख लगता है। पर वह अकेला रह ही नहीं सकता। बचपन से उसे परिवार, कलत्र, मित्र बड़ा होने पर पत्नी-पति, बच्चे और कितने कितने लोग घेरे रहते हैं। वह निस्संग रह ही नहीं पाता और सोचता रहता है कि निस्संगता ही अन्तिम सुख है।

1. लापता - पृ. 45

2. डा० हेमराज निर्मम - हिंदी उपन्यासों में मध्यका - पृ. 216

3. लापता - पृ. 88

यही अकेलापन, जिसे वह सुख की कुंवरी मानता है, उसके दुख की जड़ है, क्या वह इसलिए दुखी है कि उसे भारी दुनिया में उसके मालिक, स्वामी, माता-पिता, आत्मीय स्वजन सबने निराश्रित छोड़ दिया है ? क्या वह इस अलगाव से दुखी है ? पर पहले तो मनुष्य जंगल में, गुफाओं में रहता था । उसने बनाया हुआ कोई सर्वव्यवस्थितमान, सर्वव्यापक ईश्वर भी नहीं था । तब वह क्या अकेलेपन के दर्द से छटपटाता नहीं था ? नहीं, वह इसलिए दुखी था कि वह अपने आपको पहचानता नहीं था । उसकी पुकार कीकौन हुई में ? कौन होतुम ? क्या हुई मैं ?¹ इस प्रकार अकेलेपन अजनबीपन का कारण मनुष्य को प्यार, अपनापन का सहारा न मिलता ही है । अरविंद जब घर लौट आता है तब विनीता घर के बच्चों के साइ बात करती हुई कहती है कि अरविंद पर कभीकोई गुस्सा नहीं करना चाहिए । क्योंकि "यह छोटी सी बात नहीं है । अलगाव यही से शुरू होता है । स्नेह की कमी अजनबीपन की शुरुआत है ।"²

5.3. निम्न वर्ग :

निम्न वर्ग सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचला भाग है । यह वर्ग अपना श्रम बेचकर जीवन व्यतीत करता है । निम्न वर्ग समाज में सभी दृष्टियों से फिछटा रहता है । इसी पिछड़ेपन का उच्च वर्ग तथा अन्य पायदा उठाते हुए उनका शोषण करते हैं । "इस वर्ग के अंतर्गत समाज के वे लोग आते हैं, जिनका सारा जीवन उच्च तथा कुछ हद तक मध्यवर्ग की सेवा में व्यतीत हो जाता है । यों तो हम मुख्य रूप से कृषकों तथा मजदूरों को ही इस वर्ग के अंतर्गत रख सकते हैं, लेकिन हमारी सम्मति में वे कहार, चपरासी, घरेलू नौकर तथा इसी कोटि के अन्य सभी पेशे वाले लोग भी इसी वर्ग में हैं, जिस

1. लापता - पृ. 91

2. लापता - पृ. 132

की स्थिति किसान अथवा मजदूरों से भिन्न नहीं है । बहुत निम्न श्रेणी के दुकानदार अथवा छोटे आदि लगाने वाले भी इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं । इन सभी की समस्याएँ प्रायः एक ही हैं ।¹

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में विवेचन करते समय निम्नवर्ग का संबंध सिर्फ आर्थिक आधार पर नहीं देखा जा सकता बल्कि उसके साथ जाति की स्थिति को भी ध्यान में रखना पड़ता है । अधिकतर निम्न जातियाँ निम्न वर्ग के अंतर्गत ही आती हैं क्योंकि निम्नवर्ग की एवं निम्न-जातियों की समस्याएँ लगभग एक जैसी ही हैं । अतः भारतीय समाज में निम्न वर्ग के संदर्भ में विवेचन करते समय हरिजन आदि बहुत कहीं जाने वाली जातियों को निम्नवर्ग के अंतर्गत ही विवेचित करना ठीक होगा ।

डा० प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में निम्न वर्ग का चित्रण बहुत ही व्यापक स्तर पर हुआ है । लगभग सभी उपन्यासों में निम्नवर्ग का यथाई चित्रण हुआ है । निम्नवर्ग का चित्रण करते हुए माधवे जी ग्रामीण तथा नगरीय निम्नवर्गीय जीवन का बहुत ही मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हैं । ग्रामीण प्रान्तों में अज्ञान, निर्धन जैसे अनेक कारणों के कारण निम्नवर्गीय जनता बहुत ही हीन स्थिति में जीवन व्यतीत करती है । इनका शोषण अनेक प्रकारों से उच्च वर्गीय जमींदार, सेठ मिल्-मालिक तथा उच्च मध्यम-वर्गीय लोग करते हैं ।

माधवे जी का प्रथम उपन्यास "परन्तु" में जहाँ उच्च वर्ग तथा मध्य वर्ग का चित्रण हुआ है वहीं निम्न वर्ग का भी चित्रण हुआ है । इस उपन्यास में "हेम" निम्नवर्ग की पात्र है । "विवाह के बाद जल्दी ही विधवा

हो जाने से "अन्न देवता की विहम्बना" को सुनाने - आदिम प्रवृत्तियों की दृष्टि से, भूख और आत्मरक्षा के लिए, हेम गाँव से अपने मामा के साथ कलकत्ता आती है और सेठ लक्ष्मीचन्द के यहाँ नौकरी करती है । x x x परन्तु.....सेठ जी ने उसके श्रम को ही नहीं, सतीत्व को भी जबरदस्ती खरीद लिया और "यौवन के विकास के प्रथम पौर" में ही उस पर "तुहारपात" हो गया ।¹ इस प्रकार निम्नवर्गीय व्यक्तियों का कोई जीवन मूल्य नहीं रहा । वे मात्र उच्चवर्गीय लोगों के लिए विकास की वस्तु हैं । उनकी कोई मान मर्यादा या इच्छा का मूल्य नहीं है क्योंकि वे आर्थिकहीन व्यक्ति हैं जीविका के लिए ऐसे भी कार्य करने को तैयार हैं । इसी का फायदा उठाते हुए उच्च वर्ग के लोग न केवल श्रम का शोषण करते हैं, बल्कि उससे अपनी वासना को भी पूर्ण कर लेते हैं ।

कलकत्ता जैसे महानगर में निम्न वर्गीय व्यक्तियों की जिन्दगी बहुत ही कष्टदायक होती है । आदमी जीविका के लिए हमेशा संघर्ष करता रहता है । उसका उद्देश्य मात्र रोटी कमाना है । हेम कलकत्ते में रिक्शा को देख रही है । "हेम ने जीवन में रिक्शा पहली बार देखा था । आदमी आदमी को खींच कर ले जा रहा है । क्या अद्भुत दृश्य है । आदमी ने अपने आपको कैल, खच्चर या घोड़े में अनायास परिवर्तित कर दिया है - कई हतना है कि कैलों के गले में जो छड़ी बांधी जाती है, वह इसके हाथ में है । गोल-गोल पहिए चलते हैं, इसलिए गोल-गोल सिक्के मिलते हैं - ऐसे अठन्नी, रुपये । दो पैर निरन्तर भाग रहे हैं । दो पहिए उनके पीछे बराबर अविरोध गति से घूमे जा रहे हैं । ये दो पहिए उन दो पैरों के स्वामी हैं । ये दो पहिए रिक्शा के हैं जो कि किसी ऐसे वाले का है, या यदि रिक्शा वाले का हो तो कई के बदले में उसी ऐसेवाले के बहीखाते में गिरवी रखा जा चुका है ।"² इस प्रकार निम्नवर्ग की जिन्दगी बहुत ही दर्द भरी होती है ।

1. डा० सत्यापाल कुश-उपन्यासों की शिल्प विधि - पृ. 79।

2. परन्तु - पृ. 9।

रिक्शा भी उसका स्वयं का नहीं होता । किसी पेसे वाले के पास से किराये पर लिया हुआ या उसी का है तो भी वह गिरवी रखा हुआ है ।

"एकतारा" उपन्यास में होमन्द्र द्वारा एक नाटक खेला जाता है जिसमें यह बताया गया है कि ग्रामीण निम्नवर्गीय किसान जनता का शोषण किस प्रकार होता है और उन निम्नवर्गीय जनता में क्या चेतना आने के पश्चात्, जमींदार आदि शोषक वर्ग की बाधाओं से मुक्त हो जाते हैं । नाटक में - लो, ग्राम देवता लो पषाम ।" गीत परदे के पीछे से गाया जा रहा था और एक एक कर गांव के शोषण के दुःख सार्वजनिक नृत्य द्वारा दिखाये जा रहे थे । कैसे जमीन एक जमींदार छुप लेता है, कैसे धर्मवाले, हाठ - फूक करने वाले उसे और लूटते हैं और कैसे अन्त में वह मुहताज हो जाता है । इसलिए इन सब विषयों को छटाने वाले गण देवता तुम्हें प्रणाम हो । सब किसान मिलकर जुलूस निकालते हैं । एक एक कर यह किन बाधाएं भागती है । किसखती रोती किसान की लठकी जो कि बंधक रखी गयी थी जो कि बैठियों से कसी डी, मुक्तहोती है । सब मिलकर बसंत का गाना गाते हैं ।¹ इस नाटक में शोषण के संबंध में एक किसान का लठका जोर जोर से कहता है कि - "राज का जमाना मजबूरी का है । रम्भू भैया, तुम्हारे चाहने न चाहने से कुछ नहीं होता । काम करो तो भी मार है, न करो तो भी मार है । तुम्हारे लिए यही बदा है १ मखन - मखन सब ठाकुर लालसिंह का है और छाल भी तुम्हारे पल्ले पड़ने वाली नहीं - चाहे गाय तुम्हारी हो, चाहे चारा उसे तुमने खिलाया हो, चाहे दुध उसे तुमने हो ।"²

"साँचा" उपन्यास में मजदूरों की जिन्दगी पर प्रकाश डाला गया है । मिल्-मालिकों का शोषण, गांवों से अपने बीबी बच्चों को छोड़ कर रोजी रोट्टी कमाने की आशा से आये ग्रामीण श्रमिकों का चित्रण यथार्थ के

1. एकतारा - पृ. 60

2. एकतारा - पृ. 62 - 63

साध किया गया है। निम्नकीर्ण मजदूर जो अज्ञान और निर्धनता से बहिष्कृत है उनका शोषण न केवल यांत्रिकीकरण से हो रहा है बल्कि विज्ञानियों के माध्यम से भी हो रहा है। इस प्रकार मूल की जिन्दगी से आदमी आदमी न रह सका वह एक यंत्र का पूर्ण मात्र बन गया। गाँव से केशों और माँगीराम मिल में काम करने के लिए निकल पड़े। एक मिल में काम करने लगे। यांत्रिक सभ्यता का यही विशेषता है कि आदमी को आदमी रहने नहीं देता। उन्हें नम्बरों में बदल देता है। "आँकड़ों के पीछे आदमी है। मशीन आदमी को आँकड़ों में परिवर्तित करती है। केशों और माँगीराम जब केशों और माँगीराम बनकर आगे इस कहानी में नहीं मिला - पर वाणिज्य खाने में नम्बर दो सौ तीस और दो पन्चीस की तरह से मिला।" मिल के माध्यम से यांत्रिक सभ्यता मजदूरों का रक्त किस प्रकार चूसती है। केशों हसी के बारे में सोच रहा था। उसके दिमाग में मिल एक विशालकाय अहिरावण - अहिरावण का रूप ग्रहण करके सामने आ रही थी, उसके लाल लाल जबड़े, अकराल विकराल उसके दंड़ है, लपलपाती जिह्वा है। त्रिनेत्र है - नौ भुजाओं में परशु, पाश छद्म, एक त्रिशूल, दराती, हथौड़ा और राजदंड भी है। इस यंत्र स्वयं दानव का प्रिय पेय है - गाँवों का स्वास्थ्य-रस। केशों के सामने यह यंत्र दानव मोटे मोटे ग्रंथ पढ़ रहा है - देखते - देखते वह छमा पहनने वाले ग्नी वकील का रूप धारण करता है। इसके हाथ में एक "पिरानी" जैसे लोहे का काँटा है जो "तिक्-तिक्" करके इन मजदूर मानवों की, त्वचा में चुभोते जाता है - कुछ रक्त जो ईश्वर निष्कलता है, उसे देख देखकर वह स्त्रा होता है - वह उस अर्द्ध परशु, अर्द्ध राक्षस यंत्र रूपी विशालकाय वस्तु के नीचे पिसता जा रहा है।²

1. साँचा - पृ: 32

2. साँचा - पृ: 36

इस मिल् में काम करने वालों में छोटे-छोटे बच्चे भी थे। "रातपाली के बच्चे अपने से कहीं अधिक बोझा उठाये हुए ले जा रहे थे। जैसे कागज में कानून थे - बच्चों में अमुक उम्र तक के लठकों को मेहनतका काम न देने का आदेश था। पर बात यह थी कि कई तरह के ये आवारा छोकरे यहाँ वहाँ अपराध करते और सब पापों का प्रभालन करने यहाँ पहुँचते। लेबर इन्स्पेक्टर से बचने के लिये इनके नाम रजिस्टर में दर्ज नहीं कराये जाते। ज्यों ही इन्स्पेक्टर के आने की भनक पड़ती इन्हें भगा दिया जाता था। इन्स्पेक्टर की "मूट्ठी गरम" करके मामला निपटा दिया जाता था।¹

इस प्रकार बच्चों का शोषण होता था और इस शोषण में सरकारी कर्मचारियों का भी हाथ था। इस मिल् में काम करने वाली महिलाओं की स्थिति भी ठीक नहीं थी। उनका भी शोषण होता था। मजदूरियों ज्यादातर बहुत छिर्चापच साँघों पर काम करती - सालखाते में भी कुछ थी पर उनकी कोई जिन्दगी नहीं थी जैसे ही पुरुषों से कम मजदूरी यहाँ भी उन्हें मिलती। और जिस पर अपमान के छुडकी, सब तरह की बुराहियाँ उन्हें घेरे रहती। उन पर जाबर की नज़र थी ही। साइ ही उन्हें काम पर लगाने वाला ठेकेदार अठ्ठल नंबर का शहाबी और जुआरी था। उसकी अंटी में इनकी गाढ़ी कमाई का बहुत सा पैसा जाता।² क्योंकि इन महिलाओं की परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी कि वे काम करने मजदूर हो गये थे। लक्ष्मी को उसके धनी ने छोड़ दिया था। पार्वती दो पतियों को छोड़ चुकी थी। सोना के घरबच्चे थे, पति कमाता था, उसे भी कमाना पड़ रहा था। नरबदा का पति शहाबी था और उसकी आय घर में आती ही नहीं थी।

- - - - -

1. साँघा - पृ. 53

2. साँघा - पृ. 54 - 54

गीता का बाप बहुत बूढ़ा था - इसलिये जवानी में ही उसे नौकरी करनी पड़ती थी । इन सब ओरतों की कमजोरियों और मजबूरियों से उनके नौकरी ढिलाने वाले सुपरिचित थे और वे उनसे पूरा फायदा उठाते थे ।¹ मजदूरों की जो शोषण होता था वह कुछ मजदूरों को ज्ञात होता था कुछ को नहीं । जब पगार का दिन आता था तो उस दिन उनका शोषण करने वाले अनेक रूपों में म्लि के बाहर उपस्थित रहते थे । "जिस दिन केशो पहुँचा था पगार का दिन था और जब शाम को वह म्लि सेबाहर निकला तो दूसरा ही नज़ारा दिखाई दिया । म्लि के फाटक पर पटान, कई देने वाले खान और कई तरह के बपठकलाती लोग खड़े थे । म्लि के फाटक के बाहर पास में ही लाली की दुकान थी । बहुत सा म्लि में म्लिा रूपया उस लाली में उठल दिया जाता, जैसे ठरो ज्यादा पीकर बाद में होने वाली कै हो । कुछ भइदी, जिनकी आँखों में शर्म का पानी भर चुका है, ऐसी ओरतों भी फाटक के बाहर थी । मेहनत के पैसे का यह सब उपयोग खजब था । लाटरी सट्टे वाले भी बाहर पैसे उगाने के लिए खड़े रहते थे । इतनी सब आँखों के पीछों से कोई बचाव नहीं था, पगार दधर से आती, उधर फँस जाती । मजदूर मानों सिक्कों के झेल को बढाने वाली नालियाँ थे ।"² इतना होते हुए भी उस म्लि में नौकरी करने के लिए निम्नर्ण के मजदूर विव्सा थे । कारण स्पष्ट था आर्थिक विपन्नता और रोजी -रोटी का पश्न । यही स्थिति गाँव से रोजी रोटी कमाने के लिए आये केशो का था । जो म्लि में काम करना उसे पसंद नहीं था फिर भी विव्सा होकर कर रहा था । "पहले ही दिन केशो इस महा सचि की माया से आतंकित हो गया । उसकी तो जैसे बोलती बंद हो गई । यह नया काम कोई ज्ञात उसे पसंद नहीं आया । पर पसंद आना न आना गोण बात थी, मुख्य बात थी माहवार म्लि में वाले निश्चित पगार के सिक्के ।"³

1. साँचा - पृ. 53 - 54

2. साँचा - पृ. 54

3. साँचा - पृ. 55

निम्नवर्ग की जिन्दगी में प्रत्येक पल्लू अर्थ से जुड़ा होता है। वह हर क्षण अपनी रोजी रोटी के बारे में सोचता रहता है जिसके कारण उसके अंदर रहे सब्ज मानवीय भावना भी नष्ट हो जाती है। वह अपने साथी मजदूर की रक्षा भी नहीं कर पाता क्योंकि यदि उसकी रक्षा करता तो इसकी मजदूरी कमी जाती। इसी कारण यह वर्ग अपने मानवीय संविदनाओं को भी उजागर नहीं कर पाता। केशो जिस मिल में काम करता था उसी में एक कुईना में एक मजदूर जिसका नाम नारायण था, की बाढ़ कंधे से अलग हो कर टूट गिरी। वह छुन में लथपथ बेहोश पड़ा था। "कई स्वार्थी ऐसे हैं कि अपना साँचा उठ कर नराण के पास जाने को राजी नहीं थे। उन्हें लगता था - पता नहीं संहानुभूति दिखाने जाओ तो जाबर कहीं काम से न निकाल दें।"

केशो जैसे मजदूर अनेक आशाओं की गहरी लेकर शहर में आते हैं ताकि अपनी जिन्दगी में कोई सुधार हो। किन्तु मजदूरों की जिन्दगी में कोई सुधार नहीं होता। यह अज्ञान और असंवेद्य होने के कारण है। जब तक मजदूर अज्ञान में सज्जते रहेंगे तब तक पूँजीपति, मिल मालिक उनका रक्त खूँसते रहेंगे। इसलिए निम्न वर्ग में वर्ग चेतना अत्यावश्यक है। आलोच्य उपन्यास में जैसे की तेसी रहने से केकेशो उब जाते हैं। "कभी इस यूनियन वाला उन्हें बनाता था, कभी उस संधि वाले को कंदा देना पड़ता। हालात उधों की त्यों खस्ता हैं। नेता लोग आते। व्याख्यान देकर चले जाते। फूलमाला, धूम्रपान, शब्द, शब्द, शब्द...बाद की तरह से निकल जाते। मजदूरों को दुनियाँ उसी तरह खिलखिलाती रहती। ताड़ी उसी तरह बिकती रहती, खान उसी तरह ठंडा पीटता रहता, मजदूरों औरतों की अस्मर्त पान की पीक की तरह खुले आम सड़कों पर कलकत्ती बनती, मजदूरों

के बच्चे उसी तरह बिना दवा दारू के मर जाते ।¹ यह है औद्योगीकरण-युग का फल । जिसमें जीने के लिए मूलभूत आवश्यकताओं की भी पूर्ति न हो पा रही है । मजदूरों की स्थिति जैसे गांवों में किसान की रहती है वैसे ही था । उसके सामाजिक, आर्थिक स्थिति में कई परिवर्तन नहीं आ पाया है ।

मिल में जो यूनियन है वे मजदूरों की भलाई की बात करती है किन्तु जब मजदूर को आवश्यकता होती है तब कोई भी यूनियन उसे साह नहीं देती । वह मजदूर धेरे ही धुट-धुट कर मर ही जाता है । इस बात को माघवे जीनेहस उपन्यास में बहुत ही यथार्थ के साथ चित्रित किया है । केशो को टी.बी. हो गया था । उसकी दवा दारू के लिए पैसे देने के मामले में वहां के दोनों यूनियन आपस में झगड़ने लगी । कम्युनिस्ट यूनियन कहती है कि वह आइ फ्रॉम टी यू सी का सदस्य है इसलिए उसे वहां जा कर मदद मांगनी चाहिए । आई एन टी यू सी कहती है कि वह कम्युनिस्ट यूनियन का मेबर है इसलिए उसकी मदद कम्युनिस्ट यूनियन कोही करनी चाहिए । इसी में बहस में अमुर्य समय व्यतीत हो गया । केशो मर गया । उसके अंतिम संस्कार के लिए शायद मिल वालों ने कुछ रुपये प्रबंध किये थे ।

गरीबी की जिन्दगी बिताने वाले केशो का जन्म और मरण दोनों गरीबी में ही घटित हुए । उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं आ पाया था । शादी के बाद उसकी पत्नी जलमन्ती सम्झदारी के साथ अथभाव परिस्थितियों में भी परिवार और बच्चों को संभाली । "जलमन्ती की हिम्मत और गरीबी के साथ जुझने की हिन्दुस्तान की माताओं का कमाल देखिये कि अपने मुँह का कोर निकालकर चम्पा के मुँह में दिया और धीरे धीरे बच्चे

को बढ़ा किया ।¹ 'किन्तु गरीबी में स्वाभिमान । कंगाली में गीले आते के बराबर यह बात है । सदगुण को भी दुर्गम बनाने वाला बहुत बढ़ा अभि-
शाप है, यह गरीबी ।'²

"जो" उपन्यास माचवे जी की एक श्रेष्ठत कृति है जिसमें उन्होंने अमेरीका में व्याप्त रंगभेद जैसी उर्वर्त एवं मानव मूल्यों संबंधित समस्या को उठाया है । माचवे जी ने इस रंगभेद समस्या को नीग्रो गायक जो उपन्यास के नायक भी हैं "जो" के माध्यम से चित्रित किया है । नीग्रो जाति की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को उपन्यास में उजागर करते हुए उनके सांस्कृतिक पक्ष पर भी प्रकाश डाला गया है । माचवे जी की महत्ता इसमें है कि उन्होंने अमेरीकी नीग्रो समस्या और भारत की सर्व्व और असर्व्व की समस्या को तुलनात्मक दृष्टि से देखा है । दोनों में वे सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी कुछ अंशों में समानता देखते हैं । दोनों भी निर्धन और सामाजिक समानता से वंचित हैं । डा० प्रभाकर माचवे "जो संस्मरण" में लिखते हैं कि "अमेरीका और वहाँ के रंग-भेद पर इतना कुछ अंग्रेजी में लिखा जा चुका था कि उसमें मुझे कुछ जोड़ना जरूरी नहीं था । पर अपने आपको सबसे समृद्ध, धनाढ्य और आधुनिकतम संस्कृत कहने वाले महादेश में भी मनुष्य को कितना अपमान सहना पड़ता है, केवल प्राकृतिक अवैत रंग के कारण यह मेरी समस्या थी - जिसका कोई उत्तर मेरे पास नहीं था - और उसी की तुलना में मैं भारत में जहाँ बड़े जाति भेद की समस्या को हलना चाहता था । डा० अम्बेडकर कहा करते थे कि हिन्दू धर्म का सनातनी स्वरूप और प्रजातंत्र या लोकशाही में कोई समन्वय नहीं हो सकता । यदि आप जन्मजात जाति-

1. साँचा - पृ. 12

2. साँचा - पृ. 13

भेद मानते हैं और मनु आपके विचार व्यवहार के आधार हैं, तो आप डेमोक्रेट प्रजातान्त्रिक कैसे हैं ? प्रजातंत्र मनुष्य मनुष्य में समानता में विश्वास करता है - आप शुरू से ही ऊँच नीच का बंटवारा लेकर चलते हैं। इसके लिए मैं एक कार्पनिक तय्यब तुर्किमल ब्राह्मण विद्वामी चुना जो अमेरिका में पढ़ता है - उसकी सहानुभूति नीग्रो आंदोलन के साथ है, पर अपने ही घर में, अपने ही प्रदेश में ही एम के के बन्धु के साथ नहीं। यह मत विरोध एक लेखक की दृष्टि से बहुत मनोरंजक आधार था, उपन्यास का। चाहे समाजशास्त्री उसके अनेक कारण देता रहे।¹

भारत को स्वतंत्रत हुए भी लगभग पचास वर्ष होँने आये हैं किन्तु निम्न वर्ग की जिन्दगी ज्यों की त्यों है। कब सरकारें बदली किन्तु मजदूर किसानों की जिन्दगी नहीं बदली। निम्न वर्ग की जिन्दगी में सुधार सिर्फ नारा रह गया है। हुंगरी- स्लोपठियों में वही हीन, जिन्दगी बीतती जा रही है। स्कूलों के बगल - गद्दि नालों के पास, पुलों के नीचे कीठो म्कोठो के समान निम्न वर्गीय जनता जीवन बिताती है। वही उनका जन्म होता है वही फलती है बढ़ती है और वही उनके जीवन का अंत हो जाता है। तीस चालीस पचास उपन्यास में पुराने पीढ़ी के प्रतिनिधित्व करने वाले वासुदेव के माध्यम से डा० माधवे कहलाते हैं कि - "अभी अभी गांधी शताब्दी मनाई गई। अहिंसा के प्रचारक के शताब्दी वर्ष में देश भर में दंगे हुए। साम्प्रदायिकता को विश्व मानने वाले की स्मृति यों मनाई गई। क्या जैसा बापू चाहते थे जैसा "रामराज" भारत में आ गया है ? हरिजन अभी हुंगरी - स्लोपठियों में उसी तरह जी रहे हैं जैसे दो हजार बरस पहले। और लुआलुत क्या गाँवों से हटी है।"² इन समस्याओं

1. सं० भीष्म साहनी व अन्य - आधुनिक हिंदी उपन्यास - पृ: 233-234

१जो: संस्मरण - डा० प्रभाकर माधवे से- लेख

2. तीस चालीस पचास - पृ: 13

के पीछे अन्याय, भ्रष्टाचार सत्ता की लोलुपता और लापरवाही कारण है। जिसके कारण महंगायी बढ़ती जा रही है। निम्नवर्ग के लोग और निम्न या गरीब होते जा रहे हैं। उच्च वर्ग के लोग और धनवान होते जा रहे हैं। समाज में इन दोनों वर्गों के बीच फासला दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। अब निम्न वर्ग के लोग शक्ति से भी जी नहीं सकते क्योंकि रोजी रोटी मिलना निश्चित नहीं है। हर पल उसके लिए संघर्ष करते ही रहना है। इसलिए तीस चालीस पचास में नई पीढ़ी की उधा पुरानी पीढ़ी की सरला से कहती है कि -- "अब जीवन उतना सरल नहीं रहा कि भ्रम किया और सब प्रश्नों से, सब चीजों से छुट पी पाली। अब तो भ्रम के लिए भी निश्चितता नहीं। महंगी में पिसते गरीब के लिए रोटी ही रामचन्द्र है, खाना कपड़ा ही कृष्ण।"।

शहर और गाँव में ही नहीं देश के दूर - दराज पहाड़ी प्रदेशों में भी निम्न वर्ग की जनता लुखी नहीं है। वहाँ भी उनका शोषण उसी तरह होता है जैसे गाँवों में और नगरों में हुआ करता है। ऐसे ही बच्चों से श्रम कराना, वेसे से लठकियों की गुप्त रूप से बिक्री आदि। "दद" के पैबन्द, उपन्यास में पहाड़ी प्रदेश का चित्रण हुआ है। जहाँ का रहन सहन, रीति-रिवाज आदि का भी वर्णन मिलता है। कृता पहाड़ी प्रदेश में जाकर देखती है कि शायद परिवर्तन आया होगा। वह कहती है कि "पर अब भी गरीब की हालत खास सुधर गई हो ऐसा मुझे नहीं लगा। जिस पहाड़ी नौकर लठके को भी होटल में देखती थी, उसकी नेकर और कुर्ता फटा हुआ था। उससे श्रम उसी तरह बुरे ढंग से बिना किसी कुरियात के कराया जाता था।

पहाड़ी लठकियों की आम बिक्री, खरीद, फरोस्त, नेपाल की सीमा के कलकत्ता - बम्बई के चक्काखानों तक और वहाँ से पता नहीं किन्-किन देशों के गुलाम बाजारों तक उसी तरह चल रही है। नाम बदल गये हैं, तोर तरीके अधिक पालिश किये हुए शायद हो गये हैं, पर उनकी मूल क्रूरता तो किसी कदर कम नहीं हुई है।¹ ऐसे लोगों को देखने के पश्चात् वसुबन्धु सोच में पड़ जाता है कि इनका उद्धार कौन करेगा। अज्ञान और अंध-विश्वासों में जकड़े हुए इन निर्धन परिवारों को कैसे न्याय मिलेगा। उनके अधिकार उन्हें कब मिलेंगे। उनका शोषण कब बंद हो जायेगा। वसुबन्धु श्रुता से कहता है - "सच्चाई यह है कि यह पहाड़ी लोग जो निरंतर कूट से हुके सिर और पीठ पर बोझा उठाये पुरतों से कुलीगिरी करते जो भले कुँसे कपड़े पहने बेहद गरीबी की गंदगी और अर्ध-विवास की गर्दश में पड़े हैं, उन्हें गर्त से कौन उबारेगा।"² वसुबन्धु सोचता है कि जो व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए रात दिन मेहनत करता है उसके लिए कला, सौंदर्य आदि का कोई महत्व नहीं है उसके लिए तो सब से पहले रोटी चाहिए खाने के लिए। वसुबन्धु समाजवादी विचारधारा के बुद्धि-जीवी है। वह निम्न वर्गीय जनता की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के बारे में और उनकी उन्नति के बारे में सोचता रहता है। वह श्रुता से कहता है - "पर जिन्हें जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए पशु की तरह खटना पड़ता है, उनके लिए यह सब साहित्य संगीत, कला - सौंदर्य के मुख्य कोई विरोध सार्थकता नहीं रखते। श्रुता, यदि इन लोगों को दो चीजों में चुनना हो : रोटी या हिमालय की सुन्दरता - तो वह पहले क्या चुनेगा ? रोटी के लिए कितने हन्नी में से पहाड़ छोड़कर दूर-दूर न सिर्फ मैदानों में, पर सात समंदर पार फौज में और नौकरियों में और कई तरह

1. दर्द के पैबन्द - पृ: 21

2. दर्द के पैबन्द - पृ: 43

के कारखानों में चल गये हैं। उन्हें पहाड़ का आकर्षण फिर लौटाकर नहीं ला सका।¹ इस प्रकार गरीब पहाड़ी जनता जीविका के लिये कहीं पर भी जाने के विवश रहती है।

प्रभाकर माचवे जी इस उपन्यास में रीटा के माध्यम से भारतीय सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। विशेषतः निम्नवर्गीय जनता का। "रीटा मूलतः आस्ट्रेलिया की रहने वाली बचपन से अनाथ थी। पादरी चाचा ने उसे पाला पोसा पर उसके संस्कार उसे ईसाई विरोधी बनाते रहे। उसने वहाँ आस्ट्रेलिया में आदिवासियों के मध्य रहकर काम किया है। भारत आकर शान्तिनिकेतन के आस पास के सन्यालों में रवीन्द्र नाथ के आदर्शों की खोज करती रही। वह प्रो० राज से विवाह कर वहाँ और उसके आस पास के गाँवों में गांधी जी के आदर्शों के प्रभाव और प्रचार पर शोध कर रही है। वही पाण्डिचेरी में आश्रम के पास के निक्के, पिछड़े, दलित, मुँचित वर्ग का योग अरविन्द के पूर्णयोगम् और आध्यात्मिक सत्य साधना का संबंध खोजती है।"² इस प्रकार रीटा भारत में बहुत सारी आशाओं के साथ आती है। वह कहती है। "पर यहाँ आकर मुझे फिर वही आदिवासीयों से पाला पड़ा। कलकत्ते के करीब संन्यालों में मुझे काम करना पड़ा। वे भी अंध नंगी, अशिक्षित, अंधविश्वासी, अत्यंत जल्दी गुस्सा होने वाले, अजीब लोग जान पड़े।"³ फिर वह शान्तिनिकेतन के पास के झुग्गी - झोपड़ियों में जाकर दवा दारु आदि देने का काम करती है। रीटा के इस काम के माध्यम से माचवे जीनेवहाँ के निम्नवर्गीय जनता का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है जिससे उनकी अज्ञानता और निर्धनता

1. दर्द के पैबन्द - पृ: 44

2. डा० विजया कथन-स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के संवर्धन में महा-
राष्ट्र की भूमिका - पृ: 63 - 64

3. दर्द के पैबन्द - पृ: 102

का स्पष्ट आभास हमें मिलता है। रीटा कहती है - "हम दवा देते। वह भी ठीक से उन झोपड़ियों की स्त्रियाँ नहीं लेती थी। दवा के बाद जैसी पुष्ट खुराक नहीं थी। अगमनी इतनी कम थी कि उसमें क्या हो सकता था ? अगर हम कुछ फल या दुग्धपूर्ण के ठिब्बे देने की कोशिश भी करते तो वे सदिह करते।" आगे और उनके बारे में जानकारी देती हुई रीटा कहती है - इजिप्शन लेने की बात तो उन्हें असह्य थी। इतनी गंदगी और मच्छर भारी सीलन भरी जगहों में ये लोग रहते थे, इतनी अभावग्रस्त उनकी दुनिया थी कि झोपड़ी में एक टूटी चरपाई और तीन चार मटकों के सिवा कुछ नहीं होता। कई शामें बीत जाती जब घुल्ला ही नहीं सुलगता। मर्द कुछ मजूरी से कमा लाते तो वह सब शराब पर खर्च कर देते। नित्य ही मारपीट, गाली गुफ्ता, चिल्ल-पों मची रहती। बच्चों का रोना : औरतों की दहाड़ दो चार दिन में पकाध सुन भी हो जाता। यह भी एक बस्ती थी जिसमें हम काम कर रहे थे।" 2

माधवे जी कहते हैं कि जहाँ एक ओर गंदी बस्ती में मनुष्य रूपी कीड़े स्रष्ट रहे हैं तो दूसरी शक्ति निकेतन के छात्र क्या करते हैं ? क्या वे संगीत साधना में लिप्त हैं या "शिक्षा" पर जापानी विचारों पर विवेचन कर रहे हैं। शक्ति निकेतन के पास की गंदी बस्ती के संबंध में बताते हैं कि "पास के स्थान - टोले में शराब के चुक्क पीकर गाली - गुफ्ता, हाथापाई, मारपीट होना बहुत सामान्य व्यापार है। कई झोपड़ों में तो शाम को दीया ही नहीं जलता था। "पैसे मर्ग मेरो मजार पर जो दिया किसी ने जला दिया।" गुन गुनागला भी कोई नहीं था। कई

1: दर्द के पैबन्द - पृ: 103-104

2: दर्द के पैबन्द - पृ: 104

जगह कई दिन बिना दाने पके ही गुजारा चल जाता था । तो यह सब शान्ति निम्नेतन के छात्र क्या करते रहते थे ? आध्यात्मिक चर्चा या क्लास-शास्त्र में सौंदर्यतत्त्व के उद्बोधन के पूर्व मानसिक व्यापारों का प्राच्य दृष्टि से विवेचन या "शिक्षा" में प्राकृतिक तत्त्वों का समावेश" पर जापनी विचारों की मीमांसा ?¹ इस प्रकार निम्नर्ग की उद्धार करे बिना अपने बुद्धिजीवी मानसिकता लिप्त होने वाले शान्ति निम्नेतन के छात्रों पर तीखा व्यंग्य किया है ।

शान्ति निम्नेतन के पास के गाँव वालों में अज्ञानता है परिवार नियोजन वाले डाक्टरों को देखते ही गाँव की स्त्रियाँ हूष जाती हैं । कोई एक पुरुष आया और धोषित किया - "हमें आपके पैसे भी नहीं चाहिए । न हमें कोई आपरेशन करना है ।"² सरकारी मदद कुछ गाँव वालों को मिलता है क्या ? कह कर फूले पर -- "सरकार तो कुछ भी नहीं करती । महंगी बढ़ती जाती है । बाबू जी ! नौजवान बेटे को स्कूल भेजा । वह बेकार बैठा है । मैं अकेला मजदूरी करता हूँ पर । उससे सबका पेट कैसे भरने वाला है ।"³ कह कर एक आदमी ने अपना दुखड़ा सुनाया । एक गाँव का व्यक्ति भूदान वालों पर व्यंग्य करता है । वे उस व्यक्ति को जमीन नहीं दिलवाया था । वह कहता है -- "अरे, वह सब कहने की बातें हैं । हमने भी उन सफेद टोपीवालों से फूटा था । बोले, हम "हवा" बना रहे हैं । हवा में ही रहते हैं । हम लोग तो सिर्फ हवा खाकर रह नहीं सकते ।"⁴ गाँव की

1. दर्द के पैबन्द - पृ. 122

2. -वही- पृ. 126

3. 4. -वही- पृ. 126

पाठशाला की बहुत बुरी दशा थी । "एक गाँव में शाला है । पर शाला क्या गोशाला बहतर होगी । बच्चे सीलन भरे एक बड़े से बाँठ में बन्द कर दिये जाते हैं । मास्टर को भी कुछ नहीं आता । बेघारे को तन्खा ही क्या मिलती है ?" अस्पताल की दशा कुछ ठीक नहीं थी । वह भी पाठशाला की तरह ही थी । "सरकारी अस्पताल है, जहाँ दो मील तक जाकर वही पानी मिली दवा लाओ । उससे कोई असर ही होता नहीं । पड़ोसी के बच्चे को बुखार बहुत आता था । डाक्टर से कहा । कोई नहीं आया देखने । तीन दिन बाद मर गया । यहाँ गरीबों को कोन पूछता है ?" उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि सरकार द्वारा गरीब शोषित, दलित, हरिजन और जन जातियों के कल्याण के लिए जो कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं वे नाम मात्र के हैं । उन योजनाओं से न देहातों की भलाई होती है और न लोगों की । जैसे के गाँव जैसे ही है और जनता गरीब की गरीब । फिर भी हम यह नहीं कह सकते हैं कि निम्नवर्ग में जागृती नहीं के बराबर है । निम्नवर्ग अपने प्रांत होने वाले अन्याय और शोषण करने वाले को पहचान रहा है । उसी गाँव बनिया जो सूद अधिक लेकर किसानों व दूसरों का ठगता था । अब वह ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि अब उनके बड़े पटे लिखे बन गये हैं । सूद अधिक लेने के संर्क्ष में छुड़े गये प्रश्न के उत्तर में बनिया कहता है - "नहीं जी, अब तो धर्मार्थमान का काम ही नहीं रह गया है । हमारे बाप दादा थे, तो जन्म भर गिरवी रख जाते थे चाँदों का कूड़ा या कोई ईस्त्री । और बराबर हर महीने सौदा सुनुफ ले जाते थे । तो कर्जा उनका जल्दी से चुकता थोड़ी ही था । अब वासु महार का बेटा भी गणित पढ़ गया है । वह भी इत्ता सा लौंठा - धपर धपर जबान लड़ाता है । कहता है - बापको इत्ता ज्यादा

सूद लेने का अधिकार नहीं है। मुँह बिराकर, आदिकार - बड़े बड़े शब्द इन नीठरों से सीख लिये - अखि दिखाते हैं हमें। हमारी बिल्ली और हमसे म्याऊँ। अब तो चाचा ने सब पैसा शहर में लगा दिया है। वहाँ मकान कर लिया है। यह गाँव की जमीन और दुकान तो सिरदर्द है। कभी बेच देंगे।^१

सेवाग्राम के पास भी वही स्थिति है जो शांति निकेतन के पास थी। सेवा ग्राम का व्यक्ति देश के संबंध में कहता है -- "मैं तो नहीं जानता, पर जो उपजाता है उसे वह चीज इस देश में नहीं मिलती। जो अहीर - गवानी हैं, वे दूध शहरों तक बेच आते हैं। सूद दूध के उनके घर में लाले हैं। जो कसि ने इतना सारा कातती है और जो बुनकर कपड़ा बुनते हैं, वे कहाँ खादी पहनते हैं। उनका बुना कपड़ा बड़े बड़े भूँदरों में बेचा जाता है। वे सूद सस्ता मिल का कपड़ा पहनते हैं। या फिर क्लायती उत्तरन के पक्के मिलिंद्री ठिस्पोजल से बच्चे ले आते हैं।"^२ इस तरह से माचवे जी स्पष्ट करना चाहते हैं कि जो काम व्यक्ति करता है उसका फल वह भोग नहीं पा रहा है। यह देश की दुर्दशा है। यहाँ के कौशल पूर्ण कारीगर दस्तकार आदि आज रोजी रोटी के लिए तड़प रहे हैं। उनका कौशल नष्ट हो रहा है। उनका उत्थार करने वाला कोई नहीं है। उनकी जिंदगी उदास है।

"किसलिय" उपन्यास विवेकतः मध्यकाल पर आधारित है। फिर भी एक दो ऐसे पात्र हैं जो निम्न वर्ग के संबंध रखते हैं। पाबंती और राक्षिया माँ बेटी हैं जो जाति के हरिजन हैं। ये लोग दिल्ली के एक उपनगर में एक बड़े से चालमुभा मकान की आठों परिवारों में बर्तन माँझने

और अन्य काम करती थी । इन्हीं के माध्यम से माचवे जी निम्नवर्गीय जिन्दगी का चित्रण किया है । बाँठों परिवार वालों को नौकरानी भी एक मशीन जैसा है उनकी कोई मानवीय संविदनाएँ नहीं हैं । वह बीमार पड़े या उसे कोई दर्द हो उससे उनका कोई संबंध नहीं । उन परिवारों को मात्र मशीन के जैसा काम करना है क्योंकि वे वेतन देते हैं । माचवे जी लिखते हैं — “वे माँ बेटा बन उह घरवालों की निगाह में आदमी नहीं”, यंत्र थे । सबको उनकी नियमितता की आदत सी हो गई थी । जैसे मसय से नल आते हैं, बंद हो जाते हैं । जैसे, बिकली बटन दबाते ही जल उठती है, बटन दबाते ही बंद हो जाती है । जैसे, कनेक्शन लगाते ही पंखा या रेडियो बिकली से चल पड़ता है । जैसे स्विच छुमाते हो गैस का चुन्हा जल उठता है । ऐसे ही नोकर धाकर हैं । उन्हें कोई बीमारी या सुख-दुख या मानवीय संविदना हो सकती है, इस बात की किसी को परवाह नहीं थी ।”¹

रक्षिया अपने एक पड़ोस के घर में भी बर्तन माँजने का काम करती थी । एक दिन उस घर वाले ने रक्षिया पर आरोप लगाया कि उसने चोरी की है । वह पुलिस विभाग से संबद्ध था । रक्षिया को हवालात में डाल दिया गया । किन्तु वास्तव में रक्षिया ने चोरी नहीं की थी । जिस घर में काम करने जाती थी उस घर की मालकिन उससे और भी अधिक कम उतने ही थोड़े रूप्यों में करवा लेना चाहती थी या उसे निकाल देना चाहती थी । इस प्रकार उस पर चोरी का बल्जाम लगाकर उसे हवालात में बंद करवा दिया गया । ऐसी छटनाएँ निम्नवर्ग के लोगों की जिन्दगी में हमेशा घटती रहती हैं क्योंकि उच्च वर्ग और उच्च मध्यवर्ग के लोग उनका शोषण करना चाहते हैं । यदि उसका विरोध हुआ तो उसका प्रतिकार इस प्रकार ले लेते हैं ।

निम्नवर्ग हर केवल भारत में ही पुलिस व्यवस्था का अत्याचार होता है, उन पर बड़े मामले दर्ज करते हैं ऐसी बात नहीं है। श्रीलंका में भी यही हाल है। वहाँ भी पूँजीपति या धनवान् व्यक्तियों के हाथों में प्रशासन व्यवस्था है। वहाँ की पुलिस भी उन्हीं लोगों की सहायता करती है, रक्षा करती है, निम्नवर्ग या कमजोर वर्ग की नहीं। लूसी और विलियम श्रीलंका में रहने लगे थे। एक दिन रात में मेरिया रोते हुए आयी। और उसके गोद में उसका इकलौता बारह बरस का बेटा जीसस बेहोश पड़ा था। उसके सिर से खून बह रहा था। विलियम ने डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने उसका परीक्षण किया और इन्क्वैरि देकर कहा अब खतरे से बाहर है। मेरिया बता रही थी कि "उसके पति को पुलिस पकड़कर ले गई। वह भी हड़तालियों में था। शाम को सब मजदूरों ने तय किया कि जुलूस बनाकर पुलिस चौकी पर जाएँ। मेरा यह छोटा सा लड़का जेपू भी उसके साथ चला गया। पुलिस ने बेरहमी से ठीठ बरसाए।"¹ उसने डाक्टर को बताया "साहब, किसी तरह इन कानून के संरक्षक कलाने वाले रक्षकों से हमें बचाइए। हम गरीब आदमी हैं। कहीं दूर पर कोई बगावत का झंडा फुलंद करने वाले लोग होंगे। पर बताइयों, ये लोग लालच खा गए और वे ही फिर पकड़ने के लिए भी जा गए। मेरा पति सफाई मजदूर है, जेनीटर" है दफ्तर में। उसे भला ये कागज क्या तमझ में आएँ। पड़ोसिन मीम्मा कह रही थी कि ये कागज चीनी भाषा में है। अब आप सोचिए डाक्टर साहब, हम गरीब आदमी - हमें ये भी नहीं पता है कि चीन मुक्त है कि नहीं। पार्लम में है या दक्खिन में है ? और हमी पर यह सारी तोहमत। गरीब को सब तंग करते हैं। आप ही अब हमारे जीवन दाता हैं, आता हैं, बचाइए।"² इस प्रकार अकारण बड़े इन्जाम लगाकर

1. किसलिए - पृ० 152

2. किसलिए - पृ० 154

पुलिस तब निम्नवर्गीय लोगों को सताता रहता है। कारण यह है कि इनके पीछे कोई नहीं है न कोई नेता है, न कोई अफसर, सबके सब फूँजी-पतियों के साथ, धनवान् लोगों के साथ है। उन्हें छुने वाला कोई भी नहीं है।

"दूत" उपन्यास के माध्यम से ग्रामीण समस्याओं का विवक्षित चित्रण हुआ है। गाँव की जो समस्याएँ हैं वे मूलतः निम्नवर्ग की ही समस्याएँ हैं जैसे किसानों की समस्या, अशुभ समस्या, आर्थिक समस्या, बेरोगारी की समस्या तथा ग्राम सुधार की समस्या आदि। इन समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में "दूत" उपन्यास लिखा गया है। गाँव का परिदृश्य है। वहाँ पर द्रोपदी नाम लड़की वामपंथी विचार धारा वाली है और धर्मराज गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित है। दोनों गाँव के सुधार के लिए तैयार होते हैं। गाँव में बाढ़ आई हुई है और कई लोग बह गये हैं। "जमींदार की हजेरी में जो छिप गये, बचे रहे। गाँव के बाहर की तो कई सौ सोपड़ियाँ बह गईं।" इस प्रकार जो गरीब जनता है उसका सब कुछ बाढ़ में बह गया है, उसके लिए ज़मीनें और मरने में कोई मूल्य नहीं है। इसी कारण वह आदमी निराश और उदास होकर जवाब देता है।

गाँव की जनता जो अज्ञान और निरक्षरता के कारण विकास नहीं कर पा रही है ऐसे लोगों से मिलने के लिए धर्मराज, द्रोपदी और महंत शिखरदास मिलकर गाँव की सबसे उपेक्षित गंदी बस्ती की ओर जाते हैं जहाँ पर मेहतर, चमार आदि हरिजन बसते हैं। एक हरिजन बूढ़े के माध्यम से माधवे जी उनकी बयान सुनाते हैं - "अशुभ तो हमें सब मानते ही है। पर और भी दुख की बात यह है कि पहले हमें हर घर से कुछ जुटा, पैसा हुला खन्ना, रोटी - सालन मिल जाती थी। अब वह भी बंद है। महीनी बढ़ती

जाती है, उस हिसाब से रोजगार नहीं मिलता। नगरपालिका वाले आकर सब जगह नललगाने वाले हैं। हमें अपने लिए पानी इतनी दूर गाँव बाहर के कुएँ से लाना पड़ता है। ओपाधियों का यह हाल है कि हर बारिश में छप्पर बनाना पड़ता है। मरे हुए जानवरों की खाल छींचने का काम कितना बड़ा। और कौन सा काम है? नयी पीढ़ी रबड़ की छप्पलें और जुते पहन रही है। हमारे लिए जुता गाँठने की काम भी नहीं रहेगा। नये ढंग की टटियाँ बन रही हैं। हमारे लिए भेला साफ करने का काम नहीं रहेगा। जंगल में जाकर शिकार करने सुअर पालने या बाँस की टोकरियाँ बुनने के काम में कितना तंत है। खेतों में हमारी ओरतें पहले थोड़ी बहुत मजदूरी करती भी थी। अब वह भी नहीं मिलती। बच्चे स्कूलों में पढ़नेवाकर और "फिरट" हो गये हैं। कहते हैं, यह सब गदि जार ओछे काम हम बयों करेंगे? हमें भी जमीन दीजिए तो हमभी खेती करेंगे। हम किस तरह से ओरों से कम हैं? मगर हमारे साथ स्कूक केला किया जाता है। गाँव के ब्राह्मणों, ठाकुरों और कायस्थों के लठके पता नहीं अपने आपको कितना लाटसाहब समझते हैं। हमारी जात-जिवादरी में अब लठकियाँ बड़ी होकर बिन ब्याही रह जाती हैं। उनसे यह सब हलका का नहीं होता। नयी शिक्षा ने सबकी बर्लिस खोल दी है। बेकारी बढ़ गयी है। असो हमारी माँग तो सीधी सी यही है कि हमें इन्सान की तरह माना जा, कुत्ते की तरह दुरदुराया न जाये।¹

गाँव में और कई सामाजिक समस्याएँ थी जैसे की "ओरतें अब बड़े घरों की चाकरी टहल पर ही नहीं जी सकती थी। उन्हें स्त्रिाई की मज्दूरी चाहिए थी। काम चाहिए था।"² कर्जा मिलना मुश्किल था, अस्पताल

1. दूत - पृ. 76-77

2. दूत - पृ. 77

ठीक नहीं था, डाक्टर नहीं था, गाँव वालों के बेटे पढ़कर बेकार और आवारा घूम रहे थे। उन्हें काम चाहिए था। इस प्रकार अनेकों समस्याओं से गाँव प्रसिद्ध था।

गाँव के किसानों की आर्थिक समस्या थी। "कभी बीज अच्छे नहीं मिलते थे, तो कहीं खाद अच्छी नहीं थी। जानवरों की नस्ल सुधारने का कोई तरीका नहीं था। छेती केओजार बाबा आदम के जमाने के थे। घर घर में कुन्ने के आपसी झगड़े थे, आपस में मुकदमे बाजियाँ हो रही थी। कहीं सिंचाई की कोई व्यवस्था नहीं थी, तो कहीं मक्खी को चारा दाने का प्रबंध नहीं था। किसानों के पास जमीन के अलावा कोई साधन निवर्हि का नहीं था। न कोई और पर्यायी व्यवसाय था न कोई हस्तोद्योग या दस्तकारी। सबसे बड़ी असुविधा तो छेती की उपज को बेचने की थी। वहाँ जहाँ मक़ोलिये और बिचोलिये थे। समस्याएँ अर्थ तंत्र के चारों छूँटों की थी - उत्पादन, वितरण, विनिमय, उपभोग। सब जगह दलाल थे और मेहनत का फल मेहनतवाला को नहीं मिलता था। कड़ने को कागज पर जमींदारी छट गई थी, पर ये सब छतने तारे छोटे - भोटे मगरमक्क। इन्हें कौन सँभाले ?"

इस प्रकार उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रभाकर मन्ने जी ने इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन की समस्याओं को अलग अलग रूप से पूरे विस्तार के साथ देखा है। प्रत्येक समस्या को बहुत ही बारीकी से देखा है। गाँव में अधिकतर समस्याएँ निम्नवर्ग जनता से जुड़े हुई होती हैं। चाहे बहुत समस्या हो, किसान समस्या हो या फिर स्त्रियों की समस्या हो। प्रत्येक समस्या निम्नवर्ग की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को हाक़ोरने

वाली है। श्रुतों की समस्या का केन्द्र बिन्दु है कि उन्हें सभ्य समाज में मनुष्य के रूप में देखना है। उन्हें भी सभी मानवीय अधिकार मिलने चाहिए। स्त्रियों की समस्या यह है कि उन्हें कुछ काम चाहिए क्योंकि खाली बैठने जैसे उच्चकामीय महिलाएं बैठती हैं से काम नहीं चलेगा। उनकी जीविका चलना है। किसानों की आर्थिक समस्या है इसके महत्वपूर्ण समस्या बिचौलियों की है। जो बीच में आकर किसानों का शोषण करते हैं। उनके उपज का अधिकतर भाग ऐसे ही लोग छप लेते हैं। इस तरह ग्रामीण निम्नकामीय जीवन में प्रत्येक व्यक्ति की कोई न कोई समस्या है। इसके अतिरिक्त अर्थिक दास, बेरोजगारी आदि के कारण इनका शोषण और भी अधिक होता रहा है।

डा० माधवे कहते हैं कि ऐसे गाँव में जहाँ अज्ञानता, अशिक्षा के साह-साह साम्प्रार्थिक समस्याएँ उत्पन्न थी ऐसे गाँव से द्रोपदी और धर्मराज का पाला पड़ा था। माधवे जी उस गाँव की जनता की दशा का वर्ण करते हुए कहते हैं -- "ऐसे आदिमियों का गाँव के उन आदिमियों से पला पड़ा था, जिनकी आदिमियत बरसों और सदियों से छुल मिट्टी हो चुकी थी। उस गाँव में हल बखर की कीमत थी, बीज और खाद की कीमत थी, गाय और बैल की कीमत थी, पर सिर्फ कीमत नहीं ही तो मनुष्य के श्रम की, मनुष्य के कि वास की, मनुष्य की अच्छाई की..." इस प्रकार यहाँ सभी वस्तुओं और चीजों का मूल्य था किन्तु मात्र आदमी का मूल्य नहीं था। यही हमारी मौजूदा समाज की भी विडम्बना है।

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास नारी के विविध रूपों को दर्शाने वाली कृति है। इसमें प्रो० लेखागुप्ता लक्ष्मीबेन नाम से सिद्धार्थ नगरी, नामक झुग्गी-झोपड़ी की बस्ती में समाज सेवा करती रहती है। इस उपन्यास में उपन्यासकार अछूतों आदि निम्नवर्गीय जनता के घर जो प्राचीकाल में गाँव में बाहर रहते थे। आज भी वही स्थिति बरकरार रहने को रेखांकित करता है। "हर महानगर में, हर नई बनने वाली बस्ती, बड़ी इमारत, पाइक्स्टार होटल के आसपास ये फैले हुए झुग्गी झोपड़ियों के अंबार मिला जायेंगे। यानी की तीन हजार बरस पुराना कला आ रहा भारत का ग्राम पैटर्न - अछूतों की बस्तियाँ जलम उनसे भी गये बीतों की गाँव से जलजल बाहर यहाँ की, अब भीजारी है।"¹ उनकी समाजार्थिक परिस्थितियों के बारे में बताते हुए लेखक कहता है -- "उनमें तो कई ऐसे हैं जिनको आसमान के सिवा और कुछ नहीं। पैठ का साया भी नहीं। टाट की दीवार भी नहीं। फुटपाथ में नाली के पास जन्मे, और वही भीख मांगते - मांगते बड़े हो गये, और फिर वही बच्चे जनते लगे बीच में पुलिस पकड़ ले गई तो बारिश - सर्दी में कुछ दिन सरकारी मेहमान बने।"² एक युवक से लक्ष्मीबेन सफाई के संदर्भ में बातचीत करती है। वह युवक कहता है -- "सफाई के लिए भी पैसे जरूरी होते हैं। साबुन चाहिए। दवाइयाँ चाहिए। यहाँ तो म्युनिसिपैलिटी की मेहरबानी से ये सूनी नालियाँ ही ही हमारे बाथरूम हैं और कहीं नल है तो टोटी नहीं, और कहीं टोटी है तो पानी नहीं। यहाँ "नीकी बया नहाये बया निघोटे।"³ उस बस्ती के लोग नित्य काम करने पर भी पेट मुश्किल से भर पाते थे क कई लोगों के परिवार बड़े बड़े बूटों की देखभाल करें और रोट्टी के टुकड़े देकर जिलाये या गोद में बैठे शिशु को आटा धोलकर पिलाये। समझ में नहीं आता था।

1. लक्ष्मीबेन - पृ: 35-36

2. लक्ष्मीबेन - पृ: 36

3. लक्ष्मीबेन - पृ: 37

इन परिवारों में उपवास हफ्ते में एक बार करने का शौक नहीं था वह तो इनके लिए नित्यकर्म था । हुग्गी कोपठियों की जिन्दगी को और दर्दनाक बनाने में शराब का योग कम नहीं है कमाई का पैसा सब कुछ यहाँ के लोग शराब पीने में लगा देते थे । माधवे जी कहते हैं - "अमीर पीता है तो भारी वक्त काटने के लिए, गम गलत करने, क्लबों में दोस्तीबाजी करने या एक "प्रेस्टीज सिग्नल" की तरह आत्म प्रदर्शन के लिए । पर गरीब जब पीने लगता है - तो वह अपने आपको ही पीने लगता है ।" किन्तु ऐसी बस्ती में भी कुछ ऐसे लोग हैं जो शिक्षित हैं वे ज्ञानार्थक किताबें पढ़ना चाहते हैं । लक्ष्मीबेन से वे कहते हैं कि हम ठाण्डा अम्बेडकर की किताबें, लेनिन की जीवनी, साइंस की किताबें पढ़ना चाहते हैं । इस प्रकार कह सकते हैं कि निम्नवर्ग की जनता में जागृकता आ रही है ।

प्रभाकर माधवे ने 'कहाँ से कहाँ' उपन्यास में नगरीय जीवन के दो पक्षों पर दृष्टि केन्द्रित किया है । एक पक्ष है उच्चवर्गीय भोग-विलासी जीवन, दूसरी ओर है हुग्गी कोपठियों की जिन्दगी जिसमें जीने के लिए फल फल कीड़े मकोड़ों की तरह संघर्ष करना पड़ता है । उपन्यास के अंतर्गत एक ऐसा दृश्य को उपन्यासकार ने दर्शाया है जहाँ एक ओर सितारों का होटल है, जिसमें विलासियों के लिए सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं । ठीक होटल के सामने ही एक गंदी हुग्गी कोपठियों की बस्ती है जिसमें लोग सामाजार्थिक रूप से बहुत ही फिछड़े हैं । जिनको प्रतिदिन रोट्टी की चिंता रहती है । यह दृश्य किसी ऐसे ऐसे नगर का नहीं है सफ़ात महानगर दिल्ली की है । जो भारत की राजधानी है । क्या कहती है - "जिस्को कहने के लिए तो भारत की राजधानी और महानगरी कहलाने का सौभाग्य मिला है, पर वह है एक विशाल हुग्गी - कोपठी । वह न गाँव है, न

कस्बा, न नगर, न महानगर । वह एक मिश्रित पैदाइश है ।¹ जिस
 होटल में नज़मा काम करती थी उससे "दूर के भेदान में हुगगी - झोपड़ियों
 की दरिद्र दुनिया सफ़ दिखती थी । खूनी गठरें, नंगे बच्चे, भले कुँदले कपड़ों
 में लठकियाँ, मुँह को रंग पीते, पेट की आग बुझाने के लिए क्या कुछ नहीं
 करती, शराब पीकर धुत होकर ओरत को पीटने वाला क्रूर मर्द, सब
 तरह के जघन्य अपराधों में आँकट डूबे गृहि, आज जीवन का पूरा आनन्द
 उठा कर, कल की परवाह न करने वाले वे दरिद्र "नारायण" लक्ष्मी पर
 आत्मत...² ऐसे हुगगी - झोपड़ियों में रहने वाले जीने के लिए कुछ भी
 करने के लिए विवश हो जाते हैं । होटल के बाहर कम वस्त्र पहने कई
 दक्षिण भारतीय लठकियाँ खे खड़े हैं । एक की गोँव में बच्चा था । वे
 ज़ेयावृत्ति करके जीविका का निर्वह करने के लिए विवश थी । होटल
 से बाहर आने वाले सेलानी उनका सोदा कर लेते हैं । "एक विदेशी
 सेलानी उसमें है एक लठकी को बशारे स बुलाता है । जब में से बहुत से
 नोट निकाल कर दिखाता है । वह बच्चा गोद में लेकर उछर जाती है ।
 पास में ही एक अँधारी गली है । लठकी वापिस आती है । बच्चा साव-
 धानी से साइ वाली अँधेरी सी ओरत को दे देती है । जब की बार लठकी
 की आँखों में कुछ क्रिया की सी चमक है । मुरझाए चेहरे ओर स्वे बालों
 में भी दाँत सफ़ेद चमकते हैं । वह पान चबाती है । चली जाती है ।"³
 इस प्रकार निम्नवर्गीय परिवारों में विशेषतः नगरीय हुगगी झोपड़ियों में
 रहनेवालों में जीविका के लिए ज़ेया वृत्ति आम सी बात हो गयी है ।
 जिसका शोषण, सुविधाशोभी व विभासी जीवन बिताने वाले उच्च वर्ग
 के लोग करते हैं । साथ में भ्रूटाचारी पुलिस व्यवस्था भी अपने हिस्से का

1. कहाँ से कहाँ - पृ. 38

2. कहाँ से कहाँ - पृ. 78

3. कहाँ से कहाँ - पृ. 91

स्वयं उन स्त्रियों से लेती है। जब वह स्त्री अपने गौद के बच्चे को अछेड सी औरत को देकर विदेशी सेलानी के साथ चली जाती है तब "उधर से एक पुलिस का सिपाही यह सब देखते हुए आता है। अछेड औरत उससे पूछताछ करता है। एक नोट पुलिस की जब में दस देती है। वह निर्विकार भाव से झूठी पर ताव देते हुए चला जाता है।" ¹ होटल के बाहर भास्कर यह ड्रामा देखता रहा। उसने देखा वह गरीब दक्षिण भारतीय लड़की थोड़ी देर बाद वापिस चली आयेगी। शायद दूसरा ग्राहक छोड़ेगी। क्या उसे किसी ने यह सब करने के लिए उसकी और उसके बच्चे की भूख ने विवश नहीं किया? भूख बड़ी शक्ति है। भूख बड़ी कमजोरी है। ²

इस प्रकार पुभाकर माधवेनेनिम्नवर्गीय परिवारों की जिन्दगी का दस्तावेज पुस्तुत किया है जिसमें भूख को मिटाने के लिए तरह तरह के पेशों को स्वीकारने की विवशता को रेखांकित किया है।

"लोक प्रिया" नामक साप्ताहिक पत्रिका में भास्कर और नज़मा काम करने लगे थे। इसी पत्रिका के एक काम के सिलसिले में भास्कर एक गरीब बस्ती में रिपोर्टिंग के लिए गए थे। वहाँ बहिष्कृत, दलित, और हरिजनों की संख्या अधिक थी। एक हरिजन युवक से उसकी भेंट हुई। वह युवक मैट्रिक पास होकर बेकार था। उस निराशामय हरिजन युवक से भास्कर पूछता है कि तुम इतने निराश क्यों हो? तो वह युवक उत्तर देता है -- "चूँकि हम कमजात हैं। बड़े जात वालों के बेटे ही बड़ी आमदनी करते हैं। वे ही बड़े अक्सर, व्यापारी, सैनिक इंजीनियर बनते हैं। वे ही न राज चलाते हैं। नेता भी उसी वर्ग से आते हैं।" ³

1. कहाँ से कहाँ - पृ. 91 - 92

2. कहाँ से कहाँ - पृ. 92

3. कहाँ से कहाँ - पृ. 135

भास्कर उस युवक से कहता है कि अब तो हरिजन और आदिवासी वर्ग के लोग भी नेता और उच्च अधिकारी बन रहे हैं, तो वह युवक कहता है - "वे भी उन्हीं की तरह हो जाते हैं। वैसे ही खान-पान, वैसे ही पोशाक, वैसे ही मीठी-मीठी भाषा। वही झूठे आश्वासन, वही छद्म मुस्काराहट। उससे क्या होगा? अब जबकि यह सब मक्कारी समझ गई है।" युवक के आक्रोश के पीछे गहरी संवेदना और व्यथा है। क्योंकि इस वर्ग के इक्के-दुक्के लोग जो उच्च अधिकारी या नेता बने हैं और वे भी अपने वर्ग को भूले जा रहे हैं। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए उच्च वर्ग के साथ मिल रहे हैं। इस कारण निम्नवर्ग विक्षेप्त: हरिजन और आदिवासियों की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। इस बात को माधवे जी ने बहुत ही समुचित रूप से इस उपन्यास में उठाया है।

"दशभुजा" उपन्यास में एक बस्ती में हरिजन लक्ष्मी सीता पर बलात्कार की घटना वर्णित है। इस घटना के माध्यम से माधवे जी यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्त होनेके इतने साल बाद भी हमारे समाज में अभी वर्ग वैषम्य है। एक निम्नवर्गीय उसमें भी हरिजन लक्ष्मी पर बलात्कार करना एक मामूली सी बात ही है। आज निम्नवर्गीय जनता को समाज पर और पुलिस व्यवस्था पर विश्वास उठ गया है। उपन्यास की नायिका अदिति हरिजन लक्ष्मी सीता से कहती है कि चलो पुलिस स्टेशन रपट लिखवायेंगे किन्तु "उसे डर था कि पुलिस भी उसके साथ कोई बदसलूक न कर बैठे। यह हमारे रक्षकों की खास आज गरीबों और दलितों के मन में रह गयी है। स्वराज्य के तेतीस वर्ष बाद।" फिर वहाँ पर ऐसे लोग जमा हो गये हैं जो मनोरंजन करने आए थे। विभिन्न प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगे। कोई लक्ष्मी

1. कहां से कहां - पृ. 135-136

2. दामा - पृ. 77

को दौषी कहता है, कोई पुलिस को तो कोई विरोधी पार्टी का । अदिति डाक्टर के पास सीता को ले जाती है, जांच करवाती है । उसका अयान दर्ज करवाती है । निश्चित रूप से वह बलात्कार की घटना थी । "क्या उंची जात इस ब इस तरह नीची जात की स्त्री को कमजोर सम्झकर दबावने में विजयान्मद अन्वेष करती है ? क्या यही उनके हजारों वर्षों के "संस्कार" है ? या वे इसे अपना वंश परंपरागत जन्मना अधिकार मानते हैं । घटना को सांप्रदायिक या वर्णभेद का आर्थिक रूप दे देने से समस्या हल नहीं हो जाती ।"।¹ ऐसे अनेक विचार अदिति के मन में लोगों के प्रतिक्रियाओं के स्वरूप उभरने लगे थे । जब अदिति उस हरिजन अबोध लखी सीता, अदिति से इस प्रकार बात करती है कि जिससे उसका आबोधन, मासूमियत झलक पड़ता है और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जिस निम्नवर्गी लखी शोषण हो रहा है वह उसको मालूम ही नहीं । ऐसी दयनीय स्थिति का चित्रण माधवे जीनेयथार्थ के साथ किया है । सीता अदिति से कहती है -बीबी जी, असल में हमारी जात का ही दोष है । गये जन्म के पाप हैं न, इसी से पंडित बोलता था, यह जोनि पाई । अब तो जन्म भर यही भुगतना है । पर मेरी सम्झ में नहीं आता कि मेरे जदन से इस तरह निवट चिपटकर उस गुंडे को क्या मिला ?² और आगे हरिजन लखी सीता जो वक्तव्य देती है उसमें अबोधता और मासूमियत होने पर भी उसके शब्द आज के सामाजिक व्यवस्था पर तोड़ा प्रहार है । वह अदिति से कहती है -"आप बेकिजुल इतनी चिंता करती हो बीबी जी - मैं अपने भाग्य से जिउंगी, मरूंगी । ये नासपीटे पुलिस क्या कभी उसे पकड़ पायेंगे ? सुना है पुलिस वाले और गुंडे, दोनों की आधी आधी आमदनी बंधी रहती है । कुछ नहीं होने वाला है ।

1. दशभुजा - पृ. 79

2. दशभुजा - पृ. 80

मुझे अपने हाल पर छोड़ दीजिये ।¹ इस प्रकार अदिति जो अब तक सिर्फ पुस्तकों में निम्नवर्ग के संबंध में पढ़ती थी, उसे अब सचमुच निम्नवर्गीय बस्तियों में, झुग्गी - झोपड़ियों में जाने का अवसर मिला । "मनुष्य को किस पशु या कृमिवत अवस्था में दरिद्रता पहुंचा सकती है, यह देखकर अदिति एकदम सन्न रह गई । यानी जो कुछ हम किताबों में पढ़ते थे और विश्वास नहीं करते थे उससे भी बदतर यहाँ का जीवन था । सत्य कल्पना से कहीं अधिक कठोर था ।"²

6. निष्कर्ष :

डॉ० पुष्पाकर माचवे के उपन्यासों में समाज में व्याप्त तीनों - उच्च, मध्य और निम्न वर्गों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर हुआ है । इनके कुछ उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर काल के होने पर भी कथ्य की दृष्टि से स्वातंत्र्य पूर्व के हैं । इस कारण इन के रचनाओं में जहाँ पर उच्च वर्ग का चित्रण हुआ है वह मुख्यतः जमींदार, पूंजीपति, सेठ और मील मालिकों के माध्यम से हुआ है । इन चरित्रों के माध्यम से माचवे जी ने यह दशान्वे का प्रयास किया है कि आज निम्नवर्ग की जनता का शोषण किस प्रकार किया जाता है । उच्च वर्ग के द्वारा निम्न वर्ग का शोषण गाँवों में जमींदार तथा शहरों में पूंजीपति और मील मालिकों के द्वारा होता है । उच्च वर्ग सभ्यता की मुँहौटा पहन कर असभ्य एवं अमर्यादित कार्य करता है । इसका चित्रण माचवे जी अपने उपन्यासों में यथार्थ के साथ करते हैं ।

1. द्वाभा - पृ० 80

2. द्वाभा - पृ० 85

आँ0 माचवे के उपन्यासों में मध्यवर्ग का चित्रण बहुत ही उद्भूत ढंग से किया गया है। मध्यवर्ग के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए उनकी विशेषताओं तथा मनोवृत्तियों का चित्रण काफी पुभावोत्पादक है। इनके उपन्यासों से विशेषतः नगरीय मध्यवर्ग का चित्रण अधिक हुआ है। इसका कारण बताते हुए आँ0 माचवे कहते हैं कि वे गाँवों की अपेक्षा दिल्ली, बम्बई जैसे महानगरों में अधिक रहे हैं जिसके कारण इनके उपन्यासों में शहरी जीवन और समस्याओं का ही चित्रण अधिक हुआ है। यह उनकी सीमा है। शहरी मध्यवर्ग का पुण्येक अंश का चित्रण इनके उपन्यासों में हुआ है। ऐसे तो मध्यवर्ग का क्षेत्र अधिक व्यापक है, प्रोफेसर, शिक्षक, सरकारी कर्मचारी, छोटे-मोटे व्यापारी आदि इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इस कारण इनकी समस्याएँ भी अधिक हैं और भिन्न-भिन्न हैं। इनका चित्रण आँ0 माचवे ने जी बड़ी ही मार्मिकता के साथ किया है। इनके चित्रण में कहीं व्यंग्य है, तो कहीं दुःख है।

आँ0 माचवे जी के लगभग सभी उपन्यासों में निम्नवर्ग का चित्रण हुआ है। माचवे जी अपने उपन्यासों में इनका चित्रण करते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला है। इस वर्ग के लोग अज्ञानता निर्धनता और अनेक कारणों के कारण बहुत ही हीन स्थिति में जीवन बिताते हैं। इनका शोषण अनेक रूपों में उच्चवर्गीय जमींदार, सेठ, मिल-मालिक आदि लोग करते हैं।

वस्तुतः माचवे जी के उपन्यासों में सामाजिक परिस्थिति का चित्रण वर्गीय समाज के आधार पर किया गया है। उच्च वर्ग के लिए सेठ, मिल-मालिक, मध्यवर्ग के चित्रण के लिए शिक्षक व सरकारी कर्मचारी और निम्नवर्ग के चित्रण के लिए अछूत या हरिजन का चित्रण अक्सर हुआ है। साथ ही उपन्यासों में प्रतिनिधि पात्रों के माध्यम से वर्गीय विशेषताओं को दिखाने का प्रयास किया गया है।

अध्याय - चार

डॉ० सुभाकर माचरे के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थबोध : औद्योगीकरण

और अमानवीकरण के संदर्भ में

अध्याय - चार

डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थबोध: औद्योगीकरण

और अमानवीकरण के संदर्भ में

1. पुस्तावना
2. कान्ति और औद्योगिक कान्ति
3. भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया
4. भारतीय समाज पर औद्योगीकरण का प्रभाव
 - 4.1. सामाजिक परिस्थिति
 - 4.1.1. मूल के अंदर बाहर की समस्याएं
 - 4.1.2. नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन
 - 4.1.3. दुर्व्यसनों व अवराधों में वृद्धि
 - 4.1.4. नगरों में गंदी वस्तियों का निर्माण
 - 4.1.5. गांवों का पतन और नगरों के प्रति आकर्षण
 - 4.1.6. नगरीकरण से उपजा उत्र और अलगाव
 - 4.2. आर्थिक परिस्थिति
 - 4.3. राजनैतिक परिस्थिति
5. डॉ० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में औद्योगीकरण और अमानवीकरण का विश्लेषण
 - 5.1. सामाजिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव
 - 5.2. आर्थिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव
 - 5.3. राजनैतिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव
 - 5.4. औद्योगीकरण और अमानवीकरण
6. निष्कर्ष

अध्याय - चार

ठाग प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में सम्प्रामाणिक यथार्थबोध: औद्योगीकरण

और अमानवीकरण के संदर्भ में

1. प्रस्तावना :

पारम्परिक मूल्यों का अनुगमन करते हुए मंद गति से विकास की ओर अग्रसर होने वाले अन्तराष्ट्रीय समाज के यूरोप में 18वीं शती में हुए औद्योगिक क्रान्ति के कारण एकदम से अपना स्वर ही बदल डाला। औद्योगिक क्रान्ति विव की ऐतिहासिक छटनाओं में अत्यंत विशिष्ट स्थान रखती है। इसके कारण विव का कायाकल्प हुआ। परिणामतः न केवल विव आर्थिक बाजार में मूलभूत परिवर्तन लैभव हुए बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में भी अभूतपूर्व परिवर्तन होने लगे।

औद्योगिक क्रान्ति के एक ओर सुपरिणाम निम्नले तो दूसरी ओर दुःपरिणाम भी सामने आने लगे। भारत जैसे तृतीय विव के देशों में एक दृष्टि से सुपरिणाम से अधिक दुःपरिणाम ही ज्यादा दृष्टिगत होते हैं। जिसके अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे शिक्षा, स्वार्थ, शोषण आदि। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति ने भारत जैसे देशों पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपना अमिट प्रभाव छोड़ा। औद्योगीकरण के कारण भारतीय समाज में द्रुतगति से परिवर्तन होने लगा। ग्रामीण संरचना में स्थित समाज अब नगरों के मोहजाल में फँस गया। जिसके कारण नगरीय सभ्यता या

नगरीकरण का शुल्कात हुई। पारिवारिक संबंधों में आर्थिक स्रोत में मूल परिवर्तन दिखाई देने लगा। प्रस्तुत अध्याय में ठाठ प्रभाकर माधव के उपन्यासों में चित्रित समाज पर औद्योगीकरण के प्रभाव पर विस्तार से विचार किया जाना है।

2. क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति :

क्रान्ति शब्द का साधारण अर्थ है - किसी परिवर्तन के लिए द्रुत गति से किया जाने वाला कार्य। जाहिर है कि इतिहास और राजनीति शास्त्रों में क्रान्ति शब्द अपना एक विशिष्ट अर्थ लिये हुए है। इन शास्त्रों में सत्ता परिवर्तन के लिए किया जाने वाला भारी संघर्ष लड़ाई या युद्ध को क्रान्ति कहा जाता है। वस्तुतः क्रान्ति शब्द संघर्ष लड़ाई और युद्ध शब्द से बड़ा है। "क्रांति" कहने से मात्र हमें खुन खराबा, तबाही, जानमाल की हानि आदि का बोध होता है। किन्तु क्रांति शब्द सिर्फ इतिहास और राजनीति जैसे शास्त्रों में ही प्रयोग नहीं होता बल्कि दूसरे क्षेत्रों में भी प्रयोग किया जाता है। दूसरे क्षेत्रों में इस का अर्थ होगा अधिक उत्पादन। उदाहरण के लिए वन संरक्षण और विकास के लिए चलाया जा रहा अभियान "हरित क्रान्ति" है। इसी प्रकार उद्योगों का विकास "औद्योगिक क्रान्ति" कहलाता है। अतः कहा जा सकता है कि अत्यधिक मात्रा में और उत्पादकता में किसी वस्तु का अधिक मात्रा में उत्पादन करना भी उस क्षेत्र में क्रान्ति ही है। स्वीय में क्रान्ति का अर्थ मौलिक परिवर्तन है जो हमेशा हिंसक ही नहीं बल्कि कई बार अहिंसक भी होता है।

बौद्धोगिक क्रान्ति से मतलब है कम संबंधी उपायों और मशीनों का उत्पादन विधियों में प्रयोग किया जाय ताकि उत्पादनबढ़े । "यद्यपि "बौद्धोगिक क्रान्ति" शब्द 19वीं शताब्दी के आरंभ में प्रयुक्त हुआ जिसका संदर्भ फ्रांस की क्रान्ति तथाक्रान्तिकारी लड़ाइयों १७८९-१८१५ से उत्पन्न परिवर्तनों तथा ब्रिटेन में तब हो रहे आर्थिक एवं तकनीकी परिवर्तनों में मिला न तथा तुलना करना था । किन्तु लिपिबद्ध एवं प्रकाशित रूप से "बौद्धोगिक क्रान्ति" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग एनरिच टोयनबी ने १८८४ में अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "लेक्चर्स ऑन दी इण्टेल्लेक्चुरल रिवोल्यूशन ऑफ १८वीं सेंचुरी इन इंग्लैंड" में प्रयुक्त किया । वस्तुतः इसका प्रयोग सन् १९३७ में ही फ्रांसीसी लेखक "ब्लांकी" ने किया था । तत्पश्चात "जेम्स हजिन्स और कालमावर्स" द्वारा इस शब्द को प्रयुक्त किया गया था ।^१

"बौद्धोगिक क्रान्ति" उद्योगों के क्षेत्र में आया भारी परिवर्तन है । "सामान्यतः बौद्धोगिक क्रान्ति" उन अत्याधिक तीव्र गति से घटित प्रभावशाली आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, सामाजिक तथा बौद्धिक परिवर्तनों को कुल मिला कर कहते हैं जिन्होंने अत्याधिक उत्पादविध में १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के आरंभ से १९वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के अंत १७५० से १८५० के मध्य के १०० वर्षों में ब्रिटेन में बौद्धोगिक समाज को जन्म दिया औरइसके पश्चात ही अनेक अन्य देशों में भी इसी से मिलती-जुलती बौद्धोगिक क्रान्तियाँ हुई और फिर सभीजगह "बौद्धोगीकरण" की एक लहर सी आ गयी जिसकी गति कहीं तीव्र थी और कहीं मन्द ।

अर्थात् तकनीकी, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक परिवर्तनों की तेजी और विविध लक्ष्यों का सामान्यीकरण करके उन्हें भी औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा दी जाने लगी ।¹

यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति का प्रथम सूत्रपात इंग्लैण्ड में होने की चर्चा करते हुए सुकोमल सेन इसके कारणों पर प्रकाश डालते हैं - "इसका एक कारण यह था कि इंग्लैण्ड में ही सबसे पहले सामंती आधिपत्य समाप्त हुआ और कारखानों के लिए स्वतंत्र भूत प्राप्त हुए । दूसरा कारण यह था कि 1757 के ग्लास्को युद्ध के बाद इंग्लैण्ड अपने उपनिवेशों से प्राप्त दौलत से परिपूर्ण हो चला था । इससे पूँजीवाद बढ़ाने के लिए सरमाया मिला । अग्रे के 25 वर्षों में ही औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक प्रायः सारे आविष्कार उपलब्ध हो गये थे । इन सबसे कोयला लोहा, सूती वस्त्र व रेल उद्योग आदि तेजी से स्थापित होते गये ।"² इस प्रकार इंग्लैण्ड से आरंभ हुई औद्योगिक क्रान्ति विश्वव्यापी आर्थिक जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन ला सकी ।

"औद्योगीकरण" शब्द का विकास औद्योगिक क्रान्ति से हुआ है । इसका साधारण अर्थ होगा - उद्योग की स्थापना और विकास । किन्तु इसका एक विशिष्ट अर्थ भी है जिसके अनुसार औद्योगीकरण वह आर्थिक विकास की व्यापक प्रक्रिया है जिसके द्वारा देश की संपूर्ण आर्थिक संरचना परिवर्तित की जा सकती है । साधारणतः औद्योगीकरण से मतलब यह होता है कि परम्परागत उद्योगों के स्थान पर आधुनिक उद्योगों को स्थापित करना और इन आधुनिक उद्योगों की सब से महत्वपूर्ण विशेषता उत्पादन कार्यों में वैज्ञानिक उपलब्धियों का उपयोग है ।

1. डा० बीरेन्द्र प्रताप सिंह - डा० रवि प्रकाश पाण्डेय: सम्कालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ: 40-41

2. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर आंदोलन - पृ: 1

"ऐतिहासिक दृष्टि से" औद्योगीकरण" के प्रारंभ एवं स्रोत, ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति है, किन्तु फिर भी इसका सामान्य प्रचलन कितने 60-70 वर्षों से ही हुआ है, औद्योगीकरण की सामाजिक स्थिति को ही व्यक्त करने हेतु पहले "औद्योगिक क्रान्ति" की अवधारणा ही प्रयुक्त होती थी, इस पुराने वाक्यांश को त्याग कर इस नवीन शब्द का प्रयोग इस लिए होने लगा क्योंकि उद्योगों के विकास के साथ साथ इनका क्रांति करने के लिए कुछ ऐसी आवश्यकताएँ उठ खड़ी हुईं जिन्के लिए पुराना "औद्योगिक क्रान्ति" वाक्यांश पर्याप्त नहीं प्रतीत हुआ। इस पूरी स्थिति को हम यों कह सकते हैं कि औद्योगीकरण शब्द अधिक व्यापक, अधिक अर्थपूर्ण और आधुनिक प्रचलन तथा "औद्योगिक विकास" के पर्याय का शब्द है, जबकि औद्योगिक क्रान्ति अपेक्षाकृत अधिक सीमित और एक विशेष अर्थ वाला तथा इस बीती हुई ऐतिहासिक घटना का शब्द है।¹

अतः स्पष्ट है कि औद्योगीकरण शब्द औद्योगिक क्रान्ति शब्द से अधिक विस्तृत है और व्यापक अर्थ लिये हुए है। औद्योगीकरण के अंतर्गत ही आरम्भिक दौर के रूप में "औद्योगिक क्रान्ति" शब्द समाहित होती है। औद्योगीकरण शब्द न केवल उद्योगों के विकास से संबंध रखता है बल्कि नगरीकरण और देश के सामाजार्थिक की अवधारणा उद्योगों के क्रमिक विकास एवं उसके परिणाम स्वरूप समाज के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आदि क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों के परिच्छेय में है।²

1. डा० बीरेन्द्र प्रताप सिंह व डा० रवि प्रकाश पाण्डेय: सम्कालीन

भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ० 39

2. -वही-

पृ० 41

यूनीन स्टैन्ले के मतानुसार औद्योगीकरण और उत्पादकता परस्पर संबंधित तत्व है। उनके ही शब्दों में "दोनों परस्पर संबंध प्रक्रिया के अंग हैं इनमें से कोई भी बिना एकदूसरे के बहुत आगे नहीं जा सकता। यह कथन सत्य है कि उच्च उत्पादकता से औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिलता है तथा औद्योगीकरण से उच्च उत्पादकता को बढ़ावा मिलता है।"¹

पी कांग चांग के मतानुसार औद्योगीकरण से तात्पर्य "उस प्रक्रिया से है जिसके अंतर्गत उत्पादन कार्यों में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों में कुछ आधार भूत परिवर्तन वे हैं जिनका संबंध किसी उपक्रम के यंत्रीकरण से होता है तथा जिसके द्वारा किसी नवीन उद्योग की स्थापना, किसी नये बाजार की खोज तथा किसी नये क्षेत्र का शोधन होता है। इस प्रकार औद्योगीकरण वह साधन है जिससे पूँजी की गहनता और विस्तार दोनों ही बढ़ते हैं।"²

संक्षेप में कहा जा सकता है कि औद्योगीकरण प्रक्रिया नये नये मार्गों द्वारा उत्पादन को अधिक करते हुए पूँजी की वृद्धि करता है।

3. भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया :

भारत को एक कृषि प्रधान देश कहा जाता है पर सत्य है कि भारत को मात्र कृषि प्रधान देश बना दिया गया। भारत के इतिहास का विवेचनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि भारत औद्योगों के आगमन से पहले न केवल कृषि में समृद्ध था बल्कि इसके साथ-साथ हस्तशिल्प और भारी उद्योग में भी उन्नत था। यह देश दूसरे देशों

1. डा० बीरेन्द्र प्रताप सिंह एवं डा० रवि प्रकाश पाण्डेय : सम्प्रालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ० 41

को औद्योगिक उत्पादनों का भारी मात्रा में निर्यात भी करता था किन्तु व्यापारियों के रूप में पदार्पण किये अँग्रेजों ने जिनकी नस नस में पूँजीवादी प्रवृत्ति ओत-प्रोत थी । धीरे धीरे सब से पहले यहाँ के भारी उद्योगों को जैसे वस्त्र लोहा, जहाज निर्माण आदि को नष्ट कर डाला । इसके पश्चात् ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार कुटीर उद्योग को भी अपने रक्षणी पंजों से तबाह कर डाला । इस प्रकार पूँजीवाद प्रवृत्ति ने प्रतिस्पर्धा में प्रातयोगी की कमर पहले ही तोड़ डाली और उसी को अपना ग्राहक बनने के लिए विवश कर दिया ।

भारतीय कपड़ा उद्योग को अँग्रेजों ने किस प्रकार नाश कर डाला इस पर डा० रामलिखा शर्मा ने विस्तार के साथ विचार किया है । वे कहते हैं - " 18वीं सदी के अंत में भारत के रेशमी और सूती कपड़े अँग्रेजी बाजार में वहाँ के कपड़ों के मुकाबले में 50 - 60 फीसदी सस्ते बेचे जा सकते थे । इससे साबित होता है कि इंग्लैण्ड अभी औद्योगिक दृष्टि से कमजोर था । अपने माल की खपत के लिए उसने भारतीय माल पर 70-80 फीसदी कर लगाया जिसका अर्थ था माल आने पर एकदम रुक लगा देना ।" डा० शर्मा आगे रजनी पाम दत्त का हवाला देते हुए लिखते हैं कि " अँग्रेजों ने भारतीय माल पर जो भारी कर लगाने की नीति अपनायी थी, वह 1980ई सदी के उत्तरार्द्ध तक जारी रही । 1940 की पार्लियामेंट कमेटी की जाँच से पता चलता है कि भारत में आने वाले अँग्रेजी माल पर साढ़े तीन फीसदी 'सूती और रेशमी माल पर' और दो फीसदी 'ऊनी कपड़ों पर' कर लगता था लेकिन यहाँ से जो माल क्लायत

जाता था उस पर दस फीसदी सुती माल पर बीस फीसदी रेशमी माल पर और तीस फीसदी सूती माल पर कर लगता था।¹ इस प्रकार वस्त्र उद्योग के प्रसिद्ध नगरों का पतन धीरे धीरे होने लगा। "मोटगोमरी माटिन" ने अंग्रेजों द्वारा सुरत, ढाका और मुर्शिदाबाद जैसे औद्योगिक केन्द्रों के नाश को बहुत ही दुःख घटना बताया था।²

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत लोहा उद्योग में भी काफी विकसित किया था। भारत में तैयार हुए लोहे का उपयोग अंग्रेजों द्वारा न करने के कारण यह उद्योग भी ठप्प पड़ गया। डा० शर्मा कहते हैं कि "बाहर से सस्ता लोहा मंगाने की अंग्रेजी नीति के कारण भारत का अपना लोहा का कारबार चौपट हो गया। अर्थशास्त्री बकनन ने लिखा है कि भारत में लोहा गलाने की जो पुरानी भट्टियाँ मिली हैं, वे मुक्तः जैसी ही हैं जैसी आधुनिक युग के पहले यूरोप में थी।"³ यही दशा जहाजों के कारबारों की हुई। अंग्रेजी राज में भारतीय उद्योग धंधों की तबाही पर अपनी पुस्तक में वामनदास बसु ने लिखा है कि पुरब का काफी व्यापार पहले भारतीय जहाजों द्वारा होता था। चीन, ईरान, लाल सागर तक भारतके जहाज माल पहुँचाते थे। 1995 में ईस्टइंडिया कंपनी को यह आज्ञा मिली थी कि वह भारत में बने हुए जहाजों द्वारा लंदन माल ला सकती है। सर दाम्भस मनेश ने भारतीय उद्योग धंधों की दशा देखकर कहा था - औद्योगिक रूप में हम उनसे भारतवासियों से बहुत पिछड़े हुए हैं।⁴

1. रामविलास शर्मा - मानव सभ्यता का विकास - पृ० 120

2. - वही - पृ० 121

3. - वही - पृ० 121

4. - वही - पृ० 121

इस संदर्भ में जार सी दत्त का कहना है कि "इस देश के कताई बुनाई तथा अन्य उद्योग धंधों ने लाखों नर नारियों को पूर्णकालिक अथवा अर्धकालिक ब्राजीविका जुटाई है। परन्तु ब्रिटिश सत्ता के साथ यह सब कुछ लुप्त हो गया है। भारत ने अपना विदेशी बाजार ही नहीं खोया, प्रत्युत अपनी धरेलु मंछी भी खो दी है। इस समय भारत को बराबर बहुत बड़े परिणाम में विदेशी सामान का आयात करना पड़ रहा है।
 * * * विदेशी उत्पादनों द्वारा भारतीय शिल्प उत्पादनों की स्थाना-
 पन्नता ब्रिटिश भारत के इतिहास का निष्कटतम अध्याय है।"¹

हीन में हम इतना कह सकते हैं कि "भारत में ब्रिटिश नीति का निपीक्षीय उद्देश्य था, एक तो ब्रिटिश के औद्योगिक उत्पादनों की खपत के लिए भारत को एक "मुत्त्यावान मंछी बनाना" भले ही इसके लिए भारतीय उद्योग धंधों के कुञ्जने के लिए विविध तीव्र साधन ही क्यों न छपनाने पड़े। दूसरा ब्रिटेन के तेली से बढ़ते हुए उद्योगों के लिए ब्रिटेन की बढ़ती हुई आन्वयकता के कच्चे माल को सस्ती दर और सुनिश्चित परिमाण में संतोषजनक संभरण के लिए भारत को कच्चे माल के उत्पादक कृषि देश के रूप में परिवर्तित करना।"²

निश्चित रूप से हम अंग्रेजों की इस पूँजीवादी नीति की सराहना करना चाहिए कि जो देश भारत उद्योग के क्षेत्र में एक कदम अपने से आगे था उस देश की औद्योगिक व्यवस्था को समूल नष्ट करके उन्होंने उसको अपने कच्चे माल की बस्ती बनाया और अपनी उत्पादित वस्तुओं का बाजार बनने को साध्य कर दिया।

1. बिपिन चन्द्र : भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास

पृ. 52

2. - वही-

पृ. 53

यूरोपमें विशेषतः इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत हुई। यहाँ अनेक नयी नयी मशीनों का आविष्कार होने लगा। जिसके कारण परम्परागत चलने वाले उद्योगों में क्रान्ति आ गई। वस्तुओं की उत्पत्ति बढ़ने लगी। इस संबंध में डा० रामकिशोर शर्मा लिखते हैं -

"दे ने जब फ्लाईंग शटल ईजाद की तो उसका उपयोग पहले पूँजीपतियों ने नहीं किया। यह शटल सस्ती थी और उसे पहले स्वतंत्र बुनकरों ने अपनाया। मशीनों का उपयोग सूती उद्योग धंधों में हुआ जिनका गठन पूँजीवादी ढंग से हुआ था। कपास के लिए अंग्रेजी उद्योगपति पर निर्भर थे। कपास का व्यापार बढ़ने के साथ गुलामों का व्यापार भी बढ़ा क्योंकि अमरीकी खेतों में नीग्रोदास खेती करते थे। सूती कपड़ों के धंधों में बुनार्ड और कतार्ड के अलग विभाग थे। हरग्रोन्ज की स्विग्मिं जेनी, कार्कराइट की पानी से चलने वाली कतार्ड की मशीन, क्राम्पटन और ड्रिक्टने के आविष्कारों ने कतार्ड की समस्या हल की और कार्ट-राइट के करघे ने बुनार्ड का काम आसान किया। 1785 में कतार्ड के लिए भाप से चलने वाले इंजन का उपयोग हुआ। मशीनों का उपयोग पहले सूती धंधों में हुआ उसके बाद उनी धंधों में जिसका असर सारे इंग्लैण्ड पर हुआ।"

इसके पश्चात अंग्रेजों ने भारत में छोटे-छोटे उद्योग अपने हित एवं सुविधा के लिए लगाए। कुछ ऐसे उद्योगों की भी स्थापना हुई कि जो कच्चे माल को साफ सुथरा बनाये और वस्तुओं के निर्यात के लिए माल को एकदम तैयार करके रख सके किन्तु वास्तविक रूप में भारत में औद्योगीकरण प्रक्रिया का सिलसिला "रेल" के आगमन के पश्चात ही ठीक ठीक शुरू हुआ।

भारतीय औद्योगिक विकास पर दृष्टिपात करे तो स्पष्ट होता है कि भारत में सबसे पहले सूती तथा जूट उद्योगों की स्थापना हुई है । "भारत की पहली सूती मिल सन् 1818 में बोठिया (बुलकत्ता) में स्थापित हुई जबकि कपास का उत्पादन क्षेत्र महाराष्ट्र में होने के बावजूद भी बम्बई की पहली सूती मिल कावसजी नानाभाई ठाबर ने 1854 में लगाई । आगामी 25 वर्षों में इस क्षेत्र में 60 सूती मिलें स्थापित हो गयी ।"¹ इसी प्रकार "1855 में आर्कवैड ने बंगाल में श्रीरामपुर के पास रिशहा में पहली जूट मिल कायम की ।"²

रेल के आगमन से औद्योगीकरण प्रक्रिया में तेजी आ गई । 1853 से रेलों का सुरुवात फौजों और आयात निर्यात का ढोने के उद्देश्य से किया गया । इस महत्वपूर्ण उद्योग की स्थापना के बाद रेलों की मरम्मत व इससे संबंधित अन्य उद्योगों की स्थापना अँग्रेजों के लिए एक मजबूती थी ।"³

भारत में हो रही औद्योगिक प्रक्रिया भी ही अँग्रेजों के लाभ एवं स्वाई के पक्ष में हो रहा था, फिर भी देश के विकास तथा आर्थिक मजबूती के लिए औद्योगिक विकास करना आवश्यक समझा राष्ट्रवाद के नेताओं ने । इसी कारण वे उद्योग धंधे लगाने के लिए प्रोत्साहित करते थे । "भारतीयों द्वारा आधुनिक उद्योगों की स्वीकृति और क्वालिटी को आधुनिक भारत में औद्योगीकरण के अग्रदूत जस्टिस रानाडे ने अपने देशवासियों को संबोधित निम्नलिखित प्रबोधन में सर्वोत्तम रूप से इस

1. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर आंदोलन - पृ. 7 - 8

2. रामकिास शर्मा - मानव सभ्यता का विकास - पृ. 207

3. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर आंदोलन - पृ. 7

प्रकार प्रकट किया - हमें सर्वोत्तम शिक्षकों से सीखने के लिए यह ऋण द्वारा सुस्थापित व्यावहारिक कार्य है । १०० हमें अपने कच्चे माल के स्तर को सुधारना है अथवा हमारी धरती के उत्तम स्तर की उत्पादन के अनुकूल न होने पर उसका आयात करना है । हमें सहयोग द्वारा श्रम और पूँजी को संगठित करना है और उन्मुखत रूप से विदेशी कौशल तथा मशीनरी का तब तक आयात करना है जब तक हम अपने आप भूमी प्रकार कार्य करना सोच नहीं जाते है तथा उनकी सहायता की अपेक्षा ठोठ नह ीं देते । हम बहुत अधिक पिछठ गए है, अब हमें नए कार्यों में हाथ डालना है तथा और अधिक कठोर श्रम के लिए ईमानदारी से कमर कसनी है ।¹

1890 में श्नाडे ने लिखा : "स्कूलों और कालेजों की अपेक्षा कारखाने और मिलें अधिक प्रभावशाली ढंग से राष्ट्र की गतिविधियों को जन्म दे सकती है ।"²

इस प्रकार औद्योगों और भारतीय राष्ट्रवाद के नेताओं के प्रेरणा से कई छोटे और बड़े उद्योगों की स्थापना हुई । "कुछ प्रकार के कच्चे मालों को नियति से पहले संवारना जरूरी होता है । इसलिए चावल कठिने, साटा पीसने, सूई धुनने व उन्हें गाँवों में बाँधने तथा लुट आ के बोरे बनाने आदि के कारखाने स्थापित हुए । 1939 से लगाए जाने वाले चाय बागानों में भी काफी ब्रिटिश सरमाया लगा और इस उद्योग का विशेष उत्कर्ष हुआ ।"³

"कालक्रम की दृष्टि से भारत में सर्वप्रथम नील, चाय तथा काफी बागान के उद्योग ही शुरू हुए ।"⁴ इसके पश्चात रेल के आगमन के

1. बिपन चंद्र: भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास-पृ. 56

2. --वही--

पृ. 57

3. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर आन्दोलन - पृ. 7

4. बिपनचन्द्र - पृ. 59

के बाद सूती कपड़ा, पटसन तथा कोयला खान उद्योग स्थापित हुए ।
 * 1879 ई० तक भारतीय मिलों की संख्या 38 थी और 1886 ई० तक वह 90 हो गयी थी । 20वीं शती के प्रारंभ तक 200 मिलें स्थापित हो चुकी थी । जिनमें 17 करोड़ रुपया लगा था और दो लाख मजदूर काम करते थे । अधिकांश मिलें सूत कातने का कार्य करती थी । कपड़ा इंग्लैंड से ही बनकर आता था । *¹ इसी प्रकार * 1882 में केवल 22 पटसन मिलें थी और उनमें से अधिकांश मिलें बंगाल में थी । इनमें लगभग 20,000 व्यक्ति कार्यरत थे । इस प्रकार स्पष्ट है कि 1880 तक भारत में औद्योगिक उद्योग का विस्तार अत्यंत स्वरूप था, पुनरपि वह स्वरूप विस्तार भारतीय नेताओं और उद्योगियों के दूरदर्शी कार्य में औद्योगिक उद्योग के प्रति रुचि उत्पन्न करने में तथा उनके प्रलोभन को बढ़ाने में पर्याप्त समर्थ था । 1880 के उपरान्त देश में औद्योगिक विस्तार ने मंद होने पर भी निरंतरता ग्रहण की और इसके फलस्वरूप 1901-02 में भारत में 1,14,795 व्यक्तियों को सेवारत करने वाली 36 पटसन मिलें, 1904-1905 में 1,96,369 व्यक्तियों को बाजीबिका देने वाली 206 सूती कपड़ा मिलें और 1906 में लगभग 99,000 लोगों को काम देने वाले कोयला खान आदि उद्योग का अस्तित्व में आए । इस अवधि में अष्टावृत्त कम विस्तार से बनने वाले अन्य उद्योग थे : स्टील रोलिंग यंत्र, चाक, आटा और इमारती लकड़ी की मिलें, चूना कमाने के कारखाने ऊनी व ऊपड़े की, मिलें, कागज और चीनी मिलें तथा नमक, अक्ष, शोरा, पेट्रोल तथा लोहा जैसी धातुओं के उद्योग, छोटी सी इंजीनियरी और रेलवे कंमिशलार्प तथा लोहे और पीतल की ढलाई करने के कारखाने भी अस्तित्व में आए । *² इसके पर घात देश में औद्योगिक विकास पर अग्र

1. डा० ज्योतिप्रसाद जैन - भारतीय इतिहास : एक दृष्टि - पृ० 680

2. बिपिन चंद्र - भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास - पृ० 9

सरकार विशेष ध्यान देने लगी । जिसके परिणाम स्वरूप 1918 ई० में सरकारी इण्डस्ट्रियल कमीशन की रिपोर्ट में औद्योगिक उन्नति के अनेक उपाय सुझाये गये । * 1924 से 1929 ई० के बीच भारतीय मिल् उद्योग ने अपूर्व उन्नति की । वैज्ञानिक अनुसंधानशालाओं और कई स्थानों में पानी से तैयार की जाने वाली विद्युत शक्ति ने भी इस कार्य भारी सहायता की । प्रत्येक प्रान्त में एक औद्योगिक विभाग खूब गया । सरकार ने सहायता, प्रथम और कुछ द्रव्य प्रदान किया। रेल मोटर, तार ठाक आदि के यातायात की सुगम सुविधा भी अत्यन्त सहायक हुई ।¹

वस्तुतः भारत में औद्योगीकरण प्रक्रिया से देश का विकास अक्षय हो रहा था । कुछ अच्छे परिणाम सामने आ रहे थे । देशवासियों की आर्थिक स्थिति सुधर रही थी । शिक्षा का प्रचार और प्रसार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास देशी पूँजी की छत, यातायात के साधनों में सुधार सिंघाई साधनों के मशीनीकरण, उर्वरकों के उत्पादन तथा उपयोग, सुविधाओं और विकासपूर्ण वस्तुओं का निरमाण, और रोजगार में वृद्धि जैसे कुछ सुपरिणाम निकले । किन्तु इस औद्योगीकरण के कारण भारतीय समाज काफी प्रभावित हो गया था । सुपरिणाम की अपेक्षा कुपरिणाम ही अधिक मिले । जिसके कारण भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन आ गए । गाँव की सामाजिक संरचना जर्जर होने लगी और नगरीकरण होने लगा । जिसके साथ ही अनेक सामाजिक आर्थिक दुःप्रभाव भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर पड़ने लगे । हालांकि अंग्रेजी सरकार

देश के औद्योगीकरण को सकारात्मक दृष्टि से समझा रही थी किन्तु राष्‍ट्रवादी नेता इस सकारात्मक दृष्टि के पीछे की शोषण प्रवृत्ति को अज्ञात कर रहे थे। उदाहरण के लिए "1844 में भारत में रेलों के अग्रदूतों में प्रमुख जान धेपमैन ने निम्नलिखित टिप्पणी में भारतीय रेलों के उद्देश्य का समर्थन प्रस्तुत किया : "राजमार्गों का अभाव दरिद्रता का अक्षेपित बर्धन स्पष्ट कारण है और रेलें भारतीयों को दरिद्रता से समृद्धि की ओर लाने का साधन है।" 1884 की संसदीय प्रवर समिति ने इस तर्क पर रेलों के द्रुत विस्तार का समर्थन किया कि इससे देश के दुर्भिक्षों से संरक्षण मिलेगा, बाहरी और भीतरी व्यापार को गति मिलेगी, उपजाऊ प्रदेश और कोयले की खाने खुलेंगी और कुल मिलाकर जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। 1896 में गवर्नर जनरल लार्ड एलगिन ने बड़े ही आत्मावशवास के साथ घोषणा की कि रेलों का निर्माण कृषि पर निर्भर भारत को बहुसंख्यक जनता की भौतिक स्थिति में एक निश्चित और निरंतर सुधार का साधन है।" दूसरी ओर "भारतीयों के अनुसार भारत में रेल निर्माण को गतिशील बनाने वाला एक महत्वपूर्ण कारण भारत के शासकों की यह इच्छा थी कि भारत के आर्थिक प्रांतों में एक विस्तृत और वास्तव में अब तक न दोही गई एक ऐसी मंठी खोली जाए जो एक ओर ब्रिटिश उद्योग के उत्पादनों को खपाए और दूसरी ओर ब्रिटेन की भूखी मशीनों और प्राणियों के लिए क्रमशः कम कच्चे माल और खाद्यन्नों के निर्यातों की सुविधाएँ जुटाए। इस प्रकार भारत को ब्रिटेन के लिए कच्चे माल का संचरण करने वाले

1. बिपिन चन्द्र : भारत में आर्थिक राष्‍ट्रवाद का उद्भव और विकास

कृषि उपनिवेश के रूप में परिवर्तित करना ही भारत के शासकों की इच्छा थी ।*।

भारत का शोषण हो या भारत का विकास हो चाहे जो भी हो भारत में औद्योगिक विकास निरंतर गतिशील होते जा रहा है । ब्रिटिशों के शासन काल में कुछ गिने चुने क्षेत्रों में ही औद्योगिक विकास हुआ था किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक नीति में काफी फेर बदल होने के कारण औद्योगिक विकास में अभूतपूर्ण तेजी आ गई और पंचवर्षीय योजनाओं में भी औद्योगिक व्यवस्था को अग्रितीय स्थान दिया जाने लगा । देश के सभी प्रान्तों में औद्योगिक विकास होने लगा । जहाँ पर जो कच्चा माल उपलब्ध है उसी के अनुरूप उस प्रान्त में कल-कारखाने लगाये गये । इस कारण निश्चित रूप से आर्थिक क्षेत्र में देश की काफी प्रगति हुई किन्तु सामाजिक दृष्टि से बहुत क्षति भी हुई । यहाँ पर औद्योगीकरण का सामाजिक व्यवस्था पर पड़े प्रभाव को स्वीय में धर्चा की जायगी ।

4. भारतीय समाज पर औद्योगीकरण का प्रभाव :

भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर औद्योगीकरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा । इसके कारण सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन आने लगे । सामाजिक स्तर पर उत्पन्न मुख्य समस्याएँ हैं - भूमि की समस्याएँ, नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन, दुर्व्यसन एवं अपराधीकरण गंदी अस्तित्वों का निर्माण, गाँवों का पतन, नगरों के प्रति आकर्षण, नगरों से उब जाना आदि । इसी प्रकार आर्थिक परिवर्तन में

1. बिपिन चंद्र - भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास

मिनों का शोषण, मजदूर की दैनिक दिन परिस्थिति को देख सकते हैं। राजनैतिक परिस्थितियों के अंतर्गत मिला की राजनीति का शिकार होते मजदूरों की दशा आदि देखी नहीं जा सकती है।

4.1. सामाजिक परिस्थिति :

4.1.1. मिला के अंदर बाहर की समस्याएँ :

औद्योगीकरण के कारण मनुष्य को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए मशीनों पर आधारित होना पड़ा। जिसके कारण जहाँ वह हस्तोद्योग का मालिक था वह यहाँ मजदूर बनने में विवश हो गया। मिनों, कल-कारखानों में मालिक और मजदूरों के बीच स्पर्ध होता ही रहता है, मालिक चाहता है कि मजदूरों का श्रम शोषण करके पूँजी का अधिक लाभ कमाए और मजदूर चाहता है कि अपने श्रम का वेतन ठीक से मिले और जो लाभ मिला से मालिक को जाता है उसमें लाभान्वित उन्हें भी मिले। इसी मुद्दे पर स्पर्ध होता है। राजनैतिक दलों के सम्बद्ध मजदूर संघों का इस स्पर्ध में प्रवेश होता है जिसके कारण छठमालें तालाबंदी आदि होते हैं। कभी कभी मशीन ठीक न चलने से दुर्घटना हो जाती है या फिर कभी कभी मजदूर की लापरवाही से मशीन खराब हो जाती है। इस कारण भी मिला के मालिक और मजदूरों के बीच स्पर्ध होता है।

4.1.2. नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन :

औद्योगीकरण के कारण नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आ गया है। मनुष्य आर्थिक विवशता के कारण अपने रिश्ते-नाते तोड़ने लगा। मनुष्य को "अर्थ" ही मुख्य हो गया है। इसी कारण ग्रामीण व्यवस्था में जो

संयुक्त परिवार विधान था वह यहाँ नगर में फर्की परिवार में परिवर्तित हो गया। अर्थात् संयुक्त परिवार का विघटन हुआ है। इसका एक और कारण शहरों में आवासिक समस्या भी है। धर्म, न्याय, भक्तिता आदि मूल्यों का पतन औद्योगीकरण के कारण होने लगा। मनुष्य को सबसे महत्वपूर्ण वस्तु "धन" होने लगा जिसको अर्जित करने के लिए वह जी तोड़ कोशिश में लगा रहता है। इस कारण मानवीय मूल्यों का भी पतन होने लगा। क्रमशः मनुष्य में धर्म, न्याय, दया, ममता, प्रेम, क्षमा, परोपकार आदि भावनाओं का ह्रास होने लगा।

4.1.3. दुर्व्यसनों तथा अपराधों में वृद्धि :

औद्योगिक विकास के कारण नगरों के विकास के साथ साथ नगरों में दुर्व्यसनों का तथा अपराधों का काफी मात्रा में वृद्धि होने लगी। मजदूरों को वेतन मिलते ही उसका गलत उपयोग करना या शराब आदि नशीले पदार्थ का सेवन करना आदि किया करते हैं। कभी कभी पैसे न होने के कारण चोरी आदि भी करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त देखा जाता है कि कारखानों के पास स्थित बस्तियों में प्रचलन होते रहता है। इस प्रकार मजदूर अपने धन से आये हुए "धन" का दुरुपयोग दुर्व्यसनों के लिए करते हैं। जब पूरे पैसे खत्म हो जाता है तब चोरी करने से भी बाज नहीं आते।

4.1.4. नगरों में गंदी बस्तियों का निर्माण :

औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरों का निर्माण बहुत ही द्रुतगति से होने लगा। नगरों में कल कारखानों की स्थापना अधिक से अधिक होती गई। और कल-कारखानों में काम करने मजदूर गाँवों से आने लगे।

कारखानों में मजदूरों का शोषण होता था उनको उनकी मेहनत के अनुस्यू मजदूरी नहीं मिलती थी । इस कारण ये नगरों में कहीं अच्छे मकानों को किराये पर न ले पाते थे और कारखाने भी शहर के बाहर रहने के कारण यातायात की समस्या से मजदूर वहीं कारखाने के पास ही झोपड़ियों को निर्मित करके बस जातेथे । इस प्रकार एक योजना बद्ध इन झुग्गी झोपड़ियों का निर्माण न होने के कारण वहाँ पर गंदगी फैल जाती थी । जहाँ पर न प्रकाश होता था और न ही गंदा पानी जाने के लिए नाले । इस के कारण इन गंदी बस्तियों में अनेक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ उत्पन्न होती है । किन्तु इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता । जैसे जैसे औद्योगिक विकास होते गया जैसे जैसे गंदी बस्तियों का भी विकास होने लगा ।

4.1.5. गाँवों का पतन और नगरों के प्रति आकर्षण :

औद्योगीकरण के कारण न केवल कुटीर व दस्तकारी उद्योगों की अवनति हुई है बल्कि इसके परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था पंगु बन गयी है । क्योंकि भारतीय अर्थ व्यवस्था का मूलधार ग्रामीण संरचना है जो इकाई के रूप में काम करती थी । कृषि तथा दस्तकारी ही ग्रामीण व्यवस्था को आर्थिक दृष्टि से परिपुष्ट करते थे । किन्तु औद्योगीकरण के कारण शिल्पकार तथा दस्तकार बेगार हो गये तथा रोजी रोटी के लिए तरसने लगे । कृषि के क्षेत्र में भी दस्तका प्रभाव पड़ने के कारण किसान खेती को छोड़ कर अन्य दस्तकारों के साथ नगर की ओर चल पड़े । इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनने की चाह ने लोगों को नगरों के प्रति आकर्षित किया ।

4.1.6. नगरीकरण से उपजा उच्च और अलगगाव :

जिन आशाओं और आकांक्षाओं से ग्रामीण जनता नगरों की ओर चल बसी थी । उनके हाथ निराशा ही लगी । जो - जो अपनी जिन्दगी के बारे में सोचे थे वह सब बिखर गया । इसका कारण यह था कि नगर में जितना कमाते थे उससे ज्यादा खर्च होता था । प्रत्येक क्षण बेधन से रहना पड़ता था । हमेशा जीवन से संबंधित समस्याएं रहती थी । कभी आर्थिक समस्या कभी राजनैतिक समस्या तो कभी सामाजिक । जिसके कारण ग्रामीण वातावरण में फले मजदूरों को शहरी वातावरण ठीक नहीं जघा होगा । इस कारण वे वापस गाँव की ओर भी नहीं जा सकते क्योंकि जो मजदूरी यहाँ पर मिल रही है वह भी गाँव में नहीं मिलती । इस कारण विवशता से शहर में ही उसी गंदी बस्ती के झुग्गी छोपड़ी में अनेक समस्याओं को झेलते हुए लोग रहते हैं किन्तु उनकी चाह गाँव में रहने की होती है ।

4.2. आर्थिक परिस्थिति :

औद्योगिक सभ्यता सामंतवादी सभ्यता को पूँजीवादी सभ्यता में परिवर्तित किया । ग्रामीण प्रान्तों में जो बड़े बड़े सामंत और भूस्वामी थे वे सभी अपनी पूँजी को औद्योगिक क्षेत्र में लगा दिये । जिसके कारण भूस्वामी किसान का संबंध पूँजीपति मजदूर में परिवर्तित हो गया । किसान अब मूल में काम करने लगा । उसका शोषण होने लगा । मजदूर जितना श्रम करता है उसको उतना पारिश्रमिक नहीं मिलने लगा । जिसके कारण मजदूरों की परिस्थिति बहुत ही दयनीय होती गई । उनको न रहने के लिए घर है, न अस्पताल है और न बच्चों के लिए पाठशाला है । इस प्रकार पूँजीपति समाजमें मजदूर की परिस्थिति विप्लव: उनकी आर्थिक दशा बहुत ही हृदय विदारक है ।

4.3. राजनैतिक परिस्थिति :

औद्योगिकरण के प्रघात संसार में शिक्षा आदि का प्रचार-प्रसार होने के कारण जनता में जाग्रति आने लगी । इसके परिणाम स्वरूप ही जनता के प्रति जो अन्याय, अत्याचार शासकों के द्वारा होता था उसका प्रतिरोध किया गया है । यही एक प्रकार से राजनैतिक जाग्रतता है । औद्योगिक क्षेत्रों में भी राजनैतिक चेतना आ गई है जिसके कारण मिल्ों में मजदूर संघों की स्थापना हुई । इन मजदूर संघों के माध्यम से मजदूरों के समस्याओं को मिल् मालिक के सामने रखा जाता था तथा समस्या का समाधान किया जाता है । ये मजदूर संघभी किसी न किसी राजनैतिक दल से सम्बद्ध रहने के कारण राजनैतिक दलों के द्वाारा पर धे, काम करते हैं जिसके कारण मजदूर के अस्ती समस्याओं को अनदेखी करके राजनैतिक दृष्टि से मिल् में हड़तालें आदि करवाते हैं । इस कारण मजदूर अपनी रोजी रोटी गवां देता है । इस प्रकार मजदूर मिल् मालिक का शोचन तथा मजदूर संघों का स्वातंत्र्य के बीच पिसे जाता है ।

5. डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में औद्योगिकरण और अमनवीकरण का चित्रण :

औद्योगिकरण द्वारा उत्पन्न होने वाले समस्याओं का तथा औद्योगिकरण का समाज पर पड़ने वाला प्रभाव का चित्रण हिंदी उपन्यासों में होता रहा है । वास्तव में उपन्यास का संबंध गाँव के साथ साक नगर से और नगर के समस्याओं से भी है । ऐसी स्थिति में औद्योगिकरण के कारण उत्पन्न होने वाले सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण उपन्यासों में होना स्वाभाविक ही है । "औद्योगिकरण के विकास एवं प्रसार ने नगरीकरण की प्रक्रिया एवं नगरवाद के प्रसार को अत्यधिक तीव्र गति प्रदान की है जिससे सम्पूर्ण समाज की संरचना प्रभावित हुई है ।

यद्यपि गाँव की भाँति ही नगर समुदाय एवं नगर संस्कृति अत्यधिक प्राचीन है किन्तु आवागमन के साधनों, औद्योगिक अव्यवस्था, अत्यधिक प्राचीन है किन्तु आवागमन के साधनों, औद्योगिक अव्यवस्था, प्रौद्योगिकी एवं यांत्रिकी के विकास ने नगरों एवं उसकी संस्कृति को एक नये रूप में प्रस्तुत किया जिसने संबंधों के परम्परागत स्वरूपों समूहों की संरचना एवं व्यवस्था, विभिन्न संस्था एवं समितियों तथा सामाजिक प्रक्रियाओं को प्रभावित कर एक नये पर्यावरण एवं जीवन पद्धति को जन्म दिया ।¹ इन्हीं का चित्रण उपन्यासों में होने लगा है । उपन्यास औद्योगिक व्यवस्था के द्वारा प्रभावित होने वाले सभी समुदायों का यथार्थ प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है । फ्लेमिन्ग्स के अनुसार - "औद्योगिक समाज की प्रमुख साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास को राज्य, परिवार, राजनीति के साथ मानव की सामाजिक दुनिया के पुनर्जनन के रूप में देखा जा सकता है ।"²

डा० प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में औद्योगीकरण के द्वारा समाज में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का चित्रण यथार्थ दृष्टि से किया गया है । औद्योगीकरण से नगर का विस्फोटकमानवीकरण आदि के संबंध में पाठक को यथार्थ का बोध कराने में सफलता को हासिल किया है । डा० माधवे के उपन्यासों में औद्योगीकरण तथा तद्वारा उत्पन्न होने वाला अमानवीकरण का चित्रण मुख्यतः "साधा" और "धूत" नामक उपन्यासों में हुआ है ।

वस्तुतः डा० माधवे जी की दृष्टि में औद्योगीकरण मानव सभ्यता का अभिशाप है । वह एक कीट सभ्यता के फल को खा रहा

1. डा० विवेकानन्दरदयल गुप्त - उपन्यास का समाजशास्त्र - पृ० 62

है। वे "साधा" उपन्यास में एक जगह लिखते हैं - "मनुष्य की निरंतर अच्छा और अपने अनुकूल खोजने की टोह का ही नाम है सत्यता। और इस सत्यता के आनन्दरत फल में पहला कीट यदि आकर लगा - अन्यायने घुसा तो वह था मशीन। यंत्र सत्यता में आकर मनुष्य का मन भावना, शरीर, विचार, राग - द्वेष - सब जैसे धुन में हो गए। वह चहलता कुछ है, करता कुछ और है।" इससे स्पष्ट होता है कि माधवे जी मनुष्य में मनुष्यता का ह्रास होने का जिम्मेदार मशीन को मानते हैं।

"साधा" और "धूत" उपन्यासों के माध्यम से माधवे जी औद्योगीकरण के द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रभावों का बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया है। मिल्नों में काम करने वाले मजदूरों की शारीरिक मानसिक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का अंकन यथार्थ के साथ किया है।

इनके उपन्यासों के माध्यम से हमें गाँव से मजदूरी करने आने वाले श्रमिकों का संपूर्ण जीवन वृत्त स्पष्ट रूप से अवगत होता है। मजदूर गाँवों से किस जिवीविषा के साथ शहर आते हैं? और मिल्नों में वहाँ के परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप को किस तरह "फिट" करा देते हैं? अपने जीवन के आकांक्षाओं को अपने आँखों में बसा कर किस तरह मेहनत करते हैं? मिल्न के मालिक उनके श्रम का शोषण किस तरह करता है? राजनैतिक दृष्टि से अने मजदूर संघों द्वारा किस प्रकार मजदूरों को अपने ह्वाव के लिए उपयोग किया जाता है? और मशीनीकरण द्वारा इस पूरे शोषण में पिंसता जाने वाला मजदूर किस प्रकार खोखला बनता जाता है? आदि प्रश्नों का उत्तर माधवे जी के उपन्यास एक यथार्थ

जाता है। जादि ग्रामों का उत्तर माचवे जी के उपन्यास एक यथार्थ गाथा के समान प्रस्तुत करते हैं। विशेषतः "भूत" उपन्यास में डा० माचवे जी ने औद्योगीकरण रूपी "भूत" पूरे सामाजिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित कर सकता है अपनी कल्पना क्षिति के आधार पर निर्मित "हस्पात नगर" के माध्यम से क्लानि का सफल प्रयास किया है। भविष्य में यंत्रीकरण के द्वारा होने वाले खतरों का भी खुलासा इसमें दिया है। एक ग्राम भारतीय गाँव में हस्पात कारखाना लगाने से तथा अत्याधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करने से उस गाँव का रूप किस प्रकार समूल परिवर्तन हो जाता है इस उपन्यास में स्पष्ट दिखाया है।

वस्तुतः माचवे जी द्वारा विव्रित औद्योगीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों या समस्याओं को स्थूल दृष्टि से हम दो भागों में विभक्त करने का प्रयास कर सकते हैं - एक मजदूर का बाहरी पक्ष। दूसरा मजदूर का आन्तरिक पक्ष जिसे आमानवीकरण के दृष्टि से देख सकते हैं।

मजदूर के बाहरी पक्ष के अन्तर्गत हम मजदूर का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पक्षों पर विचार करेंगे कि उस पर औद्योगीकरण का क्या प्रभाव पड़ा है तथा इसी प्रकार मजदूर के आन्तरिक पक्ष में उसकी मानसिक परिस्थिति तथा आमानवीकरण पर विचार करेंगे।

5.1. सामाजिक स्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव :

व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियों में औद्योगीकरण के कारण काफी अथवा कुछ हो गयी। सबसे बड़ा या मुख्य परिवर्तन तो यह हुआ कि वह अपने घर के कारोबार समाप्त करके मशीन पर निर्भर होने घर से निकल पड़ा। संयुक्त परिवार को बड़ा धक्का लगा। उसका

विकट होने लगा। गाँव की वह भाई चारा, आत्मीयता अनुराग जैसे मनुष्यता के गुण क्रमशः लुप्त होने लगे। मनुष्य का शोषण होने लगा। नगरों में जन संख्या की वृद्धि के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न होने लगी। उसमें प्रबल समस्या थी आवास की। इस कारण गंदी अस्तित्वों का निर्माण जहाँ देखो वहाँ होने लगा। जिसके फलस्वरूप स्वास्थ्य पर काफी प्रभाव पड़ने लगा। दुर्घटनों की तथा अपराधों की संख्या में वृद्धि होने लगी। मित के अन्दर नाना प्रकार की समस्याओं से दम घुँटा हुआ मजदूर काम करता है। इस प्रकार औद्योगिक विकास के कारण संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था पर बुरा असर पड़ा है। इसी का चित्रण डा० प्रभाकर भाववे ने अपने उपन्यासों में बहुत ही नज़दीक से किया है। जिसके फलस्वरूप हमें शर्मियों के जीवन का यथार्थ बोध होता है।

औद्योगिकरण पूँजीवादी व्यवस्था की देन है। औद्योगिकरण का एक मात्र द्येय है कि उत्पादन को कम समय में अधिक करना और उत्पादनों को बेचकर पूँजी कमाना। इस व्यवहार के कारण सामाजिक व्यवस्था में किस प्रकार का बदलाव आता है उसे कोई चिन्ता नहीं है। "लूत" उपन्यास में डा० भाववे जी गाँवों को औद्योगिकरण क्षेत्रों के रूप में बदलने के खिलाफ़ नज़र आते हैं। इसीलिए इस उपन्यास में "इस्पात नगर" जो भाववे जी के कल्पना के आधार पर निर्मित है, के पूर्व गाँव-वासियों - छेडमास्टर ब्रह्मानंद और धर्मराज के बीच इस्पात कारखाना लगाये जाने पर जाद विवाद चलता है। ब्रह्मानंद जी इस्पात कारखाने का समर्थन करता है तो धर्मराज इसका विरोध करता है। छेडमास्टर ब्रह्मानंद जी कहते हैं - "जैसे बारह बरस में धूरे के दिन भी फिरते हैं, अच्छा ही है कि गाँव का भाग्य खुल जायेगा। इस छोटे से देश के नतीब फलट जायेंगे। यहाँ आर्थिक परिवर्तन इसी प्रकार आयेगा कि सब

लोग कुत्ताल और मालामाल हो जायेंगे । यहाँ बहुत बड़ा हस्पात कार-
खाना आ जायेगा तो उसमें बुरी बात क्या है ? मेरा हाईस्कूल डिग्री
कालेज हो जायेगा । मैं प्रिंसिपल कहलाऊँगा । उसमें और बड़ी लाइब्रेरी
और सेकोरेटरी बन जायेगी । इस गाँव के बच्चे पैमानेक बनेंगे । वास्तव
में यह आकांक्षा एक कोरा आदर्श है । क्योंकि औद्योगिक विकास का
मुख्य ध्येय पूँजी कमाना है । न कि सामाजिक परिस्थितियों को सुधारना ।
इसीलिए धर्मराज हस्पात कारखाने से उत्पन्न होने वाले दूरगामी परिणामों
से सतर्क करते हुए उसका विरोध करते हैं । वे कहते हैं - इससे तो गाँव
की सारी शान्ति नष्ट हो जायेगी । ये छोटा बहुत छुट्टा दुध छाल यहाँ
मिला जाता है, वह भी नहीं मिलेगा । यह गाँव शहर बन जायेगा । यहाँ
हर चीज में मिलावट आ जायेगी । सच में भी नब्बे प्रतिशत छुट्टा की
मिलावट हो जायेगी । * * * यहाँ तो कारखाने आये कि सारी कुदरती
चीजें खत्म हो जायेगी । इस सारे आपके हिसाब से विकास और प्रगति
के तथाकथित कार्यक्रम में बहुत बड़ी जोखिम है । * * * यहाँ तो भारतीय
जीवन प्रणाली बदल जायेगी । सब विश्वास टूट जायेगा, लोग भूल जायेंगे
कि गाँव भी कोई चीज थी, जहाँ सजून था, संतोज था, सुन्दरता थी ••²
यह तो पूरे सामाजिक व्यवस्था पर पड़ने वाला दूरगामी प्रभाव था ।
जब व्यक्ति मजदूर हो कर मशीन के पास जाता है तो क्या वह व्यक्ति
मनुष्य के ही रूप में रहता है ? हाँ माचवे जी के अनुसार वह व्यक्ति
मनुष्य नहीं बल्कि एक आँकड़ा या नम्बर मात्र रह जाता है । उसका
अस्तित्व, उसकी स्वतंत्रता समाप्त होती है - "आँकड़ों के पीछे आदमी
है । मशीन आदमी को आँकड़ों में परिवर्तित करती है ।"³

1. छूत - पृ. 98 - 99

2. छूत - पृ. 99-100

3. साँचा - पृ. 32

वस्तुतः मशीन एक भूत है। जो व्यक्ति उसके पास जाये उसकी शक्ति को वह खा जाती है और उसे खोखला बना देती है। "साधा" उपन्यास में माधवे जी ने मशीन का चित्रण इसी प्रकार किया है। केशो सोचते रहे — "उनके दिमाग में मिल एक विशाल काय अहिरावण-महि-रावण का रूप ग्रहण करके सामने आ रही थी, उसके लाल-लाल जबड़े थे, अकराल - विकराल उसके दाढ़ है, लपलपाती जिह्वा है। त्रिशूल है - नी भुजाओं में परशु, पाश, छद्म, चक्र, क्रिज, दराती, हथौड़ा और राजदंड सब भी है। इस यंत्र दानव का प्रिय पेय है - गाँवों का स्वास्थ्य रस। केशों के सामने यह यंत्र दावन मोटे मोटे ग्रंथ पड़ रहा है - देखते देखते वह कमा पहनने वाले ग्री क्लीन का रूप धारण करता है। इसके हाथ में एक "पिरानी" जैसे लोहे का काँटा है जो "तिड़् तिड़्" करके इन मजदूर मानवों की त्वचा में चुभोते जाता है - कुछ रक्त जो बाहर निकलता है, उसे देख देखकर वह खड़ा होता है - वह उस अर्द्ध पशु अर्द्ध राक्षस यंत्र रूपी विशालकाय वस्तु के नीचे पिस्तला जा रहा है।"

सच भी है कि मशीन मनुष्य को खाने वाला एक शैतान है। वह उसे पीस पीस कर खाता रहता है किन्तु उस मनुष्य को इसका आभास नहीं होता। यदि आभास होता भी है तो विज्ञान के साधनसमै काम करने के लिए वह व्यक्ति मजबूर है।

मिल में मनुष्य के जीवन के किस प्रकार से यात्रिकता में परिवर्तित होना पड़ता है। मंगीराम जो केशों का मित्र है, अताता है - "जब आँख भी नहीं खुलती तब जोर से मिल की सीटी बोलती है - नौपु ऐसा डरावना होता है कि याद रखो - तभी से भागे भागे पहुँचो तो मिल में कब्त सरी पहुँच जाओ। नहीं तो फिर फाटक बन्द। फाटक

पर वह लंबूतरा लम्हा पठान खड़ा खड़ा रहता है। कभी उसका सीटा देखा नहीं होगा १ देर हो गई तो टैम्कीपर उसका हिसाब रखता है। पगार में से पैसे कट जाते हैं - समझे। और फिर छेड़ जाबर खलग से अर्द्धि दिखाता है।¹

यह औद्योगीकरण की विह्वलना है कि मनुष्य समय सीमा में नियम उपनियमों में बंधते जा रहा है। उसका कोई अस्तित्व बच नहीं पा रहा है। समाज में जीने के लिए चार पैसे कमाने के लिए हर एक के साथ व्यक्ति को सम्मोता करना पड़ रहा है। मनुष्य में यात्रिकता की स्थिति को जो औद्योगीकरण की देन है। "धृत" उपन्यास में माचवे जी ने और आर्थर स्पष्टता के साथ कल्पना की है। इस उपन्यास में एक नम्बर दूसरे नम्बर को बताता है - वहाँ पर व्यक्ति भेद, लिंग भेद से ऊपर उठने के लिए नामों की जगह नम्बरों का प्रयोग होता है - कि "जब हम देखिये कितने स्वतंत्र है। सबेरे सीटी बजाते ही सब लोग कारखाने की तरफ छिपकर खड़े जाते हैं, एक एक मग काली शताब। और एक एक घोषनिया हस्पताल नगर समाचार"। जिनको पढ़ने की कुरत्त नहीं उन्हें बाध बाध छि से रेंडियों पर लगावार पत्र का संवादकीय धीरे धीरे, प्रवचन की तरह सुनाया जाता है। कारखाने में लाएटस्पीकर लगे हैं - उन पर उसी की पुनरावृत्ति होती है।² इस प्रकार यात्रिकता मनुष्य पर हावी हो जाती है तब मनुष्य का सर्वथ बाहरी संसार से टूट जाता है। वह सामाजिक संबंधों से विच्छेद हो जाता है। मनुष्य केवल यंत्र से ही जुड़ा रहता है समाज में होने वाली छानाओं या छलछनों से उसका कोई

1: साधा - पृ: 35

2: धृत - पृ: 119

मत्तव्य नहीं रह जाता । उस मनुष्य का जीवन एक व्यवस्थित समय सारणीबद्ध रह जाता है । न वह कुछ आनन्द उठा सकता है न किसी अन्य विषयों के बारे में सोच सकता है । बस, उसके लिए मात्र एक वस्तु है - चाहे सोचने के लिए हो, या आनन्द के लिए - यंत्र । यदि कोई व्यक्ति कुछ आराम करना चाहता है तो वह भी कारखाने वालों की मर्जी पर आधारित है - "छूत" में कहा गया है कि "इस्पात नगर चाहता है तब हमें चाहे जितनी छूट्टी मिल जाती है । समुद्र किनारे स्वास्थ्य गृह में हम चार दिन के अवकाश मना सकते हैं ।"¹

इसी प्रकार मनोरंजन आदि भी यंत्र के अधीन होने लगते हैं जैसे अपने कल्पना के आधार पर माघवे जी के द्वारा निर्मित इस्पात नगर में होता है - "इस्पात नगर के मनोरंजन के लिए जो फिल्म बनाई जा रही थी उसमें कृष्ण कलिया का लोह नृत्य विजली के संगीत के सहारे होने वाला था । न किसी साजिद की जरूरत थी, न आरकेस्ट्रा की । सब काम स्वयंचालित यंत्रों से होते हैं ।"² इसी प्रकार मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने वाले नव रसों को भी यंत्रों के माध्यम से उत्पन्न करने लगे हैं जैसे कौन सा रंग कितने मात्रा में दूसरे रंग से मिलाने पर हृदय में अमुक रस उत्पन्न होगा आदि । "शब्दों की भी प्रभावशालिनी को नाप लिया गया है । कितने शब्द काम में लाने से कौन से संवारी और व्यभिचारी भाव निर्मित होंगे, यह सब मशीन से जान लिया गया है ।"³ इस्पात नगर के लोग कभी सेर करने के लिए चाँद मंगल ग्रह आदि पर जाकर आते हैं । इस प्रकार माघवे जी ने औद्योगीकरण से उत्पन्न

1. छूत - पृ. 119

2. छूत - पृ. 120

3. छूत - पृ. 120

होने वाले आगामी परिणामों को कल्पना के आधार पर अपने उपन्यास में चित्रित किया है जिसे यह हमें विस्मय या आश्चर्य नहीं लगता की ऐसा होगा। क्योंकि यात्रिकता का उपयोग जिस तरह से आज के युग में हो रहा है तो निश्चित है कि "इस्पात नगर" यथार्थ में परिवर्तित होने में देर नहीं है। साहित्यकार अपने अनुभव ज्ञान और दृष्टि के माध्यम से न केवल अतीत और वर्तमान के बारे में बताता है बल्कि भविष्य की भी कल्पना करने में स्क्षम होता है।

जहाँ तक वर्तमान का प्रश्न है म्लि में मजदूरों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए डा० माधवे जी "साँचा" उपन्यास में उनके जीवन का यथार्थ चित्रण करने में सफल हुए हैं - केशो सबेरे सबेरे उठकर किसी तरह म्लि के फाटक के अन्दर पहुँच गये - "अपने खाते तक पहुँचने में देर लगी। रास्ते में कोयले से भरी छोटी - छोटी दालियों, रातपाली के बच्चे अपने से कहीं अधिक बोझा उठाये हुए ले जा रहे थे। ऐसे कागज में कानून थे - बच्चे में अमुक उम्र तक के लड़कों को मेहनत का काम न देने का आदेश था। पर बात यह थी कि कई तरह के ये आवारा, छोकरे यहाँ वहाँ अपराध करते और सब पापों का प्रभालन करने यहाँ पहुँचते। लेबर इन्स्पेक्टर से बचने के लिए इसके नाम रजिस्टर में दर्ज नहीं कराये जाते। ज्यों ही इन्स्पेक्टर के आने की भन्नक पड़ती इन्हें भगा दिया जाता था।" यह स्थिति मजदूर बच्चों की थी। म्लि में महिलाएँ भी काम करती थी किन्तु उनकी भी कुछ अच्छी हालत नहीं थी। उनके बारे में माधवे जी लिखते हैं - "ज्यादातर बहुत छिछपिच साँचों पर काम करती - सालखाने में भी कुछ थी पर उनकी कोई जिन्दगी नहीं थी ऐसे ही पुरुषों से

कम मजदूरी यहाँ भी उन्हें मिलती और तिसपर अपमान के छुटकी, सब तरह की बुराइयाँ उन्हें धरे रहती । उन पर जाबर की बुरी नज़र थी ही । साथ ही उन्हें काम पर लगाने वाला ठेकेदार अब्दुल नबीर का का शराबी और जुबारी था । उसकी अंटी में इनकी गाढ़ी कमार्च का बहुत सा पैसा जाता । लच्छमी को उसके धनी ने छोड़ दिया था । पारवती दो पतियों को छोड़ चुकी थी । रबदा का पति शराबी था और उसकी आय घर में जाती ही नहीं थी । गीता का बाप बहुत बूढ़ा था - इसलिये जवानी में ही उसे नौकरी करनी पड़ती थी । इन सब औरतों की कमजोरियों और मजबूरियों से उनके नौकरी ढिलाने वाले सुपरिचित थे और वे उनसे पूरा फायदा उठाते थे ।¹ और जहाँ तक महिलाओं के लिए आवश्यक सुविधाओं का पन है, वह न के बराबर है । "माताएँ जो अपने बच्चे लाकर बाहर एक पैठ की ढाल से कपड़ा टाँकर उसमें रख जाती उनके लिए कोई "क्रेष" भी नहीं थे ।² इसी प्रकार से अन्य कोई सुविधा भी नहीं थी - "दिन में जो आधे छँटे की छुट्टी होती उस वक़्त खाने के लिए न कोई मिला की ओर से फ़्लाये जाने वाले अच्छे खाने के होटल थे । x x x अब ये थियेटर और व्यायाम्हालएँ और लाइब्रेरियाँ तो बहुत बाद की चीज़ें हैं - उन दिनों ऐसी कोई सभ्यता सूक्ष्म वस्तु उन मिल्नों के जंगल जैसे "परिया" के वासवास नहीं थी ।³ ऐसे मिला में विव्हाता से मजदूरी से जिनै की जिजीविषा से "हर खाते में चीटियों की तरह से आदमी काम करते रहते । इन चीटियों की चीनी का दाना था हफ़्ते या महीने के बाद मिलने वाली पगार ।⁴

1. साँचा - पृ. 53-54

2. साँचा - पृ. 54

3. साँचा - पृ. 54-55

4. साँचा - पृ. 54

नैतिक मूल्य व्यक्तित्व के चरित्र को निर्धारित करते हैं। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत नैतिकता का महत्व अत्यधिक है। कहा जाता है कि नैतिकता के आधार पर ही किसी देश का विकास होता है। किन्तु औद्योगीकरण के पश्चात् देश में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगा है। सभी लोगों में एक मात्र आकांक्षा रह गई है कि "धन" कैसे कमाए ? इस "अर्थ" के चक्कर में पटक मनुष्य नैतिक मान्यताओं को तिलांजलि दे रहा है। न उसे भगवान से डर है और न उसे धर्म, न्याय उपकार की भावना का ह्याल है। मनुष्य दिन ब दिन स्वाधीन बनता जा रहा है। "आधुनिक समाज में, सभ्यता की नवीन उपलब्धियों के कारण धनी और निधन व्यक्तित्व के बीच की दूरी बहुत अधिक बढ़ गयी है। एक वर्ग इतना संपन्न है कि वह धरती पर रहकर भी 'स्वर्गिक सुखों' का उपयोग कर रहा है और दूसरा इतना विवश कि उसे धरती के सुख भी नसीब नहीं। सुखों की बात तो दूर उसकी मौलिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति नहीं हो रही है। इस वर्ग वैषम्य ने आज संस्कृति और नैतिकता का आधार ही भंग कर दिया है।"¹ इस प्रकार नैतिक मूल्यों का ह्रास होने के संदर्भ में "साँचा" उपन्यास के पात्र मांगीराम के वक्तव्यों को देख सकते हैं। वह अपने देहाती मित्र केशो जो मजदूरी करने शहर आ रहा है उसे कहता है कि "पाप" नाम की कोई चीज नहीं है। मांगीराम देवता की छद्मार्थ में से घोरी से उठा लेने पर केशो कहता है कि यह महापाप है। मांगीराम कहता है -- "इसमें कौन सा पाप है। केशो तुम बूढ़ रहे - शहर में तो यह आम रिवाज है। एक आदमी दूसरे की जेब के पैसे अपनी जेब में कैसे ले आए - उसी आँखों में धूल फेंकर, हाथ की सफाई से दूसरे की जेब

1. डा० श्री चन्द्र सिंह - आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य में चित्रित

से पैसा निकाल सकता है, उतना ही बड़ा ठावटर कल्लाता है। यहाँ पढ़ाई - वढ़ाई सब सबी बात की होती है। सम्झे।¹ एक बत्ती उपन्यास में एक और जगह मांगीराम केशो से समाज में भैतिकता के हास होने के बारे में दर्शाता है। वह केशो से कहता है - "अब येसाधु ही देखो सब के सब गाँजा, चरस, अफीम, भ्रूंग शराब में पैसा खर्च करते हैं। ये ये भगत लोग सम्झते हैं कि बड़े अवतारी पुरुष हैं और बड़े सिद्ध और ओलिया हैं, और जरूर मानता पूरी करेंगे। पर यह सब गलत है। ये खुद अपना ही पेट नहीं भर सकते। दूसरों का क्या कर्याण करेंगे?"² मांगीराम अपने दोस्त को सलाह देते हैं - "इसलिए मैं कहता हूँ दोस्त केशो - कहाँ के धर्म - अर्थ, पाप - पुण्य के चक्कर में पड़े हो। खाओ-पिओ - मीत मोज करो। ये सब काम बुढ़ापे के हैं कि दुख-सुख की फिकर खाली पेट नहीं हुआ करती।"³ इस प्रकार भैतिक मान्यताओं की परिभाषा बदलती हुई देख कर केशो फक्कम हताशा हुआ। उसे "बाज पता चला कि यहाँ पाप और पुण्य की सीमा रेखा मिटाई जाती है, विल्क की धार थोरी की जाती है स्वार्थ की रोटो दूसरे की चिन्ता पर से की जाती है, गला काटने की सफाई का नाम ही परोपकार है। केशो को शहर में पद पद पर अपने मन में बड़ी जतन से संभाल कर रखी हुई ब्याख्यायें और परिभाषाये अमूल बदलती दिखाई पड़ रही थी। वह नहीं सोच पाता था कि आदमी भी इतना बुरा हो सकता है।"⁴

औद्योगीकरण के कारण समाज में अपराधों एवं दुर्व्यक्तियों की वृद्धि हुई है। इसके पीछे अनेक कारण हो सकते हैं जैसे मजदूरों को कम

1. साँचा - पृ. 25

2. साँचा - पृ. 26

3. साँचा - पृ. 29

4. साँचा - पृ. 26

वैतन मिलना, गंदीबस्ती के बच्चों को ठीक शिक्षा उपलब्ध न होना, मजदूर अपनी व्यथा को दूर करने के लिए दुर्व्यसनों में पड़ जाते हैं। डा० रघुराज गुप्त के अनुसार "औद्योगीकरण और तत्जनित नगरों के विकास ने प्राचीन परम्पराओं को नष्ट कर दिया है तथा व्यक्तिगत व्यवहार के नियंत्रण के पुराने साधनों - परिवार, धर्म, रिवाज इत्यादि के प्रभाव को बहुत कम कर दिया है। इसके अतिरिक्त, नगरों में व्यक्ति किसी एक धर्मिक समुदाय का सदस्य न होने से कठिनाई में पड़ने पर अन्य लोगों द्वारा सहायता न पाने, अधिक प्रलोभनों के होने, आसानी से पकड़े जाने और पालेबाने जाने तथा अपने लोगों के सामने अपमानित होने के भय के अभाव और अपराध को छुपाने की सुविधा होने के कारण, सरलता से अपराध की ओर अग्रसर होता है। ग्राम और नगरों में हुए विभिन्न प्रकार के अपराध के अलावे इस बात को सिद्ध करते हैं कि नगरों में ग्रामों की तुलना में अधिक अपराध होते हैं। अपराधों का उन्मूलन नगरों की एक प्रमुख सामाजिक समस्या है।"¹

"धूल" उपन्यास में "दादा" नामक पात्र को पता चलता है कि गाँव में दरपात कारखाना खल रहा है तो वह बहुत आनन्दित होता है और कहने लगता है कि "भैं तो अब फिर से शराब की दुकान खोलूंगा। और जुए के बूँटे के लिए भी ग्राहक कम नहीं मिलेंगे। जहाँ पैसा आया कि ये लोग, मेहनत से थके और क्या चाहेंगे? क्षणिक राहत, क्षणिक दिलबस्ती। सब रंजों को भुला देने का कोई रास्ता..."² इस प्रकार मजदूरों का शोषण करने वाले शराब खाने, जुए के बूँटे आदि पूरे समाज को नाश करते हैं। मजदूर की कमजोरी को ऐसे दुर्व्यसन और अधिक कमजोर कर देते हैं। "साँचा" उपन्यास में कैशो के भाई पुस्तोत्तम किस

1. डा० रघुराज गुप्त - भारत में सामाजिक कल्याण और सुखा - पृ 261

2. "धूल" - पृ 100

किस प्रकार दुर्घटनों का शिकार हुआ और उसकी परिवार की हितकति कैसी है। उसकी पत्नी गौरी केशो को बताती है — "मिल की नौकरी बहुत ही खराब है। कभी मत करना। एक तो आदमी घर पर नहीं रहता। रात रात भर जाना पड़ता है। और बाद में वहाँ न्हा पत्ता भी बहुत होता है। पैसा बहुत कम हाथ में आता है। बुरी सौख्यत में पुस्थोत्तम पड़ गया है और अब तो ताड़ी के बिना भी उसका काम नहीं चलता। घर में कोई बाल बच्चा नहीं है। पर अठोस पठोस के वामन पाण्डे बहुत बदमाश है और पुस्थोत्तम का एक दोस्त "ठिस्तरी" शराब खाने में शराब शाम को मुफ्त में दे दी जाती है। इनके मुँह लग गयी है। और घर आकर सोते रहते हैं मारमीट करते हैं। हालत बहुत बुरी है।"

गौरी अपने पति के बारे जिस बात को विस्तार से कहती है वही बात केशो स्वयं अपन आँखों से इन्दौर में जहाँ जिस मिल में काम करता है वहाँ पर देखता है और आश्चर्य चकित होता है — "जिस दिन केशो पहुँचा था पगार का दिन था और जब शाम को वह मिल से बाहर निकला तो दूसरा ही नज़ारा दिखाई दिया। मिल के फाटक पर फटान, कर्ज देने वाले खान और कई तरह के पण्डकनाती लोग खड़े थे। मिल के फाटक के बाहर पास में ही लाली की दुकान थी। बहुत सा मिल में मिला रुपया उस लाली में उड़ल दिया जाता, जैसे ठर्राँ ज्यादा पीकर बाद में होने वाली के हो। कुछ भद्दी, जिनकी आँखों में शर्म का पानी भर चुका है, ऐसी औरतें भी फाटक के बाहर थी। मेहनत के पैसे का यह सब उपयोग अब्ब था। लोटरी सट्टे वाले भी बाहर पैसे उगावने के लिए खड़े रहते थे। इतनी सब आँखों के पिजड़ों से कोई बचाव नहीं था, पगार

हथर से जाती, उधर क्ली जाती। मजदूर मानों सिककों के झेल को बहाने वाली नालियाँ थे।¹ इस प्रकार औद्योगिक विकास के साथ साथ नगरों में दुर्बलियों तथा अपराधों में वृद्धि होने लगी। कैशों के भाई पुण्योत्तम की हालत बिल्कुल खराब हो चुकी थी। दुर्बलियों के कारण बुरी तरह से उसका स्वास्थ्य खराब हो गया था। "पुण्योत्तम की भी कोई जिन्दगी थी १ म्लिमें काया पिस चुकी थी। अफीम के सहारे किसी तरह चल रही थी गाढ़ी।"²

कुछ लोग चोरी करी भी करने लगते थे कारण यह कि जिनके पास मजदूरी के पैसे मौज मस्ती में खर्च हो जाते थे वे लोग अन्य खर्च के लिए चोरी करने लगते थे और अपने इस कार्य का समर्थन भी करते थे। मांगीराम उज्जैन में एक गुजराती महिला के हाथों से पर्स चुरा लेता है। और शहर के बारे में कैशों को सम्झाता हुआ कहता है - "गाव्दू ! ये शहर है शहर ! यहाँ सब कुछ जायज है। यहाँ पटे लिखे जँटरमैन लोग भी यही धधा करते हैं। सुना है जबे काटते हैं।"³ इस प्रकार औद्योगीकरण से जो आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है उसके कारण मजदूरी में अपराध करने की भावना जाग उठती है।

मजदूरों का जीवन वास्तव में दुर्बल होता है। न खरने के लिए आवास होता है न बच्चों के लिए स्कूल। रोज - रोज जीवन संकट स्थिति से गुजरता रहता है। कितने ही यूनियन या मजदूर संघ आते हैं। मजदूरों का भाग्य सुधाने का वादा करते हैं किन्तु मजदूर संघ के नेताओं का वो

1. साँचा - पृ. 54

2. साँचा - पृ. 63

3. साँचा - पृ. 23

भाग्य खुलता है मगर मजदूर जहाँ का वहीं रह जाता है। वहीं गंदी बस्ती वहीं अंधकारयुक्त झोपड़ी। "पर वह जो अपनी जिन्दगी बराबर गंदी चालों में टीन की छतों के नीचे, बदबूदार नालियों के पास सीलन भरी, अंधारी कोठरियों में पीढ़ी दर पीढ़ी बिताते जाते थे - या कहे कि जिन्दगी को किसी तरह मरियल कुत्ते की तरह छिस्ट रहे थे - उनका सच्चा हिमायती कौन था ? सब ही आठ आठ आँसु बहाते थे। मिस्तनी ऊँची मानवता की बातें करते थे। पर मनोहर बराबर देख रहा था कि एक यूनिन जो सन 35 में थी उसकी सन 47 तक आते-जाते चार यूनिन हो गयी थी - लाल झंटा अलग था, सोशलिस्ट अलग थे। नैशनल ट्रेड यूनिन काग्रेस अलग थी, बालेशोविक रिवोल्यूशनरी पार्टी और वी और न जाने कितनी बया यूनिनये थी। मजदूरों की एकता के नामपर वह छोटी छोटी सहाज मोत, सभाएं और एकतारों उसी बड़ी एकता को छिड़त कर रहे थे। तिल तिल तोड़ रहे थे।"।

नगरीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने से सामाजिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन आने लगे। इन परिवर्तनों में से एक है संयुक्त परिवार का विच्छेदन। पहले गाँव में गुँटीर उद्योग हो या कृषि घर के सभी लोग मिलकर किया करते थे। आमदनी पर घर के मालिक या स्वामी जो अक्सर परिवार का कुलुर्ग व्यक्ति हुआ करता था, के हाथों रहता था। किन्तु जहाँ परिवार के लोग घर से बाहर अर्थात् शहर जा कर कमाने लगे तो स्वाई की भावना उत्पन्न होने लगी और परिवार में फूट के बीज पड़ने लगे। डा० रघुराज गुप्त बीकरी बत्ती बात की ओर इंगित करते हुए लिखते हैं कि - "आधुनिक प्रभावों और प्रवृत्तियों के आगमन से पहले भारतीय ग्राम परिवारों का रूप प्रायः संयुक्त ही था। सभी भाई

और निष्कट संबंधी मिलकर एक सम्मिलित परिवार में रहते थे। प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यतानुसार कार्य करता था और उनमें से प्रत्येक को अपनी आवक्यतानुसार सुविधाएँ प्राप्त होती थी। इस प्रकार सम्पत्ति पर संयुक्त स्वामित्व था। व्यक्तिवादी विचाराधारालों, उद्योगीकरण और परिमाणनः नगरों की ओर निष्क्रमण, पूर्वकालीन संयुक्त और बृहद परिवार व्यवस्था पर आघात कर रहे थे।¹ डा० प्रभाकर माच्छे ने इसी समस्या की ओर इंगित करते हुए "साँघा" उपन्यास में केशो के परिवार का चित्रित होता हुआ है बताया है - "केशो के छः भाई और चार बहनें थी और जब तक वह सबसे छोटा लड़का केशो सयाना हुआ तो इसकी किस्मत में गाय - भैंस और रेवड़ चराना ही बाकी था। घर की हालत बहुत खस्ता हो चुकी थी। एक भाई सन 14 की लड़ाई में परदेस चले गये थे। और लोटकर आये तो फूट के बीज साथ में ले आये। अब उनसे देहात में रहा नहीं जाता था। यों पुरतनी खेत बिके। बेल बिके। मकान के भी टुकड़े-टुकड़े हो गये।"²

औद्योगीकरण के कारण देश में नये आर्थिक ढाँचे का निर्माण होने लगा और इस कारण सामाजिक व्यवस्था में भी बदलाव आने लगा। गाँवों का महत्व घटने लगा और नये नये नगरों का निर्माण होने लगा। नगरों में औद्योगिक विकास का परिणामही यह सब है। वस्तुतः "सामुदायिक जीवन के विकास में नगरों का उदय काफी बाद की घटना है। जिस प्रकार कृषि के प्रारंभ होने के साथ ग्रामों का बसना शुरू हुआ उसी प्रकार उद्योग खाद्य वस्तुओं तथा पक्के माल को ले जाने की सुविधाओं के बढ़ने परिणामतः व्यापार की उन्नति और वृद्धि के साथ नगरों का उदय

1. डा० रघुराज गुप्त - भारत में सामाजिक कल्याण और सुखा - पृ० 198

2. साँघा - पृ० 12

हुआ । नगर दस्तकारों की वस्तुओं के निर्माण और क्रय विक्रय तथा खाद्य पदार्थों के क्रय विक्रय के केन्द्र बने इस प्रकार उन स्थानों पर जहाँ यातायात की सुविधाएँ थी वस्तुओं की पर्याप्त माँग थी अथवा आसपास कच्चे माल के मिलने की पर्याप्त सुविधाएँ थी, अथवा जहाँ राजधानियाँ थी, छोटे छोटे नगर बन गये । वह स्थान और बन्दरगाह जहाँ से माल देश देशान्तरों को भेजा जाता था बड़े व्यापारिक नगरों के रूप में विकसित हो गये । इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाने वाले उत्पादन केन्द्र औद्योगिक नगरों में विकसित हो गये ।¹

औद्योगिकरण के कारण नगरों में जीविका के नये रास्ते निकल आये जिस कारण ग्रामीण जनता में जीविका के प्रति एक नयी आशा जागी और वे अपने जीवन निर्वाह हेतु नगरों की ओर निकल पड़े । इस कारण भारतीय गाँव शिक्षित पढ़ने लगे और नगरों में औद्योगिक सभ्यता के कारण बाढ़ सी जनता आकर बसने लगी । इस प्रकार गाँव शिक्षित पढ़ने का मूल भूत कारण औद्योगिकरण के द्वारा कृषी उद्योगों को पूरी तरह से तत्वाह करना है । *बड़े - बड़े औद्योगिक संस्थानों ने भी उन सभी उत्पाद का उत्पादन प्रारंभ कर दिया जो परम्परागत रूप से अधिकाधिक कृषीर उद्योगों द्वारा उत्पादित होते थे और इन वृहद औद्योगिक प्रतिष्ठानों में बड़े पैमाने पर उत्पादन के परिणाम स्वरूप वस्तुओं का मूल्य कम होता है साथ ही प्रचार के विभिन्न माध्यमों तथा अन्य कारकों द्वारा बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान, अपने उत्पाद का बाजार

में एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं।¹ अतः गाँवों की आवश्यकताओं को पूर्ति करने वाले कुटीर उद्योग एक दम ठप्प पड़ गये। कारीगर बेकार हो गये। उनकी जीविका दुर्लभ हो गयी। इस कारण विस्था होकर गाँव के कारीगर किसान, मजदूर जीविका कमाने शहर के गिरफ्त में आने लगे। इसके फलस्वरूप शहरों में अनेक जटिल समस्याएँ उत्पन्न होने लगे। शहरी मनुष्य व्यस्तता में रहने लगा। "घुत" उपन्यास में डा० माचवे जी लिखते हैं - "शहर में आपको कदम कदम पर रथों, वाहनों से बचना पड़ता है। आसमान की ओर देखने की पुरसत किसे है ? सिनेमा में या चित्रशालाओं में चटख रंगों की शाम देकर शहरी लोग "हाय - हाय" करते हैं - ओह, क्या आसमान है। उनके लिए आकाश एक अमूर्त शब्द है।"²

वस्तुतः शहरी व्यक्ति अपने जीवन को यात्रिकता में बदल दिया है। इसका कारण यह है कि शहर में आवासीय समस्या, पेय जल समस्या, रोजगार की समस्या आदि से मनुष्य ऊब गया है।

इन समस्याओं के अतिरिक्त एक बड़ी संख्या में जनता के नगरों में आकर बसने के कारण नगरों की नयी नयी समस्याएँ उत्पन्न होने लगी। इन समस्याओं से जूझता हुआ ग्रामीण मजदूर मिल्नों में काम करने लगा अपना श्रम बेचने लगा। कुछ पैसे कमाने लगा। इसी पैसे कमाने की अर्क्ष्य चम्बक जैसे ग्रामीण जनता को नगरों की ओर खींचती है। जिसके कारण धन के मोह में जीविका के सहारे के लिए ग्रामीण मजदूर नगरों में आने लगे हैं।

1. डा० बीरेन्द्र प्रताप सिंह एवं डा० रवि प्रकाश पाण्डेय - सम्कलित
भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ. 43

औद्योगिकरण के इस प्रभाव को ठाँठ माधवे ने अपने उपन्यासों में यथाई के साथ सुन्दर चित्रण किया है। "साँचा" उपन्यास में "केशोराम" नामक एक देहाती किसान जिसके पास न खेत है और न बैल है, अपने मित्र मंगीराम की सलाह पर मिल में काम करने हेतु नगर के लिए निकल पड़ता है। उस किसान "केशो" को यह नहीं मालूम की शहर में कितने समस्याएँ होती हैं और वहाँ पर रहना कितना मुश्किल है। किन्तु उसे उस मिल का आकर्षण, जो धन कमाने का केन्द्र है, शहर की ओर खींचता है और वह शहर जाने निकल पड़ता है। उसे हमेशा शहर की ही याद आती रहती है और खूबी के दिवास्वप्न देखने लगता है - "तब उसके मन में कितने सपने थे। कितनी बड़ी बड़ी उम्मीदें। कितने बड़े-बड़े हरारे। शहर के बारे में जो कुछ सुन रखा था वह "अरब की रातों" से कम जादू भरा और दिलचस्प नहीं था। वह भ्रमजन उसने दोस्त मंगीराम से यह सुना था कि शहर में ऐसी एक कल होती है कि उसको जरा सा छुमा दो, तो उसमें से जो चाँदिए वह चीज गिर पड़े। बिस्कुट चाहिए हो तो बिस्कुट, पान चाहिए हों तो पान, नोट चाहिए हो तो नोट।"। इस प्रकार अबोध ग्रामीण शहर के बारे में आकर्षक बातें सुन सुनकर चकित हो जाता है। केशो शहर जाने का निर्णय लेता है। उसको रेल में बैठने का यह दूसरा या तीसरा मौका था। वह रेल से प्रत्येक दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित होता था। जब रात हो गई, बहुत कोशिश करने पर भी नींद नहीं आई। "उसकी आँखों के सामने शहर तेर रहा था। जादू का देश बनकर। नागकन्याएँ - राजकन्याएँ पन्ने के और मूँ की राजा - आशीर्षियों के ढेर के ढेर सोने की कर्वाँ - चाँदी की धोती और मखमल की पाग पहले वह धोड़े पर बैठा ऐसी ही मूँ को मरोड़े दिये जा रहा है

जैसे कहानियों में ठाकू उद्यमसिंह की सुनी थी - और फिर दूर य बदलकर एक सफेदपोश बाबू का ज़िन्दगी का नक्शा सामने खिंच जाता - वह शहर से गाँव को लौट रहा है - एक बड़ी सी गुठिया चम्पा के लिए लाया है । जसमन्ती पत्नी को सुट्टी बंद करके पुछता है - बूझो, तैरे लिए क्या लाया हुँगा ? x x x शहर में मिलने वाली सुन्दर होने की दवा थी x x x - और गाँव भर में लड़ा रोव है । अब केशो निरे केशो नहीं रहे, अब बाकायदा श्री केशवराम बनकर अबुलख हवा लगकर शहर से लौटे है । कपड़ों में भी कलफ लग गया है, कूर्ता नये काट का है और अब जगले ही बड़ते सपरिवार शहर जाने वाले हैं...." इस प्रकार शहर के प्रति केशो जैसे ग्रामीणों में एक प्रकारका मोह और आकर्षण उत्पन्न होता है और कुछ कमाकर जीवन में अपने कष्टों को दूर करके एक स्तरीय व्यवित बनना चाहते हैं । किन्तु अब शहर जाते हैं वहाँ की विकराल परिस्थितियाँ इन्हें वहाँ रहने नहीं देती । या तो वही जीवन से सँझ करके हुए छूट छूट कर मरना होता है या फिर जीवन के सँझ में पराजित सा होकर गाँव की ओर पलायन करना होता है ।

शहरों में अनेक प्रकार के कामों पर विभिन्न प्रान्तों से लोग आते रहते हैं । वे यहाँ आकर शहर की रौनक देखकर दंग हो जाते हैं । ठाँ प्रभाकर मावड़े का प्रथम उपन्यास "परन्तु" की नायिका "हेमा" भी ऐसे ही शहर को देखकर चकित होती है । हेम अविनाश को दूँदने कलकत्ता को अपने मामा के साथ आती है । तो वह कलकत्ते के सड़कों, वहाँ के दुकानों आदि को देखकर में दंग हो जाती है । एक खबोध कन्या की तरह उत्साह से दृष्टि उधर देख रही थी । उनके "मन पर कलकत्ते का

पहला असर बहुत अच्छा हुआ जैसे बच्चे को कोई नया खिलौना मिला गया हो, जो उपर से रंगीन हो और वह न जानता हो कि उसके भीतर कितना खोखलापन है ।¹

इस प्रकार नगर के खोखोपन की किसी को परवाह नहीं । सभी लोग उसके धमक धमक को देखकर आकर्षित हो जाते हैं । इसी कारण आज गाँवों में युवक कम रह पा रहे हैं और शहरों की ओर जाने की हठ सी लग गई है । औद्योगीकरण की सहायता ने इस प्रकार प्रशान्त, सुदृढ़ ग्रामीण वातावरण को एकदम विघटित कर दिया है ।

जहाँ पर कारखाने लगते हैं वहाँ पर रोजी रोटि कमाने हाथ में पेट लेकर गाँव गाँव से मजदूर आते हैं । कारखानों में काम करने लगते हैं किन्तु उनको रहने के लिए न अच्छा घर होता है, न स्वास्थ्य के लिए अच्छा अस्पताल । इस कारण वे दिन-दिन छूट छूट कर मरते रहते हैं । "साँघा" उपन्यास में भी केशो का हाल ऐसा ही था । "केशो" मिला के यांत्रिक जीवन से उलझ गया था उसे बंदोर का पानी बुरा लगता था । खाना बुरा लगता था । हर चीज में जैसे एक नकलीपन था । मिलावट और जनावटीपन । उसको भूख कम लगने लगी । उसका स्वास्थ्य गिरने लगा । जिस परिवार के लिए वह यह सब कुछ कर रहा था - उससे बरसों में भेंट नहीं होती । जसमन्ती पुत्नी में अलग दुःखी थी । उसको जघमी के समय से ही पेट का ऐसा विकार हो गया था कि अच्छा नहीं होता था । जिस पर घर का सारा काम-काज । उसकी श्रेष्ठ सेहत गिरती जा रही थी । आखरी प्रसन्न के जाने की बात उसने लिखी थी ।² इस

1. परन्तु - पृ० 89

2. साँघा - पृ० 82

प्रकार मजदूर दोनों ओर से दुखी है। वह स्वयं दुखी है और दूसरी ओर उसके घर है पत्नी अनेक समस्याओं से दुःखी है। गाँव से वह शहर इसलिए आया था कि कारखाने में कुछ मिला सके जिससे आमादनी अच्छी होगी और परिवार सुखी से रहेगा। इस प्रकार सोचकर आये मजदूर की शक्ति को छीनकर उसे अशांत और विचलित, बेचैनी कर दिया गया। मजदूर की हालत ठीक करने की वादे कितने ही नेता दे चुके हैं। मगर मजदूर की जिन्दगी जैसी की वैसी ही है। वे "मिल" में काम करते करते जब उब गये थे। कभी इस यूनियन वाला उन्हें बनाता था, कभी उस संघ वाले को चंदा देना पड़ता। हालत ज्यों की त्यों खरता थी। नेता लोग आते। व्याख्यान देकर चले जाते। फूलमाला, पेन्फ्लेट, शब्द, शब्द....बाट की तरह सेनिक्स जाते। मजदूरों की दुनिया उसी तरह छंटा पीटता रहता। मजदूर औरतों की अस्मत्तें पान की पीक की तरह खुले काम सड़कों पर कलकवती बनती, मजदूरों के अन्धे उसी तरह बिना दवा दारु के मर जाते।¹ इस प्रकार कारखानों में काम कर रहे मजदूरों का जीवन बहुत ही हृदय विदारक है।

वस्तुतः वर्तमान युग में औद्योगिक सभ्यता का विकास मजदूरों के शोषण के आधार पर चल रहा है। मजदूर पिस्तता जा रहा है और पूँजीपति लाभ कमाते जा रहे हैं। पूँजीपति ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने के प्रयत्न में रहता है। यदि औद्योगिक विकास और अधिक हो गया तो संसार कैसा होगा। इसकी कल्पना ठा० माघदे जी "धूल" उपन्यास में इस प्रकार करते हैं - "वहाँ पर "यंत्रों के सहारे बहुत छोटे बच्चों की ही शरीर और बुद्धि की परीक्षा ले ली जाती थी। उन्हें आगे

कलकर देश के किस काम में हाथ बँटाना है। यह निश्चित कर दिया जाता था। अब तो व्यापक गर्भ निरोध से कोई बच्चा पैदा होने की बात ही नहीं थी। पर गई पीढ़ी तक यह नियम था कि बच्चे की बहुत बचपन से कड़ीजाँच और परीक्षा होती थी। उसमें कहीं काई हस्यात विरोधी व्यक्तिक्रम छुटी विप्लान् दिखलाई देता था, तो उस बच्चे को जलावतन कर देते थे। जलावतन यानी माता-पिता सहित देश निकाला। बेचारे गई पीढ़ी के कई माँ-बाप यों अज्ञातवास कर रहे थे। चौदह बरस तक उनके बच्चे फौज में काम करने लायक तो हो ही जाते थे।¹

5.20. आर्थिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव :

औद्योगीकरण के कारण देश की आर्थिक परिस्थितियों में अनेक मूलभूत परिवर्तन हुआ है। सबसे प्रमुख परिवर्तन यह हुआ है कि भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो कुटीर उद्योग और कृषि पर निर्भर थी, उसमें कुटीर उद्योगों का नाश होने के कारण उद्योग पर आधारित नगरीय अर्थ-व्यवस्था का निर्माण होने लगा। इस के फलस्वरूप गाँव वासी जीविका हेतु गाँवों को छोड़कर नगरों की ओर प्रस्थान करने लगे। इस प्रकार भारतीय सामंती व्यवस्था क्रमशः पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत परिवर्तित होने लगा। शहरों में पूँजीपति कल-कारखानों का निर्माण करते हैं और गरीब श्रमिक उसमें अपना श्रम भेज कर जीविका की रोजी रोटी कमाते हैं। इस तरह से औद्योगीकरण के कारण समाज में नये रूप से वर्ग विभाजन हुआ एक पूँजीपति वर्ग, दूसरा मजदूर वर्ग। "जिब में पूँजीवाद को

सामाजिक एवं राजनीतिक अर्थों में जन्म देने का श्रेय औद्योगीकरण को है। औद्योगीकरण ने जहाँ एक ओर गरीबी दूर की, रोजगार के अवसर बढ़ाए पुराने और सहे गले जीवन मूल्यों और शैलियों के स्थान पर नवीन मूल्य और जीवन शैलियाँ दी, वही ऐसे साधनों का विकास भी किया जिन्हे कारण वे सारी बुराइयाँ उत्पन्न हुई और बढ़ी जिन्हे दूर करना औद्योगीकरण का अभीष्ट था।¹

डॉ० प्रभाकर माचवे ने अपने उपन्यास "साँचा" में श्रमिकों के शोषण की प्रक्रिया को बहुत ही स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। माँगीराम केशो से कहता है कि अब धार्मिक वि्वासाओं को त्याग दो भगवान या अन्य कोई शक्ति हमें रोटी नहीं देगी। वह कहता है -- "भगवान कोई मदद नहीं करते। हमें तो इन्दौर में चलकर पन्नालाल मिल् के भगवान से मिलना है। वही हमारा रोटी देने वाला है। तुम अब अपने महाकाल और गणेश जी भूल जाओ। इनसे निकम्मे पड़ों तक को रोजी नहीं मिलती, वे भी अब कहीं किसी राजा महाराजा के यहाँ कूँलियाँ देखते फिरते हैं, हाथ बाँधते हैं।"² इस प्रकार औद्योगीकरण के प्रभाव के कारण धार्मिक भावनाओं पर वे वि्वास उठ गया है। प्रत्येक व्यक्ति को रोजी रोटी की तलाश में संघर्ष करना पड़ रहा है। प्रत्येक ग्रामीण को औद्योगिक प्रभाव के कारण रोजी रोटी के लिए शहर की ओर वि्वासा के साथ जाना पड़ रहा है। "इस मशीन स्पीटेन्टेलस का आकर्षण प्रबल है। इस मोहिनी ने कई मानवों को भीमाधुर बना दिया। केशो भी बड़े शहर इन्दौर की ओर खिचता हुआ जा रहा है। जहाँ दर्जनों मिलें हैं। हजारों मजदूर हैं जहाँ पैसा श्रम में से यों झरता है, जैसे

1. डॉ० श्रीचन्द्र सिंह : आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य में चित्रित

समस्याएँ - पृ० 12

2. साँचा - पृ० 30

प्राकृतिक क्रिया हो ।¹ किन्तु वहाँ पर भी जाते ही म्लि में मजदूरों को काम नहीं म्लिता । वहाँ बिचोलियों को पैसे देना पठता है । वहाँ भी भयवान बाबर की चाँदी की दहिणा चढ़ाए बिना नौकरी थोड़े ही म्लित्ती है ।² इस प्रकार मजदूर का म्लि में दोहरा शोषण होता है । एक ओर से तो श्रम का मूल्य कम म्लिता है । दूसरी ओर से बीच के दलाल मजदूर के श्रम का पैसा छठप लेते हैं । इस प्रकार मजदूर आर्थिक शोषण के चक्की में पिंसता जाता है । न इसकी मदद सरकार करती है और न ही मजदूर सँघ । यह स्थिति केवल म्लि या कारखाने में ही नहीं है । ऐसी शोषण वृत्ति अन्य जगह पर भी है । साहित्यिक क्षेत्र भी पूँजीपतियों के कब्जे में है । उनके मन बहलाने के लिए साहित्य की रचना होती है । इस प्रकार मजदूर और काव में कोई अंतर नहीं रह गया है । एक शारीरिक श्रम बेचता है तो दूसरा बौद्धिक श्रम । डा० माचवे जी कहते हैं - "जो गाढ़ा पसीना किसीकाले मिट्टी के खेत में कपास और गेहूँ उगाता - आज मशीनाय स्वाहा होने जा रहा था । जो कविता कभी दार्शनिक के अस्क आँसुओं से उसके पापी मन को धोती थी, वह आज पण्य बन चुकी थी - एक अत्यन्त हेय मुद्रा में बँधी हुई घिघियाती दीन भिन्नारिणी ।"³

मनोहर के माध्यम से डा० माचवे कहना चाहते हैं कि गाँधी जी के विचार आज किसीको भी प्रभावित नहीं कर रहे हैं । गाँधी जी गरीबी मिटाने के लिए इनसानों में हृदय परिवर्तन जरूरी मानते हैं ।

1. व 2. साँचा - पृ० 31

3. साँचा - पृ० 39

वह आज संभव नहीं है । मनोहर सोचता है -- "इस प्रकार से भ्रष्टा कभी अमीरों का हृदय परिवर्तन हुआ है ? मनुष्य एकबार पैसा कमाने के चक्कर में एकदम सचि की तरह यांत्रिक भाव से काम करता है । वह भ्रष्टा कभी बदल सकता है । परिवर्तन तो तब हो जब उसमें हृदय के तत्व बचे हों । बार बार मनोहर इसी दुविधा के सामने आकर टकराता था कि मनुष्य की मनुष्यता इस स्वार्थ यंत्र की विराट भट्टी में झुलसकर जो भस्मप्राय हो गई है, उनमें कहाँ से हरकत फिर से पैदा की जा सकती है ।"

शोष्ण की चक्की में पिसे छे जाना ही मजदूर का काम है । उसकी आशा और आकांक्षा का कोई मूल्य नहीं है । उस काम पसंद आया या न आया । इससे कोई संबंध नहीं । यदि मजदूर को काम चाहिए ऐसे चाहिए तो मशीन में काम करना आवश्यक है । मजदूर एक तुच्छ प्राणी है । उसका शोष्ण रोज होता ही रहता है । इस विचार को ठाठ माधे जी ने "साँचा" उपन्यास में कैशो के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान किया है । "पहले ही दिन कैशो इस महा सचि की माया से अंतर्कित हो गया । उसकी तो जैसे बोलती बंद हो गई । यह नया काम कोई खास उसे पसंद नहीं आया । पर पसंद आना न आना गौण बात थी, मुख्य बात थी महावार मिलने वाले निश्चित पगार के सिक्के । साँचा....आदमी....सिक्के । यह सीधा अंकगणित था । दो बड़े यंत्रों के बीच में आदमी बहुत छोटी सी क्षुद्र चीज थी । उसकी इच्छा आकांक्षा के कोई माने नहीं थे - अब हम कृष्ण राजा जनक के जमाने के रामराज में थोड़े ही रहते हैं । हस्पात युग में रहते हैं । यहाँ आदमीका हृदय सफाट आदमी कि या तान सेन नहीं - आदमी के हृदय पर एक छत्र

साम्राज्य सचि का है ।*1

मिल मालिकों की शोषण प्रवृत्ति को उजागर करते हुए माधवे जी ने "साँचा" उपन्यास में केशो का चरित्र चित्रण किया है । मिल में मजदूरों का शोषण निरंतर होता था । उनके वेतन में कोई वृद्धि नहीं होती थी । इसी का उल्लेख डा० माधवे जी करते हैं - "दस बरस बड़ा असा होता है । केशों ने जिस मिल में जिस तन्खा पर काम शुरू किया था दस बरस में वह चींटी की तरह आगे रेंगा था कोई तरक्की उसने नहीं की थी । इस बीच में महंगाई बढ़ी थी और मिल में छुटालें भी ज्यादा होने लगी थी जिनमें केशो के आगे बढ़ बढ़कर हिस्सा लिया था ।"*2 स्पष्ट है जब जीवन में आर्थिक सुधार नहीं होता तो मनुष्य निराश हो जाता है । वह कुंठाग्रस्त होजाता है । अनेक समस्याओं में उलझ जाता है । इसलिए मजदूर को उसके श्रम का ठीक वेतन या मूल्यमिलना चाहिए ।

कुछ व्यापारी का भी ऐसे होते हैं कि जनता की शोषण करने के नये नये तरीके ढूँढते रहते हैं । "साँचा" उपन्यास में अहमदाबाद के व्यापारियों के संबंध में माधवे जी लिखते हैं कि वे सोचते रहते हैं कि तीसरा विश्व युद्ध कब शुरू होगा और परिस्थितियाँ कब विकट होगी जिसके कारण अपना व्यापार जोरों से चल सके । माधवे जी लिखते हैं - "शीघ्र श्रीमंत व्यापारी का बच्चा तक लगाये था कि तीसरा युद्ध बाहर विश्व में कब शुरू हो, और इसीलिए गत युद्ध में मुनाफा कमाने की जिन्हें चाट पड़ गई थी, वे तीसरे महासागर की खबरें उठा - उठा कर हारे ।

1. साँचा - पृ. 55

2. साँचा - पृ. 99

जब बाहर युद्ध होता नहीं दीखा, तो देश में ही शुरू करा दिया, जितनी अस्थिर परिस्थितियाँ होगी - चीजें मनमाने दामों पर बिकेगी । मुनाफा-खोर मजे में रहेगा ।¹

5.3. राजनैतिक परिस्थिति पर औद्योगीकरण का प्रभाव :

औद्योगीकरण से देश के राजनैतिक परिस्थितियों पर काफी प्रभाव पड़ रहा है । विशेषतः नगरों व शहरों में राजनीतिक गतिविधियाँ अधिक सतर्क थी । पारवात्य विचार धाराओं को अपनाना भी इस के पीछे का एक कारण हो सकता है । मिल तथा कारखानों में मजदूर के समस्याओं को मिल मालिकों तक पहुँचाने के लिए तथा उन समस्याओं का हल करने के लिए मजदूर संघों की स्थापना होने लगी । 27 अक्टूबर सन 1905 को 10 शिक्षा नारायणदास लेन में प्रेस श्रमिकों की एक सभा हुई । यही पर यह तथ्य प्रकट किया गया कि 21-10-1905 को "बंगाल प्रेस वर्क्स यूनियन" के नाम से देश की प्रथम ट्रेड यूनियन की स्थापना की जा चुकी है ।² इसके बाद भारत में कई मजदूर संघों ने अपने-अपने मिलों या कारखानों में छुटताले आदि करने लगे थे किन्तु कहीं पर भी व्यवस्थित यूनियन का निर्माण अभी नहीं हो पाया था । "मद्रास लेबर यूनियन की स्थापना 1918 में वी.पी. वाडिया ने की । यह यूनियन भारतीय ट्रेड यूनियन आंदोलन का प्रारम्भिक बिन्दु मानी जाती है । संभवतः इस धारण का आधार यह है कि यह आधुनिक व्यवस्थित ट्रेड यूनियन संघन का प्रथम प्रयास था ।"² 1920 ई.वी. क में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई । इसके पश्चात देश में

1. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर आंदोलन - पृ. 31

2. - वही-

अनेक मजदूर संघों की स्थापना हुई। मजदूर यूनियनों की स्थापना होने से औद्योगिक क्षेत्रों में काम कर रहे श्रमिकों की सभी समस्याओं का हल तो नहीं कुछ समस्याओं का समाधान निकल आया। जैसे महंगाई के अनुसार वेतन वृद्धि, काम के घंटे कम करना। बोनस देना आदि। इस प्रकार यूनियनों ने मजदूरों के अधिकारों की रक्षा करने हेतु भरसक प्रयास करने लगे। किन्तु यूनियन के नेता ऐसे भी थे जो अपने स्वार्थ के लिए मजदूरों का उपयोग करते थे। मिल मालिकों से अच्छे संबंध अपने स्वार्थ के लिए रखते थे। डा० प्रभाकर माधवे जी जो अनेक साल तक मजदूरों के साथ रहे और यूनियनों की गतिविधियों पर नज़र रखे हुए थे, अपने यूनियन नेता जो स्वाधीन और झूटाचारी थे उनका भूँखा फोटा है। अपने उपन्यासों में इनका चरित्र उजागर किया है। स्वाधीन और झूटाचारी मजदूर नेताओं के कारण ग्रामीण गरीब मजदूर कितने यातनाओं का शिकार होता है "साँचा" उपन्यास में उन्होंने यथार्थ के साथ चित्रित किया है।

केशो जो ग्रामीण प्रान्त से मजदूरी करने इन्दौर आता है। वह एक मिल में काम करता है। काम के पहले ही दिन जब वह शाम को काम से लौटने लगता है तो कुछ व्यक्ति उसे रोककर एक फार्म देते हैं और कहते हैं कि तुम्हें यूनियन का मेम्बर बनना चाहिए। केशो को जो पढ़ा लिखा नहीं है, कुछ समझ में नहीं आता। वे कहने पर चार आने देकर पीछा छुड़ा लेना चाहता है। वे लोग चार आने लेकर वहीं उसे एक लेबल देने लगते हैं — "आज से तुम हमारी लाल झुंडवाली यूनियन के मेम्बर बने। तुम जानते हो — लाल झुंडा ही दुनिया के मजदूरों को मुक्ति देने वाला है। बाकी सब जितनी मजदूरों की जमाते हैं देशद्रोही

हैं, गद्दार हैं, पूँजीपतियों से मिली हुई हैं।¹ इस प्रकार मजदूर यूनियनों मजदूरों को बातों में फुसलाकर उन्हें अपने स्वार्थों के लिए उपयोग कर लेती है। उनका शोषण करते हैं। मजदूर नेता भी ऐसे होते हैं कि वे अपना स्वार्थ ही सिद्ध करते हैं। वे ऐसे ऐसे भाषण देते हैं कि जबीह मजदूर समझ लेता है कि वे अपने हित में काम कर रहे हैं। वास्तव में मजदूर नेता स्वयं के हित का ध्यान अक्सर रखते हैं। केशो जिस मिल में काम कर रहा था। एक बार उसमें एक दुर्घटना हुई। चलते हुए सड़ि में एक मजदूर की बाँह आ गई और बाँह कंधे से अलग हो गयी। इसी बहाने को लेकर एक क्रांति के मजदूर यूनियन ने हड़ताल शुरू कर दी। देखते देखते मिल के फाटक के बाहर कामरेड बाबुराय ने एक सभा ले ली। वहाँ गमगिर्म भाषण हुए। पर यह सब जोश उस मोके लिये तो तपते लोह को पीटने की तरह लाल इट्टी वालों ने अपने काम में लाने के हिसाब से जमा किया।² किन्तु इस लाल इट्टी वाले मजदूर यूनियन से उस दुर्घटना ग्रस्त मजदूर को कुछ भी फायदा न हो सका। तब मनोहर जो भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन काग्रेस नेता हैं वे उस मजदूर को "कम्पेन्सेशन" दिलवाया मोवाकफे में कई सौ रुपये हलाक के लिये और उपर से माहवार रकम बंधी हुई मिली।³

स्वाधीन नेता किस प्रकार दलबदल करते हैं। माचवे जी ने मजदूर नेताओं को उदाहरण स्वरूप दिखाया है। माचवे जी कहना चाहते हैं कि इन नेताओं को विचार धारा मुख्य नहीं है, मुख्य तो उनका अपना

1. साधना - पृ. 56

2. साधना - पृ. 58

3. साधना - पृ. 58

स्वाई है। "साँचा" उपन्यास में ऐसे ही एक नेता का चरित्र चित्रण करते हैं - "जैसे यह किसान सुनने में आया था कि कामरेड सामंत जो पहले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कट्टर गुप्त कार्यकर्ता थे एक जगह एक श्रीमती के घर में दफ्तर करने जाते थे - धीरे धीरे यहाँ प्रेम बढ़ा कि श्रीमती के घर अपने बच्चों ^{लाल लाल और लाल लाल} और लाल लाल बहिन वाले दफ्तर में रहने पाई। यहाँ यह नहीं सुझाया जा रहा है कि लाल लाल बहिन वाले लाल लालों को फुलाने या भगाने का ऐसा कोई सोशल प्रॉजैक्ट पर प्रोग्राम था। पर वह दिन है कि कामरेड सामंत का धोर मत-परिवर्तन हो गया। वे कट्टर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघी से कट्टर कम्युनिस्ट बन गये। एक मताग्रह से वे दूसरे मताग्रह तक पहुँच कट्टरता दोनों तरफ थी। जो उनकी अव्यवस्थित जिन्दगी में बढ़ाबूझा मानसिक साँत्वना का काम करती।"¹

डा० माधवे जी कहते हैं कि जिस प्रकार मशीन मनुष्य को उभरने नहीं देता और उसके व्यक्तित्व को तथा स्वतंत्रता का हनन करता है वैसे ही मजदूर यूनियन या संस्था भी व्यक्ति स्वतंत्रता को नष्ट कर देते हैं। वे कहते हैं -- "मजदूर संघ भी एक तरह का साँचा था जैसी और संस्थाएँ होती हैं। व्यक्तित्व वहाँ कुचल कर मिट जाता है, उभरता नहीं। संस्थावाद और व्यक्तिमत्ता का जैसे ३ और ६ का संबंध है, यह कारण है कि हमारे देश में हजारों संस्थाएँ कुकुरमुत्तों सी बनपती हैं - उत्पन्न होते बिना यन्त्रे व्यक्तित्व यहाँ बहुत धोड़े हैं।"² मजदूरों की भलाई सोचने वाला मनोहर भी यही सोचते रहता है कि राजनीति में स्वाई शक्तियाँ बढ़ गयी हैं। वह अपनी डायरी में लिखता है -- "हम जब राजनीति

1. साँचा - पृ. 59

2. साँचा - पृ. 80-81

की बात करते हैं तो उसके छिल्लेपन के पीछे कितनी शक्तियाँ हैं नहीं जानते। हमारे कितने अवलूत कूठित भाव क्रांति का नाश बनकर उभरते हैं। वस्तुतः क्रान्ति की बात जब हम करते हैं तो सबसे अधिक वह क्रांति हम अपने भीतर करना चाहते हैं।¹ इस प्रकार की राजनीति से उठकर "मनोहर ने मजदूर संघ छोड़ दिया। वह चुपचाप एक देहाती स्कूल में मास्टर बन गया।"²

मजदूर का कल्याण एवं सुरक्षा वाहने वाली मजदूर यूनियनों ने अपना विकृत रूप धारण करके अपने स्वार्थों के लिए मजदूरों की स्वास्थ्य की भी अवहेलना करनी शुरू कर दी है। इस तथ्य को पराकाष्ठा केशो नामक मजदूर की मृत्यु है। केशो का मिला में काम करते करते स्वास्थ्य बिगड़ गया था। उसे टी.बी. रोग हुआ था। दवा दारु के लिए उसके पास पैसे नहीं थे। यूनियनों से मांगने पर वे आपस में लड़ने लगे थे। जब दवा आया तो दोनों आपस में लड़ने वाली यूनियनों ने उसकी दवा दारु के लिए पैसे देने से इन्कार कर दिया। एक बोला - वह तो कम्युनिस्ट था। उसको ऐसे ही मर जाना चाहिए। कम्युनिस्ट यूनियन बोली - हमारे पास क्यों आते हैं १ गांधी जयंती के दिन वह आई एन टी यू सी में गया था। वहाँ से आपको मदद मिल जायेगी। धन्ना से उनको कुछ पैसे देता है, उनकी यूनियन को।³ इस तरह से विवाद काफी लम्बा चला। "इसी बहस में एक दिन मुफ्त वार्ड में से केशो का शव उसकी पत्नी के हवाले कर दिया गया। शायद मुर्दा फूँकने लायक पैसा मिल वालों ने देखा था।"⁴

1. साँचा - पृ. 83

2. साँचा - पृ. 84

3. साँचा - पृ. 122

4. साँचा - पृ. 122

इस प्रकार मजदूर यूनियनों का अस्सी रूप को पाठक के सामने प्रस्तुत करने में डा० माघवे जी सफल हुए हैं। लगभग सभी मजदूर संघों का यही उद्घोषणा रहता है कि हम मजदूर के हम ददी हैं उसकी सुरक्षा और उन्नति के लिए हमेशा लड़ते रहते हैं। किन्तु यथार्थ कुछ और ही है। यूनियन के नेता मजदूर को भलाई या उन्नति के लिए नहीं लड़ते बल्कि अपनी उन्नति के लिए लड़ते हैं। पायः यह भी देखा गया है कि प्रत्येक यूनियन किसी न किसी राजनैतिक पार्टी से सम्बद्ध रहता है। इस प्रकार जहाँ मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ना पड़ता है वहाँ पर राजनैतिक मतभेदों के कारण आन्दोलन को बिगाड़ देते हैं या शांत कर देते हैं। इस प्रकार कोई भी मजदूर यूनियन सब से पहले अपना स्वार्थ देख लेता है और बाद में मजदूर का। इस का प्रमाण डा० माघवे जी ने "साधा" उपन्यास में बहुत ही विस्तार के साथ चित्रित किया है जो यथार्थ पर आधारित है।

5.4. औद्योगीकरण और अमानवीकरण :

औद्योगीकरण के कारण भी ही अनेक लाभ पहुँचि हो किन्तु मनुष्यता का हनन अवश्य हुआ है। इस विषय पर दो मत नहीं हो सकता। औद्योगीकरण के कारण चाहे वह मशीनों के द्वारा हो, चाहे पूँजीपतियों के द्वारा हो या चाहे साम्राज्यवादी शक्तियों के द्वारा हो, मनुष्य का व्यक्तित्व और स्वतंत्रता का नाश हुआ है। मनुष्य अन्य वस्तुओं के समान एक वस्तु बन गया है। मनुष्य के अद्वितीय गुण सहाय्यता, दया, ममता, न्याय, सहिष्णुता, परोपकार आदि भावनाओं का इस औद्योगीकरण के कारण पूरी तरह से सड़ाया हो गया है। मनुष्य में विवेक

ह्रास होना ही सभ्यता का लक्षण जैसा दिखाई पड़ रहा है क्योंकि यदि उसमें विवेक है तो उसमें मानवीय गुण उपस्थित होते हैं। इसलिए यात्रीक सभ्यता ने मनुष्य के विवेक को ही नष्ट कर दिया है। इस प्रकार अमानवीय प्रवृत्तियों का विकास होने के कारण मनुष्य में इमानदारी भी क्षीण होती गई है। इसके फलस्वरूप मनुष्य का सामाजिक स्तर पर, आर्थिक स्तर पर और राजनीतिक स्तर पर खोखलापन सामने आ रहा है। जब तक मनुष्य केन्दर स्थित मानवीय गुणों का आदर नहीं होता तब तक मनुष्य का पतन होते जाना निश्चित है।

डा० माधवे ने अपने उपन्यासों में इन्हीं विषयों को उजागर करते हुए स्पष्ट किया है कि यात्रीकरण ने मनुष्य को अपना कटपुत्ता बनाया है। वे अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर और पात्रों के चरित्र चित्रण के आधार पर अमानवीकरण का बोध पाठक को करवाते हैं।

"धूत" उपन्यास में धर्मराज गाँव में हस्पात कारखाने का निर्माण का विरोध करता है। वह कहता है कि हस्पात कारखाना आने से गाँव में बचा हुआ प्रेम, ममता भी नष्ट हो जायेगा। वह कहता है - "गाँव वालों में जो कुछ बची खुशी त्याग भावना है, एक दूसरे के लिए कुछ कर गुजरने की इच्छा है - जब यहाँ एक बड़ा दैत्याकार कारखाना आ जायेगा तब वह भी जाती रहेगी, तब सभी लोग अंधों की तरह एक दूसरे को मारेंगे, एक दूसरे का लहू पीयेंगे और उसे सभ्यता कहा जायेगा।" और कुछ लोग गाँव में हस्पात कारखाना खुलना अभिशाप मानते हैं। "गाँव के जीवन में वे सब बाहर के तत्व आयेंगे, जो प्रदूषण फैलायेंगे। आज जो थोड़ी बहुत एक दूसरे के लिए आत्मीयता की भावना है वह नष्ट हो जायेगी। सब एक दूसरे से अजनबी हो जायेंगे। सबके सब आत्म निर्वासित

से उस अनात्म के पीछे छुमेगी, जो कभी किसी को प्राप्त नहीं हुआ है, होगा ।¹ इस प्रकार मशीनीकरण होने से प्रेम भावना और आत्मीयता खत्म होने की भावना निरी कल्पना नहीं बल्कि यह यथार्थ है ।

मानवता का हास होना हम यथाई दृष्टि से "साधा" उपन्यास में देख सकते हैं, उस उपन्यास में केशो गाँव से शहर को रोजी रोटि कमाने जाता है । वह किसी म्ल में काम करता रहता है । मगर वह काम उसे पसंद नहीं है फिर भी मजबूरी से करना पड़ रहा है । उसके अपनी गाँव की याद आती है । "केशो रात को आसमान में तारे देखते तो धरवाली की याद आती । बच्चे का सोचते । भाई बंदो का सोचते । इस कल गाँव में होते तो आनन्द से नीम के नीचे छाट बिछाये पड़े रहते । दूर से कोई गोठे की गाय रंभाती या बेलगाड़ी के केलों के गले की छँती बजती । कोई शोर गुल नहीं और यहाँ घास है कि गटर की बंदबू, मच्छरों का भिम्माना और जड़ोस-फूलों की बक-बक में शाम कब निमल जाती है, और रात को तारे भी चाँदी के सिक्कों की तरह झुँह चिद्राते दूर जाकर बैठे हैं, पता नहीं, तारे है या आशा का उठा हुआ भाग है, जो वहाँ दूर जाकर जम गया है ।"² यह अनुभूति तो केशो जैसे आत्मीयभावना जिसके हृदय में लगीये हुए रहता है उनका है । पर जिनके हृदय में ममता न हो, मस्तिष्क में विवेक न हो जो जीवोगीकरण का परिणाम है वे तो मरत मौला रहेंगे जैसे -- माँगोराम । "वह मौला जीव ठहरे -- उनकी एक रात फूलवालों के साथ कटती, तो दूसरी बाँठा बाजार में । आज गेटर देख रहे हैं तो कल क मार गटरवाली -- छोटा बेटा पंजाब का छठ - छठ - छठ - छठमस्टेट पिबघर देख रहे हैं । उनका विवेक मर चुका था । जिन्गी के साथ में सुख का रस बराबर निमलता जाता था । मन्मे के बदले हड्डियाँ पेरी जा रही थी तो क्या ?"²

1. साधा - पृ: 62

2. साधा - पृ: 62

"भूत" उपन्यास में श्री नीकरण के कारण उत्पन्न अमानवीकरण का शीर्षस्थ रूप को प्रस्तुत किया गया है। ऐसे, डा० माचवे जी की यह कल्पना मात्र है तो भी यह यकाई से दूर नहीं है। जो बाधाएँ या यातनाएँ मजदूरों को भोगतना पड़ता है। उसके फलति में कोई फर्क हो सकता है। "हरपात नगर" जो अत्याधुनिक औद्योगिक क्षेत्र है जहाँ पर सब कुछ यंत्रों के माध्यम से चलता है। "किसी कारीगर की गलती से क्लिन्ती घर तन्द हो गया। और सारी श्रीमें रुक गई। अब तो बड़ी मुसीबत आ गई। आदमी कलना भूल गये थे। सब रुक जायित जूते पहनभर उठते, चाहे जितनी तेजी से सरपट भागते थे। अब वह शक्ति का स्रोत ही बन्द हो गया। एक घण्टे भर के लिए ऐसा लगा कि हरपात नगर अँधेरी खोह में कहीं डूब गया है। वह विराट यंत्र दानव ठण्ठा प्रेत बन गया है। ऐसे वक़्त उस कारीगर को खोजा गया जिसकी गलती थी। उसे गरम लोहे की भट्टी में, उठाकर फेंक दिया गया। किसी को कोई दुःख नहीं हुआ। एक कील निकल जाने पर या पुरानी फल जाने पर उसे फेंक ही देते हैं न। सारे आदमी और सारी औरतें हरपात नगर के व्यवस्थित चलने के लिए मात्र कीलें थी। उनसे ज्यादा उनका मूल्य नहीं था।" इस प्रकार औद्योगीकरण सभ्यता में मनुष्य का मूल्य नहीं रहता। उसे कीड़े कीट की तरह अपनी जिन्दगी बिताना पड़ता है।

"साँचा" उपन्यास के मनोहर इसी विषय पर हमेशा सौचता रहता है कि किस प्रकार मजदूरों की जिन्दगी को सुधारा जाये। वह अनेक काम मजदूरों की भलाई के लिए करता है मगर उनमें मजदूरों तक भी सुधार नहीं आता। उसने मजदूरों के लिए रात की पाठशालाएँ अनवरत चलाई, शराब की दुकानों पर पिक्केटिंग की और मजदूरों को कहा कि साहुकारों से बोरी - चुपके से कर्ज मत लो। किन्तु सभी निष्फल

रहे । समस्याएँ जहाँ की वहाँ रहे । मनोहर उदास हो गया । वह अपने मित्र "बिजा" को पत्र लिखता है - "क्या हमारे मजदूरों की आत्मा मर गई है ? या हमारे उपदेशों के पोछे वह सच्चे सिक्के की सच्ची झन्नाहट नहीं है ? कहीं ब कहीं कुछ हुआ है कि आदमी के चिंतन और भावना में एक बड़ी दरार पड़ गई है और यह छिड़ित मानव किसी खोखला में जैसे चक्कर काट रहा है । भँवर में पड़े हुए तिनके सा, निराधार भविष्यहीन आवर्त प्रताड़ित, निस्संग, दयनीय....."

उन्हारे देशों में क्या दशा है पता नहीं । पर औद्योगिक सभ्यता का क्या यह अव्यथावी परिणाम है ? अधिक अवकाश, अधिक पुरसत, अधिक अलस्य, अधिक उत्तेजक पदार्थ, अधिक नींद लाने वाले पदार्थ भाग दोड़ और अन्त में एक मूर्च्छना.....

हमारी जिन्दगियाँ सचि में जैसे बँध सी गयी है । चीनियों में पुराने जमाने में बच्चों के पाँव लकड़ी के चौखट में बाँध रखते थे, वैसे ही । विविध निष्पन्न के ये चौखटे, खाँचि, दरबे, दर्राज, छोटे-छोटे आले और बिल । क्या हमारी इच्छाएँ और हमारे हरादे कोई पालतु फली है या चिड़िया खाने में कैद, बोतलबंद, जंतु कीट ?

इस यंत्र युग ने मनुष्य को कीड़े मकौड़े से भी बदतर बना दिया है ।"

विवेच्य विषय के संदर्भ में हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार श्री जेनेन्द्र कुमार का वक्तव्य यहाँ पर उल्लेख करना समुचित होगा - वे कहते हैं - "उद्योग, यंत्र, विज्ञान, ये सब चीजें गलत नहीं हैं । इनके उपयोग की गुंजाइश ही नहीं, उपादेयता भी है । लेकिन जिसको औद्योगीकरण कहते हैं, वह कुछ अपने में अलग चीज है । वह है उत्पादन का मुनाफे के खातिर

होने लगना और जीवनोपयोगी की सीधी आवश्यकता के संदर्भ से उसका दूर जाना । जब यह फल आने लगता है, तो मशीन और मनुष्य का संबंध उलट जाता है । मानो मशीन मनुष्य पर सवार हो जाती है । मनुष्य का काबू फिर उस पर नहीं चलता । मनुष्य खुद उसके काबू में आ जाता है । मुनाफावाद उद्योगवाद का प्रतिफल होता है और उससे सामाजिक संबंध जर्जर होने लग जाते हैं । व्यवस्थित रूप से कैपिटलिज्म के नाम से उसकी अन्विष्टता से हम बहुत अच्छी तरह परिचित हो चुके हैं । लेकिन इस मोह में पड़ गये हैं कि उसके आगे राष्ट्रीय पैमाने पर आकर वही चीज सही बन जायेगी । जोषिण्ड के लिए अन्विष्ट ठहर चुकी है, वह नीति ब्रह्माण्ड के लिए भी अन्विष्ट ही होगी, इसमें तन्देह नहीं है ।¹ स्पष्ट है औद्योगीकरण मानवीय मूल्यों पर सतत प्रहार करने वाला भाला है ।

इसी प्रकार मानव सभ्यता को विकृत रूप देने में पश्चात्य देश किस प्रकार हथौड़ा लगाये हैं । हम द्वितीय विश्व युद्ध के समय का इतिहास को देख सकते हैं । मनोहर की विदेशी मित्र "लिजा" इस युद्ध के समय छटित अनेक अमानवीय कृत्यों का इवाला देते हुए मनोहर को पत्र लिखती है । जिसमें वह लिखती है - "वहाँ मानवता की दुहाई देने वाले आदर्शवादियों की एक न चली । क्रूरता साचिबंद ढंग से आदमियों के प्राणों को कुचलती चली गई ।"² आगे रूस का उदाहरण देते हुए लिखती है - "रूस दुनिया को कहते फिरता है - वह सबकी मुक्ति करेगा - गुलामों को सिवा बेठिया के और क्या सोना है ? पर जब जर्मन युद्ध कैदियों को साखेरिया और दूसरे अज्ञात स्थानों पर ले जा रहे हैं - सब

1. जेनेन्द्र कुमार - समय और हम - पृ. 408

2. साधा - पृ. 91

तब, तुम जानते हो उन बन्धियों की नाम सूचियाँ भी नहीं रखी । गाजर मूली की तरह उन्हें गारत कर दिया । ट्रेन में मानो ठिठके में जितनी संख्या में वे चाहिए थे, वह संख्या पूरी नहीं हुई तो उन्हें उन्होंने जहाँ से गाड़ी जाती थी, वहाँ आसपास के किसानों को पकड़कर दस दिया - संख्या पूरी कर ली ।¹ लिजा यंत्र सभ्यता से उबने की बात करते हुए लिखती है - "युद्ध में और प्रेम में सब कुछ जायज है ? कैसे यह कहावत सच मानी जाए ? क्या मनुष्य इतना गया गुजरा हो गया कि उसे इस बात का खोफ नहीं बचा रहा कि आज जो दूसरे के साथ कर रहा है, कल वही उसके साथ भी बीत सकता है । उष् । यंत्र सभ्यता से कभी कभी मेरा मन उब उठता है और हिमालय की किसी कंदरा में जाकर शैव जीवन एकान्त में, चुपचाप बिताने का मन होता है ।"²

यंत्रों के कारण उत्पादन बढ़ने से उत्पन्न परिणामों की चर्चा करते हुए लिजा लिखती है - "यंत्र से अधिक उत्पादन बढ़ा । अधिक उत्पादन से क्षमता बढ़ाने के लिए और मँडियों की जरूरत बढ़ी और मँडियों को प्राप्त करने का मतलब हुआ साम्राज्य विस्तार और साम्राज्य विस्तार का सब मतलब है शास्त्रास्त्रों की होठाहोठी । और उस होठाहोठी का अन्तिम परिणाम है मनुष्य के हृदय का स्वयं मेव यंत्रवत् हो जाना । इस्पात का उपयोग क्या आदमी ने इसीलिए सीखा था ? इस बात के लिए ?"³

इस संदर्भ में जेनेन्द्र कुमार का कहना है - "यंत्र एक तरह हमारे बन्धियों के उपकरण का अगला परिणामी है । अर्थात् मनुष्य की पहुँच उससे विस्तार पाती है, उसकी क्षमता बढ़ जाती है । एक हासपावर

दस मनुष्यों की शक्ति के बराबर होता है तो कहना चाहिए कि एक हासपावर की मशीन से एक आदमी ज्यादा जितना हो जाता है। यंत्र का मानव जीवन में ठीक यही शक्ति संदर्भ का काम और स्थान होना चाहिए इससे अधिक जब होने लगता है, तो यंत्र काम का नहीं रहता, वाद का हो जाता है। अर्थात् संघर्ष उत्पन्न होता है। आदमी अनु-पयोगी, बेकार और बेरोजगार होने लगता है। यंत्र में जब यह अनर्ह और अनिष्ट पड़ने लग जाता है, तब यंत्र के साइ सोच विचारपूर्वक चलाया चाहिए। ध्यान में इतना रखना है कि जैसे मनुष्य के पास यंत्ररूप में यह शरीर है, अंगोपांग है, बुद्धि विकास से प्राप्त हुए अन्य यंत्र भी इसी तरह मनुष्य के अंग रूप होकर उसे विस्तार देने वाले हैं। उसे काटने और कम करने वाले वे न बने।¹

लिजा अपने पत्र में धार्मिक संस्थाओं पर भी व्यंग्य करती है। वह कहती है कि जो प्रत्येक पल शांति का जप करते हैं वे ही लोगों की हिंसा करने लगे हैं। वह लिखती है - "और फिर सबसे बड़ा व्यंग्य तो देखो कि हम ईसाई कहलाते हैं। हम सब से बड़े परोपकारी और सबसे बड़े दाता कहलाते हैं। वह स्त्रीब पर यह हुआ मांगते मांगते मर गया - "पिता क्षमा करो ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।" और हम उसको करोड़ों नालायक अनुयायी हैं - जर्मनी में और रूस में, स्पेन में और इटली में, चीन में और जापान में, अमरीका में, और कहाँ नहीं - जिनका पेशा ही हर मिन्ट, हर लमहे पर उस परमपिता को तिल-तिलकर कीं ठोंक ठोंक कर मारना बन गया है।²

अन्त में लिजा कहती है कि कट्टरपन से मनुष्यता का हनन होना निश्चित है। वह लिखती है - "कट्टरपन, चाहे जिस रंग और कोटि का

1. जेनेन्द्र कुमार - समय और हम - पृ. 411

2. साधा - पृ. 92-93

हो मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है। मजहबी कट्टरपन, कोमी कट्टरपन, ये नाज़ी और गैर नाज़ीयत के नारे, यह दुनियाभर को आर्य बना देने की चिन्मयो, यह सारी दुनिया को "सभ्य" और "मुक्त" करने का दावा, यह मालम और गिद्दों की सी छीना छपटी - यह सब आदमी की आत्मा में लगे हुए छन है। ऐसा विकृत इन्सान कोई बड़ी कलाकृति कभी नहीं निर्मित कर सकता।"।

जिजा के पत्र में उपरोक्त सभी मूल्यांशों को यदि स्मृता से विवेक्षण करने से पता चलता है कि आज का मनुष्य दिन ब दिन गोप होते जा रहा है उसका महत्व कमहोते जा रहा है। यंत्रों का महत्व बढ़ रहा है। इस कारण मनुष्य को स्वयं जीने के लिए स्पर्ध करना पड़ रहा है। इस स्पर्ध में दया, ममता, प्रेम, परोपकार आदि मानवीय गुणों का हास होते जा रहा है। इसके फलस्वरूप मनुष्य मात्र एक प्राणी के रूप में बच गया है। इस प्रकार औद्योगिक विकास बौद्धिक एवं भौतिक रूप से भी ही संसार को सुख-सुविधाओं को उमलबध किया हो परन्तु मनुष्य को मनुष्यता के साथ रहने नहीं दिया।

वस्तुतः मनुष्य मनुष्यता रहित होना उसकी मजबूरी है। वह विवशता के कारण ही अपने सर्वोच्च गुण दया, ममता, प्रेम, क्षमा और परोपकार को त्याग देता है। जीने की जिजीविषा के कारण ही स्वार्थ भावना को ग्रहण करता है। किन्तु कितने ही कष्ट और दुःख आने पर भी मनुष्य अपने सर्वोच्च गुणों से वंचित नहीं होता उन गुणों को वह अपने अंदर कहीं नकहीं छुपाये रखता है। एक समय ऐसा भी आता है कि हम

कल्पना भी नहीं कर सकता कि मानवता क्या इतनी भी गिर सकती है । वह आदमी को विक्रय वस्तु के समान बेच सकता है ? विवशता कुछ भी कर सकती है । डा० माचवे ने अपने उपन्यास "साँचा" में इस समस्या का चित्रण यशार्थ के साथ किया है । कलकत्ता में जब अकाल पड़ा था तब वहाँ बच्चों को बेचा जाता था । कई गुंडे ऐसे थे जो कहीं से लड़के - लड़कियों को उठाकर लाकर बेच देते थे । ऐसी ही एक घटना है जिसमें लड़की और बच्चे को एक गुंडा बेच रहा है - "किस्सा मुस्तसर में यह था कि वह गुण्ठा इस लड़की और बच्चे को, जिन्हें वह भूखमरी से बचाकर किसी तरह पुसलाकर, यहाँ ले आया था, महँग से महँग दामों में बेचना चाहता था । उनकी मुफलिसी का फायदा उठाकर यह भ्रामामानस बीसवीं सदी में, और सभ्यता के इस युग में जब कि दुनिया भर की आजादियों की दुहाइयाँ दी जाती हैं, ऐसा पाप करने जा रहा था जिसकी कोई मिसाल नहीं, और जिसके ऊयाल से ही रुह काँपती है ।"¹

याँत्रिक सभ्यता ने मनुष्य को भावपूर्णता कर दिया है । "धूत" उपन्यास में हस्पात नगर में जो उपन्यासकार डा० माचवे जी के कल्पना से निर्मित है, "मनुष्य को चार पक्ष प्रवृत्तियों आहार, निद्रा, भय, पर हस्पात नगर के अधिष्ठातारियों ने पूरा अधिकार कर ठाला था । यों मनुष्य उनकी निगाह में हस्पाती होता जाता था । जितना ज्यादा हस्पाती उतना ही कम जल्बाती ।"²

"धूत" उपन्यास में जिस गाँव में हस्पात कारखाना लगने से गाँव हस्पात नगर में परिवर्तित हो जाता है उस गाँव के स्टैथेन्मेन के पुस्तकालय में रहता है । वह गाँव हस्पात नगर को देखकर चकित

1. साँचा - पृ: 97

2. धूत - पृ: 123

होता है, वहाँ पर मानवीय गुणों का हास हुआ है। वह तत्कालीन गाँव के मईल, डेहमास्टर, कलिया द्रोपदी आदि से बात करते हुए इस बखले हुए परिस्थितियों पर गहरा दुःख व्यक्त करता है। वह कहता है - "बया यहाँ के इस सारे व्यापक प्रमाण और बड़ी मात्रा में हुए प्रौद्योगिक विकास के पीछे कोई मानवीय हिंसा हुई ही नहीं? या यह कीमत जो छुकानी पड़ी, उचित ही थी, ऐसा मान लिया गया है।" वह आगे कहता है कि यांत्रिक सभ्यता के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व खण्डित हो गया है। "यंत्र मनुष्य को खण्डित व्यक्तित्व वाला बना देता है। जितने बड़े यंत्र, उतना बड़ा खण्डित व्यक्तित्व। पूर्व का मनुष्य परिचम में इसी तरह फूटफटाता रहता है जैसे पिंजरे में फँसी। एक आबो हवा के पक्षी दूसरी आबो हवा में थोड़े दिन मौसम के हिसाब से घूमने जाते हैं और लोट जाते हैं। वे भी बस नहीं पाते। भैंन कोरिशा की, और बया हाथ लगा? न वहाँ दिल लगा, न यहाँ।" 2

द्रोपदी श्याम बाबू से बात करती हुई कहती है कि कल्पना किसी फाँसी की तरह बँधी बँधाई नहीं होती। वह मनुष्य के सोच और सृजन पर आधारित होती है। उसके कहने में यह भी निहित है कि औद्योगीकरण से कल्पना सधि टल नहीं जायेगी। वह कहती है - "अन्विचय शायद निमग्न या रचना का पहला और अंतिम बिन्दु है। सब लोग कोरे कागज पर ही कविता लिखना या चित्र बनाना शुरू करते हैं। स्वर का स्थान सुने में या नीरवता में ही किया जाता है। पत्थर आकारहीन होता है जिसमें से सुंदर शिखर बनाया जाता है। सब मनुष्य की कल्पना का आरोपण है और कल्पना गणित के फाँसी की तरह बँधी बँधाई नहीं होती।" 3

1° सूत - पृ० 134

2° सूत - पृ० 135-36

3° सूत - पृ० 139

6. निष्कर्ष :

संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि डा० प्रभाकर माधवे अपने उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप मनुष्य स्वतंत्रता खोता जा रहा है। वह अपने व्यक्तित्व के विकास के बन्धने, उसे संकुचित बनाता जा रहा है। आज मनुष्य का व्यक्तित्व सन्नत होता जा रहा है। मशीन का महत्व बढ़ गया है और मनुष्य का न्यून हो गया है। वह गंदी नाली के कीड़े की तरह अपना जीवन बिताने में विवश है। वह जहाँ रहता है उस दुग्गी - कोपड़ी में न रोशनी होती है, न पानी की व्यवस्था होती है और न ही स्वच्छता होती है। ऐसे परिस्थितियों में वह मजदूर जिन्दगी जीते रहते हैं। उसके लिए न मनोरंजन का साधन है न स्वास्थ्य की समुचित व्यवस्था। वही एक कोटरीवाली जो सीधे ठहरने पर छत लगती है - दुग्गी कोपड़ी ही उसके लिए सब कुछ है।

वस्तुतः साधा, और "धूत" जैसे उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि डा० माधवे जी मनुष्य के सृजनात्मक एवं स्वस्थ विकास में औद्योगीकरण को बाधक मानते हैं। क्योंकि वे अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था ही मनुष्य को स्वास्थ्य, सृजनात्मक एवं क्रियाशील बना रखता है और उसके मानवीय विशिष्ट गुणों, दया, प्रेम, ममता, परोपकार आदि को विकसित करता है। ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का नष्ट होना मानवीयता का हनन है। मानवीय गुणों के मनुष्य से नुप्राप्त होने का दोष भी वे औद्योगीकरण को ही देते हैं। भले ही औद्योगीकरण से अनेक सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हुए हों तथा उत्पादन अधिक मात्रा में हुआ हो किन्तु मानवीय गुण जैसे दया, प्रेम, ममता, क्षमा, परोपकार आदि पर उसका कटु प्रहार हुआ है।

अध्याय - पाँच

डा० प्रभाकर मावळे के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थबोध : सामाजिक
परिदृश्य में

अध्याय - पाँच

डा० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थबोध :

सामाजिक परिदृश्य में

1. पुस्तावना

2. डा० पुभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण

2.1. नारी जीवन का यथार्थ

2.1.1. नारी विषयक अवधारणा

2.1.2. नारी की असहायता

2.1.3. पुरुष प्रधान समाज और नारी

2.1.4. समान अधिकार और नारी

2.1.5. दहेज समस्या

2.1.6. विवाह

2.1.7. प्रेम और धौल

2.1.8. परित्यक्ता नारी

2.1.9. वेश्या समस्या

2.1.10. देवदासी प्रथा

2.1.11. सती प्रथा

2.1.12. विधवा समस्या

2.1.13. तलाक और भरण पोषण

2.1.14. पुताठना और अनात्कार

2.1.15. कन्याओं की बिक्री

2.2. रंगभेद बनाम वर्णभेद - पारंपारिक एवं भारतीय जीवन का यथार्थ

2.2.1. रंगभेद समस्या का ऐतिहासिक विवेचन

2.2.2. "जो" उपन्यास में रंगभेद बनाम वर्णभेद का चित्रण

2.3. पीढ़ियों का अंतराल और बदलते जीवन मूल्य

2.3.1. पुरानी पीढ़ी

2.3.2. बीच की पीढ़ी

2.3.3. नई पीढ़ी

2.4. युवावर्ग : सामाजिक यथार्थ

2.4.1. "किशोर" तथा "लापता" अवस्थाओं में युवा वर्ग का चित्रण

2.5. समाज और राजनीति में ऐसी अनैतिकता

2.5.1. "आँखें मेरी बाकी उनका" अवस्था में समाज और राजनीति में ऐसी अनैतिकता का चित्रण

3. निष्कर्ष

अध्याय - पाँच

डॉ० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थबोधः=

सामाजिक परिवर्तन में

1. प्रस्तावना :

बहुत पुरानी उक्ति है - "साहित्य समाज का दर्पण है" ।
अर्थात् साहित्य एक ऐसा दर्पण है जिसके अंतर्गत तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का चित्र हमें दिखाई पड़ता है । रचनाकार और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है । रचनाकार सबसे पहले समाज का एक सदस्य है, एक सामान्य साधारण आदमी है, रचनाकार बाद में । इस कारण रचनाकार सामाजिक गतिविधियों का आकलन एवं अनुभव एक साधारण व्यक्ति के रूप में करता है । इस अनुभव को वह अपने ज्ञान, एवं दृष्टि के आधार पर एक रचना का रूप देता है । इस प्रकार साहित्य का सृजन करना भी एक सामाजिक कर्म है । जैसे दूसरे कर्म रोजमर्रा जिन्दगी के लिए किये जाते हैं वैसे ही साहित्य का सृजन भी एक कर्म है । यह कर्म भी सामाजिक परिवर्तन के लिए किया जाता है । समाज में व्याप्त कुरीतियों, अधिकांशताओं और तरह- तरह के शोषणों से जनता को मुक्त कराना तथा उनमें चेतना उत्पन्न कराना साहित्य का लक्ष्य है । इस प्रकार साहित्यकार समाज का बेहतर दिशा की ओर ले जाने का प्रयत्न सतत करता रहता है । इस कार्य के लिए वह समाज में व्याप्त अनिर्वोष

को पहचानने की कोशिश करता है। जो रचनाकार इस प्रक्रिया में सफल होकर अपनी रचना में इस अन्तर्विरोध का चित्रण यथार्थ के साथ करता है वह रचनाकार महान माना जाता है। अक्सर समाज के अन्तर्विरोध की पहचान करते समय अनेक प्रकार के दबाव पड़ते हैं जिसके कारण वह ठीक से पहचान नहीं कर पाता।

सामाजिक परिस्थितियों का आकलन करते हुए उसमें निहित समस्याओं को उजागर करना रचनाकार का कर्तव्य माना जाता है। इसके लिए रचनाकार का जीवनानुभव रचना करते समय अत्यंत सहायक होती है। वह रचना करते समय अपने जीवन में घटित छोटे-छोटे अनुभवों तथा स्थितियों को व्यापक फलक प्रदान करता है। जिसके कारण रचना में यथार्थ का चित्रण सही मायने में प्रस्तुत होता है और रचना में जीवंतता झलकती है। ऐसी रचना कालजयी कृति भी हो सकती है।

रचना में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण स्थावत रूप से होने का कारण रचनाकार अपने समाज तथा युग से केवल प्रभावित ही नहीं होता बल्कि सक्षी भोक्ता भी होता है। वह एक साधारण जनता के समान सामाजिक अनुभव को प्राप्त करता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में विशेषतः उपन्यास क्षेत्र में सामाजिक परिदृश्य का चित्रण अधिक व्यापकता के साथ हुआ है। सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करने में प्रेमचन्द प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज में व्याप्त सभी प्रकार के समस्याओं का चित्रण किया है। अपने उपन्यासों के माध्यम से वे विशेषतः नारी संबंधी समस्याओं का विस्तार से उल्लेख करते हैं। प्रेमचन्द के बाद अनेक उपन्यासकारों ने

अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण यथार्थ के धरातल पर स्वाभाविक रूप से चित्रित किया है। ऐसे उपन्यासकारों में खान्दाना, अमृतलाल नागर, रागिय राघव आदि प्रमुख हैं।

2. डा० प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण:

डा० प्रभाकर माधवे ने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है। इन के उपन्यासों में समाज के अनेक पहलुओं पर विचार किया गया है। समाज के प्रत्येक अंग, प्रत्येक वर्ग का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया गया है। सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते समय डा० माधवे ने प्रत्येक समस्या का मूलभूत कारण खोजने का प्रयास किया है। इनके उपन्यास अधिकतर शहरीय परिसरों में लिखे जाने के कारण शहरीय समस्याओं का चित्रण अधिक होने का आभास होता है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि इनके उपन्यासों में ग्रामीण सामाजिक समस्याओं का चित्रण नहीं हुआ। इनके उपन्यासों में ग्रामीण सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी थोड़े ही हुआ है जैसे शहरी समस्याओं का चित्रण हुआ है।

वस्तुतः माधवे जी के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक समस्याओं को हम पाँच भागों में बाँट सकते हैं। ये हैं - एक नारी संबंधी समस्याएं, दूसरा पीढ़ियों का अंतराल, तीसरा युवावर्ग की समस्या, चौथा रंगरेड बनाम वर्णभेद समस्या और पाँचवाँ - अन्य सामाजिक व राजनैतिक समस्याएं। इन समस्याओं को हम निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर माधवे जी के उपन्यासों का विश्लेषण करेंगे।

1. नारी जीवन का यथार्थ
2. रंगभेद बनाम वर्ण भेद - पश्चात्य एवं भारतीय जीवन का यथार्थ
3. पीढ़ियों का अंतराल और बदलते जीवन मूल्य
4. युवावर्ग : समसामयिक यथार्थ
5. समाज और राजनीति में फैली अनेकता

2.1. नारी जीवन का यथार्थ :

आधुनिक काल में गद्य साहित्य के विकास में उपन्यास का योगदान सर्वाधिक रहा है। ऐसा कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि गद्य का विकास मात्र उपन्यास विधा से ही हुआ है। उपन्यास विधा का लोकप्रियता के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं। किन्तु सबसे महत्वपूर्ण कारण शायद यही होगा कि विशेषतः भारत के संदर्भ में उसमें महिलाओं की भागीधारी अधिक रही। अर्थात् उपन्यासों को पढ़ने वाले पाठकों में और उपन्यासों में चित्रित छद्मनायों में महिलाओं का वर्चस्व रहा। इसी कारण भारतीय समाज में नारी की स्थिति एवं गति को बहुत ही कुशलता से देखने का अवसर पाठकों को मिला है। जहाँ तक हिंदी उपन्यासों का संबंध है - कई उपन्यासकारों ने महिलाओं के समस्याओं के संदर्भ में अनेक प्रख्यात उपन्यास लिखा है। प्रेमचन्द, जयकिशोर प्रसाद भगवतीचरण वर्मा, जेनेन्द्र, अशोक, अमृतलाल नागर, मन्नुभण्डारी खासाल आदि विख्यात उपन्यासकारों ने अपनी अपनी दृष्टि से भारतीय समाज में स्त्री के स्थान के संबंध में उसकी समस्याओं के संबंध में व्याख्यायित किया है।

डा० प्रभाकर माचवे भी इसी ही कोटि के साहित्यकार है जिन्होंने अपने लगभग समस्त सोलह उपन्यासों में से कुछ में प्रमुख रूप से तथा कुछ में गौण रूप से नारी जीवन के यथार्थ से पाठक को अवगत कराया है। डा० माचवे ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन के प्रत्येक पहलु को उजागर करने का प्रयास किया है जिसमें वे सफल भी हुए हैं। नारी जीवन पर आधारित उनके उपन्यासों में "परन्तु", "एकतारा", "दाभा", "दर्द के पेखन्द", "लक्ष्मीबेन", "दशभुजा" और "अनदेखी" प्रमुख हैं। इन उपन्यासों में भारतीय नारी के जीवन में छिहित होने वाली समस्याओं का चित्रण यथार्थ के साथ किया गया है। कुछ कुछ उपन्यासों में भारतीय नारी का पारचात्य नारी से भी तुलना करके देखा गया है।

डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में चित्रित नारीसंबंधी विचारों को हम निम्न प्रकार विभाजित करके अध्ययन कर सकते हैं। ऐसे तो नारों की समस्याओं को और उसकी सामाजिक स्थिति को छिण्टत करके तो देखा नहीं जा सकता & सभी समस्याएँ एक दूसरे से पिरोये हुए रहते हैं। इसलिए अलग अलग सिर्फ अध्ययन की दृष्टि से देखा जा रहा है। (जो इस प्रकार हैं—

भारत में नारी की स्थिति, नारी का सहज स्वभाव, अविवाहित नारी, असहाय या दुःखीयारी स्त्री, पुरुष पर्वस्व वाले समाज में नारी, समान अधिकार का प्रश्न: स्त्री - पुरुष संबंध, आर्थिक स्वतंत्रता और स्त्री समस्याएँ जैसे - दहेज, ववाह, बाल विवाह, सती, विधवा, देव्या देवदासी, अत्याचार, प्रेम धोखा आदि।

माधवे जी ने महिलाओं की समस्याओं का चित्रण सामाजिक यथार्थ के अनुकूल किया है। उन्होंने विशेषतः आधुनिक नारी के साथ समाज में घटित होने वाली समस्याओं को उजागर किया है। वे नारी को अस्वतंत्र व्यक्तित्व के साथ आगे बढ़ने की कामना करते हैं। वे मानते हैं कि देश के निर्माण में नारी का पूरा-पूरा सहयोग होना चाहिए। "नारी का क्षेत्र केवल 'चक्की-घुलहा, जूचा-बूचा, मंदिर कुंविन बिहल चर्च' तक ही सीमित नहीं है। हमारे देश में बांधी शक्ति को हम इस तरह जाया कर रहे हैं जबकि विदेश में बड़ी ताकतों ने उसका पूरा उपयोग कर लिया है।"¹

2.1.1. नारी : विषयक अवधारणा :

आधुनिक भारत में "स्त्री" की जागृति में कोई खास परिवर्तन अभी नहीं आ पाया है। वह नारी ऐसे ही है जैसे मध्यकालीन समाज में शोषित हुआ करती थी। सब से विचित्र बात यह है कि अपने देश में स्त्री को देवी समान मानते हैं किन्तु उसके साथ आदमी का बराबरी पुरु के समान होता है। ऐसे आदमियों के बीच रहने वाली एक स्त्री की दयनीय स्थिति का चित्रण माधवे जी ने अपने उपन्यास "दशभुजा" में किया है। "दशभुजा" उपन्यास की भूमिका में वे लिखते हैं - "भारत में नारी देवी है, शक्ति है, भारत 'माता' है। और उसी देश में जहाँ योगी अरविन्द ने महाशक्ति के तीन रूप - महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली बताये थे - वहीं उस आधा शक्ति का रहस्य बयां कर डाला

1. आधारानी चोरा - भूमिका - डा० प्रभाकर माधवे : भारतीय नारी : दशा और दिशा

है। बाकी दुनिया रसोई घर, जजान-बच्चा और जर्जर अन्धस्त्रियों में जकड़ी पड़ी है। स्त्रियों की साक्षरता, स्वतंत्रता के तैतीस वर्ष बाद और एक दशक से ऊपर एक महिला प्रधान के होते हुए अभी भी नारी दयनीय और शोचनीय अवस्था में है। यह उपन्यास उसी आक्रोश का एक चित्र है, एक असहाय स्त्री की दृष्टि से¹ इस प्रकार माचवे ने अनेक उपन्यासों में स्त्री संबंधी समस्याओं तथा उसके आत्म-यत्नाओं के संदर्भ वास्तविकता के साथ समाज का चित्रण किया है।

माचवे ने न केवल स्त्री के समस्याओं तथा आत्म-यत्नाओं का ही चित्रण नहीं किया बल्कि स्त्री के सहज गुणों का तथा उसके प्रति आदमियों का स्ख का भी यथातथ्य चित्रण करने का प्रयास किया है। "एकतारा" उपन्यास में नारी को मोम तथा एकतारे की उपमा दी गयी है। पुरुष के बिना स्त्री को अधूरा मानने की संस्कृति अभी बची हुई है। इस उपन्यास में "तारा" की विमाता चाची कहती है - "तारा अभी तु नादान है। हरजत फिजजत कुछ नहीं।" स्ख पुरुष स्त्री की ओर एक ही नजर से देखते हैं। वह उनके लिए मोज का एक साधन है एक शिकारी की ओर किस-से नजर से देखता है? आज तु भरम में है तारा, पर पुरुष के प्रेम के संगीत के कई तरह के साज होते हैं, स्त्री का प्रेम एकतारे की तरह है। उस एक तार को तोड़ दो, तो काठ बचा रहेगा।² इसी उपन्यास में एक जगह "तारा" सोचने लगती है "पुरुष उस वादक की तरह है कि जिसके पास जलतरंग की सात कठोरियां हैं, इस राज के कई तार हैं, यूनानी वीणा के बक्कीस तार हैं। मगर १ वह तो एकतारा है,

1. डॉ० प्रभाकर माचवे - भूमिका - दशरुता - प्रकाशित सन 19 ।

2. एकतारा - पृ. 22

जिसका तार टूट जाने पर काठ बचा रहता है । पर यह उपमा सचमुच ठीक है क्या ? क्या स्त्री वीणा नहीं है ? क्या काठ का भी वाद्य नहीं बनता ?¹ इस प्रकार "तारा" स्वयं सोच रही थी कि क्या स्त्री हमेशा किसी पर निर्भर ही रहना है ? उसमें अपने प्रति उदास की भावना जागृत हुई ।

डा० माधे जी ने "स्त्री" के संबंध में संसार के विद्वानों के विचारों को "ब्रामा" उपन्यास में एक जगह प्रस्तुत किया है । ये विद्वान पश्चिमी हैं और स्त्री को कुछ नकारात्मक दृष्टि से देखा है । "ब्रामा" उपन्यास में "श्यामा" अपनी छाया में इन विद्वानों के उद्धरणों को लिखी है - उसमें से कुछ इस प्रकार हैं -

"मेरा ख्याल है कि मनुष्य जो चीजें सुधार सकता है उनमें स्त्री अंतिम वस्तु है - मेरे विचार।"

स्त्रियों की हाँ और नहीं में एक आलपिन भी छुल नहीं सकती

- सैर्वांतीस

स्त्रियाँ जब अकेले में होती हैं, तब कैसे समय बिताती हैं यह यदि पुरुष जान ले तो वह कभी शादी ही न करे - जो हेनरी

इस्वर ने स्त्री बनायी और उसी क्षण से जीवन की नीरसता नकट हुई परन्तु उसके साथ ही साथ कई चीजें नकट हो गईं । स्त्री इस वर की दूसरी गलती है - नील्सो।

"परन्तु स्त्रियों से नफरत करने वाले इन सब पुरुषों के मन में स्त्री के प्रांत गहरा नकारात्मक आकर्षण होता है" - श्यामा ।²

1. एकतारा - पृ. 28

2. ब्रामा - पृ. 36

हसी उपन्यास में दूसरी ओर एम पी साहू को जो परम्परा वादी है और स्वयं को भारतीय संस्कृति के रक्षक मानते हैं, रात में नींद नहीं आई तो "कल्याण" मासिक का एक पुराना मोटा क्लिपार्क नारी के ऊँट उठाकर पढ़ने लगते हैं "जहाँ जहाँ उनकी नजर बटकी वे अक्षरों में थे: "स्त्री की सृष्टि जगत को सुगन्ध करने के लिए नहीं, अपने पति देवता को सुख देने के लिए हुई है - एकमूर्त बर्त"।

हिन्दुओं में स्त्रियों को जितना सम्मान दिया जाता है, उतना संसार की ओर किसी प्राचीन जाति में नहीं दिया जाता ।" विरसन

"स्त्रियों के बाहर के कार्यों में लगे रहने से काम नहीं चलेगा । हमारे देश की प्रत्येक महिला को गृहिणी और जननी बनना पड़ेगा ।"
- हेर विलर

"स्त्रियों को किसी भी वय में स्वाधीन छोड़ना उचित नहीं" : हेरसन

"पुरुषों के अक्षीन रहने में ही स्त्रियों की सबसे बड़ी शोभा है -
रम्यसमारिस"।

इस प्रकार से "स्त्री" के संबंध में भिन्न भिन्न व्यक्तियों के भिन्न भिन्न विचार हो सकते हैं । "आभा" उपन्यास में आभा को परित्याग करने वाला "श्री" भी नारी के संदर्भ में कुछ ऐसे ही विचार रखता है -
"प्रेमी श्री, चित्रकार श्री, जून विभाग में काम करने वाला सरकारी नौकर श्री सोचा रहा था कि नारी के विषय में और चाहे कोई उपमा लही हो या न हो, यह निश्चित है कि वह नदी की भाँति है । यह स्वोत्पत्ति है, जलप्रपात की यूनानी देवी डीकैडिया, डेविनी, तटिनी

पर्यस्विनी, वारिहनी, सारि, इन सब नामों से पुकारी जाने वाली सजा नदी...नारी भी वही है।¹ नदी, नारी और कवि-तीनों के एक देने के लिये निर्मित हुए हैं। उन्हें यायक मत बनाओ, संस्कृति के ठेकेदारों। वे दाता हैं। श्री सोचता रहा...² उपन्यासकार शंकरन से नारी का सर्वोच्च परिभाषा दिलवाता है। शंकरन मीनक्षी से जो आभा की मिला है, कहता है - "नारी क्षण भर की प्रेयसी परन्तु अनन्तकाल की माता है।"³ "लक्ष्मीबेन" उपन्यास में मुग्धा कहती है कि "पुरुष भूल जाते हैं कि नारी के लिए प्रेम सर्वस्व दान है। पुरुष के लिए यह मात्र क्षणिक उन्माद और शारीरिक काम पूर्ति..."⁴

वस्तुतः डा० माधवे ने नारी के सहज गुणों को उजागर करने के लिए अपने उपन्यासों में महान उक्तियों को यथावत् स्वीकार किया है और कहीं कहीं उनके उक्तियों को उपन्यास के पात्रों के माध्यम से कलवा दिया है। कुल मिलाकर माधवे जी यही कहना चाहते हैं कि स्त्री के स्वभाव को देखकर संसार के अनेक लोगों ने अपने अपने नजरिये से व्याख्यायित किया है। भारतीय संस्कृति के अनुसार वह "क्षण भर की प्रेयसी परन्तु अनन्तकाल की माता है। इस भावना को ही स्थापित करने की केटा की गई है।

2.1.2. नारी की असहायता :

डा० प्रभाकर माधवे ने अपने उपन्यासों में स्त्री को दुःखी, असहाय अन्यायित बेसहारा दिखाया है। इस प्रकार स्त्री का चित्रण

1. आभा - पृ० 41-42

2. आभा - पृ० 42

3. आभा - पृ० 108

4. लक्ष्मीबेन - पृ० 87

करते हुए स्त्री बयों इस प्रकार अपने दुख को डेल रही है १ इस दुख को दूर करने का मार्ग क्या नहीं है १ आदि प्रश्नों पर गंभीरता पूर्वक सोचने के लिए विव्हा किया है । उपन्यासों में अनेक स्थानों पर स्त्री की दुःख स्थिति को बहुत ही मार्मिकतापूर्वक स्थितिनाओं के साथ चित्रित किया गया है ।

"एकतारा" उपन्यास में माधवे ने एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया है जिसमें समाज को बदलने का उत्साह है, उर्भंग है किन्तु उस स्त्री के साथ समाज में हर समय प्रतिरोध होता रहता है । "तारा" इस उपन्यास की नायिका है जो क्रान्तिकारी विचारधारा की है । वह क्रान्ति करना चाहती है इसके लिए घर से सभी बन्धन तोड़ कर निकल पड़ती है । किन्तु जब वह पुलिस धेन देखकर सोचने लगती है - "बची, पुलिस के फंजों से बची । एक ओर पुरुष, दूसरी ओर जेल । क्या क्रांतिपथ का अनुसरण करने वाली एक ऐसी नारी के लिए तीसरी कोई राह ही नहीं है १" वह सोचने लगती है - "क्या नारी आज के समाज में, या कभी भी अकेली नहीं रह सकती १" फिर आगे विचार करने लगती है - "स्त्री का जब तक विवाह नहीं होता तब तक वह पिता की विवाह होने पर पति और पति के मरने पर पुत्र की सम्पत्ति है । छिः ऐसी संस्कृति पर जहाँ स्त्री को ढोल शूद्ध, दास और पशु की भाँति एक अधिकार में रखने योग्य वस्तु मान लिया गया है १" तारा नारी के जीवन के बारे में सोच सोच कर बहुत ही दुखी होती है । वह ऐसे स्थिति से नारी को ऊपर उठाना चाहती है । किन्तु वह असहाय रह जाती है । यह कार्य

1. एकतारा - पृ. 29

2. एकतारा - पृ. 34

3. एकतारा - पृ. 34-35

उसके शक्ति से बाहर का है। ऐसा महसूस करती है। तारा सोचने लगती है — "भारतीय नारी की जीवन साधकता अंत तक किसी जोगी के अंग पर मलने की भस्मी होने में ही है क्या? क्या वह रजकण है निरी छल की देरी, कि जो चाहे आवे उसे पेरों तले रोदे और ठुकराता छे। या वह धरित्री है, वह सृष्टिका जिसमें से लाख लाख शक्तियाँ फूटते हैं। जो सुजल और सुफल से भरी है। वह जिससे अधिक मुद्रा में कवि फुलते हैं।" माँ, तुझे किसने कहा कि तू अक्लाना है?"¹

तारा सोचती है कि नारी अपना अस्तित्व स्वयं रखती है। उसको लगा कि "यह सब कविक्रम मक्कार है, झूठे हैं। नहीं है नारी लता, नहीं है मोमबत्ती। वह स्वयं अपना अस्तित्व रखती है। वह अग्नि की चिमकारी है, वह स्वाहा है। वह सप्तसरिताओं की केगवान बाढ़ है वह गंगोत्री है, वह मोम और मधु की निर्मात्री मधुमक्खी है, जो कि निरी चीटी की तरह बाहर से जमा करके अपना घर नहीं बनाती, न निरी मक्खी की तरह अपने अंदर से बाहर तंतु काट कर जाली बनाती है — वह फूलों से पराग लाती है और उसे अपने मोम से ढक्कर जमा कर मधु बना देती है।"² किन्तु तारा का स्नातक जीवन जब अस्त व्यस्त हो जाता है उसके पति बेकार हो जाता है तब उसे लगता है कि स्त्री बिल्कुल असहाय है, वह एकाकी है। "तारा के जीवन संगीत का सम टूट गया था। जैसे उसे लगता था कि कुछ अंतरे पर ठाठ खिंच रहा है — मगर अलाप विस्तार होने से पहले ही अंतिम भरवी की माँग आ गयी। वह इन बोल तानों की तरह तुलना नेवाले दो निरीह जीवों की माँ, एक शराबी और गुमराह गविये की पत्नी तारा, इस दस बीस लाख की बंबई में अकेली पड़ी है। ऐसे उसके कमरे के ऊपर पाँच

1. एकतारा - पृ. 68

2. एकतारा - पृ. 68

मीजले और है, मगर जैसे उसके ऊपर कोई साया नहीं है, सहारे का बाँध नहीं है, सिर्फ खूना आसमान है, तूफानी वादल मँडरा रहे है और बिजली कीध रही है ।*१ इस प्रकार माधवे जी ने नारी की आश्रयहीन भावना को बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित किया है । सामाजिक परिस्थितियों से संघर्ष करते करते "तारा" धूँ जाती है और वह स्वयं को आश्रयहीन महसूस करने लगती है । यही स्त्री की विह्वलता है ।

"आभा" उपन्यास में "आभा" नामक परित्यक्ता का चित्रण किया गया है । आभा को बार बार अपने कियत का याद आने लगता है जिसके कारण वह बहुत दुःखित होखता जाती है । उसे ऐसा लगता है कि यह स्मृति की अपना शत्रु है । उस का मन स्थिर नहीं रहता। वह कभी यादों में कभी दिवा स्वप्नों में खो जाती है । "दिवा स्वप्नों में यो दुबते दुबते वह सबसा सोचने लगी कि मनुष्य की सबसे बड़ी शत्रु स्मृति है । यदि यह सबज संभव होता कि पुराना सब भूल सके तो कितना अच्छा होता । तब कोई मुरकल ही नहीं रहती । सब चीजें जैसे आप से आप होती रहती - जैसे बच्चे घर चीज जल्दी भूल जाते है । पर स्मृति का यह उनसे चिपटे रहना क्या दुःख से ऊँचा हुआ है । पर उत्कट प्रेम के क्षण भी याद आते है और उत्कट दुःख के भी । तो स्मृति उत्कटता से जुड़ी है ।*२

१. फलतारा - पृ. 72

२. आभा - पृ. 70

"आभा" में आभा अपने होस्टल में बैठकर कहानी लिखती है । इस कहानी में "गमले की बेल जो बड़े बड़े लोगों के सुखचिन्त बंगलों में आर्वांगसमें रखी जाती है । वह बगीचे के पेड़े के सुदृढ़ तने से लिपटी वल्लरी बहन से मिली । वल्लरी गमले से कहती है - क्या तुम्हें पानी की जरूरत नहीं होती ? तुम यों ही फूल फूली रहती हो ? तो गमले की बेल उत्तर देती है - "नहीं, नहीं, बहन, गमले की बेल को भी पानी लगता है - सहानुभूति का जल, कुछ थोड़ी मात्रा में क्यों न हो, उसे भी चाहिए । नहीं तो वह सूख जाएगी....." वल्लरी भी कहती है - "सहानुभूति का जल तो मुझे भी चाहिए । बिना "जीवन" के कौन सी बेल बढ़ी है ?" इस रूपक के माध्यम से आभा ने नारी जीवन की व्यथा को स्पष्ट किया है । वह कहना चाहती है कि नारी को विकास करने में सहानुभूति की आवश्यकता होती है ।

"आभा का मन अपने प्रति निष्ठा और लोक निष्ठा की द्विविधा जिम्मेदारियों में खंडित हो उठा । जैसे दो दिशाओं के परस्पर विरुद्ध प्रकाश हों, "स्व" और "सर्व" । पर दोनों क्या एक ही के प्रत्यावर्तन नहीं हैं ? आभा आभा हो उठी । कौन कौन सा लोक मंगल है जो आत्म कल्याण नहीं तो आत्मानन्द का कारण नहीं है, और कौन सी आत्म स्थिती है जो सर्वे लोक हान्तोष की मूक प्रेरणानहीं ? हेतुओं की वृक्ष लेकर है: क्या फूल कर्म का निष्पत्ति नहीं ?" ¹ इस प्रकार आभा ने अपने ही अन्दर "स्व" और सर्व के बीच चल रहे द्वन्द्व के प्रति विचार किया है । वह समझ न ही पा रही है कि कौन सा कार्य लोक मंगल है ? और कौन आत्म कल्याण ? यह भी समझ नहीं कर पा रही है कि

1. आभा - पृ: 87-88

2. आभा - पृ: 88

वया "स्व" और "सर्व" एक दूसरे के विपरीत है ? इस प्रकार परित्यक्ता नारी में एक असहाय और आश्रयहीन भावना मौस्तिक में घर कर लेती है । निराशा धारों और आर्द्राकरत होती है ।

"स्त्री" की सुखा की भावना न केवल भारतीय समाज में महत्त्व रखती है, बल्कि अमेरिका में भी नारी की सुखा की चिंता की जाती है । वहाँ पर भी माँ-बाप अपनी पुत्री की देख बाल की चिंता करते हैं । माकवे जी ने "नीग्रो" जाति के जीवन पर आधारित उपन्यास "जो" में इस तथ्य का जिक्र किया है । रामन के साथ बात करते हुए मिस्टर स्मिथ अपनी बेटाई ठोरा की चिन्ता करने लगता है - "मेरी यही एक चिन्ता है : लड़की ठोरा । सयानी हा गयी । अब वह अपनी इच्छा से अपना जीवन्साथी चुने । तुम जानते हो यह बड़ा सींगिन वक़्त होता है जीवन में - कभी कभी एक जरा सी गलती लड़की के समूचे जीवन को बरबाद कर देती है ।" समाज में "स्त्री" के अंदर आश्रयहीनता की भावना लोगों ने भर दिया है । उसके सामने बार बार यह कह देते हैं कि वह पुरुष के बिना अकेली है और अधूरी है । इस प्रकार कहकर नारी में एक हीन भावना को पैदा किये हैं साथ ही उसमें एक पुरुष के सहारे के कौर अस्तित्वहीन को भावना पैदा की गई है । इस बात को "तीस चालीस पचास" उपन्यास में उधा कहती है - "मैं यहमानती हूँ कि स्त्री के जीवन में ये दूसरी इच्छाएँ बहुत प्रबल होती हैं । ये ही उसके सारे कर्म को नियंत्रित प्रेरित, नियोजित करती रहती हैं । पुराने लोग उसे माँ होने की इच्छा कहते हैं । बाद में लोग उसे प्रणय या काम कहने लगे । पर कुछ ऐसा जरूर उसके मन में युग युग से भर दिया गया कि पुरुष के बिना वह अकेली है, अधूरी है, अधी है ।"²

1. "जो" - पृ. 28

2. तीस-चालीस - पचास - पृ. 40-41

"दर्द के पैबन्द" उपन्यास में पूर्व और पश्चिम की दो नारियों का अन्तर्-और विक्षेप का सुन्दर चित्रण किया गया है। इन दोनों रिक्तियों में एक जैसा ही त्रासदी अन्तर्निहित है। दोनों ही मुक्त पैदना है। वे असहाय है। उनकी आशाएं बिखर गयी है। इनमें से एक नारी है श्रुता जो कालग्राम में बटली के ७० रोबतों से विवाह कर लेती है। उसको एक लड़का जानंद भी होता है। ७० रोबतों पुत्र जानंद को लेकर भाग जाता है। इस प्रकार श्रुता थोड़ा खाने से फूटकर बतारा हो जाती है। उसका प्रेम, पात पुत्र सब थोड़ा था। वह पुत्र के लिए तृपती है। वह कहती है "मेरा सारा ध्यान मेरे दो वर्ष के पुत्र जानंद में लटका हुआ था। डाक्टर के साथ फिर बसने, या उनके दिल को जीतने या हृदय परिवर्तन का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। उनके साथ-साथ मेरा जीवन में कोई संबंध नहीं हो सकता था। मैं यह मानकर चल रही हूँ कि मेरा नारीत्व मातृत्व तक पहुँचा। परन्तु शायद मेरे भाग्य में पत्नीत्व लिखा ही नहीं था। अब यह मातृत्व का जीवन टिका रहे। मेरा पुत्र मुझे मिल जाये तो काफी है। उसी के सहारे मैं यह आगे के जीवन का अल्प अल्प चमकता रहे। वही मेरे भटके हुए जीवन की एकमात्र सार्थकता, एकमात्र दिशादर्शक जानंद है।" श्रुता जानंद के लिए तृपती रहती है। वह पुत्र बटली के किसी कनायालय में था। उसे श्रुता दूर से देख सकती थी किन्तु धोल नहीं सकती थी। यहाँ पर जानन्द तो उसी प्रयोग हुआ है। एक श्रुता का पुत्र, दूसरा सुधा उपन्यासकार ने श्रुता के भावनाओं को दृष्टिगत रूप से प्रकाश किया है। श्रुता कहती है - "जीवन में जानन्द की खोज कितनी कठिन है। वह धर्म मिल भी जाता है तो केवल कुछ क्षणों

के लिए उसे हम दूर से देख सकते हैं, उसे छू भी नहीं सकते। वह हमारी अमूर्त ध्वनि वर कल्पना की तरह है। अपने अस्तित्व के जंगम की छड़ी की ओट हम उसे दूर से किसी लान में गैद उठाते हुए देखते हैं, डोडी दूर में वह गैद भी नजर से गायब हो जाती है और वह आनन्द भी। हम उसे पुकार भर सकते हैं, पर वह हमारी भाषा नहीं समझता, न परधानता है। किसी मजबूरी के मानो यह एकदिवस स्वप्न है, ऐसा नाचक कि जिस तन्त्री को पकड़ने धावो, सिर्फ उसके पंखों पर का परागवर्ष हमारी उंगलियों में रह जाय, स्मृति, चिट्ठाकोष के रूप में। कई बार हम अपनी ही सृष्टि से बेगान हो जाते हैं।¹ इस प्रकार उपन्यासकार माखो ने माखो-हृदय की वेदना का चित्रण किया है।

"किर्गलिय" उपन्यास में भी स्त्री को किसी के सहारे जीने की परिस्थिति पर आलोचना व्यक्त किया गया है। समाजवादी विचार धारा को मानने वाले प्रो० प्रिवेदी कहते हैं - "यह तो हिन्दू धर्म ने मनु महाराज के बाद स्त्री को गुलाम बनाकर रखा है - उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं। जन्मन भोपता का संरक्षण, शादी होने पर पति का पति के मरने पर पुत्र का और इसी मार उसे सदा सहनशीला, धैर्य की पुष्पी पृथ्वी और सब समाने वाली नदी की उपमाएँ दी।"²

"नक्षत्रीय" उपन्यास में भी "स्त्री" अपना आश्रय खोजने में परेशान है। इस उपन्यास की नायिका "लेखा" इतिहास की लेखक है। "लेखा, जो अतीत पढ़ाती है पर अतीत भूलना चाहती है। लेखा, जो

1. दर्द के पद्य - पृ० 89-90

2. किर्गलिय - पृ० 113

अध्यात्म के नाम पर ढोंग फैलाने वाले मिथ्या गुरुओं से बेहद नाराज है -
 उसका बस चले तो बाठिनिस निकालकर वह सारे मंदिर और देवालय मस्जिदें
 और दरगाहें, गिरजाघर और गुरूद्वारे, अग्नि मंदिर और सिनेगोग,
 मठ, और धर्मस्थान, आश्रम और अखाड़े एकदम "राष्ट्रीयकृत" कर डाले -
 और वही अब भीतर भीतर गहरे में कहीं इतनी दूर और बिखर गई है कि
 किसी मेले में खोये हुए बच्चे की तरह वह अपना आश्रय खोज रही है ।^१
 लेखा का जीवन मानों अर्थ हीन हो गया हो । वह सोचती है कि जीवन
 में आखिर बचा ही क्या है ? इतिहास की अध्यापिका, पति परि-
 त्यक्ता, विनोद नामक एक मेधावी बेटे की माँ, उपेक्षिता, एकाकिनী
 समाज सेविका ये सब भूमिकाएँ कहीं एकएक कर गिर जाती है । मानों
 पर्व पर पर्व कोई उसे छील रहा हो । भीतर क्या बचा रहता है ? क्या
 वह केवल शून्य है ?^२

"दशभुजा" उपन्यास में पति द्वारा पत्नी किस प्रकार प्रताड़ित
 होती है । माचवे ने बर्तृत भावुकता के साक्ष्य चित्रण किया है । पत्नी
 को हर वक्त यही ठर सताते रहता है कि पति न छोड़ दे । उस पति
 का आश्रय उसको परम आवश्यक है । इस उपन्यास की नायिका अदिति
 अपने सोमनाथ से परित्यक्त होने से उसके मन में स्मृतियों आ जाती है ।
 वह किस प्रकार छोड़ देने की धमकियों देता था । उसके मन में पति के
 शब्द स्मरण आते हैं । "भैं तुम्हें छोड़ दूंगा । बेकार का बोझ हो तुम ।
 तुम किसी कामकी नहीं । बच्चा भी नहीं पैदा कर सकी । घर से इतना
 सोना क्यों नहीं ले आई कि जन्म भर खाती रहती..."

मे तुम्हें छोड़ दूंगा । तुम ज्यादातर पढ़ी लिखी बयों नहीं हो ?
 मे ही खूबता कमाता हूँ । मेरी ही जिम्मे सब घर बाहर, परिवार वालों
 की चिंता सभाल है । तुम्हें क्या है ? दो जून भात पकाकर रख दो और
 सिंगार बनाव करके गाती बैठो। हर वक़्त गाना, गाना, गाना । मे
 तो बधा गया ऐसे गाने से....

मे तुम्हें छोड़ दूंगा, क्योंकि तुम उस दिन प्योस के उस युवक के
 साथ हँसकर बोली ही बयों ?

मे तुम्हें छोड़ दूंगा, क्योंकि कल तुम्हारे हाथ से दाल में नमक
 बयों कम पड़ गया था...

मे तुम्हें छोड़ दूंगा, क्योंकि तुम कल स्नोरे कुम्कूम लगाना बयों भूल
 गई थी ? क्या मे मर गया था ?...

मे तुम्हें छोड़ दूंगा, क्योंकि तुम मेरे मित्र जब पीने के लिए आये
 तो सामने आकर उन्हें गर्म तली हुई आलू की कटलेट बयों लाकर नहीं
 दी ? क्या बोली, ये गन्दे मज़ाक करते हैं ? वह चाहे जो कुछ करें, मेरे
 मित्र हैं और तुम हो ही इसी लायक... हम भी तो उनके घरों में जाते हैं ।
 पत्नियाँ साथ में पीती भी हैं । तुम्हीं एकसती साधवी हो...

मे तुम्हें छोड़ दूंगा क्योंकि तुमने वह लाल रंग की साड़ी बयों नहीं
 पहनी ? मुझे तो वही प्रिय है ...

लापता उपन्यास में सैठ भफ्फाल अपनी बेटी उषा का विवाह
 वालवारकर नाम एक अजनबी से करना चाहते हैं । उषा सोचने लगती है -
 जैसे उसका अपना कोई मन नहीं है । बाप ने धकेला, वर के पास पैंक
 दिया । घर में पैंका, पुत्र के पास रहने लगी - स्त्री को स्वतंत्रता नहीं

वहमानो निरी गेद है ।¹ इस प्रकार स्त्री को अपनी अव्यवस्थित और स्वतंत्रता के लिए जीवनान्त तक पुरुष पर ही निर्भर रहना पड़ता है । यह सोचकर वह बहुत दुःखित होती है । इसी विषय के संबंध में "शशि" भी शब्द है । "शशि" अखि मेरी बाकी उनका" उपन्यास के पात्र पंडित कृष्ण जी झुला जी की पत्नीसिन है । वह गंगा नदी के प्रवाह को देखते हुए उसके बारे में सोचते सोचते अत्यन्त उदास हो उठती है । "क्या यही एक पक्ष है ? क्या नारी का मोक्ष केवल पितृसेवा, पति सेवा, और पुत्र सेवा में ही है ? क्या उसकी अपनी कोई अलग से इयत्ता नहीं ? क्या वह केवल दूसरे के लिए ही जन्मी है ।"²

"अनदेखी" उपन्यास में नायिका दर्शना भी आश्रयहीन और सहाराहीन भावना से दुःखित होती है । वह अपने जीवन में तीन पुरुषों को देख चुकी है । तीनों के तीनों निष्ठान्ने, बेहमान निष्ठान्ने, पहलासंस्कृत पढ़ाने वाला 40 वर्ष आयुवाला रत्नाकर, दूसरा वामपंथी पत्रकार आनंद और तीसरा विनोद जो दर्शन शास्त्र में एम ए कर के अंधों की समाज सेवा के केन्द्र से जुड़ा हुआ है । फिर भी "विनोद" बाकी दोनों से अलग है वह अंधों की सेवा में लगन है उसकी बढ़ती हुई प्रतिक्रिया को देखकर उस केन्द्र के व्यवस्थापक व प्रबंध कमेटी उसे निकाल देती है । जिससे दर्शना को बहुत दुःख हुआ । दर्शना की दृष्टि घनी जाने के बाद वह बेसहारा हो गई । अपनी इस बेसहारे की भावना को अपनी मित्र "दृष्टि" जिसे दिग्ग कह कर पुकारी है से कहती है - "मैं एक भारतीय निम्न मध्यवर्ग की गरीब नारी, अकेली, उपेक्षिता, विश्वासघात का शिकार बनी साधारण स्त्री - अब न मुझे में कोई विशेष रूप न गुण न विद्या न प्रतिभा । क्या उसका भी ऐसी असहाय स्थिति में कोई भविष्य हो सकता है ? सिवा अंधकार के उसके लिए क्या है ?"³

1. लापता - पृ: 28

2. अखि मेरी बाकी उनका - पृ: 147

3. अनदेखी - पृ: 75

2.1.3. पुरुष प्रधान समाज और नारी :

भारतीय समाज में अभी स्त्री पुरुषों में समानता की भावना नहीं आ पायी है। अभी भी समाज के सभी क्षेत्रों में पुरुष का वर्चस्व बना रहता है। पुरुष के सहानुभूति दया और कृपा की पात्र स्त्री बनी हुई है। कितनेही सिध्दान्तिक या कानूनी अधिकार स्त्री को मिलने पर भी स्त्री पुरुष के समान हो नहीं पा रही है। पुरुष हमेशा उसका शोषण कर रहा है। उसे दबा कर रखा है। पुरुष की अहं भावना को बहुत ही स्पष्ट रूप से अरविंद जेने अपनी पुस्तक "औरत होने की स्त्रा" में चित्रित किया है। पुरुष कहता है - "मैं आदमी हूँ यानी पुरुष, मर्द, स्वामी, देवता मंत्री, संतरी, सानंत, राजा, महाधीश और न्यायाधीश - सब कुछ मैं हूँ और मेरे लिए ही सब कुछ है या सब कुछ मैं अपने सुख सुविधा, भोग विकास और ऐश्वर्य के लिए बनाया है। सारे धर्मों के धर्मग्रंथ मैं ही रचे हैं। धर्म, अर्थ, समाज, न्याय और राजनीति के सारे कायदे कानून मैं बनाये हैं और मैं ही समय समय पर उन्हें परिभाषित और परिवर्तित करता हूँ। धर, खेत, खलिहान, दुकान, कारखाने, धन, दौलत, सम्पत्ति, साहित्य कला, शिक्षा, सत्ता और न्याय सब पर मेरे अधिकार हैं। सभी धर्मों का भगवान मैं ही हूँ और सारी दुनिया मेरी ही पूजा करती है। तुम औरत हो यानी मेरी पत्नी, स्नेया और दासी - जो कुछ भी हो, मेरी हो और मेरे सुख, आनंद, भोग और ऐश्वर्य के लिए सदा समर्पित रहना ही तुम्हारा परम धर्म और कर्तव्य है। मेरे हुक्म के अनुसार चलती रहोगी, सम्पूर्ण रूप से समर्पित होकर वफादारी के साथ मेरी सेवा करोगी तो "सीता", "सात्री" और "महारानी" कहलाओगी। सुख, सुविधाएँ कपड़े, गहने, धन, ऐश्वर्य, मान, सम्मान और प्रशिक्षण पाओगी। मगर मुझ से अलग मैं मेरे विश्व आँख उठाने की कोशिश भी करोगी तो कीड़े-मकोड़े की तरह कुचल दी जाओगी। कोई तुम्हारी मदद के लिए आगे नहीं आयेगा।

समाज धर्म, कानून, मठाधीश, मंत्री, नेता और राजा सब मेरे हैं, बल्कि ये ही वे हथियार हैं जिनसे मैं इस दुनिया में ही नहीं, दूसरी दुनिया में भी तुम्हें नहीं छोड़ूंगा। पहली और दूसरी दुनिया मैं हूँ। तुम अर्द्ध महज तीसरी दुनिया हो, तुम्हारी न कोई जगहिल सुनेगा, न अपील।¹

वस्तुतः प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में भी पुरुष की इसी अर्द्ध भावना का चित्रण किया गया है। नारी पुरुषाधिपत्य को विवशता के साथ स्वीकारती है। पुरुष प्रधान समाज में "नारी" का किसी पर भी अधिकार नहीं है। वह सिर्फ पुरुष के हाथ में कठपुतली मात्र है। "एकतारा" उपन्यास में तारा कोई आश्रय नहीं देता। वह सोचने लगती है - उसमें मुझ जैसी घर से प्रताड़ित, समाजनिन्दिता की तो बात ही दूसरी है। उसके लिए प्रेम किसी के पास नहीं है। भारत में स्त्री भोग्य है जिस पर पुरुष का एकाधिकार है। जिस चीज से हम आनन्द उठाना चाहते हैं, उससे प्रेम अनावश्यक बात है। आनन्द मिले इतना ही काफी माना जाता है। प्रेम का स्वांग भी अन्ततः अपनी कलाई खोल देता है, और उसमें से विदूष भोगलिप्सा झाँक पड़ती है। जैसे हरियाली के नीचे साँप छुबका हो, वैसे पुरुषों का सथाकथित प्रेम जहरीली भोग लिप्सा मात्र है। मैं भयानक पुरुष द्वेषिनी बनती जा रही हूँ।²

"दाभा" उपन्यास में नायिका दाभा जो परित्यक्ता नारी है। होस्टल में रहती है। उसके पास एक मित्र मीनक्षी "स्त्री" मासिक पत्रिका लाती है और उसमें परित्यक्ता स्त्रियों की कहानियाँ पढ़ कर सुनायी है इसके बाद वे दोनों में वाद विवाद होता है और दोनों पुरुष को कोसने

1. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 26

2. एकतारा - पृ. 46

लगती है। स्त्री को अन्याय करने वाले पुरुष पर गुस्से से मीना कहने लगी - "पुरुष निसर्गतः बहुवर्त्नीवादी होता ही है। उसके शब्द कोश में एक निष्ठा का नाम का शब्द नहीं है।"¹ इस प्रकार पुरुष स्त्रियों की छिलोने समझ कर अनेक स्त्रियों से संबंध रखता है। इस संबंध में यदि कोई स्त्री द्वारा पुलिस में रिशक्कायत करने पर भी कानून पुरुषों का पक्ष ही लेता है। अरविंद जैन लिखते हैं - "अदालत कहेगी - कोई जवान लड़की शादी के वाक्ये को सच मानकर सभोग की सहमति देती है और इस प्रकार की यौन क्रीड़ाओं में तब तक लिप्त रहती है जब तक गर्भवती न हो जाये। तो भारतीय दंड संहिता की धारा 90 कोई मदद नहीं कर सकती और लड़की को करतूतों को माफ करके लड़के को अपराधी नहीं ठहराया जा सकता।"²

"दामा" उपन्यास में ही श्री से शी चुन कहती है कि "स्त्री आज पुरुष की क्रीत्वासी है। आर्थिक दृष्टि से उसकी गुलाम है। इसलिए पुरुषों ने अपनी अलोच कामेच्छा के लिए और स्वायत्तपूति के लिए पतिव्रत का टकोस्ला युग युग से चलाया। उसे धर्म के मंत्र जल से अभिर्चिचित किया और पवित्र संस्कार बनाया।"³ इस प्रकार पुरुष अपनी स्वाई दृष्टि से धर्म का बाठ लेकर युगों युगों से स्त्री को वह अपनी दासी बना लिया है। वह भी सर्वमान्यता के आधार पर। स्त्री की विव्वाता यह है कि वह पुरुष जो पति है उससे अलग होना चाहे तो भी नहीं हो सकती है। इसके लिए पति की सम्मति आवश्यक है। वह स्वतंत्र रूप से पति से अलग नहीं हो सकती। "औरत होने की सजा" में पुरुष का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है - "पत्नी हो तो पत्नी बनकर रहो - जैसे मैं चाहूँ, जहाँ चाहूँ,

1. दामा - पृ. 45

2. अरविंद जैन - औरतहोने की सजा - पृ. 27 [जयंती राम पंडा 1984 क्रिमिनल ला जनरल 1535 [कलकत्ता] से उद्धृत]

3. दामा - पृ. 90

पत्नी का पहला कर्तव्य है अपने पति की आज्ञा के सामने आज्ञाकारी ढंग से अपने आप को समर्पित कर देना और उसकी छत के नीचे उसकी सुरक्षा में रहना। ए.आई.आर. 1966 मध्य प्रदेश 212। उन्हें बिना उचित कारण बतायेअलग से घर बसाने का तब तक अधिकार नहीं है जब तक में न कह दें कि मैं उन्हें नहीं रख सकता। या रखना चाहता। फिर भी अगर तुम नहीं मानोगी तो मुझे विवशा होकर कोर्ट से मेरे साथ रहने की डिक्ली लानी पड़ेगी। भारतीय विवाह अधिनियम की धारा 9 ए.आई.आर. 1983 आंध्र प्रदेश 356 के अनुसार यह प्रावधान सिविलियन के अनुच्छेद 14 और 21 के विरुद्ध है। लेकिन अपील में सुप्रीमकोर्ट ने हाई कोर्ट के इस फैसले को रद्द कर दिया। ए.आई.आर. 1984 सुप्रीमकोर्ट 1962।¹

"तीस चालीस पचास" उपन्यास में मोहन भी यही बात कहता है कि "हमारे यहाँ सिर्फ किताबों में लिखा है कि स्त्री को देवी मानो, पूजो, कीरदा जिन्दगी में हकीकत यह है : इतना बड़ा जन्म जितना हिन्दू नारी के साथ हुआ है, शायद ही हुआ हो।... हमने स्त्री को खकी कुर्ते और जच्चे बच्चे से बाँधकर रख दिया है। ब्रिटलर ने भी यही कहा था - स्त्री का आदर्श है चर्च, बच्चे, रसोईघर।"² इस प्रकार पुस्तक ने रत्ती को अपनी दासी बना लिया है।

"दर्द के पैबन्द" में डा० रेश्मिती श्रुता को धोखा देकर चले जाने पर सीता माण्डियम कहती है - "देखो गरीब बेचारी श्रुता का क्या हुआ। उसकी जिन्दगी को उसने इस तरह जुटला कर फेंक दिया, जैसे बाबूदी शादी के बाद जिस एक च्याले से शराब प्यावर एक साथ पीते हैं, उसे तोड़ डालते हैं। मनुष्य को किसी भी अन्य को इस तरह "उपयोग वस्तु" की

1. औरत होने की सज़ा - पृ. 32

2. तीस चालीस पचास - पृ. 47

तरह "ट्रीट" करने का क्या अधिकार ?¹ इससे स्पष्ट होता है कि पुरुष स्त्री को कुछ वस्तु समझता है और उसे कभी कभी पर भी छोड़कर चला जा सकता है। इसी उपन्यास की एक अन्य नायिका रीटा जो विदेशिनी है भारत की गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा की गाथा सुनकर यहाँ देखने आयी है। रीटा भारतीय सामाजिक जीवन में स्त्री पुरुषों की समानता को देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित हो जाती है। वह कहती है - "नारी के प्रश्न का एक मात्र उत्तर पुरुष के पास होता है - ज्यादा प्रश्न मत पूछ। तेरा सिर तेरे कंधों पर नहीं रहेगा। इसलिए भारत में अपने अनुभवों की तरह की कहानी सुनाने से पहले यह मन ही मन प्रतिज्ञा कर लेती हूँ कि मैं अंतिम प्रश्न नहीं पूछूँगी। अंततः पुरुष प्रधान समाज में प्रथम भी पुरुष ही है, अंतिम भी पुरुष ही। प्रश्न भी पुरुष ही है, उत्तर भी पुरुष ही है।"² इस तरह से पुरुष प्रधान समाज स्त्री के प्रति एक अतिरिक्त मचा रखा है कि स्त्री उसे प्रश्न भी न पूछे। वह जो कहता है वही करना मात्र स्त्री का कर्तव्य रह गया है। इस प्रकार पुरुषाधिक्य समाज का अक्लौकन एक विदेशी महिला के माध्यम से स्थावत रूप से माधवे ने अपने उपन्यास में चित्रित किया है।

भारतीय समाज में परिवार में ही यह धारणा को उपजाती है कि स्त्री और पुरुष के कार्य क्षेत्र अलग है। पुरुष जैसा करता है वैसा स्त्री नहीं कर सकती। इस प्रकार परिवार में ही पुरुष का वर्चस्व अनायास स्थापित होने लगता है। "किसलिए" में भी "वल्लरी अपने पिता सुलहभण्यम के मना करने पर भी कमीर में एक रेडियो स्टेशन पर आर्टिस्ट के रूप में चली जाती है। उसके बाद छोटी बहन ने फंजावी युद्ध से प्रेम

1. दर्द के पेजन्द - पृ. 85

2. -वही- पृ. 97

विवाह कर लिया और माँ की मृत्यु हुई। उनके पिता इन सब घटनाओं का दोष कलरी को देते हैं। पिता जी पुराने परम्परा के आदमी हैं वे स्त्रियों को औज़ी साहित्य आदि पढ़ने भी नहीं देते। इस पर कलरी कहती है कि पिता जी आप तो विदेश गए और आपने भी औज़ी साहित्य पढ़ा होगा तोबे सुलहमय कहते हैं - "पुस्कों की बात और है। वे सब कुछ पचा लेते हैं। शिव ने हलाहल पी लिया था। पार्वती ने नहीं। उसके कर्में में तो सती बनकर मुक्ति होना और अंग-अंग टूटकर सारे भारत पर गिर पड़ना ही बदा था। देवी जगदीश। मेरी बेटियों को कुछ बुद्धि दे।"¹

अपने समाज में यह कुरीति कही जा रही है कि लड़की का जन्म अशुभ है। इस समस्या को माधवे जी ने अपने उपन्यास "लक्ष्मीबेन" में उजागर किया है। लक्ष्मीबेन अपने विद्यार्थियों को लेकर बस्ती वालों की समस्याओं को सुलझाने के लिए निकल पड़ती है। वह एक झोपड़ी के पास जाती है। वहाँ एक स्त्री को लड़की हुई थी। घर की बूटी ने कहा - "फिर बेटी हुई। मेरी बेटी की तो किस्मत ही फूटी हुई है।"² और यह कहकर वह दहाड़ मारकर रोने लगी। इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उपन्यासकार माधवे जी लिखते हैं - "यानी आज, 1976 में भी उपन्यास का प्रकाशन काल 1977, यानी नारी मुक्ति दशक का एक बरस पूरा होने पर भी स्त्रियों को लड़की का जन्म अशुभ लगता है। हद हो गई और ऐसे अज्ञान पीड़ित घर सेव्हों होंगे। यह सारा "यज्ञ न्यास्तु पुज्यति रभते तत्र देवता" वाला देश है।"³ "औरत होने की सजा" में पुष्प नारी से कहता है - "मुझ से क्याह किया है तो पत्नी होने का धर्म निभाओ, आओ, मेरे सम्पत्ति के वारिसों को जन्म दो, पुत्र जन्मोगी

1. किसलिए - पृ. 36

2. व 3. लक्ष्मीबेन - पृ. 43

तो भाग्यशाली और लक्ष्मी कल्लाओगी, छत पर चढ़कर नन्द थाली
 बजायेगी और सारे शहर में लहलहा बटि जाएगी - पर याद रखना बेटियाँ
 जन्मी तो कुल्हाड़ी और अभागी मानी जाओगी क्योंकि छोरियाँ होने
 की झुगी सिर्फ केरायाओं के यहा मनायी जाती है । मैं तो पैदा होते
 ही गला गला घोट दूंगा, गले में दबा दूंगा या गंगा में प्रवाहित कर
 दूंगा । ऐसे अब तो बच्चे होने से पहले ही "एमनियोस्टीसिस" टेस्ट करवा
 लो । लड़की है तो गर्भपात सारे डॉक्टरों सेही मुक्ति ।¹ यह अपने वर्तमान
 समाज में स्त्री के प्रतिपुंस्व का रूप है ।

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास में लेखिका कहती है कि पुंस्व लेखक स्त्रियों
 के प्रति सही दृष्टिकोण नहीं रख पाते हैं । ये हमेशा स्त्रियों को अपने
 से नीचे ही रखना चाहते हैं । वह कहती है - "पर पुंस्व लेखकों का उनके
 [स्त्री लेखिका] प्रति देखने का रवैया मुझे जरा भी नहीं भाता था । कुछ
 लोग तो यह मान कर चलते हैं जैसे कि उनके सामंती और पाचीन मतवादी
 संस्कार हैं कि मानो ये स्त्रियों को अपने से नीचा, कुछ कम, कुछ शूद्र
 और पशु के समान मानते हैं । यह दृष्टिकोण बदलना है । शास्त्रों में
 एक ही रथ के दो पहियों की बात कही जाती रही है । दोनों की
 समानता के आधार पर ही इतने विराट शिल्पकर्मकारीन्द्रेवर के बने और
 आज के पुंस्व ने उसे इतना दयनीय और सहाय्युक्ति का पात्र बना दिया ।²
 इसी प्रकार पुंस्व स्त्री को हमेशा अपना दासी बनाकर रखना चाहता है ।
 इसी उपन्यास में लेखिका की मित्र सीमा की ऐसी ही कहानी है - सीमा
 एक कवि कलाकार कल्लाने वाला मनोहर के प्रेम जाल में फँस गई और ऐसी
 दशा आ गई कि सीमा मनोहर के बिना जीवित नहीं रह सकती थी ।
 दोनों का विवाह होगया । तब वह मनोहर ने अपना पुंस्व रूप दिखाना
 शुरू किया । वह पत्नी को दासी और पीन भुजिया के रूप में उपयोग करना

1. अरजिंद बेन - औरत होने की सजा - पृ० 31

2. लक्ष्मीबेन - पृ० 97

चाहता था । अपने दोस्तों के साथ घर में बैठकें करता था और सीमा उनका आतिथ्य करती थी । मनोहर की कमाई कुछ भी नहीं थी । "धीरे धीरे शराब के नौ में धुत उसने सीमा को पीटना शुरू किया । सुस्तकृत परिवार की सीमा घर की अच्छी थी और अपने भेरे से वह और पैसा क्यों नहीं लाती, यही उसकी समस्या थी । मनोहर उसे पीटता और चाहता था कि वह जितना उसके साथ जंगली समूक करे, उतनी ही वह एक दासिनी की तरह उसकी सेवा करे। पुरुष प्रधान समाज की इस कर्तव्यता को वह चुपचाप सहन करती । अपना दुख वह किस बताती ? यह पति सारा अन्न खा जाता । उसे भूखे रखता । घर में खर्च करने के लिए पैसे भी नहीं देता । अपने पैसे सब बैंक में जमा रखता । अपनी मौज और घेन के लिए विकास और व्यसनों के लिए चाहे जितना खर्च करता । और यह बेचारी केतही ही ठी पानी के छूट पिये, अपन आसु सबकी आँखों से छिपाये रात रात भर उस की छेडे या आसमान के तारे गिनती हुई, खैली सुनी रातें बिताते । पति पता नहीं कहाँ कहाँ रहता और देर रात तक लौटता । मनोहर को इस जीवन पद्धति को वह बदल नहीं सकी । और तलाक लेने की भी हिम्मत नहीं थी । अंत में वह धीरे धीरे अस्वास्थ्य की शिकार बनी । उसे तपेदिक हो गया और वह एक दिन मर गई । पति ने धूम्रपान से अंतिम क्रिया को और दो माह के भीतर दूसरी शादी कर ली । यही से हजरत शे जिन्धोंने अनन्य प्रेम पर लंबी लंबी भावविह्वल कविताएँ लिखी थी ।" ¹ ऐसी कितनी ही घटनाएँ इस पुरुष प्रधान समाज में हो रही हैं । किन्तु कोई ऐसे घटनाओं को रोक नहीं पा रहा है । जब तक पुरुष में अहं की भावना तथा स्त्री के प्रति

धुमा की भावना रहती है। तब तक ऐसे छटनाएँ समाज में होती रहती हैं। अपने स्वार्थ के लिए स्त्री को लुभाकर, मोहित करके उपयोग करते हैं। और बाद में उसे आश्रयहीन करके छोड़ देते हैं। तब उसके लिए स्त्री छुट-छुट कर मरना ही शेष रह जाता है।

भारतीय स्त्री की ऐसी विडम्बना है। वह अपने पति की रक्षा के लिए उसके सुख-संतोष के लिए पूजा करती है हालाँकि खुद को पति कष्टवाने वाला पुरुष शराब पीकर पत्नी को पीटता है। फिर भी जन्म जन्म में उसे ही पति के रूप में स्वीकारने की चाह व्यक्त करती है। वह पुरुष प्रधान समाज की रीति है। इसका चित्रण "दशभुजा" में माघदे ने अदिति के माध्यमसे करवाया है। अदिति के पति सोमनाथ हमेशा उसके और नगरत और धुमा का स्वयं अपनाए हुए रहता है। फिर भी अदिति तब दोष अपने ऊपर ढाल देती है। वह काली माँ के घरों में अर्घि भुँदकर अत्यन्त गद्दा से प्रार्थना करती है - "देखा पति और स्वामी मुझे जन्म जन्म में मिले। वह मुझसे अप्रसन्न रहता है तो क्या १ मुझे सन्तान नहीं हुई, विवाह होकर तीन वर्ष बीत गये, इसी से शायद वह अधिक शराब पीने लग गया है। देवी माँ। तू मुझे शीघ्र एक सन्तान दे। पति को क्षुब्ध दे कि वह पत्नी को र रात-बेरात देर से आकर न पीटे। सारी कमाई शराब के लुट्टे और दोस्तों में न उठा दे। माँ, तू सबकी कामना पूरी करने वाली है। मेरी भी गुहार सुन..."।

"अनदेशी" उपन्यास में नायिका अर्चना एक प्रोफेसर से बहस करते हुए कहती है कि व्यक्तित्व स्वातंत्र्य ही असली सुख है। स्त्री के इस सुख को पुरुष अपने नियंत्रण में ले लिया है और स्त्री को अपने व्या में कर लिया है।

वह कहती है - "हर व्यक्ति अपनी स्वाधीनता चाहता है। वही सुख है। पुरुषों ने स्त्री की स्वाधीनता को अपने हाथों में लेकर उसे पराधीन बना दिया। स्त्री के सुख का नियंत्रण बनने का अधिकार पुरुष को किसने दिया ?"।

इस प्रकार प्रभाकर माधवे ने अपने उपन्यासों में सामाजिक धरातल पर स्त्री के प्रति होने वाले अन्यायों को कोशित= पुरुष प्रधान समाज में उसके प्रति होने अमानवीयता का चित्रण यथार्थ के साथ किया है। जिसे देखने से स्पष्ट होता है कि समाज में स्त्री के प्रति पुरुष की दमन नीति किस प्रकार चल रही है।

2.1.4. समान अधिकार और नारी :

यह सर्वमान्य धारणा है कि संसार का विकास स्त्री और पुरुष के समान योगदान से ही होता है। प्रकृति में पुरुष का जितना महत्व है उतना ही महत्व स्त्री का भी है। दोनों जीवन रूपीगाड़ी के दो चक्के हैं। किन्तु यथार्थ दृष्टि से देखने से पता चलता है कि इस संसार में पुरुष ने हमेशा स्त्री को अपने स्वाधों के लिए उपयोग किया है। उसे अपनी दासी की तरह हस्तेमाल किया है और उस पर नियंत्रण रखा है कि कहीं उसके विरुद्ध वह आवाज न उठाये। इस प्रकार पुरुष के दमन नीति के कारण स्त्री अपने अधिकारों से वंचित होती रही है। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव के तिवार बड़े महत्व रखते हैं - "साहित्यिक और सांस्कृतिक गरिमामय शब्द जाल, सरस्वती, दुर्गा, जगज्जननी, संहारिणी, भैरवी पराशक्ति से आदमी ने औरत को जिस एक चीज को मारा, कुचल या पालतू बनाया है वह है उसकी स्वतंत्रता। आदमी हमेशा से नारी की

स्वतंत्र सत्ता से ठरता रहता है, और उसे ही उसने आकायदा अपने आक्रमण का केन्द्र बनाया है। अपनी अहंता और संपूर्णता में नारी दुर्जय और अजेय है। वहाँ वह ऐसी शक्ति है जो स्वतंत्र और स्वच्छंद है, बंक्नी और स्फेरिणी...इसलिए आदमी ने उसे ही तोड़ा है। तोड़कर ही किसी को कम्बलोर और पालतु बनाया जा सकता है। आदमी ने लगातार और हर तरह कोशिश की है कि उसे परतंत्र और निष्क्रिय बनाया जा सके...तभी बोडवा कहती है कि "औरत पैदा नहीं होती बनाई जाती है।"¹

इस प्रकार आदमी द्वारा बनायी गई औरत अब आधुनिक काल में अपने अधिकार के लिए लड़ना चाहती है, स्पर्ध करनी चाहती है। भले ही अपने पूरे अधिकार उसे न मिले, कम से कम आक्क आक्कारों के लिए वह स्पर्ध कर रही है। "महिलाओं ने अभी तक जो लड़ाई जीती है, वह केवल वैधानिक स्तर पर अधिकार प्राप्त भर है। यों इस उपलब्धि के फलस्वरूप आज शासन, राजनीति, विज्ञान, शिक्षा, समाज कल्याण, उद्योग, व्यापार, नौकरियाँ, देह संगमन तक सभी जगह न केवल स्त्रियों की पहुँच है, वे महत्वपूर्ण और जिम्मेदारीपूर्ण पदों पर भी आसीन हैं और उन्होंने इन सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा योग्यता का परिचय देकर युगों पुरानी धारणाओं को भी बदल दिया है कि नारी पुरुष से हीन मानसिक स्तर की या दूसरे कौं की नागरिक मानी जाए। यह उपलब्धि अगली उपलब्धियों के द्वारा खोलने वाली है इसलिए अपने आप में कम नहीं।"²

1. राजेन्द्र यादव - भूमिका - औरत होने की सत्ता - पृ. 13

2. आसारानी बहोरा - नारी शोषण: आदि और आयाम-पृ. 239-40

वस्तुतः डा० प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में भी चित्रित स्त्री पात्र अपने अधिकारों को प्राप्त करने की इच्छा रखती है और पुरुष प्रधान समाज के विरोध में प्रतिक्रियाएं भी व्यक्त करती है। इन उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र स्वतंत्र अस्तित्व रखना चाहती है और पुरुषों के साथ समानाधिकार प्राप्त करना चाहती है।

"दाभा" उपन्यास में मीनाक्षी से उसका मित्र शंकरन भी यहाँ कहता है कि स्त्री को पुरुषों के समान अधिकार एवं मान देना चाहिए उसे दूसरे श्रेणी की दर्जा कतई पसंद नहीं है। वह कहता है - 'मे मातृ सत्ता पितृ सत्ता कुछ नहीं जानता। मैं केवल यह जानता हूँ कि नारी को उचित स्थान समाज में दिया जाना चाहिए। आज के बहुत से दुःख इसी कारण है कि हमने स्त्री को उसका आदर स्थान नहीं दिया है। वह कवि और कलाकार उसे भोग सामग्री मात्र समझते रहेगी - संस्कृति विकृति ही बनी रहेगी।'। स्पष्ट है समाज में जब तक स्त्री को उचित स्थान नहीं दिया जाता तब तक समाज का परिपूर्ण विकास नहीं होगा समाज का आधार हिस्सा नारी का शोषित दमित होता ही रहेगा।

"तीस चालीस पचास" उपन्यास में मोहन कहता है कि स्त्री पुरुष संबंध मानवीय संबंध है। वह कहता है - "मैं स्त्री पुरुष संबंधों को केवल "ग्लास आफ वाटर थियोरी" नहीं मानता था। मैं लेनिन से सहमत था और हूँ कि स्त्री पुरुष संबंध केवल वासना के पशुवत प्राणिजातस्त्रीय संबंध नहीं, मानवीय संबंध है। अतः मैं स्वस्थाना का वरण किया, स्वेच्छा से पूरी जिम्मेदारी सम्भार।"।² इसी प्रकार इस उपन्यास में उषा लोचनी

हे जैसे पुरुष का अलग व्यवितत्व है वैसे ही स्त्री का । दोनों दो इकाइयाँ हैं । कोई किसी पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है । वह कहती है - "स्त्री का वैसा ही स्वतंत्र व्यवितत्व है जैसे पुरुष का । मैं हूँ, अनिच्छ है । मैं और अनिच्छ कार्य कारण भाव से जुड़े नहीं है कि एक के बिना दूसरा ज़िंदा ही नहीं रह सकता हो । दो स्वतंत्र इकाइयाँ हैं ।"¹

"किसलिए" उपन्यास में लेखक "अ" प्रश्न उठाता है कि हिन्दू धर्म में सिर्फ़ नीति नियम स्त्रीके लिए ही क्यों है पुरुष के लिए क्यों नहीं है ? यह भेद भाव क्यों ? वह कहता है - "पतिता" किसे कहते हैं ? पतित के बिना पतिता कैसे सँभव है ? पर पतित पर कोई दुख दर्साने नहीं जाता ? उस पर काव्य नहीं लिखे जाते ? न समाज की कक्षा का वह इच्छुक न अधिकारी होता है ?² इस प्रकार स्त्री पर उसके बिना गुनाह के लॉक़न लगा कर समाज में दोषी ठहरा दिया जाता है । वास्तव में तो दोषी पुरुष है जिसने औरत को "पतिता" बनाया है । किन्तु कोई भी पुरुष को बुरी दृष्टि से नहीं देखते बुरी दृष्टि सिर्फ़ औरत पर होती है ? यह कैसा न्याय है ?

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास की नायिका लेखा सोचती है कि वह स्त्री पुरुष समान है । "लेखा आधुनिका है । काम्माजी, अकेली औरत है । पति ने छोड़ दिया - या उसी ने पति को छोड़ दिया - तो उससे क्या फर्क पड़ता है ? स्त्री पुरुष समान है । आधे-आधे फ़्लोरा की अधनारी म्हेरवर की मूर्ति - बहुत पहले यह बहस हमारे यहाँ डेढ़ हजार बरस पहले इस तरह सुझा दी थी, नारी मुक्ति द्वाज़ से बहुत पहले । आधे स्त्री, आधा पुरुष, कौन कम, कौन ज्यादा ? दोनों एक प्राण एक काया ।"³

1. तीस-चालीस-पचास - पृ. 41

2. किसलिए - पृ. 125

3. लक्ष्मीबेन - पृ. 10

फिर आगे सोचती है - "क्या पुरुष और नारी के लिए दो अलग अलग नीति - संहिताएँ हैं ? क्या दोनों की भुख और प्यास अलग-अलग नीति ढंग की होती है ? यह सब बकवास है ?"। इस प्रकार वह तर्क के साथ सोचती है कि जब स्त्री पुरुष दोनों को भुख प्यास एक जेला है और दोनों की मूलभूत आवश्यकताएँ एक जैसी है तो दोनों को अलग अलग नीति संहिताएँ क्यों ? क्या पुरुषों से महिलाएँ किसी मायने में कम हैं ? ऐसी भेद भाव क्यों होता जा रहा है ? आगे लेखा कहती है कि महिलाओं के लिए प्रति समाज में अनादि काल से भेद भाव अपनाया जा रहा है । वह कहती है - "सारे इतिहास साक्षी है तराजू का फलठा भारी होता है, जब बुराई दोष, कलंक या बदनामी गढ़ी जाती है, तो वह नारी के ही सिर, उसी का हिस्सा भारी है । पेर उसी का फिसलता है और भारी भी उसी का होता है ।

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास में लेखा लेखिका के रूप में कहती है कि "मैं पूछती हूँ, किस बात में पुरुष हमसे बड़े हैं ? शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय ने "नारी मूल्य" में प्रथम वाक्य में ही कहा था : हीरा, पन्ना, मोती इन सब का मूल्य आँका जाता है । पानी की बूँद का मूल्य कोई नहीं आँकता । वह एक ओर आँख से ढलने वाले मोती की तरह है, जो गहरे आत्ममग्न के, धनीभूत पीठा के रूप में हृदयों के मरुस्थलों को सिंचित करता है और दूसरी ओर धनधोर सुखे और अकर्मण्य में वह धरती की उस असीध भरी उसाँस के रूप में व्यक्त होता है, जो पृथ्वी को उपजाऊ बनाती है । उस बूँद की अगर कोई कीमत है, तो नारी का भी वही मूल्य है ।"³

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 30

2. -वही- पृ. 31

3. -वही- पृ. 97

"दशभुजा" उपन्यास की नायिका अदिति की समझ में अब आने लगा कि क्यों दुर्गा के एक के बदले दस हाव है। उसके आग्रह हमें बदलने होंगे। क्या हम नारी जागरण की बात करने वाले स्त्रियों के हाथों में सिलाई की मशीन, धरखा-करघा, ऊन बुनने की मशीन, हस्त शिल्प के अनेक प्रकार, ललित कलाओं के चौस्त रूप इस तरह दे नहीं सकते कि "अ-कला"शक्ति स्वरूपा बन जाये। है यह कठिन मार्ग वह स्वयम् उस पर चलकर अनुभव कर ही है कि "शक्ति" की साधना कितनी कठिन है। जब ऊर्जा के सारे स्रोत सूख जायें, तब वह भीतर से प्राप्त होती रहती है।¹ इस प्रकार अदिति स्त्री का रूप बदलना चाहती है। पारस्परिक ढंग से यदि नारी रहती है तो उसका उद्धार इस पुरुष प्रधान समाज में नहीं होगा। इसके लिए स्वयं में आत्म निर्भरता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की कामना करती है।

2.1.5. देखने समस्या :

नारी जीवन की समस्याओं में सबसे जटिल समस्या देखने की है। देखने की समस्या के कारण कितनी ही कन्याओं का विवाह होते होते रुक जा रहा है। वास्तव में देखने प्रथा हिन्दू समाज के लिए एक कर्कश है। इस व कुप्रथा के कारण अनेक अन्य सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न हो रहे हैं। देखने प्रथा के बारे में डा० महेन्द्र मटनागर की उद्धृत करते हुए डा० शैल रस्तोगी लिखते हैं - "हिन्दू समाज में देवाधिक

समस्या को सबसे अधिक जटिल बनाया है। दहेज प्रथा ने। अनेक सुंदर सुशिक्षित और सुसंस्कृत लड़कियाँ समुचितदहेज के अभाव में असुन्दर, दुर्धन और असंस्कृत लड़कों से ब्याह दी जाती है।¹ हिंदी उपन्यासों में इस समस्या का व्यापक चित्रण हुआ है। डा० प्रभाकर माधवे ने भी अपने उपन्यासों में यत्र तत्र दहेज समस्या को उजागर किया है।

"अनदेखी" उपन्यास में दहेज प्रथा के संबंध में विस्तार के साथ विश्लेषण किया गया है। वे लिखते हैं - "रोज अखबारों में दहेज न लाने की खबर से स्त्रियों को नयी, ब हुओं को जलाने की, कहीं-कहीं भूखा मारने, दूसरी मीजिल से नीचे पेंक देने और अनेक प्रकार की यातनाएं देने की कहानियाँ पढ़ी जाती हैं। कुछ मामले ही पुलिस तक पहुँच पाते हैं। ज्यादातर लोग उन्हें आत्म हत्याएं कह देते हैं। और इसमें मानसिक यातनाएं जो नववधू को ससुराल वाले, सार ससुर, नन्द, देवर भोजार् और स्वयं पति देता है उनकी तो गिनती ही नहीं। धन का उपहार में मिलने वाले ऊपर के पैसे या वस्तुओं का ऐसा लालच और विकराल लोभ सबमें धर कर गया है कि गाँव गाँव में पहले साइकिल नये घर को चाहिए थी, तो उसमें अब हॉस्त्रिस्टर आ गया। नया सूट और साफा पगड़ी और घादर भी काफी नहीं, अब जहाँ किजली पहुँच गई उसे चाहिए प्रिज और टी.वी. और वी.सी.आर।² इसके आगे वे लिखते हैं - "इस चीज का कोई अंत नहीं है। लठका नया नौशा या भावी पति साईस में बड़ी ठिग्री पा रहा है - ईन्जीनियरी या डाक्टर की पढ़ाई का खर्च दो। विदेश में भेजने का खर्च दो। नौकरी कर रहा है तो उसके नाम जमीन खरीद दो, फ्लैट खरीद दो, किस्तों में रकम दो। कुछ नहीं तो उस

1. डा० रैल रस्तोगी - हिंदी उपन्यासों में नारी - पृ. 308

2. अनदेखी - पृ. 111

लड़के की बड़ी बहन है, उसकी शादी पहले होनी चाहिए, उसका खर्च दो । कुल मिलाकर बस - दो दो, दो । यह इसलिए कि परंपरा से "वर" उच्च पक्ष है, उपर वाला है । वधू और उसके पक्ष को दबते ही जाना है, वह सदा गौण है ।¹ दहेज प्रथा के कारणों के बारे में चर्चा करते हुए माचवे जी लिखते हैं - "समाज में स्त्री की इतनी अव्यक्त अवस्था बना देने में हमारी परंपरा, हमारे रूढ़िवादी अंध धर्म, नेता, हमारा सारा सोचने का ढंग बनाने वाली शिक्षा व्यवस्था - यहाँ तक की हमारे राजनेता भी जिम्मेदार हैं । बड़े व्यापारी, नेता, सब लोग उतारते हैं । वे ही उनके माँहल हैं ।"² इस के संदर्भ में एक उदाहरण देते हुए वे लिखते हैं - "हाल में देश में बड़े राजवाड़ों के विवाह के निर्माण पत्र लाखों रूपयों में छपे । राज्य सभा सदस्य जनवादी निर्रकार मन्मूल फिदा हुसैन के विशेष चित्र उन निर्माणों पर छापने के लिए विशेष फीस दी गई । शादी न हुई फिल्म स्टारों की "स्पेशल नार्ड" हुई ।"³

इसी उपन्यास में नायिका दर्शना दहेज से संबंधित हत्याओं के लिए पुरुष को जिम्मेदार मानती है । धर्माश्रम आदि ग्रंथ पुरुषों से बने होने के कारण स्त्री के प्रति भेदभाव की दृष्टि अपनायी गई है । ऐसा वह मानती है । वह कहती है कि "सती हो जाने का पुण्यकार्य उन्होंने पुरुषों ने ही बनाया । दहेज न लाने पर स्त्रियों को जलाना उन पुरुषों ने ही बहुत उचित और न्याय सम्मत माना ।"⁴ दर्शना अपने पास दहेज से मरने जलाने वाली स्त्रियों के भारत के एक ही अंश और जाति की स्त्रियों के कई उदाहरण पढ़े थे । उनके बारे में विस्तृत समाचार उसने प्रोफेसर सहब को दे दिया था । इसमें लगभग 10 दहेज हत्याओं का

1,2,3. अनदेखी - पृ. 111

3. अनदेखी - पृ. 101

समाचार था - "कृपा हत्याकांड 2° मृत्यु हत्याकांड 3° रेखा हत्याकाण्ड, 4° नानू हत्याकांड, 5° पुष्पा हत्याकाण्ड, 6 पुष्पा दहल काण्ड, 7- सरोज हत्याकांड 8° विद्या हत्याकांड, 9° मन्मू शर्मा हत्याकांड और 10 प्रभा हत्याकांड ।"¹ यह लेखा जोखा तो मात्र उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । वास्तव में देश के प्रत्येक प्रांत में ऐसी घटनाएँ अनेक होते रहते हैं जिनमें महिलाओं को जिन्दगी का तबाही होते रहता है ।

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास में भी लक्ष्मीबेन जब दुग्गी झोपड़ी वालों की समस्याओं को सुझाने के लिए निकल पड़ती है तो वहाँ भी उसे ऐसी ही समस्या देखने को मिली । लक्ष्मीबेन जो किस्सा सुना था था - "एक लड़की थी । नई नई शादी होकर वहाँ लाई गई । गाँव से शहर में पहली बार पति बेकार था । उसके बदन पर से एक एक नखली गहने भी उतारकर ले गया । बेचकर शराब पी गया । वह रोज उसे मारता - पीटता था । कबता था - भेजे जाकर पैसे लाओ । नहीं तो मैं घर से निकाल दूंगा ।"² इस प्रकार दहेज के कारण स्त्रियों के जिन्दगी संकटपूर्ण हो गयी है । माचवे ने ठीक ही कहा है कि बड़े बड़े धनवान अपने बेटे-बेटियों के विवाह में खूब धन खर्च करते हैं और खूब दहेज देते हैं, उसी के देखा देही में समाज के अन्य लोग भी दहेज लाने के लिए बंधु को विवश करते हैं । ऐसी घटनाओं का चित्रण माचवे जी ने बहुत ही यथार्थ के साथ अपने उपन्यासों में किया है । जिसे पढ़कर पाठक को सामाजिक अवस्था में फैली इस कुरीति के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है ।

कभी कभी दहेज के कारण बंधुओं को वर का सही जोड़ मिलना मुश्किल हो जाता है । इसका चित्रण माचवे जी ने "दर्द के पैबन्द" उपन्यास में किया है । उपन्यास की नायिका श्रुता अपने मित्र वसुबन्धु से कहती है

1° अनदेखी - पृ. 102-104

2° लक्ष्मीबेन पृ. 40

कि उसके माँ-बाप उसकी शादी दहेज के कारण किसी विधुर से करना चाहते थे। किन्तु ऐसा न करने की जिद करने से विवाह नहीं हो पाया। कृता कहती है - "माँ ने पहले बहुत कोशिश की कि मेरा ब्याह किसी भले घर में कर दिया जाय। हमारी जाति में दहेज की समस्या थी। तो माँ उससे बचने के लिए इस पर भी राजी हो गई कि किसी पटे लिखे, कमाते विधुर के ही गले में बांध दी जाऊँ। पर मैं भी पक्की हो गई थी। मैं पुरुष मात्रों घृणा करने लगी थी। मेरे घर बार साफ घरवालों से कह दिया कि मेरे ऊपर आप अपने निर्णय मत लादो। मैं घर छोड़कर भाग जाऊँगी।"¹ इस प्रकार दहेज के कारण से कन्याय प्रायः योग्य साथी को पाने से वंचित रहने की छटनाएँ देखने को मिलती है।

सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने वधू दहेज के मामले पर अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त की और उत्तेजनापूर्ण स्वर में स्वीकार किया - "हाल ही में हमारे देश में सामने आने वाला यह तथ्य दुर्भाग्यपूर्ण और चिंताजनक है कि वधू हत्या की छटनाएँ खतरनाक रूप से बढ़ रही हैं। अगर समाज से यह कुराई दूर करनी है तो यह बहुत जरूरी है कि जब कभी इस प्रकार के कायरतापूर्ण अपराधों का पता लगे और मुजिम पर अपराध साबित हो जाए तो अदालतों को ऐसे अपराधियों के साथ बहुत कठोरता से पेश आना चाहिए और ऐसा दंड देना चाहिए कि दूसरे लोग सबक ले सकें। दिल्ली राज्य प्रशासन बनाम लक्ष्मण कुमार ए आर्च आर 1986 सुप्रीमकोर्ट 250४"²

2.1.6. विवाह :

"विवाह समाज की एक अनिवार्यता है, समस्या नहीं", किन्तु आज की विषम परिस्थितियों ने इस अनिवार्यता को भी एक समस्या

1. दर्द के पैबन्द - पृ. 58-59

2. औरत होने की स्त्रा - पृ. 82

का रूप दे दिया है। विवाह प्रथा संसार के सभी देशों में प्रचलित है। संसार में अनैतिकता को देखने का एकमात्र उपाय विवाह ही है। इस तथ्य से मूख नहीं मोठा जा सकता है। प्रत्येक देश की अपनी परम्पराएँ होती हैं और आचार विचार होते हैं, उन्हीं के अनुसार लोग विवाह के संबंध में सोचते हैं। सामाजिक संगठन में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है।¹ किन्तु आज के वर्तमान परिस्थितियों में स्त्रियों के लिए विवाह एक बन्धन हो गया है। वह एक जंजीर है। "एकतारा" उपन्यास की तारा के माध्यम से यह स्पष्ट होता है। "हमने एंगल्स की "बोरिजन ऑफ फ्रेम्प्री" पुस्तक पढ़ी थी जिसमें प्रेम को शारीरिक वासना से उत्पन्न बताया गया था। समाज के विकास के साथ विवाह कृति भी बदलती जा रही है। जैसे पहले युथ विवाह होते थे, बाद में जोड़ों के बीच में और अब एक पत्नी विवाह चले हैं। अब इस संस्था पर भी प्रश्न चिह्न लगाए जाते हैं, क्या यह मातृत्व कृति नारी के लिए आवश्यक है। आज इस संस्था को ही नकारा जाता है क्योंकि यह एक बन्धन है।² कुमारी 1 तारा के मन में भी यही समस्या उठ खड़ी होती है। वह सोचने लगी "क्या यह विवाह स्त्री के जीवन के लिए आवश्यक है? क्या वह उसकी मातृत्व कृति की, स्त्रीत्व की पूर्ति है? या विवाह स्त्री के जीवन में एक बड़ी जंजीर है, एक रीढ़ है, एक बाधा है।

विवाह कैसा? प्रेम विवाह या करार के तौर पर दो व्यक्तियों का किया हुआ सम्झौता? या अग्नि ब्राह्मण देवताओं की सहाय्य में किया हुआ पाणिग्रहण? या...

1. डा० ईश्वर रस्तोगी - हिंदी उपन्यासों में नारी - पृ० 306

2. डा० कृष्ण रेणा - प्रभाकर माधवे के हिंदी उपन्यास - पृ० 21-22

छिः छिः तारा के चेतन मन को फिर प्यारा की - विवाह बन्धन है । वह विवाह नहीं करेगी, वह समाज सेवा करेगी । वह राष्ट्र के स्वतंत्र हुए बिना विवाह नहीं करेगी ।*¹

इसी प्रकार अन्तर हिंदीय विवाह भी अनेक शिकायतों से भ्रमिष्ठ होता है । माचवे ने अपने उपन्यासों में इस समस्या की ओर भी दृष्टि डाली है । उनका मानना है कि अन्तर हिंदीय विवाह स्थिर एवं दृढ़ बन्धन है में नहीं रह पाएगी । वे एक न एक दिन टूट जाएगी । यह धारणा आज के आधुनिक युग में व्याप्त होगई है । "कहाँ से कहाँ" उपन्यास में जर्मन के बिल और भारतीय विभा इसी पर चर्चा करते हैं । बिल कहता है कि यदि मैं तुझ से शादी करूँ तो माँ कहती है कि तुझे धर्मोपनिषद् करना होगा । यानी ईसाई बनना होगा । विभा करती है कि यदि यही प्रस्ताव मेरी माँ सुनती तो शायद कहती शादी कोर्ट में कर लेना रजिस्टर्ड टंग से । तलाक लेने में उससे आसानी होती है । बिल कहता है -- "दोनों माएँ सत्य को ज्यों का त्यों स्वीकार करने को तैयार नहीं दोनों ओर, ऐसे अन्तर हिंदीय विवाहों की सफलता में शक है । शायद सभी माताएँ बाधक स्थिति स्थापकवादी, रुढ़िप्रिय होती हैं ।"²

भारतीय समाज में कुछ ऐसे भी जातियाँ जिन में बहुपतिव्रत और बहु पतिव्रत की प्रथा है । इसी तथ्य को भी डा० प्रभाकर माचवे जी ने अपने उपन्यासों में उजागर किया है । "अन्धेरी" उपन्यास में दर्शन और मनोविज्ञान को पढ़ाने वाले धर्मकीर्ति दर्शना से कवि कलाकारों की जिन्दगी की चर्चा करते हुए कहता है कि अनेक ऐसे लोग थे जो एक

1. फुलारा - पृ. 51

2. कहाँ से कहाँ - पृ. 42

से अधिक स्त्रियों से संबंध रखते थे । दर्शना कहती है कि "पर एक घर में रहकर यह दोहरी जिन्दगी कैसे जी पाते थे ? तो धर्मकीर्ति कहता है - "एक तो भारतीय स्त्री बहुत सहनशीलता है । कुछ पत्नियों ने यह स्थिति अपने कमल भाग्य के दोष स बताई । कुछ पत्नियों ने यह सोचा कि उन्हें सन्तान नहीं है, इससे पुरुष ऐसा एक से अधिक स्त्रियों ने यह सोचा कि उन्हें सन्तान नहीं है, इससे पुरुष ऐसा एक से अधिक स्त्रियों से संबंध रखते हैं ।" ¹ इसी उपन्यास में दर्शना शिमला के पहाड़ी प्रदेश में घूमने जाती है तो वहाँ पर पता चला कि वहाँ के लोगों में एक स्त्री के साथ अनेक पति होते हैं । दर्शना कहती है - "ऐसे ही खोज खोज में एक दिन मुझे पता चला कि जोन्सार काबा में जैते होता था, एक ही स्त्री के अनेक पुरुष पति होते थे । यहाँ यह बुरा नहीं माना जाता था, कुछ जातियों में ।" ² यह बात "छूत" उपन्यास के गाँव का भी है । वहाँ पर समाज सेविक द्रोपदी गंदी बस्ती में समस्याओं को सुलझाने के लिए निम्नलिखित है तो उसे एक स्त्री से बहुपतिव्रत की जानकारी हासिल होती है । द्रोपदी कहती है कि - "एक स्त्री के साठ दो तीन भाइयों का एक साथ रहना, यहाँ आम बात है । मेरे नाम द्रोपदी को लेकर उस स्त्री ने कहा - पाँच के छे पैंच थे । और उनकी एक ही ब्याहता थी । सो क्या बुराई है ?" ³

इसी प्रकार अपनी छायरी में इसी गाँव की एक और किस्सा द्रोपदी लिखती है जिसमें बहु पत्नियों की जिन्दगी का वर्णन है - "आज मैं और कलिया एक बटई के घर में गये थे । उसको दो बीवियाँ थी और

1. अन्वेष्टी - पृ. 63

2. - वही - पृ. 94

3. छूत - पृ. 95

दोनों के बच्चे थे । घर में औरतें सब मरे में, एक सी गरीबी और जहालत में सँझती पड़ी थी । किसी को यह अहसास ही नहीं था कि शाम को शराब पीकर यह मर्द उन्हें बुरी तरह पीटता है और वे विद्रोह नहीं करती । उसी में सुख मानती है । करवा चौथ रखती है और जन्म जन्मांतर तक ऐसे ही पति की पुनर्प्राप्ति की प्रार्थना करती है । ऐसी औरतों को क्या सम्झाया जाये ?¹

समाज को सुधारने के लिए अनेक प्रकार से कार्य करने पर भी उसमें सीधे परिवर्तन मुश्किल है । कारण यह कि परिवर्तन बहुत ही धीरे-धीरे होता है और साथ में समाज में पले अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास और स्तिगति रीतिरिवाजों के कारण और अधिक समय लगता है जैसे, सामाजिक कुरीति बाल विवाह को रोकने के लिए सरकार ने कानून बनाया है मगर व्यवहारिक रूप में लागू बहुत कम हो रहा है । आज दिनों बाल विवाह होते ही रहे हैं । "बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929 और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5 § 1(1) में विवाह के समय दूल्हे की उम्र 21 साल और दुल्हन की उम्र 18 साल से अधिक होनी चाहिए । अगर शादी के समय दूल्हे की उम्र 18 साल या दुल्हन की उम्र 18 साल से कम है तो शिष्टायत होने पर, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 18 के अनुसार दोषी व्यक्ति को पन्द्रह दिन तक कीकद या एक हजार रुपया जुर्माना या दोनों हो सकते हैं ।"² किन्तु ये सब कानून बेकार हो गये हैं । व्यवहारिकता में विफल हुए हैं - अरविंद जैनलिखते हैं - "हर साल अल्प तृतीय यानी आधा तीज के मंगलकारी दिन हजारों अशिक्ष और नाबालिग § दूध पीते बच्चों समेत, बच्चों को विवाह के पवित्र बंधन

1. दूत - पृ० 94

2. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ० 43

में बांध दिया जाता है। "बाल विवाह" के खिलाफ कानून जितने निष्क्रमे साबित हुए हैं उसका दूरी तरह से विरोध भी उतना ही निरर्थक साबित हुआ है।¹ ऐसे ही विचार लक्ष्मीबेन उपन्यास में सुझाया सोचती है - "कानून एक उपाय है। बनते हैं, उनमें सुधार और तरतीब भी लायी जाती है। पर कई कानून किताब में बंद पड़े रह जाते हैं। जैसे धर्मश्रियों के सुन्दर उपदेश। शादा कानून इस देश में बने कितने बरस हो गये। क्या बाल विवाह का चेक की तरह पूरा उन्मूलन इस देश से हो गया?"²

2.1.7. प्रेम और धोखा :

प्रेम तो हृदयों का पवित्र संगम है। इसमें न पुरुष उचा होता है और न स्त्री नीची होती है। दोनों के भाव यहाँ पर जाकर एक हो जाते हैं परन्तु ऐसी पवित्र भावना के पीछे भी पुरुष जमी अपने स्वार्थ का प्ला लेता है। और प्रेम को उपहासास्पद बना डालता है। जेवारी नारी यहाँ भी धोखा खा न जाती है, पुरुष जब तक अपने मन में स्त्री के प्रति समानता की सोच नहीं रक्खा तब तक ऐसे नारी अपने स्वभाव के अनुकूल पुरुष पर विश्वास रखते हुए धोखा खाते ही रह जाती है। जहाँ तक सरकार और कानून का सवाल है, वे इतने उलझे हुए हैं कि पुरुष आसानी से उससे निपट सकता है और अपने आपको निर्दोष साबित कर लेता है। नारी को तिर्य अपमान की छूट पीने के लिए बचा रहता है। पुरुष का जहाँ है कि "मैं तो तुम्हारी सुंदरता की तारीफ करके, शादी के सुनहले सपने दिखाकर और चिकनी चुपड़ी बातें बनाकर कुछ

1. अरविंद जैन - अ. औरत होने की सजा - पृ. 41

2. लक्ष्मीबेन - पृ. 68

दिन तुम्हारे साथ मरती और और फिर अचानक एक दिन तुम्हें किसी बेगाने शहर की अनजानी, अछिरी बंद गली में उठकर भाग जाऊंगा। तुम्हीं संभालर रखना ध्यार की यादें, मैं तो भूल जाऊंगा सारी कसमें, सारे वायदे।¹ यही स्थिति ठाठ प्रभाकर माणसे के उपन्यास "दशभुजा" में उत्पन्न होती है। दशभुजा उपन्यास में अदिति का विवाह सोमनाथ से होता है। वह पति का साथ क्लकत्ता देखने आती है। दोनों एक दिन काली दर्शन हेतु मंदिर जाते हैं। अदिति श्रद्धा के साक्ष प्रार्थना में निमग्न थी तो सोमनाथ गायब हो गया। अदिति मंदिर के पास खोजती है फिर जिस सरतों बोटल में ठहरे थे वहां जाकर देखती है परन्तु कहीं पर सोमनाथ का पता नहीं लगा। इस प्रकार सोमनाथ ने अदिति को धोखा दिया।

ऐसे ही "दर्द के पैबन्द" उपन्यास में श्रुता को अपने सहपाठी रमेश से प्रेम हो जाता है। श्रुता रमेश पर विश्वास करती है किन्तु रमेश उसे धोखा देकर अन्य लड़की से विवाह करता है। श्रुता रमेश पर विश्वास करती है किन्तु रमेश उसे धोखा देकर अन्य लड़की से विवाह करता है। श्रुता सोचती रहती है - "रमेश और शायद सारे पुरुष स्त्री को भुगों भुगों से इसी तरह के वादे देते रहे हैं। वे एक क्षण में अनन्तता का साभास देने की क्षमता रखते हैं। और बाद में उन्हें बड़ी आसानी से कहीं शापित दुःखान्त को क़तरह विस्मृति घेर लेती है, कहीं दमयन्ती की आधी साड़ी लपेट कर नल की तरह बे भाग निकलते हैं। कहीं वह अपनी ही वासना का आरोप बेचारी स्त्री के मत्से डाल कर पुस्तु की तरह उर्वशी के नाम से हाय हाय करते रहे और कहीं वे "गन्धर्व कन्या

विवाहिता की इच्छा थी, मैं क्या क्या करता ? कह कर अर्जुन की तरह जिम्मेदारी से बंधते रहते हैं। श्रुति विवाहिता ने तो मेनका को यहाँ तक कह दिया — "यह अच्छी तो मेरी ही नहीं।" "यह पुरुष प्रकृति का उद्दाम शरीर भाज्य है। उसी ने शास्त्र लिखे, नीतियाँ बनाईं। और नारीको इस तरह कोसा है कि जैसे वही सब अन्याय कीजु हो।"¹ श्रुता रमेश का अन्य कन्या से विवाह का निर्माण मंत्र देखकर मन में कहती है — "तो वे सब जन्म जन्म तक साथ बंधने, रहने, मरने के वादे कोरे शब्द हैं। मनुष्य भावुकता की बाढ में और वासना के उबार में कैसे अधि ठग से शब्दों की झूठी झूठी कौकता, विद्वेष्टता और फेलाता रहता है।"²

इस उपन्यास में आगे श्रुता का विवाह एक विदेशी नागरिक डा० बैलरों के साथ होता है। उन्हें एक लड़का भी होता है किन्तु वह भी कमीना हीनकलता है। एक दिन वह लड़के को लेकर विदेश भाग गया। श्रुता फिर एक बार धोखा खा गई। इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्रुता के मित्र कज्जन्धु अपने मन ही मन सोचता है कि ऐसा केवल विदेशी पुरुष ही नहीं, स्वदेशी भी करते हैं। "भारत में और हिन्दू स्त्रियों में भी पुरुष स्त्री को 'वस्तु' पण्यवस्तु या दास की तरह नहीं मन्वाता जाया है ? क्या हमारे यहाँ पुरुष स्त्री को इस तरह उपेक्षित और जूठा करके छोड़ नहीं देता ? और जिन पर वही ज़ुलूम से कम समाज में सख्त कण्ठों की लज्जदा इस्त्री जैद खोल में अपने अपने अधि नीतिमान और कथ्य कहता नहीं सिखाता ? कितने ही उदाहरण हैं जिनमें ऐसे महानुभावों ने जिन्होंने दो दो और तीन तीन ब्याह एक साथ, या एक के बाद एक करके, समाज में "भक्ति ग्रन्थ" और "मानवतावाद" और "स्त्री के समान अधिकारों" पर अपनी राय दी है और उनकी प्रकृति में कोई अधि नहीं आई है।

1. दई के पैल्ल - पृ. 37-38

2. -वही- पृ. 47

बेचारी वे दुकराई हुई उपेक्षिता उर्मिलाएं और परित्यक्ता दमयन्तियाँ यों ही दम तोड़ती रही हैं ।¹

"अन्धेखी" उपन्यास में भी प्रेम का नाटक चलाकर क घोखा देने की एक घटना का उपन्यासकार चित्रण किया है । उपन्यास की नायिका दर्शना जो बीच में अंधी होती है, आपरेशन के बाद दृष्टि प्राप्त करने के पश्चात् अपने एक मित्र के कहने पर शिफला खी जाती है । वह मित्र जो दर्शना से सहृदयता के साह रहता था, दर्शना का, उसके अँखों को देखते ही छबराने लगा, बेचन होने लगा । इसका कारण यह था कि दर्शना के अँखि एक तिब्बती लड़की के थे । तब यह था कि इस मित्र के घर में एक तिब्बती लड़की काम करनी थी । मित्र साहब ने उससे प्रेम संबंध स्थापित कर लिया था । वह मित्र ठरपोक था, उसके बीबी बच्चे, परिवार कहीं दूर पर थे । उसने इस लड़की से शादी न कर के घोखा दिया । वह तिब्बती लड़की को धूल से निकाल देता है । दर्शना को जादू में तिब्बती से पता चला कि "उस बदमाश ने उससे जबरदस्ती की । जब उसे दच्चा पैदा होने की बात का पता लगा तो घर से निकाल दिया । कुछ रुपये दे दिये और कहा कि जा रफा दफा कर जा अपनी गलती ।"²

"जामा" उपन्यास में भी ऐसी ही एक घटना का उल्लेख हुआ है । जामा की सहेली मीनक्षी "स्त्री" मासिक का एक पुराना अंक बच्च लायी थी जो ब्रह्मन्दि अनाथ महिलाश्रम, पुना से संबंधित विज्ञापक था । उसमें एक ऐसी सच कहानी थी जो स्त्री को मीठी मीठी बातों से लुभाकर धोखा दिया जाता है । कहानी इस प्रकार है - "तीस बरस की सुन्दर युवती । विवाह के बाद उसके माँ बाप मर गये । दो तीन बच्चे हुए । पति भी ब

1. दर्द के पैजन्द - पृ. 86

2. अन्धेखी - पृ. 106

गुजर गया। बच्चा में सिर्फ एक लड़का बचा। थोड़ी सी खेती और रैतूँ धर था। कुछ कामकाज करे पेट पालती थी। आगे किसी की सगत से उसका पेर फिसल गया। गाँव में शोर मचा। उसे फँसाने वाले आदमी उसे बच्चे के इंतजाम के लिए बम्बई ले आये। वहाँ, एक अस्पताल में उसे रखा और वह भाग ब गया।*¹

"घूत" उपन्यास में भी दुराईदी नामक समाज सेविका जिस गाँव को सुधारने जाती है। उस गाँव की बुराइयों का अपने डायरी में लिखती है। इस डायरी में एक ऐसी घटना की भी उल्लेख है जिसके अनुसार गाँव की युवती से शहरी युवक द्वारा प्रेम करके धोखा दे कर चले जाने के कारण वह युवती मर जाती है। वह डायरी में लिखती है - "गाँव की एक और लड़की से भेट हुई थी। शहर से आये एक लड़के से उसे गर्भ रह गया था। वह छिप नहीं सका। लड़का उसे धोखा देकर चला गया। लड़की को बदबलन कहकर घरवालों ने मारा पीटा। एक दाई का चुनचाप पेट गिरवाने के लिए वैसे भी दिये गये। उसने इस बुरी तरह कसाई जैसे काम किया कि लड़की बेहोश हो गई। उसके पेट में जहर फेंक गया। वह मर गयी।"*²

2.1.8. परित्यक्ता नारी :

परित्यक्ता नारी का चित्रण डॉ० पुभाकर माचवे ने अपने अनेक उपन्यासों में किया है। विशेषतः "दाभा" "लक्ष्मीबेन" और "दशभुजा" में दाभा, लेखा और अदिति के माध्यम परित्यक्ता की मानसिक वेदना का चित्रण बहुत ही मर्मस्पर्शी है। यह चित्रण उनके जीवन के यथार्थ का दस्तावेज प्रस्तुत करता है।

1. दाभा - पृ. 44-45

2. घूत - पृ. 95

"आभा" दाभा उपन्यास की नायिका है। उसकी विवाह "श्री" से हुआ था। "श्री" ने उसे एक पत्नी देकर छोड़ दिया। "आभा" का जीवन एक अंधी गली के समान नियति नटों के हाथों में एक कठपुतली मात्र रह गया। उसे लगा कि वह कभी किसी की पत्नी नहीं रही, वह नहीं जानती किसी को आत्मसमर्पण करना। वह निरोग निश्चल नयनों वाली पत्थर की पुतिमा है, जिस पर बहुत सी बर्फ जमी है। जिसका काम तटस्थ, अविवल, अनासक्त दृष्टि से दृष्टि व्यापार को देखते जाना भर है। उसका बाहर की इस संवेदन राशि में कोई सांझा नहीं है। वह अभिशप्त अप्सरा सो कॉलेज में यंत्रवत् अपना पढ़ाने का काम कर रही है।¹ आभा हमेशा दुखी रहती है। वह अपने पति के संबंध में सोचती रहती है। उसकी पुतिमा की पूजा करती है। और बेटी के "रिता जी कहाँ है?" जैसे प्रश्न को टाल देती है। "उसी पुतिमा को, उसी छवि को, सहसा उसका मन हुआ, क्यों न उठाकर एक दू १ यह सब पूजा - अर्चा, यह सब युग युग का छलावा, यह जन्म जन्मान्तर को पुर्वचना को पुर्वचना, यह इकतरफा, पुत्याशाहीन पुतिदान रहित, निरंतर देते ही जाना...²

आभा के मन में पुरुष मात्र से घृणा उत्पन्न होने लगी थी। सत्काम जब हंसता है तो उसे असहनीय होने लगता है। वह सोचती है - "सभी पुरुष एक से हंसते हैं। मनु महाराज! आपने तो सभी स्त्रियों के भाग्य में एक सा आंसू का दीप जलाने का विधान पत्थर की लकीर की तरह लिख डाला। पुरुष का काम सिर्फ हंसते रहना और पूजापा लेना ही है क्या?"³

आभा अपने मित्रों के साथ पिकनिक के लिए जाती है। वहाँ आभा की दोस्त मीनाक्षी एक गाना गाती है। जिसका भाव आभा के जीवन दर्शन से मिसलता जुलता है। गाने का भाव यह है - "माना कि तुम मुझे नहीं चाहते,

1. प्रभाकर माधवे के हिंदी उपन्यास - डॉ० कृष्णा रेखा - पृ० 24

2. दाभा - पृ० 12

फिर भी मेरे चाहने का तुम कैसे रोक सकते हो...। "बन तुलसी की मंदिर सुगंध काटे की बागड से नहीं सकती।" माना कि तुमने आपने दिल से मुझे निकाल दिया है, फिर भी मेरे दिल में जो तुम्हारी तस्वीर है वह पक्के रंगों में बनी है और वह बाँसुओं से नहीं धुलती। "यह प्रतिमा तुम्हारी उपेक्षा के धन की चोट से भी नहीं टूटेगी, क्योंकि यह प्रतिमा स्मृतियों के सन्तधातु की है। विरह की आग से यह गलती नहीं और निरंतर है।" अंततः आभा इसी मनोव्यथा से टी बी की रोगिणी बन गई और उसने अस्पताल में दम तोड़ दिया।

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास की लेखा की भी ऐसी ही कहानी है। वह अपने पति से अलग रहती है। एक लडका है। वह पति के साथ रहता है। वह अकेली रहती है। इतिहास के प्रोफेसर के नाते एक कालेज में अध्यापन कार्य करती है। परित्यक्ता लेखा सोचती है कि "भारत में एक परित्यक्ता, ललाकशुद्धा स्त्री की क्या हैसियत है 9 अकेली, कामकाजी औरत के साथ लोग किस तरह पेश आते हैं 9 कालेज की स्टैनोग्राफर लडकी बता रही थी - बहन जी, आप इन पुरुषों को नहीं जानती - इनकी पकी उम्र हो जाये और कबु में पाँव लटक रहे हो तो भी इनकी तुष्णा नहीं मिटती।" 2 लेखा हमेशा अपने जीवन के बारे में सोचती रहती है। उनकी हसी भी दर्द को छिपाने का एक बहाना है। "लेखा जैसी स्त्री की हसी भी एक बहाना था मुछाँटा होती है।" 3

लेखा के जीवन एक असहनीय, अभिशाप जैसा लगने लगता है। "लेखा ऐसी नियतीवादी निराशावादी विचारों से जन्दी जन्दी छुट्टी पाना चाहती है और इसलिए उसने अपने आसपास कालेज की कई तरह की अन्य सामाजिक सांस्कृतिक कार्यक्रमवाविलियों का जाल बुन रखा है, जिसमें उसका मूल छिप जाये।" 4

1. आभा - पृ. 18

2. लक्ष्मीबेन - पृ. 14

3. लक्ष्मीबेन - पृ. 18

4. लक्ष्मीबेन - पृ. 22-23

"लक्ष्मीबेन" उपन्यास का निचोड़ पुस्तक करती हुई डॉ० कृष्णा रेणा जी लिखती है -- "नारी का उतना श्रेय नहीं मिलता जितना उसे मिलना चाहिए था, आज उसका लेखन भी मजबूरी, विवशता बन गया है - उसी का नहीं, मानव मात्र की विवशता है। उसके सामने नारी के स्त्री पत्नी, बहन, बेटा, और माँ के परम्परागत रूप आ गये और दूसरी ओर अपना अन्तर्हृद। कालिज में इतिहास पढ़ाने वाली अध्यापिका प्रो० लेखा, गुप्ता, उसका बाह्य रूप है, घर में वह एक परित्यक्ता पत्नी, एक पुत्र होकर भी रुझीन माता, एकाकिनी है। वह समाज कन्याण द्वाभा की सक्रिय सदस्या लक्ष्मीबेन है, वह राजनीतिक क्षेत्र में जाकर सुलक्षणा देवी एम एल ए भी बन सकती है और वही अन्ततः योगिनी अलक्षिता है परन्तु इन सब बाह्य रूपों के भीतर एक अंतर्ध्वंसि और बह रही है। एक अदृश्य सूत्र की तरह जो अक्षयवती है लेकिन वह है लेकिन "ल" परन्तु शान्ति कहीं नहीं है।"

"दशभुजा" उपन्यास में नायिका अदिति के साथ सोमनाथ का विवाह हो जाता है। सोमनाथ कहकस्ते की काली मंदिर में अदिति को छोड़कर चला जाता है। अदिति अकेली काली मंदिर के पास और जहाँ पर ठहरे थे उस हॉटल के पास सोमनाथ को ढूँढती है किन्तु वह कहीं भी नहीं मिलता। तब वह उस नये शहर में अपनी मित्र महिमा के पास जाती है और अपनी कहानी सुना देती है। तब महिमा जीविका के लिए कुछ काम बता देती है। अदिति के मन में हमेशा अपने पति के पुति द्वेष की भावना रहती है। वह हमेशा दुखी रहती है। "अदिति कहकस्ते में परिस्थितियों की घरेलू में आकर बसी। शरीर से वह जरूर उस महानगर में थी। पर उसका मन वहाँ नहीं रम पाया था। जम सकता ही नहीं था। वह छोटों से देहात में, कस्बे में, जन्मी पली बढ़ी। जब नहर का कोई पार्श्व या बंधन नहीं बंधा। जाये तो बिछर जाये १

और ससुराल का यह हाल कि पति ने अकारण उससे द्रोष करना शुरू कर दिया और अकारण उसे एक अब उसे मानबी संबंध मात्र पर संदेह होने लग गया था । हर पुरुष उसकी निगाह में एक अहेरी थी और वह अपने आपको एक असहाय हिरनी की तरह अनुभव कर रही थी । और वह अपने आपको एक असहाय हिरनी की तरह अनुभव कर रही थी, जिसके सारे मार्ग अवरोध थे ।¹ इस प्रकार अदिति अनेक कष्टों को झेलते हुए छोट्टी मोट्टी नोकरियाँ का करते हुए जीवन निर्वाह करती है और अन्त में वह अभिनेत्री बन जाती है । अभिनेत्री बनने के बाद वह सुसम्पन्न हो जाती है । और विदेशी चली जाती है ।

2.1.9. वेश्या समस्या :

भारतीय समाज की एक गंभीर एवं ज्वलंत समस्या है - वेश्या समस्या । नैतिक मूल्यों का ह्रास तथा सामाजिक व्यवस्था में अनुशासन हीनता इस पृथा का के कारण है । मूलतः इस समस्या के पीछे आर्थिक कारण है । अभाव के कारण ही समाज में यह समस्या फैली है । वेश्या वृत्ति पुरुष के अहंकार की पुष्टि का ही एक प्रतीक है । डॉ० रील रस्तोगी ने इस संदर्भ में गांधी को उद्धृत किया -- "यह बड़े दुःख और अपमान की बात है कि मनुष्य की नियामक है। स्त्रियों का जो अपमान किया है...उसके लिए उसको कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा । जब स्त्री अपनी पूरी शक्ति से पुरुष के जाल से बचकर उसके नियमों और संस्थाओं के विरुद्ध आन्दोलन करती है तो वह हिंसात्मक ही क्यों न हो, कम प्रभावशाली नहीं होता । भारतवर्ष के पुरुषों को चाहिए उन हजारों स्त्रियों के विषय में गंभीरतापूर्वक विचार करें जो इनकी नियम विरुद्ध अनेतिक वासना के लिए अपना इज्जत बेचती है ।"²

1. दशभुजा - पृ. 46

2. डॉ० रील रस्तोगी - हिंदी उपन्यासों में नारी - पृ. 299

और पुभाकर माचवे ने अपने उपन्यासों में भी वेश्या वृत्ति का चित्रण किया है। माचवे जी ने इस वृत्ति के पाछे मूल कारण आर्थिक माना है। आर्थिक विपन्नता, दरिद्रता के कारण ही विवश होकर नारी इस वृत्ति को स्वीकार करती है। "परन्तु" उपन्यास में नारी के स्वार्थ की चर्चा करते हुए उपन्यासकार ने नारी को भाचारिणी के रूप में भी दिखाया गया है और इसके पाछे भूख को कारण बताया है। "नारी वह जोकि कुलवधुका है फिर भी भूख और दरिद्रता से पीड़ित होकर, दिन में ही अपने आपको बेच रही है। चौरा से नहीं, धोखे से नहीं, सुलेखाम, केवल छः जाने पैसे के लिए, जिसमें वह रोटी भर जा सके।"। लेखक नारी का एक और रूप पुरस्तुत करते हुए लिखा है कि जीविका के लिए स्त्री अनेक कष्ट सहने पर भी व्यभिचार करने के लिए विवश हो जाती है। "नारी वह जो कि आधी रात तक सिलाई का काम करती है और एकदर्जन कमीज सीकर पांच जाने खेतन पाती है। उन गौजियों से जिन्हें अपने शरीर बेचकर उनके मूल्य में दो जाने पैसे अतिरिक्त और कोई घातक रोग पाकर कुतर्ज भी हो जाती है।"²

वेश्यालयों में लड़कियों की भर्ती कैसे होती है इस पर विचार करते हुए "दशभुजा" उपन्यास के नययुक्त मंडली सोचता है कि इसके पीछे मुख्य कारण "धन" है। नव युक्त मंडली का एक युक्त कहता है - "क्योंकि अम्क लखी का भाई या अम्क लखी का बाप भी उसके देर से जाने या इस तरह पैसा कमाने को देखकर भी नहीं देखता, यानी जानता है कि लखी बुरा काम कर रही होगी। पर उसे वह जा पैसा घर में लाती है, उससे मतलब है और बातों से क्या करना 9"³

1. परन्तु - पृ. 83

2. परन्तु - पृ. 83

3. दशभुजा - पृ. 68-69

"किसलिए" उपन्यास में वल्लारी के धोखेबाज पति जगन्नाथ ने अपनी पत्नी से व्यभिचार कराने पर तुला है। यह जान कर वल्लारी अपने परिवार में मि. सिंह के पास दिल्ली चली जाती है। लेखक के शब्दों में "बाद में उन्हें पता चला कि वह दृष्ट शराबी जगन्नाथ अपनी पत्नी से वैरयावृत्ति कराने पर तुला था। वह उस बाध्य कर रहा था कि उसके जो मित्र आए उनका भी वह मनोविनोद करे। जब हालत इस सीमा तक पहुंच गई, वह बेचारी एकदम वहाँ से भागकर चली आई।" ¹ जगन्नाथ जैसे पुरुषों को कानून द्वारा सजा मिलनी चाहिए किन्तु अपने कानून सख्त, हतने सुदृढ़ नहीं है कि उन्हें रकड़कर सजा दी जा सके। भारतीय दंड संहिता § 1860 की धारा 497 के अनुसार अगर कोई पुरुष किसी महिला के साथ महिला के पति की सहमति और अथवा सहयोग से यौन संबंध स्थापित करता है तो कोई बात नहीं। ² यहाँ शायद यह मान लिया जाता है कि पति पर पुरुष को अपनी पत्नी के साथ संभोग की अनुमति दे देता है तो पत्नी भी सहमत होगी ही। ³ मगर कोई पुरुष यह जानता है कि उसकी प्रेयसी किसी और की पत्नी है और उससे यौन संबंध स्थापित करने के लिए उसके पति से सहयोग - समर्थन नहीं जुटाता, तो वह व्यभिचार का दोषी होगा - भले ही महिला, परपत्नी या प्रेयसी लाख इच्छुक हो और लाख सहमत हो। ⁴

"लक्ष्मीबेन" में "लेखा" जो समाज सुधार के लिए लक्ष्मीबेन के नाम से निरुपलब्ध है। वह जिस बस्ती में गई थी वहाँ का किस्सा है - "एक उच्छा भला कमाता हुआ परिवार। दोनों पति-पत्नी मिल में जाते थे। एक दो बच्चे भी थे। घर में बूढ़ी माँ थी। पर धीरे धीरे पति जब शक्त की पाली में मिल में जाने लगा, उसकी बीवी का संबंध एक पड़ोसी गृहे से हो गया। उसने पहले

1. किसलिए - पृ. 48

2. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 92

उसे सहानुभूति दिखाई । कूटी माँ को मंदिर ले जाना । धरम करम की बातें । छोटी मोटी चीजें बच्चों का ला देता । फिर तोहरा देने के बहाने एक दिन उसने उस बीवी को ही उठा लिया ।¹ इस्मूकार के यौन संबंधों से भी समाज में व्यभिचार वृत्ति फैलने लगती है । इस कार्य के पीछे पैसा काम करता है । मनुष्यों के बीच जो संबंध मानवीय धरातल पर अब तक थे व अब अर्थ के आधार पर स्थिर होने लगे हैं । माचवे जी ने लक्ष्मीबेन उपन्यास में लिखा है - मनुष्य संबंधों के बीच पैसा कैसा जहर छोल देता है । यहाँ इस बरती में देखा जा सकता था और उसमें मनुष्य की दो आदिम वासनाएं लुब्धा और काम रौंटी की और साथी की तलाश - उसे किस हद तक अंधाबना देती है । एक ही आदमी की एक से ज्यादा औरतें, एक ही औरत के एक से ज्यादा पति और वे सब गैरकानूनी । जारटन, अवैध संतानें, बच्चों का अवारा हो जाना, अनैतिक काम के लिए छोटे लड़के लड़कियों का व्यवसाय, दलालियाँ कूटनियाँ, व्यभिचार के चोरी छुपे से चलने वाले अड़्डे । बड़े शहरों में उन्हें पुरुष होने वाले अनेक "क्वैर" जैसे बलब, होटल, डांसिंग क्लब, मालिश और स्नानघर, यहाँ तक कि धर्मांतर करके अपनी संस्था बढ़ाने वाले नैक इरादों के धर्म गुरुओं के मठ और आश्रम और पूजा स्थान, दफ्तरों में टाइपिस्ट, स्टेनोग्राफर और सेक्रेटरी के पद, पुवासी, एजेंट, दकान पर "सेल्स" बढ़ाने के लिए लड़कियाँ इत्यादि इत्यादि ।²

यही समस्या "धूल" उपन्यास के गाँव की भी है । जहाँ पर भी मठ मंदिरों में व्यभिचार चलता है । गाँव की नौजवान विधवाएँ और अन्य इस वृत्ति को चलाते हैं । समाज सेविका द्रौपदी गाँव के सर्वोत्तम के लिए कलिया के साथ निकलती है तो कलिया भी इन स्त्रियों से मिलती है । द्रौपदी अपनी डायरी में लिखती है - "मंदिर के पास की गली में कई नौजवान विधवाएँ और दूसरी

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 41

2. -वही-

स्त्रियाँ रहती थी। कलिया उन्हें जानती थी। उनको शाजीविका का एकमात्र आधार चोरी चुपके व्यवहार ही था। धर्म की उंची नाक के नीचे इतना अंधेरा मैंने कहीं नहीं देखा।¹ वह अपनी डायरी में यह बात भी लिखती है -- "इटली में पोप महाराज विराजते हैं। पर रोम के वेस्पासों की गिनती बेशुमार है। धर्म और सेक्स का यह संबंध बहुत पुराना है शायद। स्त्री को धर्म ने सबसे ऊँचे उठाया और धर्म के ठेकेदारों ने रुढ़िवादियों ने उसे सबसे नीचे गिराया।"²

"किसलिए" उपन्यास में तथाकथित समाज सेवक नेता, राष्ट्रीय विचारों के देशभक्त ठाकुर गुरुसाद सिंह अपना काम वासना की पूर्ति के लिए गरीब विधवा, एक बेटे, नैना की माँ अंबा का शोषण करता है। उसकी आर्थिक कठिनाइयों को दूर करके अपनी यौन पिपासा को तृप्त कर लेता है। जब कभी "अंबा" मना करने पर ठाकुर जी "अर्थ" की लालच दिखा देते हैं और वह अर्धा-भाव की स्त्री झुक जाती है। ऐसे ही एक बार ठाकुर की इच्छापूर्ति के लिए अंबा मना करती है "तो ठाकुर ने अपना हमेशा का अस्त्र निकाला - ये लें और सौ रुपये। नैना के लिए तुम्हें पढ़ाई की किताबें, नये कपड़े और टॉनिक खरीदने हैं न। ये नहीं चाहिए हो तो चलो यहाँ से वापस चुपचाप चलो। रुझासो सी अंबा ने सौ का नोट उठा लिया और अपने ब्याज की जेब में रखा और बाद में जो हमेशा, होता था वही हुआ।"³

2.1.10. देवदासी पुथा :

देवदासी पुथा विशेषतः दक्षिण भारत में प्रचलित है। यह पुथा एक प्रकार से वेस्पा वृत्ति का पूर्व रूप है। "राजाओं, जमींदारों एवं अमीरों में यह पुथा

1. "चूत" - पृ. 95-96

2. -वही- पृ. 96

3. किसलिए - पृ. 99

थी कि उनके यहाँ किसी भी धार्मिक कार्य के प्रारंभ में देवदासी का नृत्य होना आवश्यक माना जाता था। महात्मा गांधी ऐसे धार्मिक वेश्या वृत्ति को समाज का नैतिक पतन मानते थे। यह लज्जापूर्ण, अपमान कारक तथा दुष्ट की बात है कि ऐसी अनेक स्त्रियाँ सतीत्व का भोग करके किसी पुरुष से पाप वासना की इच्छा करती हैं।¹ श्री प्रभाकर मावड़े ने भी अपने उपन्यास "दाभा" में देवदासी प्रथा का उल्लेख किया है। दाभा की मिश्र मीनाक्षी भटानंद अनाथ महिलाश्रम दूनो से प्रकाशित "स्त्री" मासिक पत्रिका का पुराना अंक पढ़कर उसे सुनाती है। जिसमें एक सच्ची कहानी "देवदासी प्रथा" से संबंधित है। कहानी इस प्रकार है - "सावंत वाजी को और की देवदासी जाति की लक्ष्मी देवदासी जाति में लड़कियों के विवाह नहीं किये जाते। किसी देवालय में देवता की सेवा करना और विवाहिता की भाँति किसी ऐसे वाले राजमान के यहाँ रहना, यह बात कुतुहल है। इस लक्ष्मी की माँ उसके अवन में ही मर गयी। वह पूर्ण यौवना हुई। उसके मामा उसके लिए पति ढोजने लगे। परन्तु लक्ष्मी को देवदासी का जीवन बिना पसंद नहीं था। कोई उससे विवाह नहीं करता था और उसके पढ़ने की भी कोई व्यवस्था नहीं हो रही थी। बाँधर उसके बड़े भाई ने उसे इस आश्रम में लाकर रखा। वह लिखना, पढ़ना, सीना, पिराँना सीखी। लक्ष्मी का रहन सहन किसी भी कुलीन घराने की भ्रुकन्या की तरह से है।"²

मंदिरों, मठों, गिरजाघरों और अन्य संस्थाओं में होने वाले अनैतिक व्यवहारों पर प्रकाश डालते हुए "दर्द के पेबन्द" की कृता कहती है - "जतान स्त्री पुरुषों को अजीवन अविविवाहित रखने वाले सारे मौनौटिक धर्म - बौद्ध, जैन, ईसाई, बाद में गांधी जी के ब्रह्मचर्य - विवाहेतर ब्रह्मचर्य पर आग्रह

1. श्री विमल सहस्त बड़े, हिंदी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक

विश्लेषण - पृ. 79

2. दाभा - पृ. 43-44

वाले संघ आत्मवादी क्रांतिकारी और कम्युनिस्टों के आरंभिक शुद्धवादी
 § त्पुलिटैकिक § समूह और ऐसे सभी समुदाय जो प्रकृति के विरुद्ध अपनी अकेली
 नेया छेते रहे हैं, बहुत सफल नहीं हो पाये। यह कहना गलत होगा कि सारे
 साधु मुनि, कैथलिक "मंक" और "नन" या गांधीवादी अविवाहिता कार्य-
 कर्ता या क्रांतिकारी आत्मवादी सब मनोविकृत के बिकार हुए या उनमें
 कोई महान आदर्शवादी व्यक्ति निकले ही नहीं। पर इतना सच है कि
 यह मार्ग जन साधारण का मार्ग नहीं है। यह प्रवाह से विचरीत अपनी
 नेया छेना है।¹

2.1.11. सती जुधा :

"अनदेखी" उपन्यास में "सती जुधा" का उल्लेख है। नायिका "दर्शना"
 एक समाज सेवा केन्द्र की "साक्षरता" विभाग में काम करती थी। एक दिन
 समाचार पत्र में "सती जुधा" का समाचार आया। जिसे पढ़कर वहाँ के
 मित्रों को उसने सुना था "देवराला, सितम्बर 16 § पु.ट.हिं § अठारह बरस
 की स्वकुंवर सितम्बर 4 को राजस्थान के सोकर जिले के इस गाँव में अपने पति
 की चिता पर बैठकर "सती" हो गई थी। उसकी "चूनरी" का समारोह
 देखने लाखों लोग जुट आये। x x x "सती" स्थल से एक किलोमीटर दूर
 स्वकुंवर की "हथेली" एक तीर्थ स्थल की तरह बन गया था। सब लोग आकर
 अपना पुणाम और श्रद्धा के सुमन चढ़ाने के लिए आगे बढ़कर होठ लगा रहे थे।
 सब उस पवित्र स्थान का दर्शन करना चाहते थे। एक झलक मात्र। वही पर
 पूरा दर्शन का साज श्रंगार कर यह लडकी सती हो गई थी।² इस समाचार

1. दर्द के पेबन्द - पृ. 58

2. अनदेखी - पृ. 40-41

को सुनने के बाद नवसाधरों में तर्क विर्क होने लगा । एक महिला ने कहा कि "यह धार्मिक मामला है इसमें सरकार को दखल नहीं देना चाहिए" तो दूसरी महिला जो तेज दारार थी । वह बोली ---"क्या बात करते हो आप लोग । राजा राम मोहनराय के पुत्रों से लार्ड बेंटिग ने सती पुथा को बंद कराया उसे एक सदी से ऊपर हो गया । हमारे कानून में कहीं भी सती के लिए कोई संदर्भ नहीं है । धर्म के नाम पर यह एक तरह की नाबालिग लड़की की हत्या है । कानून के पंजे से बचने के लिए छिता को अग्नि एक छोटे से बालक से दिलवाया । यह स्त्री की स्वतंत्रता के अधिकार का हनन है । यह बर्बर पुथा है ।" बाद में दर्शना सोचने लगी कि "सती काण्ड" के बाद कितने लोगों की कितनी कितनी प्रतिष्ठियाएं थी । किसी ने कहा - "बेरदी लिखी औरते ऐसी बेवकूफी करें तो ठीक है - पर यह स्त्री उसका पति उनके मां-बाप सब पढ़े लिखे थे । उपाधिकारी थे । शिक्षक थे । बोलिये, अब आपको क्या कहता है ?" किसी ने कहा - उसे नशा दे दिया था ।² इस सती काण्ड पर प्रतिष्ठियाएं आ रही थी । बाद में दर्शना "प्राचीन भारत में रिश्र्या और हठों की गलामी" पढ़ती है । इसके बहाने माचवे जी ने सती पुथा का इतिहास पाठकों को बता दिया है । "कैशली जन्मद के लोग 725 ईसा पूर्व में कहीं सती होती थी ऐसा एक उल्लेख मिलता है । पर महावीर या बुद्ध के समय कहीं भी सती का नामोल्लेख नहीं है । इ न रामायण में न महाभारत में । केवल पांडु की पत्नी माद्री सती हो गई थी ऐसा ही उल्लेख है । वह बाद का भी हो सकता है । महाभारत में बहुत से श्लोक बाद में जोड़े गये "पुष्टिप्त" है ।³ "मध्ययुग में राजपूतों में जोहर होने लगा वह धर्मांतर के ठर से । या शुक्र इन रिश्र्याओं को भगाकर ले जाये या उनके साथ बलात्कार न करें इसी ठर से शायद यह पुथा चली ।"⁴

1. अनदेखी - पृ. 41

2. -उही- पृ. 80

3. व 4. अनदेखी - पृ. 99

इस प्रकार डा० प्रभाकर माधवे ने उपन्यास के सृजन के सम्बन्धीन समस्याओं का भी यथार्थ के साथ पाठक को बोध कराया है ।

2.1.12. विधवा समस्या :

भारतीय समाज में नारी का मान मर्यादा पति के साथ जुड़ा हुआ है । जिस नारी का पति मर गया हो उस का ऐसे समाज में क्या गौरव हो सकता है, हम कल्पना कर सकते हैं अर्थात् भारतीय पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का सब कुछ मान सम्मान, व्यक्तित्व स्वतंत्रता पति के आधार पर निर्धारित है । इससे स्पष्ट होता है कि विधवा की स्थिति भारतीय समाज में दयनीय है । वह समाज में छुपित मानी जाती है । उसे सामाजिक रीति रिवाजों में पूर्व एवं त्योहारों में दूर रखा जाता है । उसे अशुभ माना जाता है । उसके खाने पीने पर नियंत्रण रखा जाता है । वह मात्र प्राणी है, मनुष्य नहीं । "सखवा नारी के लिए पति उसका कवच ही नहीं ढाल भी है । परिवार उसका सहायक ही नहीं मुखपेशी भी है । सामाजिक परिपार्श्व में उसकी प्रतिष्ठा अनुमेय है । विधवा नारी समाज के लिए बोझ, परिवार के लिए एक अनुपेक्षित दायित्व और अपने आप में एक अत्यन्त पीछा का साकार रूप है । परिवार के किसी भी अमौलिक अनुष्ठान के अवसर पर विधवा की उपस्थिति अशुभ मानी गई अच्छा भोजन रस की लालसा और अच्छे वस्त्र की कल्पना भी उसके लिए वर्ज्य मानी गई । घर में विधवा की स्थिति एक ऐसी दासी की भाँति हो जिसे बिना केतन केवल रुखे भोजन एवं मोटे वस्त्र पर नियुक्त किया जाता है ।"।

1. डा० स्वर्णभान्ता त्रिवार - हिंदी उपन्यासों में नारी समस्याएँ-

डा० प्रभाकर माधवे ने अपने उपन्यासों में विधवा समस्या पर भी प्रकाश डाला है। विधवा की समस्याओं पर तथा समाज में उसके स्थान पर विचार विमर्श किया है। अपने पहले उपन्यास "परन्तु" में "हेम" का फिक्शन विधवा के रूप में है। उसका विवाह एक उच्चवर्ग, वैकार, जमींदार केबेटे से हुआ था। उसका जन्मी ही देहान्त हो गया जिसके कारण अबोध "हेम" को "विधवा" रूप धारण करना पड़ा। उसके लिए सभी कुल और वानंद समाप्त हो गये।

दाभा उपन्यास में श्रदानंद अनाथ महिला श्रम पूना से प्रकाशित "स्त्री" पत्रिका की एक सच कानी बाल विधवा से संबंधित है। कहानी इस प्रकार है - "उत्तर प्रदेश की एक बाल विधवा को पान खाने का शौक था। उसका जन्म वहाँ बहुत ऊँचा कुलीन डा इसलिए विधवा का पान खान उसके रिश्तेदारों को पसंद नहीं था। उसकी आदत तो छुटनी अस्मय थी इसलिए घर के लोग भी उसे अधिक बुरा भला कहते। अन्त में वह आत्महत्या के इरादे से घर छोड़कर बम्बई में आयी जहाँ वह गृहों के हाथों में पड़ गयी। वहाँ समाज की मारपट वह इस आश्रम में आयी और बाद में उसका पुनर्विवाह हुआ।"

"अखि मेरी बाकी उनका" उपन्यास में उपन्यासकारों ने एक बाल विधवा का वर्णन किया है। उपन्यास के नायक ने अपनी बहन बाल विधवा होने के बारे में बताया है - "बहुत बचपन में बड़ी बहन बाल विधवा हो गई। सब्बर आई बंबई में पति था विवाह 12 वर्ष की आयु में हुआ। पति सात साल बड़ा था, उसे संग्रहणी से मौत प्राप्त हुई। अब घर में एक हंगामा। छुटियाँ फोटी गई, कपाल पर का कुँड़ू मिटाया गया। नाना प्रकार के उस पर बंधन। वह रंगीन, किनारे वाली, साड़ी न पहने।

वह पान न खाये । उसे विवाह आदि उत्सवों में जाना वर्जित । एक और बड़ी बहन ऐसी ही बाल विधवा होने के पागल हो चुकी थी । अब यह "जीवन में ही मृत्यु" का दूसरा दौर । पिता और उनके स्लाहकार भट्जी शिष्टः पुरोहित के आश्रयन कराना चाहते थे । माँ ने मना किया । सुंदर चेहरे के सुंदर बाल, इस तरह कटते कटते बचे । बहिन बहुत ही बेभागी थी ।¹ ऐसी बाल विधवाओं की जिंदगी सुधारने के लिए शायद उपन्यासकार यही सुझाव देते हैं कि स्त्री को शिक्षित होना चाहिए । यदि वह शिक्षित होती तो समाज में कुछ छोटा मोटा काम करके अपनी जीविका का निर्वहण कर सकती । इसीलिए उपन्यासकार ने इस उपन्यास में नायक के माध्यम से उसकी बहन को शिक्षित करवा के नौकरी दिलवाता है । उपन्यासकार नायक कहता है - "भैं बड़ा हुआ, पढ़कर नौकरी करने लगा । तो पहला काम भैंने इस बहन को पूना में कर्मेंजी के महिला विद्यालय में दाखिल करा दिया । कम से कम कुछ पढ़े तो जीवन सुध जाये । बहिन के ससुर ने भयानक रूप से विरोध किया । x x x बाद में वही बहन कमाने लगी । सास - ससुर उसकी कमाई के सवारे जी उठे । सारा क्रोध विरोध शांत हो गया ।"²

2.1.13. तलाक और भरण पोषण :

डॉ० प्रभाकर माधवे के उपन्यासों में परित्यक्ता नारियों की समस्याओं पर विशेष रूप से विचार किया गया है । वहाँ पति द्वारा प्रताड़ित व परित्यक्ता नारी अपनी जीविका के लिए अपने पति से मुआवजा या गुजारा भत्ता पाने की कोशिश करती है मगर कानून इतने लचीले है कि बेधारी स्त्री को भरणपोषण का न्याय नहीं प्राप्त होता है । "भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 में । अप्रैल, 1974 से यह प्रावधान

1. बखि मेरी बाकी उनका - पृ० 23

2. -वही- पृ० 24

है कि अगर कोई साधन सामर्थ्य व्यक्ति अपनी पत्नी बच्चों पुत्रायक या नात्रायक और माता - पिता की देखभाल या भरण पोषण करने में उपेक्षा करता है या उससे इन्कार करता है, तो पत्नी बच्चे या माता-पिता जो अपना भरण पोषण करने में अतर्क्य है, उससे भ्रारा भत्ता ले सकते हैं। लेकिन किसी भी स्थिति में यह राशि 500 रुपये महीना से अधिक नहीं हो सकती। यह राशि मिलने में भी बहुत से कानूनी किन्तु परन्तु है।¹

"दशमुद्रा" उपन्यास में अदिति का पति उसे छोड़ा देकर चला जाता है तब वह अपनी मित्र महिमा के पास जाकर आगे कार्रवाई पर विचार विमर्श करती है। वे सोचने लगती है कि इस प्रकार पति छोड़ा देकर छोड़ जाता है तो क्या उसके विरुद्ध कानून कुछ नहीं कर सकता? महिमा ने कहा "एक वकील मित्र से सलाह लेगे। पति को नोटिस देगे। वह अगर उसे छोड़ना चाहता है, तो उसे माहवार उसे कुछ "मुआवजा" कोई राशि देनी ही होगी। पर पति उस नोटिस को स्वीकार करे तभी तो यह हो सकेगा? वह कई झूठी बातें कह सकता है कि पत्नी उसे "पीठित" करती थी... "पीठा को तुरु में दूँदा, तुरु में दूँदा पीठा" तुरु में दूँदा पीठा" भी तो हो सकता है।² इसी प्रकार के विचार विमर्श अदिति अपने पति की दूसरी पत्नी श्यामा से भी करती है। श्यामा अदिति पर सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहती है कि सोमनाथ तुम्हें छोड़ा देकर मुझे भी छोड़ा दिया है। तुम कानूनी सहायता क्यों नहीं लेती? तो अदिति कानूनी कार्रवाई को बहुत ही पेचिदा बताती है और कहती है - कानून बहुत मुश्किल है। यह लिख करना कि वह पति मुझे शारीरिक यातना पहुँचाता है। या मानसिक - इसका साक्ष्य कौन होता? और यह

1. अरविंद चैन - औरत होने की सजा - पृ. 96

2. दशमुद्रा - पृ. 18

सिंह किये बिना कानून भूँ पत्नी के भरण पोषण के लिए दिया जानेवाला मासिक भत्ता कहाँ से दिलवाता ?¹

"किसलिए" उपन्यास में रेठियो स्टेशन में काम करने वाली वल्लरी जिसने जर्मनी और रिया के जगन्नाथ के साथ प्रेम विवाह करके कटक लौट आती है। वह छोड़ा खा गई थी। उसका पति निष्क्रमा, छोखबाज निकला। जगन्नाथ की शादी हो चुकी थी और उसके दो बच्चे भी थे। वह उन बच्चों को अपने साथ जबरदस्ती से रखता था। वल्लरी के सभी गहने बेच कर खाने पीने में धन खर्च किया। आखिर स्वाभिमानिनी वल्लरी ने एक बच्चों के स्कूल में नौकरी कर ली। उसके कुछ आय मिलने लगा। जगन्नाथ उसकी पछली पत्नी से दो बच्चे और स्वयम् का पालन पोषण उसने किसी तरह किया। किन्तु जगन्नाथ उसे और यातनायें देने लगा, व्यवहार करने विवश किया तो वह अपने परिचित मि. सिंह के पास दिल्ली चली आयी। मि. सिंह और वल्लरी सोचने लग कि जगन्नाथ से किस प्रकार तलाक लिया जाय। उन्हें कुछ नहीं रहा था कि किस भूँ के आधार पर तलाक लिया जाय ? क्योंकि भारतीय कानून के अनुसार पति पत्नी के साथ छोड़ा छोटी करने के आरोप से तलाक नहीं लिया जा सकता। वे सोच रहे थे - "कानून में ऐसी कोई धारा नहीं है कि हिन्दू धर्म से विवाहित स्त्री को पति यदि ठीक तरह से न रखे, तो वह इस बात पर तालक ले ले। यदि पति पत्नी के साथ छोड़ा छोटी करे तो भी कोई रास्ता नहीं है ?"² उपन्यास कार डा० माधवे जी ने तलाक किन्-किन परिस्थितियों में मिल सकता है, विस्तार के साथ व्याख्यायित किया है वे कहते हैं - "और विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब दोनों ने प्रेम विवाह

1. दशभुजा - पृ. 100

2. किसलिए - पृ. 47

किया हो । सौगंध खा खाकर विदेश में जो प्रणय के बाद परिणय के एक स्रुज में स्वेच्छा से बंध रहते हैं । जबकि स्त्रीकी उम्र काफी हो और वह माता बनने की इच्छा भी रखती हो । कानून के हिसाब से तीन बरस दोनों को एक दूसरे से अलग रहना चाहिए तभी विवाह विच्छेद संभव है । या फिर पति पत्नी को शारीरिक प्रताड़ना देता हो, जो स्थि की जा सके । मानसिक प्रताड़ना के लिए हिन्दू स्त्री बया करे १ छुपचाप लहू के छूट पीकर सहन करें । "अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी १ बाँकल में दूध चाहे हो न हो, आँखों में पानी तो जरूर उसका विवाहाधिकार है - जन्मस्थि अधिकार ।" यही बात "लापता" उपन्यास में प्रशान्त उधा से कहता है । प्रशान्त अपने भाई को दूँद ने निकला है उसे उधा मिलती है । उधा अरविन्द से विवाह की है और वह उधा को छोड़कर चला गया है । तलाक के विषय में बहस करते हुए प्रशान्त कहता है कि "कानून यहाँ भी पुरुष के हक में है । तीन साल वह पत्नी से अलग रहे और सीधे "सेपरेशन" ले सकता है ।"²

2.1.14. प्रताड़ना और क्लात्कार :

भारतीय समाज में नारी के प्रति प्रताड़नाएँ एवं क्लात्कार की छटनाएँ दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही हैं । नारी के मान सम्मान तथा सुरक्षा के लिए कितने ही कानून सरकार द्वारा बनाए गये हैं किन्तु नारी को समाज में मर्यादा के साइर जीने का अवसर कानून द्वारा नहीं मिल पा रहा है । नारी पर अत्याचार करने वाले लोग धन कल और क्लील के बुद्धि कल पर तुरन्त कानून के बन्धनों से छूट रहे हैं ।

1. किसलिए - पृ. 47

2. "लापता" पृ. 64

घर में नारी जो पत्नी के रूप में रहती है उस पर जो ब्रह्माचार पति के द्वारा होता है, उसका कोई समाधान नहीं है। उस स्त्री के लिए पुनः चाप पति के द्वारा दिये जाने वाले यातनाओं को सहते जाना ही एक मात्र कर्तव्य है। इसका कोई हल तब तक नहीं होगा जब तक नारी में जागृति की भावना नहीं आती।

छा. प्रभाकर माधवे ने अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर स्त्रियों पर होने वाले ब्रह्माचारों का चित्रण किया है। "आमा" उपन्यास में परित्यक्ता "आमा" द्वारा अपनी माँ को पिता द्वारा दिये गये यातनाओं का याद करवाकर गृहणी पर पति के द्वारा होने वाले ब्रह्माचारों को दर्शाया है। आमा के स्मृति में आता है - "माँ भी इसी तरह तिल-तिल गल गलकर धरती से उठ गयी। भगवान ने दया की। पिता तो सदा शहाब में द्रुत, निरंकुश घर जाने पर मरते दम तक मार मारकर माँ की छट्टी पत्नी एक करते रहते। एकाध बार आमा बीच में बचाने गई तो उसे भी उन बेतों का शिकार होना पड़ा। माँ ही थी कि पुनः रह जाती। नील हाथ पैरों पर उभरते, पर उफ नहीं करती। और ऐसी कितनी माँओं ने यहाँ अपना जीवन पतितवता रूप पकरीली मंदिर देखी पर उत्सर्ग नहीं कर दिया।"।

घर में स्त्रियों को जो यातनायें प्रताड़नाएं पति के द्वारा दिये जाते हैं उनसे कहीं अधिक कष्ट घर के बाहर होने वाले क्लृप्तकार की छटनाएँ हैं। "भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 375 §6§ के अनुसार किसी भी पुरुष द्वारा सोलह वर्ष से कम उम्र की महिला की सहमति या असहमति से उसके साथ सहवास करना क्लृप्तकार है, लेकिन धारा 375 के

अपवाद में प्राक्धान है - अपनी ही पत्नी जिसकी उम्र पन्द्रह साल से कम न हो के साथ सहवास करना कलात्कार नहीं है ।¹ 1983 में हुए शोधनों के बावजूद कलात्कार के संदर्भ में कानूनी प्राक्धान दोषपूर्ण है । भारतीय सहाय अधिनियम 1983 में किये गये शोधन के अनुसार 114 § १५ में यह प्राक्धान किया गया है कि धारा 376 § 2 की उप धारा ए.बी. सी. 71 और जी के अंतर्गत कलात्कार के मामले में यदि महिला अदालत में यह कहती है कि उसकी सहमति नहीं थी, तो अदालत को यह मानना पड़ेगा । लेकिन यह प्राक्धान सिर्फ पुलिस, सार्वजनिक सेवामें रत व्यक्ति जेल प्रबंधक, डाक्टर द्वारा कलात्कार या सामूहिक कलात्कार या महिला के गर्भवती होने की स्थिति में ही प्रभावी माना जायेगा । मगर इस हालत में भी "मर्जी" या "सहमति" के आधार पर अपराधी के बच निकलने के रास्ते मौजूद हैं ।²

"लूमीबेन" उपन्यास में "नीटू" की कलात्कार की कहानी है ।

नीटू सोलह - सत्रह साल की इंटरमीडियट की छात्रा है जो प्रो. लेखा गुप्ता की प्रिय है । घर का वातावरण आधुनिक ढंग का था । पश्चिमी ढंग के पक्के पहनती थी । "एक शाम को देर से वह अकेली घर लौट रही थी - घर दूर छावनी में या उप नगर में था, निर्जन बस्ती में बड़ा बंगला जहाँ तक बस नहीं जाती थी तो उस पर स्कूटर चालक ने बदमाशी से जुंगल की राह की ओर ले जाकर अतिचार किया । पहले तो नीटू समझी कि यह आदमी पेसे चाहता है, तो उसने पर्स दिखा दी - उसमें दस पाँच रुपये थे, कुछ "चिल्लर" या रेजगारी थी । यह आधुनिक होने से गहने ज्यादा नहीं पहनती थी । गले की नेक्लेस, कान की बालियाँ नक्ली सोने की थी । वे भी दे दी । हाथ छड़ी दे दी । फिर भी वह नहीं

1. अरविंद जैन - औरत होने की सजा - पृ. 54-55

2. -वही-

माना । उसने उस भोली लड़की से हाथापाई करनी शुरू की । नीतू ने जितना प्रतिकार किया, उस नराधम बन मानुस को और जोश चढ़ता गया । नीते के पकड़े फाँटकर उसका मुँह और मूत्र के बाँधकर उस स्कूटर चलाते वाले ने उसके साथ मनमानी की । ब्लात्कार किया और वही छोड़ दिया । नीतू बेहोश हो गयी ।¹ नीतू न स्कूटर नम्बर याद कर पाई थी और न स्कूटर चाले की घड़े को पहचान पाती थी । इस कारण उसके माँ बाप रों धोकर चुप हो गये । पुलिस को हत्तला नहीं दी । चार पाँच महीने के बाद पता चला कि वह गर्भवती है । माँ बाप गर्भपात कराना चाहते थे किन्तु समय बीत चुका था । "नी" महीने पुरे हो भी नहीं पाये थे कि बच्चे का जन्म हुआ । बच्चा जन्मते ही मर गया । नीतू पागल हो गई । सारे होश हवास भुलाकर वह कपड़े फाँटने लगी । पुस्तक मात्र से वह नफरत करने लगी । अजनबी, दाढ़ी बेतरतीब बढ़ी, बाल बिखरे, जाकिट पहने चर्यावत का गला घोटने वह भागती - हर ऐसा व्यक्ति उसे स्कूटर वाला ही लगता । माँ-बाप के लिए बड़ी मुसीबत हो गई - उन्होंने उसे पागलखाने में रख दिया ।²

ऐसी ही एकदरिनाक घटना बस्ती की युवती से "लक्ष्मीबेन" को सुन्ने में आयी । जिसने संरक्षण दिया वाला पोसा और बछा किया वही व्यक्ति उस लड़की के जीवन पर पानी फेर दिया । युवती अपनी दुःखद कहानी लक्ष्मीबेन को सुनाती है - "आप, हम लोगों की जिन्दगी कितनी मुश्किल होती है, समझ नहीं सकती । खानेवाला ही पत्तल में छेद करता है । बाप जन्म केबाद ही मर गये । जिस नज़दीक के रिश्तेदार ने वाला पोसा, वही हम उम्र में आने पर हमसे ब्या कर बैठा । पहले हम समझी कि बुर्ग है, पीठ पर हाथ फेरता है । जाने दो । पर मामला वही तक नहीं रुका । x x x "हमल रह गया । उसी नरपशु ने गिरवाया और जन्म

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 24 - 25

2. -वही- पृ. 26

भर के लिए अपने पहचान के नीचे बांध लिया। हमसे काम करवाता था और हमारी मददारी भी छुड़ ही पी जाता। बाद में साला अपनी ही करनी से बीमार पड़ा। मर गया।¹

"दशभुजा" उपन्यास में भी एक कलात्कार की घटना का उल्लेख है। अदिति जिस मुहल्ले में रहती थी वही की एक हरिजन लड़की के साथ कलात्कार हुआ था। "सोलह वर्ष की उड़िया हरिजन लड़की सीता के साथ शाम के छुटपुटे में घटना हुई। वह बाजार की ओर गई थी, कुछ खरीदने। रास्ते में थोड़ा सुनसान हिस्सा पड़ता है। वहाँ गुंडों ने उसे छेर लिया। उसे तो उसके पास क्या थे, गहने भी नहीं थे। उन्होंने कुछ नहीं तो उसकी इज्जत छी लूट ली।"² अदिति द्वारा पुलिस थाने में रिपोर्ट लिखवाने पर भी न पुलिस गुंडों को पकड़ ली और न समाज वाले सीता के लिए कुछ कर पाये। सीता एक दिन अचानक अद्वय हो गई। कोई नहीं जानता कि वह कहाँ गई है? या फिर उसने आत्महत्या कर लिया?

"आभा" उपन्यास में भी मीनक्षी "स्वी" पत्रिका की एक सच्ची कहानी पढ़कर आभा को सुनवाती है। कहानी इस प्रकार है - "पूना जिले के ब गरीब ब्राह्मण की लड़की। बाप पुरोहिती करता था। बारहवें बरस में उसका विवाह हुआ। दो तीनबरस में पति मर गया। उसके पीछे माँ - बाप भी मर गये। मोती का आधार था। मोती अकेली थी। परमार्थ साधन के लिए किसी गुरु की भक्ति में शुरू गयी। उसकी कुसंगति

1. लक्ष्मीबेन - पृ. 44

2. दशभुजा - पृ. 77

में वह लड़की भी गुरु की भक्तिन बनी । उम्र से युवती और रूप से सुन्दरी लड़की के प्रति गुरु के मन में पाप जाया । परिणाम जो होना था वही हुआ । बेचारी अटानंद आश्रम में आकर प्रसूत हुई । गुरु जी ने परमार्थ का मार्ग न दिखाते हुए उस बेचारी को पाप की गर्त में धकेला ।*1

इस प्रकार नारी का पशु की तरह पुरुषद्वारा क्लृप्तकार किये जाने के पीछे कारण क्या हो सकता है ? क्या मात्र पुरुष की काम भावना है ? इस प्रश्न पर विचार करते हुए डा० प्रभाकर माचवे ने दर्द के पैबन्द उपन्यास में अपने विचार प्रकट किये हैं - "क्या सारी हिंसा का मूल यह हविस है ? पुरुष की स्त्री के प्रति यक्षिणकार जैसी दृष्टि ? वह फिर बढ़ कर दूसरों की भूमि, दूसरों की लक्ष्मी, दूसरों की पत्नी छठपने की जिज्ञासा तक पहुँच जाती है ? हो सकता है, सारी बुराई की जड़ यह हथियाने की, छीन्ने की, क्लृप्तपूर्वक अपनाने की, अपने सुख के लिए दूसरे का "उपयोग" करने की वृत्ति ही हो । इसी कृपा भेस दुख निवृत्ता... पर फिर तथाकथित अनात्मत वैरागी, जोगी भी दुखी क्यों ?"2

2.1.15. कन्याओं को बिछोड़ी :

"बेटी बेचने का तर्क जिसे बाप, उसके जवान होने की प्रतीक्षा का खतरा नहीं उठा सकता, क्योंकि उसकी संरक्षकता शायद बेटी की सुरक्षा कर पाने में स्थगन ही नहीं है । कुछ भी उल्टा सीधा होगया तो वह इस काकिल भी नहीं कि सालों न्याय के लिए कोर्ट कचहरी करता फिरे । करेगा तो चायेगा क्या ? और वकीलों को फीस देगा कहाँ से ? भूखा रहकर मुकदमेबाजी कर ली ले, लेकिन फिर भी क्या उसके साथ न्याय

1. दामा - पृ० 44

2. दर्द के पैबन्द - पृ० 22

होगा ? शायद अमीना के गरीब माँ बापने भी इसीलिए अबोध बालिका का निकाह 60 वर्षीय सऊदी अरब के शेरख संगीह के साह कर दिया होगा । अमीना पल्ली औरकेलीलकी नहीं जो इस तरह ब्याह दी गई हो । भारतीय कानून व्यवस्था की यह कैसी विडम्बना है कि अमीना काठि के मुख्य अभियुक्त सऊदी अरब के 60 वर्षीय शेरख संगीह को जमानत पर छोड़ दिया गया । काजी व अन्य लोगों के विरुद्ध अभी तक कोई कानून कार्यवाही नहीं की गई । लेकिन निर्दोष और अबोध ।। वर्षीय अमीना को दिल्ली के "बाल सुधार ग्रह" में रखने के अदालती आदेश दिए गए ।¹

ऐसे घटनाएँ भारत में अब आम हो गयी हैं । कोई अपनी बेटी को सीधे सीधे बेच देता है तो कोई विवाहकी आठ में उसे दूसरों के हाथ "धन" के लालच में सौंप देता है । नारी की यह सबसे दर्दनाक स्थिति है । नारी के प्रति होने वाले शोषणों की पराक्षेष्ठा है । "धन" के लिए नारी को "पण्य वस्तु" बना दिया गया है । मानवीय संबंधों का कोई अर्थ और मूल्य नहीं रह गया है ॥ सबसे विचित्र बात यह है कि अपने कानून ऐसी घटनाओं को रोकने में अक्षम है । इसी कारण चोरी चुपके कई अरब शेरख या अन्य पुरुष भारत में आकर लड़कियों का एक प्रकार से खरीद कर के ले जा रहे हैं ।

डा० प्रभाकर माधवे ने ऐसी घटनाओं पर अपने उपन्यासों में प्रकाश डाला है । "किसलिए" उपन्यास में एक ऐसी ही घटना है जो एक कूट बंगलादेश से एक जवान लड़की के साह ब्याह करके अमेरिका जा रहा था । इस घटना का न्योरा बंगाली बाबू बेनजी के घर पर आए अतिथि

अर्जित देता है। उस सज्जन का नाम अमजद हुसैन था। उम्र उनसठ। जन्म छिगौंग में। जो लठकी उनके साथ जा रही थी उसका नाम गैला था। उम्र बीस थी। मगर कम जान पड़ती थी। अभी उन्होंने उसके साथ निकट किया था। अजित अमजद से यह पूछने पर कि यह आपकी पत्नी शादी है ? तो अमजद ने कहा - "नहीं जी, हमारा एक वाइट बीवी उधर था। उससे एक बेटा भी हुआ। पर दोनों हमको छोड़ दिया। x x x अब हम यहाँ से मेहर देकर यह हमारा नया गिन्नी गृहिणी ले जाता है।" इस प्रकार गरीब देशों से लठकियों को खरीद कर ले जाने वाले पुरुष मानवता का परिहास उठाते हैं।

"दर्द के पैबन्द" में भी गरीब पहाड़ी लठकियों की बिछी करने का उल्लेख मिलता है। माचवे जी लिखते हैं - "पहाड़ी लठकियों की आम बिछी, खरीद फरोहत, नेपाल की सीमा के कलकत्ता बम्बई के... चक्काखानों तक और वहाँ से पता नहीं किन किन देशों के गुलाम बाजारों तक उसी तरह चल रही है।" 2

स्पष्ट है आज मानवीय मूल्यों का हास होता जा रहा है। नारी के सिर्फ पण्य वस्तु बना दिया गया है। इसके पीछे अंधाभाव ही मूल कारण विदित होता है। इस प्रकार नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व का पूरी तरह नष्ट होने लगा है। इस परिस्थिति से नारी को न कानून उपर उठाया है और न ही सामाजिक संस्थाएँ। आधुनिक काल में भी नारी अपनी जिन्दगी की यातनाओं को सहते हुए जी रही है।

2.2. रंगभेद बनाम - पारचात्य एवं भारतीय जीवन का यथार्थ :

मनुष्य सामाजिक प्रणी है और वह समाज के एक दूसरे पर निर्भर रहता है। इस उक्ति में जितना सत्य है उतना ही सत्य यह भी है कि

कलवान कलहीन का शोधन करता है। क्योंकि मनुष्य को बुद्धि का अहसास जब से होने लगा तब से जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, रंग के नाम पर, वर्ग के नाम पर, एक दूसरे का शोध करता आया है। इस तथ्य को हम कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद के माध्यम से स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। जिसके अंतर्गत आदिम साम्यवाद को छोड़कर बाकी सभी दास प्रथा, सामंतवादी और पूँजीवादी युगों में सामाजिक व्यवस्था वर्गगत शोधन का शिकार हुई है। आशुतोष सिंह लिखते हैं - "यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि हमेशा ही अधिक शक्तिवान साधन संपन्न और और संस्कृति संपन्न लोगों और राज्यों ने कमजोर, साधनहीन, और निम्न संस्कृति वाले लोगों और राज्यों का हस्तेमाल किया। इसके लिए उन्होंने अपने हितों को ध्यान में रखते हुए सबसे पहले पिछड़े समाजों में अपनी आक्रामकता सिद्ध की। इसके बाद अपना विस्तार करना शुरू किया।"¹ आगे वे कहते हैं - "वर्ग व्यवस्था के नाम पर ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों ने शूद्रों को अपनी श्रेष्ठता दिखाते हुए उनका भरपूर शोधन किया। इसी प्रकार का झूठ साम्राज्यवादी गोरी जाति के व्यवस्थापकों के साथ किया।"²

वस्तुतः भारत में जाति प्रथा का जितना पुराना इतिहास है उतना ही पुराना इतिहास विश्व में रंगभेद का है। यदि हम दोनों समस्याओं का ऐतिहासिक विवेचन करते हैं तो स्पष्ट होता है कि इन समस्याओं के पीछे मूलतः आर्थिक तथा गौण रूप में सामाजिक राजनैतिक कारण दिखाई देते हैं। जाति की विशेषताएँ बताते हुए डा० रामकृष्ण शर्मा लिखते हैं - "जाति या बिरादरी की तीन विशेषताएँ होती हैं।

1. आशुतोष सिंह *लेख*, भेद और शोधन की श्वेत ओपनिवेशिक नीति

समकालीन सृजन *जाति भेद और रंगभेद* विष्णुजी-दत्त, 89

पृ. 190

पहली विशेषता यह है कि बिरादरी के सदस्य एक ही पेशे के होते हैं। दूसरी विशेषता यह कि पेशा वंशगत होता है, जो काम बाप करता है, वही काम बेटा भी करता है। तीसरी विशेषता यह है कि बिरादरी के सदस्य आपस में संबंधी होते हैं। किसी पेशे के सब लोग एक बिरादरी में शामिल हो जाए, इसका कारण यह है कि किसी काम में विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए जरूरी है कि आदमी हर तरह का काम करने की कोशिश न करे। जो आदमी किसानी करता है, वही जुते भी बनाए, वही छे भी बनाए, वही छल भी बनाए, सो जाहिर है कि वह कोई भी काम अच्छी तरह न कर सकेगा।¹

रंगभेद समस्या किंवदंत्याप्त है। श्वेत और अश्वेतों में जो भेद भाव है वह साम्राज्यवादी पूँजीवादी मानसिकता के कारण उत्पन्न हुआ है। श्वेत जाति वाले हमेशा अश्वेतों को निम्न दृष्टि से देखते हैं। उन्हें नीचा दिखाने का प्रयत्न करते हैं। "दाहम अफ्रीका में गोरों की नीति हली ट्रें पर चली है। मूलतः उनका मानना था कि कि जातियों मानवता की मौलिक और प्राथमिक विभाजन है, अलग अलग जातियों के सांस्कृतिक और भौतिक गुण अलग अलग होते हैं और इस कारण श्रेष्ठ जातियों के सांस्कृतिक भौतिक गुण निम्न जातियों से उच्चतर हैं। वैज्ञानिक तर्कवाद पर आधारित नस्लवाद का सहारा लेकर उन्होंने अफ्रीकियों और अन्य अश्वेतों को युरोपियन श्वेतों से हीन स्ति करना चाहा। डार्विन के विकासवाद का संबंध जेटों और वरस्तु की सोप की उपज ग्रेट चैन आफ वी ईग" के मिश्रण से जोड़ा गया, जिससे मनुष्य बीच में आते हैं और मनुष्यों में श्रेष्ठ उपर और हीन नीचे होते हैं। इस श्रृंखला में श्वेत को सबसे उपर और अश्वेत को सबसे नीचे बताया गया है। कुछ अस्थिर परीक्षाएँ

1. रामकिशोर शर्मा - सामंती समाज में जाति प्रथा (लेख) समकालीन

ने खोपठियों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष दिया कि श्वेत लोग क्रेठ है तो कुछ नृ-तत्त्वास्त्रियों का निर्णय यह था कि बुद्धि परीक्षण के नतीजे श्वेतों को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। दूसरी तरफ, अफ्रीकियों को असह्य घोर, झूठे, सुस्त गंद बताया जाता रहा। इन पर मानवभेदी होने और लंगूरों के साथ यौनसंबंध के आरोप भी लगाए गए। अल्जीरिया में रहने वाले एक फ्रांसीसी प्रोफेसर ने एक अमेरिकी मेडिकल पत्रिका में एक लेख लिखा। इस लेख में उसने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि मूल अल्जीरियाई जैविक रूप से विकसित है।¹⁰

2.2.1. रंग भेद समस्या का ऐतिहासिक विवेचन :

रंग भेद या नीग्रो समस्या का उद्भव अफ्रीकी देशों में हुआ। अफ्रीका के देशों में नीग्रो जाति के लोग अधिक संख्या में रहते हैं। इस जाति के लोग अधिक पिछड़े हुए हैं। इस कारण अन्य देशों के सम्पर्क नहीं हो सके हैं। यहाँ के लोग विकसित होने के कारण विकसित देशों के लोग इन्हें अपने दासों के रूप में खरीद फरोहत किया करते थे। जिसके कारण श्वेत लोगों की स्थिति दिन ब दिन गिरती जा रही थी। कुछ औपनिवेशिक, विकसित देशों ने अफ्रीकी देशों में शासन हो अपने हाथ में लेकर उनका शोषण करने लगे। इस प्रकार संसार में रंग के नाम पर जादमी जादमी का शोषण करने लगा। इसी के पारणामस्वरूप आज संसार में रंगभेद समस्या एकांगीर समस्या का रूप धारण किया हुआ है। फिर भी वर्तमान स्थिति में कुछ परिवर्तन हो गया है। 20वीं शती के 60वाँ, सातवाँ दशक तक रंगभेद समस्या अत्यंत गंभीर रूप धारण किया हुआ था। जिसके फलस्वरूप दक्षिण अफ्रीका अमेरिका, केन्या आदि देशों में रंगभेद के आधार पर कानून तैयार होने हुए थे और उन्हें सख्ती से लागू भी किया जा रहा था। इन

1. आशुतोष सिंह - भेद और शोषण की श्वेत औपनिवेशिक नीति [लेख]

कानूनों के विरोध में दक्षिण अफ्रीका और केन्या में अनेक आन्दोलन हुए, विरोध प्रदर्शन हुए और हिंसा हुई तब जाकर कहीं कानूनों में परिवर्तन किये गये ।

अमेरिका के प्रसिद्ध नीग्रो नेता एवं मार्टिन लुथर किंग के स्नाह-कार श्री बायार्ड रस्तिन के बारे में कहा जाता है कि "अगस्त 1963 में नीग्रो अधिकारों के लिए वाशिंगटन में जा ऐतिहासिक प्रदर्शन हुआ था उसके संयोजक रस्तिन ही थे । उनकी क्षमता का कमाल तब सारी दुनिया ने देखा जब उन्होंने अमेरिका के कोने-कोने से दो लाख प्रदर्शनकारियों का वाशिंगटन में इकट्ठा कर लिया और उस वि्याल जुलूस का सफलता के साथ संचालन किया ।"¹

नीग्रो आन्दोलन किस दिशा में आगे जायेगा ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री रस्तिन ने कहा - "यही सवाल तो हमारे सामने भी है । केवल हजारों लोगों का प्रदर्शन हो जाये, बसों और स्कूलों का अहिंसकार हो जाये, बिकेटिंग और धरने चलते रहे, इतना ही पर्याप्त नहीं है । नीग्रो क्रांति जब तक सम्पूर्ण राष्ट्रीय क्रान्ति का आधार नहीं बनेगी तब तक नीग्रो लोगों को उनके वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं होंगे , हालांकि यह प्रदर्शन और सत्याग्रह चलते रहेंगे, पर जब तक आर्थिक क्रान्ति के लिए कोई पक्की योजना न बने और श्रमोन्मत्त समाज के हृदय को हम न बदल दें तब तक केवल सरकारी कानूनों के बदल जाने मात्र से हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकेंगे ।"²

अधिकांशों को अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए "रंग भेद" के विरुद्ध झगड़कर करने का ही निश्चय लेना पड़ा क्योंकि सत्याग्रह आदि का प्रभाव अमरीकी सरकार पर कम असर दिखाने लगा था । रस्तिन अपने

1. सतीश कुमार - आदमी दर आदमी - पृ. 194

2. --वही--

पृ. 195

में "रंग भेद" के विरुद्ध बगावत करने की सज्जत भावना किस प्रकार उत्पन्न हुई - बताते हुए कहते हैं कि "यह भावना तो बचपन से ही मुझ में पैदा होने लगी थी। जब मैं अपने नगर वेस्ट चेस्टर की हाई स्कूल फुटबाल टीम के एक सदस्य की हैसियत से मेडिया नगर में गया हुआ था तो हम कुछ साथी एक रेस्तराँ में खाने के लिये गये। वह रेस्तराँ किन्हीं श्वेतार्थों के लिए था इसलिए वहाँ पर अन्य श्वेतार्थ मित्रों को तो खाने-पीने का समान दिया गया। परन्तु मुझे अंगुठा बता दिया गया। इस छटना ने मेरी चेतना को प्ली से छोटी तक झकझोर दिया। मैं वहीं बहुत देर तक बैठा रहा और इस भेद भाव पर सोचता रहा। होटल मालिकों ने मेरी उपस्थिति को भी बद्वित नहीं किया। मैं वहाँ से जबर्दस्ती निकाल दिया गया। उसी दिन से मेरे मन में भेद भाव का यह तैल और नुकीला काँटा चुन गया। मैंने फैसला किया कि अब मैं इस रंग भेद को मिटाकर ही दम लूँगा। बचपन का यह फैसला अब तक मेरे साथ है।"¹

अमेरिका के प्रसिद्ध नीग्रो नेता तथा सन् 1964 के नोबेल शांति पुरस्कार को प्राप्त करने वाले डॉ० मार्टिन लूथर किंग पर महात्मा गांधी का प्रभाव अटिष्ठ रहा है। रंग भेद के विरुद्ध में उन्होंने गांधीवादी मार्ग को अपनाया था। इसलिए शायद नीग्रो आन्दोलन के एक कार्यकर्ता ने ठीक ही कहा था कि - "गांधी जी मरने के बाद किसी हरिजन के घर में जन्म लेना चाहते हैं, परन्तु बाद में शायद अमेरिका के नीग्रो लोगों की दुर्दशा देखकर उन्होंने अपना विचार बदल दिया और ऐसा लगता है कि श्री किंग के रूप में उनका कायाप्रवेश हुआ है। वे अमेरिका के गांधी हैं।"²

डॉ० मार्टिन लूथर किंग ने अपने पर गांधी जी का प्रभाव कहाँ तक रखा है। इसकी चर्चा करते हुए कहते हैं कि - "एक हद तक गांधी जी

ही मेरी प्रेरणा है। जब भी गांधी जी के सत्याग्रह के तरीकों को पढ़ा तब मुझे ऐसा लगा, मानो मेरे ही मन की बात को किसी ने भाषा दे दी हो। मुझे पहली बार इस बात का स्पष्ट दर्शन हुआ कि ईसा मसीह के सिद्धांतों को जीवन व्यवहार में अपनाकर गांधी जी के तरीके से सामाजिक तथा राजनीतिक विवादों को हल किया जा सकता है। खासतौर से नीग्रो स्वातंत्र्य की प्राप्ति के लिए गांधी जी का तरीका न केवल सिद्धांत के रूप में, बल्कि एक कारगर हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस बात का सक्रिय अनुभव मुझे तब हुआ जब मोटो-गोमरी में हमने दृढ़ता पूर्वक इस हथियार का प्रयोग किया और सफलता पायी।¹

श्री मार्टिन लुथर किंग का कहना है कि - "यह सही है कि कानून पास हो जाने मात्र से नीग्रो गंदी बस्तियों को छोड़कर छुलसुरत मकानों में नहीं पहुँच जायेंगे। स्कूलों, सिनेमाओं और होटलों में बरता जाने वाला भेदभाव भी एक दिन में नहीं मिट जायेगा। शिक्षा का स्तर आत्ममान पर नहीं चढ़ जायेगा। बेकार नीग्रो काम पर नहीं लग जायेंगे। उनकी आर्थिक आय फलों में दुगुनी नहीं हो जायेगी और नीग्रो बच्चों को छुलसुरत कपड़े नहीं मिल जायेंगे। स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक भी नहीं पहुँच जायेंगे और बीमार नीग्रो तुरन्त दवा नहीं पा जायेंगे। यह काम केवल कानून बन जाने से नहीं होना। यह परिवर्तन ली जायेगा, जब अमेरिका की जनता का दिल बदलेगा उनके मन में नीग्रो लोगों की प्रति सहभावना पैदा होगी। पर कानून बन जाने से बाज की हीनता की स्थिति पर हथोड़ा लगेगा। नीग्रो हीनता और दूसरी श्रेणी के नागरिक की सतह से ऊपर उठने के लिए तैयार हो लेंगे। इसीलिए कानून का भी इतना महत्त्व है।"²

1. आदमी दर आदमी - पृ. 202

2. - वही - पृ. 206-207.

इस प्रकार अमेरिका में व्याप्त "रंगभेद" समस्या को खत्म करने के लिए अनेक महान नेताओं ने अपने प्राणों का बलिदान किया है। "अब्राहम लिंकन के बाद पहली बार रूसीय राष्ट्रपति जान केनेडी ने नीग्रो जाति के गालों पर बहते हुए आँसु पोंछने का बीठा उठाया। काली और गोरी चम्छी के नाम पर मनुष्य मनुष्य के बीच दुर्भाव धुना और भेद पैदा करने वाले को उन्होंने जीवन के नये मूल्य अपनाने की अपील की तथा देश के समाने "नागरिक अधिकार कानून" उपरिस्त किया। इसके पहले कियह कानून साकार हो पाता, केनेडी केसीने में बंदूक की तीन गोलियाँ दाग दी गयी। उनका सपना उनके रहते रूप नहीं ले सका। उनके उत्तराधिकारी राष्ट्रपति जान्सन ने कहा, "रूसीय राष्ट्रपति को सच्ची श्रद्धाजलि देने का सबसे श्रेष्ठ साधन है - नागरिक अधिकार कानून को यथावत् रखना। परन्तु गोरी चम्छी को श्रेष्ठता का प्रतीक माननेवाले कुछ प्रतिक्रियावादी लोग केनेडी जान्सन की अपील को मानने के लिय राजी नहीं हो रहे थे।"।

वस्तुतः अमेरिका में रंगभेद समस्या का कारण पर प्रकाश डालते हुए मैक्स लर्नर का कहना है कि - "अमेरिका में काले गोरे का वर्ण द्वेष वास्तव में उत्तर ओह दक्षिण के झगड़े के कारण खड़ा हुआ। शुरू में जो नीग्रो या हब्शी मज़दूर या गिमिटिया बनकर आये जो लोग शक्तिशाली मज़दूर बनकर आये या जो निवासिन की सभा पाकर आये, वे धीमे धीमे समाज में लिए सस्ते मज़दूरों की ब हुत जरूरत थी और अफ्रीका से पकड़कर लाये गए नीग्रो गुलामों के रूप में उन्हें ब बेदाम के या बहुत सस्ते मज़दूर मिले। पर मनुष्य को गुलाम बनाना ईसाई धर्म के विरुद्धत्व और लोकतंत्र की समानता दोनों के विरुद्ध था, इसलिए दक्षिण के गोरे जमींदारों ने अपने अन्तःकरण को सम्झाने के लिए यह सिद्धांत निकाला कि गोरे लोग

शासक जाति के है और काले शासित जाति के । पर जातिगत ऊँच नीच का यह सिद्धांत न केवल अमेरिका के समता के आदर्श के खिलाफ था, बल्कि इसके अमेरिकन समाज का स्वरूप बिगड़ता था और उसकी गतिशीलता अवस्तु होती थी । फलतः गुलामों के प्रश्न को लेकर उत्तर और दक्षिण के राज्यों में युद्ध हुआ जिसमें दक्षिण की हार हुई और हथौड़ी गुलाम मुक्त हुए । पर हार जाने पर भी दक्षिण के गोरों ने वर्ण का अभिमान और नीग्रो लोगों को दबाये रखने की कोशिश नहीं छोड़ी ।¹

2.2.1. "जो" उपन्यास में रंगभेद बनाम व्यक्ति चित्रण :

डा० प्रभाकर माचवे ने अपनी अमरीका यात्रा के दौरान वहाँ की सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया था उसी के परिणामस्वरूप उन्होंने वहाँ की "रंगभेद" समस्या को उपन्यास का रूप देने का सफल प्रयास किया । डा० माचवे द्वारा लिखित इस उपन्यास का नाम "जो" है जिसमें अमरीकन नीग्रो जाति की सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है । इस उपन्यास के बीच बीच में भारती अशुभ समस्या की तुलना अमरीका के काले गोरों लोगों की वर्ण भेद की समस्या तथा भारत में ब्राह्मण - अब्राह्मण या सर्व्व हरिजन की समस्या एक ही समस्या के विभिन्न पक्ष प्रतीत होते हैं । वह समस्या है अज्ञान और दुराग्रह की साँचावादी चिंतन की जो हिंसा का मूल है ।²

डा० प्रभाकर माचवे ने "जो" उपन्यास लिखने का उद्देश्य बताते हुए भूमिका में लिखते हैं - "1963 के जून में एक सप्ताह में मैंने यह लघु उपन्यास लिखा । मेरा उद्देश्य अमरीका की राजनैतिक, सामाजिक, समस्या

1. मैक्स लर्नर- अमेरिकी संयुक्तता - अनुवाद : आर पी एन सिंह पृ० 164

2. डा० विजय कल्याण-स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के संकलन में

महाराष्ट्र की भूमिका - पृ० 61-62

काले गोरे के तनाव पर कोई निष्पेक्षात्मक या समर्थनात्मक मत प्रदर्शित करना नहीं था। इस समस्या के मानवीय पक्ष को ही मैं देखता हूँ। x x मेरा उद्देश्य इस कहानी के लिखने में कुछ दूसरा था : मेरे मनको भारत की जाति भेद की समस्या सन् 1940 से ही, जब मैं सेवाग्राम में कई मास रहा, मग्न रही थी। विदेश में जाकर यह समस्या और भी तीव्र रूप से मुझ कघोटने लगी। उत्तर दक्षिणवादि भारत देश के विभाजनों पर अधिक जोर देते हुए पश्चिम के सामाजशास्त्री और नृवंशास्त्री मिले। और मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि यदि मानवता एक है तो अमरीका के काले गोरे लोगों की कष्टों की समस्या को एक दृष्टि से और भारत के ब्राह्मण अर्द्धब्राह्मण या सर्वर्ण हरिजन की समस्या को दूसरी दृष्टि से देखने से काम नहीं चलेगा। ये दोहरे पैमाने हम कब तक काम में लाते रहेंगे ? इसी व्यथा में से यह कहानी निकली है।¹

यदि हम "जो" उपन्यास में रंग भेद" समस्या को विवेचनात्मक दृष्टि से देखें तो स्पष्ट होता है कि संसार में विकसित देश कहे जाने वाला अमरीका में भी मानवता के लिए आदर नहीं है वहाँ पर भी रंगभेद के आधार पर मनुष्य मनुष्य का शोषण कर रहा है। "जो" उपन्यास में अमरीकी नीग्रो जाति का यथार्थ जीवन चित्रण है जिसके अन्तर्गत उनका शोषण सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से किस प्रकार होता है बताया गया है।

अमरीका में नीग्रो की रंगभेद" समस्या वैसी ही है जिस भारत में अश्वत समस्या।² नीग्रो जाति को समाज में साधारण आदमी को मिलने

वाले अधिकार भी नहीं मिले थे। वे सभी मानव अधिकारों से वंचित एक प्राणी मात्र थे। इसी तथ्य का जिक्र करते हुए "जो" उपन्यास में रामन को मि. स्मिथ बताता है कि यहाँ पर नीग्रो संगीतकों की कोई सामाजिक प्रतिक्रिया नहीं थी। वे आगे कहते हैं — "यह जो नीग्रो संगीतकों की इतनी सामाजिक प्रतिक्रिया आज में देख रहा हूँ वह पहले से ही ऐसी बात नहीं थी। उसके लिए काफी संघर्ष उन्हें करना पड़ा। केण्टकी प्रदेश के लुईजिक में राबर्ट होयल जब पहली बार उसी होटल में गाने आया, जहाँ कि वह पहले एक डेयर था, तो उसे एक परदे के पीछे खड़े होकर गाने के लिए कहा गया। वहाँ के गोरे श्रोताओं के लिए स्टेज पर एक काला आदमी का गाना एक ऐसा दृश्य था जो वे सहसा सह नहीं सकते थे।"¹

मि. स्मिथ की पत्नी क्वीनिन्या भारत के युवक रामन को नीग्रो जाति के प्रति होने वाले भेदभाव का एक किस्सा सुनाती है — "वाशिंगटन में 1939 में मेरियन ऐण्डरसन को गाने के लिए वहाँ की स्त्रियों की संख्या "ठूटर्स आफ रिवोल्यूशन" ने स्थान नहीं दिया। श्रीमती हिलिओनोर स्जकेट के बढ़ावा देने पर लिंकन स्मारक की सीढ़ियों पर उसने अपना संगीत दिया।"²

मि. स्मिथ की पुत्री तथा भारतीय युवक रामन की सहपाठी ठोरा ने एक और किस्सा सुनाया। जिसमें बेसी स्मिथ नामक नीग्रो स्त्री की दर्दनाक कहानी है। ठोरा कहती है — "वह 'बेसी स्मिथ' 'ब्ल्यू' गाने वालों में सब से बड़ी औरत थी। जब वह मिसिसिपी प्रदेशों में दक्षिण में सफ़र पर गयी थी तो एक मोटर दुर्घटना की शिकार हो गयी और वह काली स्त्री होने से किसी ने अस्पताल में भर्ती नहीं किया। वह राह में ही मर गयी, ज़रमों से खुन उसका रिसता रहा।"³

1. प्रभाकर माधवे - जो - पृ. 8

2. - वही - पृ. 8-9

3. - वही - पृ. 9

उपर्युक्त तीन घटनाओं को यदि क्रमता के साथ जाँचा जाय तो स्पष्ट होता है कि नीग्रो की जिन्दगी भी ऐसी है जैसे भारत में अस्पृश्य की हुआ करती है। माचवे जी ने इन तीन घटनाओं के माध्यम से यही स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि विकसित अमरीकी समाज में भी रंग के आधार पर भेदभाव बर्ता जा रहा है।

प्रभाकर माचवे "जो" उपन्यास में नीग्रो जाति के समस्याओं का यथार्थ चित्रण करने से पहले उस जाति का ऐतिहासिक विश्लेषण करना चाहते हैं। उपन्यास में भारतीय युवक जो नृ-शास्त्र का अध्ययन करने अमरीका आया है वह उपन्यासकार का स्थानापन्न ही है। रामन के विचार उपन्यासकार डॉ० माचवे जी के विचार ही हैं। इस उपन्यास के अन्तर्गत रामन नीग्रो जाति किस प्रकार गुलामी करने में विवश हुई इस की चर्चा एक पुस्तक में पढ़ते हैं - "एक कहानी है कि पुर्तगालियों ने पन्द्रहवीं सदी में एक गुलाम पकड़ा जो मूर यानी अफ्रीका का हब्शी थी। उसने अपने बन्धु में दस नीग्रो देकर गुलामी से अपना छुटकारा करा लिया। इसमें एक पापदा था, पुर्तगाली धर्मचारकों को। मूर इस्लाम धर्मावलाम होने से उसका धर्म परिवर्तन पूर्णतः संभव नहीं था। "हीदन" होने से पाँच आत्माओं को मुक्ति देने का पुण्य पुर्तगालियों को मिला गया। x x

x x x 1517 ईसवी में रेवरेण्ड ब्रिजस लस कासासने कहा कि हर हस्पाहानी जो अमरीका की नयी कालोनी में जा रहा हो वह अपने साथ बारह नीग्रो ले जा सकेगा। 1540 तक अमरीका में हर साल दस हजार गुलाम आयात किये जाने लगे थे। अफ्रीका से। x x x x x x उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ की कहानी है ह्यूस्पुहस नाम के आशान्ती के एक अंगरेज काउन्सिली: बीस हजार गुलाम खरीदे। उनमें कई बड़े खराब थे। क्वाइली सरदार ने कहा, इनमें से कहियों की बलि दी जाये। तो

जिस स्टूल पर बैठकर उनका खून करना था उसे छू करने के लिए कुछ गुलामों को मारकर उनके खून से स्टूल नहलाया गया ।¹ इन सारी कहानियों को पढ़कर रामन को ऐसा लगता है कि समाज में मानवता नाम की कोई वस्तु शेष नहीं है । धर्म के नाम, जाति के नाम पर, रंग के नाम पर मनुष्य मनुष्य का शोषण कर रहा है । उसे तुरन्त याद आता है कि क्या भारत में ऐसा नहीं हुआ है । वह सोचने लगता है -- "हम भारत को बड़ा दयाशील, न्यायशील देश मानते रहे हैं, पर क्या प्राचीन भारत में गुलाम नहीं थे ? देवदासियाँ नहीं थीं क्या जमींदारों के रियासती ठाकुरों के और छोटे बड़े राजाओं के अत्याचारों की कहानियाँ हमारे गाँवों के लोकगीतों तक में नहीं गंभीर छली आयी है ? तो आखिर हम किस मुँह से किसी देश के काले गोरे को लेकर कुछ कहें ? स्वप्नदोषाच्च ।²

"जो उपन्यास में अमरीकी नीग्रो जाति के समस्याओं का चित्रण माचवे जी ने मर्मस्पर्शी षेदना के साथ किया है । अनेक ऐसे समस्याएँ हैं जो रोजमर्रा ज़िन्दगी में इन लोगों को बाधा पहुँचाती हैं । इन अवस्थाओं के पास न अच्छा घर है, न पैसा है और न पढ़ाई है । सभी लोग बहुत ही दृष्टिद्वता में अपना जीवन व्यतीत करते हैं । इस उपन्यास में "डोरा" द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते हुए "जो" नामक स्त्रीत्कार कहता है कि - "आप जानते हैं हमारी जाति में पढ़ाई कितनी मुश्किल से नसीब होती है । अच्छा तो पैसा नहीं । दूसरे गोरों के स्कूलों में गालियाँ और छुसि खाने जाये कोने ? खुदा बचाये उनसे ।"³ "जो" अपनी प्रेम कहानी बताते हुए कहता है कि प्रेम गोरी लड़की से नहीं करना चाहिए था ।

----- -5

1. जो - पृ. 10 - 11

2. जो - पृ. 11

3. जो - पृ. 17

वह गोरी लठकी मुझे छोटकर केन्हा चली गई । वह कहता है - "भैम
प्रेम करने में भी बड़ी ठोकर खायी । आखिर काले आदमी को गोरी
लठकी से दशक लठाना ही नहीं चाहिए था । पर अब दशक ही तो ठहरा
वह रंग के मामले में अन्धा होता है - लव हज कलर - ब्लाइण्ड ।" १

रामन नीग्रो कवि फ्रेण्टन जानसन की कविता पढ़ता है जिसमें
सभ्यता के नाम पर नीग्रो पर होने वाले अत्याचारों का जिक्र है - कवि
कहता है -

"अपने बच्चों को नदी में फेंक दो, इस सभ्यता ने हमें
जरूरत से ज्यादा बच्चे दे डाले हैं । आखिर बड़े होकर अपने
को धिनोने काले हथेली देखने से तो बचपन में ही मर जाना
बेहतर है ।

सितारों को आसमान से नोकर फेंक दो । इन्हीं कम्बळतों ने
हमारी किस्मत बनायी है ।

इस गोरी सभ्यता को देखकर मुझे छबकाई आती है ।" २

इस कविता को पढ़ने के बाद रामन सोचने लगता है कि नीग्रो
जाति के प्रति अत्याचार कब तक होते रहेंगे ? वह सोचता है - "भैम उस
गुलाम माँ को कैसे दूँ जिसकी छाती से चिपटे बच्चे को जबरदस्ती
छीनकर आग में झोंक दिया जाता हो, भैम उस नीग्रो पुरुष का कैसे दूँ
जिसके भाई को चुपचाप आधी रात सिर से पैर तक सफेद चादरों
में लिपटे कूँ कलुस झूलनेवाले फेड़ पर जिन्दा फाँसी दे देते हैं, हाथ पैर
मुझें बाँधकर, मुँह में कपड़ा ठूसकर, भैम उन स्त्रियों को "सभ्य" कहलानेवाले

समूहों को कैसे सम्झा दूँ जिन्होंने असभ्यों को सुधारने, अपने माफिक बनाने का ठेका ले लिया है ...।¹

इस प्रकार सच्य देश कहा जाने वाला अमरीका में अश्वेतों के प्रति होने वाले अत्याचारों को देखकर रामन जो लेखक का ही स्थानापन्न है का अपने हरिजन मित्र की कहानी याद आती है और अमरीका और भारत में व्याप्त भेदभाव की तुलना करता है। मरुगन पद लिखकर सम्झदार आदमी बनने पर भी उसके प्रति समाज का हीन भाव नहीं जाता है। रामन कहता है - "मैंने सुना मरुगन गाँव से भाग या। पद लिखकर बड़ा होकर वापिस आया, तो उसे काम कौन देता है ? वह हरिजन का हरिजन। उसकी मेज पर से फावेल उठा ले जाने से चपरासी ने हन्कार कर दिया। वह बोला - मैं उससे बड़ी जात वाला हूँ।"² रामन को एक और घटना अज्ञात की याद आती है कि परिचित हरिजन अजीत लाल की माँ के मरने पर अरथी उठाने कोई नहीं आया था तो उस ने कन्धा लगाया। रामन कहता है - "स्मशान की ओर हम जा रहे हैं। सब हबके बबके हैं : अस्पृश्यार के लठके को क्या हो गया है ? डॉक्टरामन का बड़ा भाई पगला गया है - हरिजन की अरथी उठाकर ले जा रहा है - क्या हो गया है उसे ?"³ इस प्रकार भारत में भी अमरीका की रंग भेद की स्थिति है। रामन के माध्यम से आचवे कहते हैं कि अन्याय का प्रतीकार लेने के लिए क्या किड़ोही होना आवश्यक है ? मरुगन अब दक्षिण में द्रविड कथम का छोटा मोटा नेता बन गया है। क्या यही परिणति है, अन्याय का जवाब माँगने की। जिस कह रहा है दक्षिण में अमरीका के कई नीग्रो मुस्लिम बन रहे हैं। वे अपना संबंध अब राष्ट्रों से, अफ्रीका की इस्लामी ताकतों से जोड़ रहे हैं। कहते हैं हमारा नीग्रो-स्तान अलग बनेगा ? क्या यही परिणति है, अन्याय का जवाब माँगने की।⁴

1. जो - पृ. 31-32

2. जो - पृ. 37

3. जो - पृ. 37

4. जो - पृ. 58

इसके लोग अश्वेतों के साथ मिला हुआ नहीं रह पाते । वे उनसे बातचीत भी करना पसंद नहीं करते । इसी बात का उल्लेख करते हुए "जो" कहता है कि "एक शिक्षा साहब मेरे पास आये थे । उन्होंने बड़े सवाल पूछे मेरे बारेमें - कितनी शादीयाँ हुई, बच्चे कितने हैं ? गाने से क्या कमाते हो ? कितना खर्च करते हो दोगे रह - पच्चीसों सवाल । मैं समझा, सचमुच इस शक्य को मेरी जीवनी लिखनी है शायद । पर बाद में पता लगा कि शिक्षागो यूनिवर्सिटी में हजरत पढ़ते थे और किसी प्रोफेसर के लिए यह सब काम वह कर रहे थे । गोरा प्रोफेसर कालों के बीच जाकर यह सब पूछने से डरता था और हिन्दुस्तानी न गोरे न काले मेलों रंग के अच्छे छाप जाते थे - नीग्रो को लगे, ये अपने ही दूर के भाई बन्द हैं - गोरो को लगे, हाँ कहीं मेक्सिको या ब्राजील की तरफ से हजरत हैं ।"।

रामन अमरीका में रहकर यह भी महसूस करता है कि वहाँ के अनेक चित्र संग्रहालयों में सिर्फ गोरो के ही चित्र हैं । काले लोगों के संबंध चित्र बहुत कम ही कम हैं । वह अपनी सहपाठी डोरा से पूछता है कि - "डोरा यह बताओ, मैंने इतने चित्र संग्रहालय देखे । बोस्टन में, वाशिंगटन में, केलीफोर्निया में । तुम्हारे यहाँ चित्रों में नीग्रो का चित्रण बहुत कम हुआ है । एक जगह एक नौकरानी किसी चित्र में दिखाई दी थी । और तो सब जैसे गोरी ही दुनिया है, गोरा ही विश्व है इन चित्रों का ।" 2

इस प्रकार चित्रों में भी फलसात का रक्खा अमरीका में अपनाया गया है तथा श्वेत तथा अश्वेत में किम्बता की भावना कायम रखने का प्रयास किया गया है ।

1. जो - पृ. 45

2. जो - पृ. 58

"जो" जो एक गोरी लड़की से विकल प्रेम किया था अपनी भाँखी बेसी जेम्स नाम गोरी लड़के द्वारा माँ बनने का खबर सुनकर बेसी पर गुस्सा करते हुए कहता है कि - गोरी लड़के से झुलकर प्रेम मत करना । वह भाग जायेगा । वह कभी स्थिर नहीं हो सकता और जो हमारे घर में आज तक नहीं हुआ वह अब होगा ? एक "म्यूटो" पैदा होगा - और उसका आगे क्या भविष्य है ? खन्चरों का भी कोई भविष्य होता है, सिवा बोझा ढोने के ।¹ इस प्रकार प्रेम भावना में भी श्वेतों, अश्वेतों के बीच स्नेह को बराबर स्थान मिलता रहा है । जिसके फलस्वरूप मानवता का विकास नहीं बल्कि ह्रास होने लगा है ।

इस प्रकार "जो" उपन्यास के माध्यम से डा० प्रभाकर माधवे ने अमरीकी अश्वेतों तथा भारतीय अस्पृश्यों के समस्याओं का चित्रण अनुभव के साथ किया है । इस उपन्यास में अश्वेतों तथा अस्पृश्यों में धृष्टता प्रतिकार की ज्वाला का भी चित्रण बड़े यथार्थता के साथ किया है । भारतीय अस्पृश्य युक्त मुस्लम की प्रतीकार की भावना का चित्रण "जो" उपन्यास में हुआ है । मुस्लम वर्णवाद के खिलाफ भाषण देते हैं । "ऐसे सभ्यों के भगवान हमें नहीं चाहिए । हम ऐसे मन्दिरों पर लानत भेजते हैं, जो सिर्फ सभ्यों के लिए खुले हैं । हम ऐसी संस्कृति को क्या करेंगे जो केवल समाज के एक हिस्से के लिए है ? हम ऐसी भाषा का क्यों करेंगे जो सबकी समझ में नहीं आती, जिसकी पढ़ाई स्कूलों को मना है, जो पुजारियों की ताल पत्र की पोथियों में बन्द पड़ी है । वह देवबाणी हमारी वाणी नहीं है । मुस्लम भरीना के समुद्र पर गरज रहा था । उसके बीच के पीछे द्रष्टि कण्ठ का नीला झंडा लहरा रहा था ।"²

इसी प्रकार अमरीका में अश्वेतों के विभिन्न आन्दोलनों का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास के अन्तर्गत डा० माधवे जी ने किया है । वसों

में गोरो के साठ काले लोगों को बैठने का अधिकार नहीं था। इस विषय पर बेसी ने भी आन्दोलन में भाग लिया। बेसी ने ठोरा को एक चिट्ठी लिखती है। जिसमें इस आन्दोलन का उल्लेख किया है - "दो साल पहले यहाँ बसों का "स्टि-इन" सत्याग्रह चला। सब काले लोगों ने तय कर लिया कि हमारे लिए पीछे की ओर खराब अलग सीटें अलग बयों होगी यह सेग्रिगेशन हमें पसन्द नहीं।"¹ यह सत्याग्रह छः महीने तक चला अखेटों के माँग मान लिये गये। और सत्याग्रह समाप्त हुआ। बेसी अपनी चिट्ठी में लिखती है कि - "ईसा की नज़र में सब बराबर है।" और फिर भी कालों के अलग चर्च है, गोरो के अलग। यह अलगाव कहीं कहीं नहीं है - स्कूलों में, तालाबों में, क्लबों में, स्टोवर हाउस में, कैफ़ेरेरिया में, पब में, बूम स्टोवर में... यानी हमारे ही पैसे से ये बड़ी बड़ी दुकानें खोले, और मज़ा यह कि हमसे ही मुनाफ़ा लें और हमारे लिए ही सब दरवाज़े बन्द। यह कहीं का न्याय है १²

ठोरा को लिखे पत्र में बेसी अन्य स्थानों पर भी सत्याग्रह करने की बात कहती है - "बसों के बहिष्कार में विजय पाने के बाद लॉस एंजलिस के "स्टि-इन" का सवाल उठा। कुछ बड़े बड़े घेन स्टोवर है। उनके नाम सबको मालूम है। वहाँ हम नीग्रो लोगों को सोदा सुझा नहीं लेने देते। उन पर लिखा रहता है - केवल गोरो के लिए। जैसे कुछ होटलों पर लिखा रहता है, कुत्ते, नीग्रो और डॉग्गियन मना है।"³ इस प्रकार जहाँ जहाँ श्वेतों के प्रति भेदभाव किया जाता रहा है। वहाँ वहाँ सत्याग्रह करके अखेटों ने अपने अधिकारों को प्राप्त किये हैं। वह भी पूर्ण अहिंसक नीति के आधार पर। मार्टिन लूथर किंग का कहना था कि - "भेनि मूण्टगोमरी में बार बार कहा यह झगडा सिर्फ काले गोरो"

1. जो - पृ० 103-104

2. जो - पृ० 104

3. जो - पृ० 107

के बीच नहीं है । यह लड़ाई न्याय और अन्याय के बीच है, प्रकाश की ओर अन्धकार की शक्तियों के बीच है । यह क्रिय केवल अमरीका के डेढ करोड़ और सार्वा के पचास हजार नीग्रो की ही नहीं होगी । पर यह न्याय और प्रकाश की क्रिय होगी । हम यहाँ किसी व्यक्ति से लड़ने नहीं आये हैं । हम सिद्धांत की लड़ाई लड़ रहे हैं ।*

अपनी मांगों की पूर्ति के लिए अरबों ने कई अपमानों को, कई लात छुई को सहकर सत्याग्रह किया । उनके मांग कुछ यों हैं - स्कूलों कालेजों तथा टेनेसी विश्वविद्यालय में नीग्रो छात्रों को प्रवेश नहीं है । बस ड्रायवरो की नौकरी, अस्पतालों में दवा दारु, नगर के सम्भ्रान्त सभ्य बस्ती में मकान तथा प्रसिद्ध होटलों में रहने की सुविधा, विभिन्न सरकारी संस्थाओं में सदस्य के रूप में स्थान नीग्रो व्यक्ति को नहीं है । इसी प्रकार कहीं खेल देखने, प्रदर्शनी देखने, लाण्डरी में भी नीग्रो नहीं जा सकते । इन सभी क्षेत्रों में नीग्रो पर जो प्रतियन्ध है, तुरन्त उठाया जा सके ।

मुख्यगन अपने मित्र रामन को पत्र लिखता है जिसमें भारत में हरिजनों पर होने वाले अत्याचारों का चित्रण करते हुए प्रश्न करता है कि क्या यही मानवता है ? पत्र में कुछ अत्याचारों के उदाहरण इस प्रकार हैं - "हमारे गाँव के पास की एक बस्ती में शक्तिराम को पकड़कर पेड़ से बाँधकर उसकी मृति जला दी सखियों ने । उनका कहना था कि इसे अन्त्यस्त होकर मृति रखने का क्या अधिकार है ? क्या यही मानवता और न्याय है । x x x अभी एक महीना पहले मेरे गाँव का एक तेज लड़का रोशन शहर में गया था । तेल्लिचेरी की एक ब्राह्मण अय्यर लड़की से उसे प्रेम

हो गया । दोनों की रजामन्दी से वह उसे भगाकर ले आया । अब सारा तेल्लिचेरी उस शैक्षण परिवार कोष्ठों को जलाकर भून देने के लिए जैसे मचल रहा है । क्या यही है समानता की डींग उस केरल में जहाँ दो साल तक समाजवादी शासन रहा १ x x x उस दिन नागप्पा के घर की बुढ़िया गलती से उस मुहल्ले से निकल गयी जहाँ आँबा का कोक्कि मन्दिर है । उसे मारने के लिए दोठे पुजारी जब वह मन्दिर से सत्तर हाथ दूरी पर थी ।¹ अन्ततः मुस्गन पत्र में लिखता है कि - "भनि सुना अमरीका में काले हथेली लोग भी बहुत मंगे में है । उनके पास मोटरें है, सेण्ट्रल हीटेड भकान है, उत्तम तन्त्रवाह वाली नौकरियाँ है । क्या यह सच है १"² मगर यथार्थ में अमरीकी अवैतों तथा भारत के अस्पृश्यों में कोई बड़ा भेद नहीं है दोनों की स्थिति समसामयिक परिस्थितियों के अनुसार बहुत ही दुर्लभ है । माचवे जी लिखते है - "भूखा नीग्रो बच्चा गार्जेन केन में से रोटी के टुकड़े चुन चुनकर खा रहा है । अस्तित्ववादियों यही तुम्हारी चुनो की स्वतंत्रता है । x x x भूखी हरिजन स्त्री विवनाड के मन्दिर के बाहर कोठियों की कतार में कटोरा खनखना रही है । कर पात्रिये । यही तुम्हारी आर्य संस्कृति की या आसिन्धुसिन्धुपर्यन्ता" हिन्दूपदपादशाही है ।"³

डॉ० माचवे यह भी स्पष्ट करते है कि भारत और अमरीका के स्त्रियों में मूलभूत अन्तर नहीं है । वे लिखते है कि - "बेसी ठोरा कावेरी माथीं सृजान य्योदा यह सब नाम उसी सुभद्रा के है जिसके हाथ नहीं है । यह सब नाम उसी माँ के है जो मर गयी है । यह सब नाम बहन के है जो बाल विधवा है और उसी अज्ञात शिशु के है, जहाँ कि लडकी न जन में इसके लिए गाँवों देहातों में मनीतियाँ रखी जाती है ।"⁴

1. जो - पृ. 119

2. जो - पृ. 120

3. जो - पृ. 126

4. जो - पृ. 126

डा० माधवे का कहना है कि रंग के द्वारा किसी व्यक्ति का स्वभाव परखा नहीं जा सकता। ऐसे तो अच्छे लोग और बुरे लोग सभी जातियों में तथा सभी वर्गों में होते हैं। मनुष्य को अच्छा या बुरा सामाजिक व्यवस्था बनाती है। बेसी के माध्यम से डा० माधवे कहते हैं कि - "आदमी के बाल के रंग से कुछ आता जाता नहीं। अच्छे बुरे लोग गोरे काले दोनों में होते हैं। मुझे तो लगता है कि यह "सिस्टम" होती है - एक सामाजिक प्रणाली - जो आदमी को अच्छा या बुरा बनाती है। बहुत थोड़े लोग होते हैं, जो उस चक्की से घिस पिसकर बाहर आ जाते हैं। अधिकतर लोग तो भिठिया - धसानवाले ही होते हैं।"

इस प्रकार डा० प्रभाकर माधवे ने अपने "जो" उपन्यास के माध्यम से मनुष्य में स्थित भेदभाव का खुलासा प्रस्तुत किया है। "जो" की संरचना के दौरान लेखक के अन्तर्मन में भारत के वर्ग विरोध जाति भेद संदर्भ के रूप में रहे। एक खुला हुआ उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन का अच्छा सङ्गत होता है। शायद कोई एक स्टेडी वह सब एक साथ व्यक्त नहीं कर पाती है जिसे उस पृष्ठभूमि से संबंध कोई कथा कृति। "जो" एक तरह का समाजशास्त्रीय स्थिति का अलेख भी है। लेखक ने यद्यपि इस रूप में निष्कर्ष नहीं निकाले, मगर कथा स्थिति के सहारे पर एक बात अवश्य स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि रंगभेद के परे मानवता का स्तर कहीं अधिक दृढ़ है। नई दुनिया के लिए इसलिए सर्जनाकांक्षा बनी रहेगी। भारतीय जातीयवाद की कचोटें शायद इसीलिए वह बराबर अनुभव करता रहा है। अमरीका के अत्याधुनिक परिवेश में वे और भी अधिक उभरकर सामने आई।²

1. जो - पृ. 137

2. स० भीष्म सहानी - आधुनिक हिंदी उपन्यास - जो उपन्यास पर

डा० श्याम परमार - पृ. 238

इस उपन्यास के सृजन के संदर्भ में स्वयं उपन्यासकार डा० माधवे ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं। वे लिखते हैं - अमरीका और वहाँ के रंगभेद पर इतना कुछ अंग्रेजी में लिखा जा चुका था, कि उसमें मुझे कुछ जोड़ना जरूरी नहीं था। पर अपने आपको सबसे समझ, धनादय और आधुनिकतम सुसंस्कृत कहने वाले महोदयों में भी मनुष्य को कितना अपमान सहना पड़ता है, केवल प्राकृतिक अन्धेतर रंग के कारण यह मेरी समस्या थी - जिसका कोई उत्तर मेरे पास नहीं था। और उसी की तृप्ति में भारत में जहाँ बड़े जाति भेद की समस्या को छुना चाहता था। डा० अम्बेडकर कहा करते हैं कि "हिन्दू धर्म का सनातनी स्वरूप और प्रजातंत्र या लोकशाही में कोई समन्वय नहीं हो सकता। यदि आप जन्मजात जाति भेद मानते हैं और मनु आपके विचार व्यवहार के आधार हैं, तो आप डेमोक्रेट" प्रजातान्त्रिक कैसे हैं? प्रजातंत्र मनुष्य मनुष्य में समानता में विश्वास करता है - आप शुरू से ही ऊँच नीच का बंटवारा लेकर चलते हैं। इसके लिए मैंने एक कार्पनिक तयिब ब्राह्मण विधायी चुना जो अमेरिका में पढ़ता है - उसकी सहानुभूति नीग्रो आंदोलन के साथ है, पर अपने ही घर में, अपने ही प्रदेश में ही एम के के बंधु के साथ नहीं। यह मत विरोध एक लेखक की दृष्टि से बहुत मनोरंजक आधार था, उपन्यास का चाहे समाजशास्त्री उसके अनेक कारण देता रहे।¹

2.3. पीढ़ियों का अंतराल और बदलते जीवन मूल्य :

डा० प्रभाकर माधवे जी ने पीढ़ियों के अंतराल, द्वारा व्याप्त सामाजिक समस्याओं को परिश्रेय में रखकर "तीस चालीस पचास" नामक उपन्यास का सृजन किया है। इस उपन्यास में बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में तीन पीढ़ियों का एक दूसरे के प्रति व्यवहार तथा सोच

1. सी० भीष्म साहनी व अन्य - आधुनिक हिंदी उपन्यास-पृ० 233-234

१ जो: संस्मरण लेख - डा० प्रभाकर माधवे

विचार का विश्लेषण किया गया है। उपन्यास की भूमिका में उपन्यास लिखने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं - "इस उपन्यास में भी दो खंड कल्पित किए हैं पहले छह अध्याय "काल" के अंतर्गत आते हैं : तीन पीढ़ियों के तीन-तीन स्त्री पुरुष पात्रों की जबानी उनकी स्थितियों की परस्पर संपर्क सूत्र, समानता विषमता की कहानी। दूसरे खंड में, जिसे मैं "देश विदेश" मानता हूँ, बल्कि दिक कहना अधिक उचित होगा, पश्चिम का एक छोर अमरीका के सैनफ्रान्सिस्को, पश्चिम के ही दूसरे छोर सोवियत रूस के फ़ोती बर्गारिया की राजधानी सोफिया, और तीसरे नव निर्मित बांग्ला देश में एक कल्पित स्थान सुवर्ण श्री के परिपार्श्व पर उन्हीं परिवारों और उनके पारिवेशों की यह कथा है। समापन के लिए मैंने भारत का एक कल्पित गाँव चुना है सेवापुरी। यह सारा उपन्यास "काल" और "दिक" के परिमाणों में कुछ मानवाकारों की अपने पन की खोज है।"।

इस उपन्यास में चित्रित कहानी का विश्लेषण करते ठाणु विजय वधवा लिखती हैं - "कि तीस चालीस पचास" में लेखक ने कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रयोग किया है। आचार्य वालुदेव और उनकी पत्नी सरला को अपने आदर्शों में अडिग आस्था थी लेकिन उनकी सन्तान क्षयात्मा बनी। मोहन वैज्ञानिक बना और उसने मुसलमान लड़की स्वस्थाना से विवाह किया। मोहन के पुत्र अनिरुद्ध के लिए एक मात्र सत्य है। क्षणिकवादी भोग प्रधान जीवन। मोहन पुत्र अनिरुद्ध की पीढ़ी अपने को विश्व मानती है, आस्था और अराजकता के बीच लटकते हुए अपने तर्क से भी उभर नहीं पाती। अनिरुद्ध का विवाह स्वीडेन में जन्मी उल्ला से

जिसका नाम सुविधा के लिए उधा रख दिया गया है। अनिष्ट की पीढ़ी का स्व निषेध विरोध और प्रत्याख्यान का है। इसे पीढ़ियों का अंतर कह कर टाला नहीं जा सकता। "काल" शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने तीन पीढ़ी के उह पात्र रखे हैं। सवाल है, क्या इन तीन पीढ़ियों में कोई सूत्रता नहीं रह गयी है? इस बात को परखने के लिए "दिक्" शीर्षक के अंतर्गत लेखक उहों पात्रों को सेनफ्रान्सिस्को, पूजावादी, सोफिया, साम्यवादी, सुवर्ण श्री, हिंसावादी, स्थलों पर ले जाकर अन्त में भारत में सेवापुरी, अभावों में राह खोजने का प्रयास, में ले जाता है और यह देखने की कोशिश करता है कि उन परिस्थितियों, जीवन पद्धतियों और समाज स्तरों से कहाँ तक तादात्म्य कर पाते हैं? इन सब दिक और काल के विभिन्न कोणों में समस्याओं के सूत्र खोजता हुआ जिजीविषा के रूप में आशा की किरणों को देख पाता है।"।

इस प्रकार प्रभाकर माधवे ने इस उपन्यास के अंतर्गत तीन पीढ़ियों के बीच ऋ होने वाले वैचारिक संघर्ष का चित्रण करने का प्रयास किया है साथ में सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव पीढ़ियों के मनःस्थिति पर किस प्रकार पड़ता है उसका भी विवेचन किया है।

समाज में प्रत्येक नई पीढ़ी अपने को पुरानी पीढ़ी से ब्रेक ठ सम्झती है। नई पीढ़ी की बातों को अनुसूनी करती है। ऐसी स्थिति समाज में हमेशा होती है। पुरानी पीढ़ी कभी नयी पीढ़ी के रूप में भी और उसने भी अपनी पुरानी पीढ़ी से विद्रोह किया था और आज नई पीढ़ी भी एक दिन पुरानी हो जायेगी तथा उससे भी विद्रोह करने एक और नयी पीढ़ी आ जायेगी। पीढ़ियों के परिवर्तन के साथ साथ मर्यादायें, मूल्य

तथा परम्परायें बदलना स्वाभाविक है ही फिर भी पुरानी ओर नई पीढ़ियों में स्पर्धे इसलिए होता है कि पुरानी पीढ़ी अपनी मान्यताओं को नारी पीढ़ी पर लादना चाहती है तो नयी पीढ़ी पुरानी मुख्य एवं मान्यताओं को जड़ से उखाड़ कर पैकना चाहते है और नये मूल्यों की स्थापना करना चाहते है ।

"तीस चालीस पचास" उपन्यास में इसी स्पर्धे का चित्रण तीन पीढ़ियों - वासुदेव, सरला, मोहन रखसाना तथा अनिरुद्ध उधा के बीच किया गया है ।

2.3.1. पुरानी पीढ़ी :

वासुदेव और सरला पुरानी पीढ़ी के है । इनके विचार और तान्यताएं परंपरागत है । इस पीढ़ी के लोग हमेशा यह चाहते है कि अपने बच्चे अपने द्वारा दिखा गया मार्ग पर चले । किन्तु बच्चे इनकी बात न मानने पर धीरे निराश हो जाते है । वासुदेव गांधीवाद से प्रभावित व्यक्ति है । वह अपने लड़के को भी भी उसी दिशा में ले जाना चाहता है । किन्तु बेटा मोहन उसके विपरीत वासुदेव कहता है - "मेनि बहुत कोशिश की कि बच्चे को अपने आदर्शों पर ढालू, पर वह असंभव लगा । उसके विचार उग्र थे । मुझ से किन्तु दूतरे ढंग के ।" वासुदेव से बात करता हुआ मोहन अपने विचार आपे आप को वासुदेव का प्रतिद्वन्द्वी मानता है । वासुदेव का एक नहीं मानता । यही रिश्तेत वासुदेव के साथ वासुदेव के पिता की थी । "वासुदेव तब स्कूल में पढ़ता था जब इसकी शादी हुई थी । इसके पिता की इच्छा थी कि लड़का अच्छी सी बलकों कर बड़ा अफसर बन जाता परन्तु

वसुदेव को गांधी की हवा लग गई और अपने पिता के शब्दों में वह "बागी" हो गया और "बिगड़" गया। वास्तविक रूप से यही से अन्तराल आरंभ होता है नये और पुराने में। जो उसका पिता चाहता था वह पुत्र को स्वीकार नहीं। पुत्र ने एक प्रकार से विद्रोह का स्वर अपनाया और अपने विषय में स्वयं निर्णय ले लिया। प्रतिक्रिया की कि सरकारी नौकरी नहीं करेगे, स्वदेशी वस्त्र पहनेंगे।¹

वसुदेव सोचता है कि वह समय के साथ परिस्थितियों के साथ चले किन्तु वह विवका है। अपनी पुरानी मान्यताएँ और मूल्यों को छोड़ नहीं पाता। वह सोचने लगता है ... "मैं बहुत कोशिश की कि अपने संस्कारों को तोड़ूं, उनसे लड़ूं, उनसे परे जा सकूँ। पर वे फिर चपचाप कहीं से मेरे सिर पर आकर सवार हो जाता है। उयों, उयों उम्र बीतती है, उनसे निस्तार पाना बहुत ही मुश्किल है।"²

वसुदेव को अपनी धर्मपत्नी सरला की याद आती है जो संस्कारों से संपन्न थी। "सरला धर्माचरणी, सठिपुत्रक स्त्री थी। उसकी अपनी एक दुनिया थी। उसमें वह सुस्थिर थी। उसका दर्शन निश्चिंत था। पर उससे और मुझ से जो सन्तान पैदा हुई वह लीयात्मा बनी। वह देकार्त की तरह मैं संदिग्ध करता है, इसलिए हूँ, कहती हुई बढ़ी। उसने नेहरू और लेनिन और अरद्रेष्ठ रस्ते को अपना आदर्श माना।"³

वसुदेव फिर सोचता है कि अपना बेटा मोहन क्यों इस प्रकार विद्रोह की भावना से युक्त है। वसुदेव अपने आप से प्रश्न करता है - "आखिर मैं मोहन के प्रांत बतना चिन्तित क्यों हूँ १ x x x - गांधी थे।

1. ठा० कृष्ण रेणा - प्रभाकर माधवे के हिंदी उपन्यास - पृ. 51

2. तीस बालीस पचास - पृ. 6

3. -वही- पृ. 16

पर उनका पुत्र हीरालाल उनकी प्रतिवृत्ति नहीं था। हर मामले में वह उनसे अलग था। अलग ही नहीं, शायद उल्टा भी। पर उसके लिए क्या गांधी स्के१*¹ वसुदेव अपने स्वयं के बारे में सोचता है कि वह कितना गांधीवादी था - "मे गांधी जी को मानता रहा। पर मैं उनके नख रज के भी बराबर नहीं बन सका। यानी इसका अर्थ यह हुआ कि जिसका नाम हम प्रतिदिन लेते हैं, नाम जप भी करते हैं, उसका अंश भी हमारी जवान ओर स्वर से अधिक भीतर नहीं उतरता। हम तोते की तरह, यंत्रवत् रटते क्ले जाते हैं और "नाम" और "रूप" हमारे "अस्तित्व" को छू तक नहीं पाता।"² इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए चंद्रकांत बाँदिवळेकर का कहना है कि - आचार्य वसुदेव 1900 में जन्में हैं, गांधीवादका प्रभाव उन पर पड़ा है, आंदोलनों में वे सक्रिय रहे हैं, जेल गये हैं, त्याग कर चुके हैं। फिर भी उनका शील पूर्णतः गांधीवादी नहीं लगता। क्योंकि वे अपनी मुसलमान बहु का विरोध करते हैं। हाँ सकता है, जोर वही अधिक लेखक के साथ न्याय करने लायक माना जा सकता है कि माचवे ने इस पीढ़ी का इसी रूप में विकसित करना चाहता है। यह पीढ़ी विचारों से गांधीवादी रही हो, गांधीवाद उनके सून का तकाजा नहीं बना। यह गांधीवाद के प्रभाव पर कठोर भाव्य है - परन्तु क्या यह सही नहीं है? अन्यथा गांधी की मृत्यु के तुरंत बाद जो "अंतर्विरोध" कथानक रूप में उभरे उसका राष्ट्रीयकरण क्या किया जा सकता है १*³

कुल मिलाकर पुरानी पीढ़ी के प्रतीक वसुदेव के संदर्भ में इतना ही कह सकते हैं कि वह अपने मान्यताओं तथा मूल्यों को छेड़ना चाहता है परन्तु छेड़ नहीं पाता और जिन मूल्यों में विश्वास है उनको पूरी

1. तीस चालीस पचास - पृ. 14

2. - वही - पृ. 14

3. चंद्रकांत बाँदिवळेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास: सृजन और आलोचना - पृ. 22

लगन के साथ निभा भी नहीं पाता । यही अन्तर्विरोध इस पीढ़ी का है । "वसुदेव केसर से पीड़ित है । पुत्र की पूरी सखानुभूति उसके प्रति है यदि उनकी पीढ़ी के गांधीवादी आज उपेक्षित है या समाज में कुछ परिवर्तन नहीं करा सके तो उसका क्रोध अपनी अगली पीढ़ी पर निकालना व्यर्थ है । ऐसे सन् 1900 ईस्वी में जन्में लेखक और कवियों की रचनाएं कलाकृतियां कहाँ तक नई पीढ़ी के लिए सार्थक है ? यह भी एक प्रश्न है ।"

2*3*2* बीच की पीढ़ी :

वसुदेव का पुत्र मोहन तथा पुत्र व्यू रखसाना वसुदेव के बाद की पीढ़ी के लोग है पर अनिरु और उषा के पीढ़ी से पञ्जे के है अर्थात् वे बीच पीढ़ी के लोग है । डा० माधवे ने इस पीढ़ी के बारे में विवेचन करते हुए कहते है कि ये न पुरानी पीढ़ी के अन्तर्गत आते है और न नये पीढ़ी की ओर जाते है । ये बीच के है और उनकी मानसिकता भी मध्यस्थता का है कोई स्थिर निर्णय इनके पास नहीं है । किसी मान्यता को पूरे विश्वास के साथ ग्रहण करते है और न उसका विरोध करते है । माधवे ने इसी मनःस्थिति का चित्रण "तीस घालीस पचास" उपन्यास में मोहन तथा उसकी पत्नी रखसाना के माध्यम से कहरने का प्रयास किया है जो सफल रहा है ।

मोहन की पीढ़ी सन् 1930 की पीढ़ी है । बचपन से ही उसके विचार विद्रोही थे । वे अपने पिता के विचारों से सहमत नहीं थे । पिता के

शारीरिक श्रम को वह मशीन से पूरा करना चाहता है । वह साम्यवादी सिद्धांतों के प्रति आकृष्ट था और उसने साम्यवाद के अनेक ढंग से ओढ़कर विवाह भी मुसलमान धर्म की स्थलाना से किया । वह वैज्ञानिक बना और भारतीय संस्कृति के प्रति उसके हृदय में आस्था नहीं थी । मोहन के प्रति समाज ने बुरा व्यवहार किया । धर्मांतर विवाह इसका कारण था । पिता ने उसे स्वेच्छावारी कहा, पाटी ने एनार्किस्ट कहकर निकाला । इस कारण उसके मन में प्रतिकार की भावना जाग उठी । वह चुन्-चुन्कर मार्क्सवाद विरोधी साहित्य पढ़ने लगा । ऐसी मानसिकता वाली पीढ़ी का समाज में बहुत कम ही होता है ।

कुन्देव मोहन की पीढ़ी के बारे में ठीक ही कहता है कि "यह बीच की पीढ़ी ? यह मोहन ? ये सब क्या करते हैं ? हमारे आदर्शवाद और अनिष्ट के अराजकतावाद के बीच की इस क्लिष्ट पीढ़ी की क्या कोई जिम्मेदारी ही नहीं थी ? पता गिरता है, क्या धून भरी आँधी का उसमें कोई हाथ नहीं ?"।

इस पीढ़ी के अन्य व्यक्तित्वों तथा विषयमताओं का सार स्टीस प्रस्तुत करती हुई ७१० कृष्ण रेखा लिखती है कि -- "सन ३० में जो कार्य हुआ सन् ४० में उसकी हँसी उड़ाई गई । सन ५० में दोनों बातें पुरानी पड़ गई । परन्तु यह बीच की पीढ़ी - जिसका एक जुब मोहन है - दुःखी है । वे सोचने लगे कि उसके बुजुर्ग पिता भी ठीक थे । उन्होंने एक रास्ता अपने लिए निकाला था । वे दिन भर अंबर चर्खा काते थे । उसकी अगली पीढ़ी ने भोअपना रास्ता निकाल ही दिया । उसके पुत्र ने नित्य

की सम्पूर्ण परिवर्तित प्रकृति देश वाली क्षाणिकवादी भोग प्रधान जिन्द्गगी अपना ली । रात "तेलर" में बीत जाती है तो दिन किसी चूखाने में । कभी साहित्य भी पढ़ता है, कभी दर्शन, कभी राजनीति कुछ अंग्रेजी कवि-साँप भी करता है । गोली खाकर वह सारोचिन्ताओं और झंझटों से बच जाना चाहता है । उसके लिए दिन रात बराबर है । नहाना, न नहाना बराबर है । दुनिया के दुःख कम करने की उसे फिक्र ही कहाँ है, दुनिया स्वयं एक मीठा सपना है परन्तु यह बीच की पीढ़ी श्राद्ध की भाँति है । क्या इनकी कोई जिम्मेदारी नहीं ? इसके लिए सारी गली बन्द है । आदर्शवाद और अराजकतवाद के बीच यह बीच की गैरजिम्मेदार पीढ़ी रही ।¹ इस प्रकार मोहन की पीढ़ी जो बीच की है वह अपने आप में अस्थिरता, घंझकता, अकेलेपन कुँठा आदि भावनाओं से ग्रस्त है ।

डा० चन्द्रकान्त बाँदिल्लेकर का कहना है कि "मोहन के वैचारिक परिवर्तनों का लेखा जोखा देते समय मनोवैज्ञानिक पहचान का प्रमाण जितना मिलता है उतना विज्ञान में उसके कलात्मक उपयोग का नहीं । एक पीढ़ी जो क्रांतिकारी दिखती है वस्तुतः उसकी क्रांतिकारिता फिजली पीढ़ी के प्रति घृणा की एक अभिव्यक्ति होती है - इस तथ्य को माचवे जी ने झूठी-भाँति रेखांकित किया है । साथ में यह भी कि हर तथाकथित क्रांतिकारी पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को समझ नहीं पाती और न उनकी भिन्न राह को सहिष्णुतापूर्वक ले भी सकती है । वस्तुतः हर क्रांतिकारी अपनी अलग राह के लिए लुट चाहता है । वह मनसा सही अर्थ में क्रांतिकारी नहीं होता । इस तथ्य उपन्यास का एक स्थावत पक्ष है ।"²

1. डा० कृष्ण रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ० 53

2. चंद्रकान्त बाँदिल्लेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास : सृजन और आलोचना - पृ० 22

2.3.3. नई पीढ़ी :

“तीस बालीस पचास” उपन्यास की तीसरी पीढ़ी या जिसे नयी पीढ़ी कहा जाता है के प्रातिनिधि पात्र है - अनिरुद्ध और उसकी पत्नी उर्जुला या उषा । इन दो पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ठा माघवे जी ने नयी पीढ़ी की मानसिक दशा का चित्रण किया है । इस पीढ़ी में न किसी विचार, मान्यता या मूल्य के प्रति विशेष प्रेम है और न लगाव है । यह पीढ़ी क्षण को महत्व देती हुई जीवन का भोग जितना हो सके उतना करना चाहती है ।

इस पीढ़ी के प्रांत अभिभावक बहुत ही चिन्तित है । अनिरुद्ध के पिता मोहन भी अपने पुत्र की चिन्ता करता है — “मेरे पुत्र को क्या कमी है ? बचपन से ही जितने सुख, आराम, सुख्हा में उसे पाला जा सकता है, मैंने उसे पाला, पोसा, बढ़ाया । कोई ऐसी इच्छा उसको नहीं थी, जो अरुप्त रही हो । फिर भी यह इस तरह से आवारा, असामाजिक बना, क्यों धुलता है ? क्यों वह सतरनाक और जबरन विदेशी पुस्तकें पढ़ता है ? क्यों उसे ये सब रुढ़ और कार्य अलीन नहीं लगते जो मुझे लगते हैं ? क्यों ? क्यों ?”

इस पीढ़ी के लोग अधिकतर समय काफी हाउसों में व्यतीत करते हैं । “इनमें नृपसूक्त क्रोध और विचित्र असामाजिकता है । अक्रियावादी इनकी प्रकृति है । लम्बे केश रखना, न नहाना, अजीब कपड़े पहनना यह इनकी व्यवितगत रुचि है । जीवन के प्रांत इनका निरर्थकता बोध है । यह

आत्महत्याएं अधिक करते हैं। इनका तर्क है कि सोचने विचारने से कुछ नहीं होगा। बुद्धिवाद अब एकदम फैल हो गया और इसका कारण है पुरानी पीढ़ी का बुद्धि विवेक और तर्क को रोमांटिक ढंग से आवश्यकता से अधिक महत्व देना।¹ इस पीढ़ी के स्त्रियों की अपनी शिकायत है - "केट स्मिथ के सेक्सुअल पॉलिटिक्स" ने तारे संसार में धूम मचाई है। असमानता पर विद्रोह होने लगा परन्तु कोई पुरुष माता नहीं बनना चाहता है। स्त्री युग युग से माता, पत्नी, पुत्री रही है। स्त्री क्यों प्रेम चाहती है? स्वयं मारलिन मनरो नौद की गोतियाँ खाकर क्यों मर गई? उसके प्रति किसी का प्रेम नहीं था। यह नयी पीढ़ी प्रेम को भी पुरुषों की साजिश मानती है। नयी पीढ़ी इसे एक रासायनिक जैविक प्रतिक्रिया की संज्ञा देती है, कुछ शरीर कुछ शरीरों को देखकर, निष्कट आने की कोशिश करते हैं। यह शुद्ध पुद्गल व्यापार है। इसमें न तो कोई आत्मा है न संस्कार।²

नयी पीढ़ी में भयावह स्थिति उत्पन्न हो गयी है। इनमें हमेशा आवृत्त, और आशान्ति के कारण मन स्थिर नहीं रह पाता। इस कारण इस पीढ़ी के लोग शान्ति जहाँ है वहाँ ढूँढते हैं। प्रभाकर माचवे के उपन्यास "तीस चालीस पचास" में इस का चित्रण किया गया है। इस संबंध में डा० कृष्णा रेखा का कहना है - "नयी पीढ़ी में उन लोगों की अधिकता है जो विदेशी मशीनीकरण की उच्च से दुःखी हैं। इनमें से कुछ भारत वर्ष में शान्ति और अहिंसा की खोज में आते हैं। समस्त संसार में अणुबमों के गिरने के बाद सारा तंत्र ही बदल गया। यूरोप का

1. डा० कृष्णा रेखा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ० 53-54

2. - वही -

‘वैज्ञानिक मानव समाज का दास नहीं’ है। कोई किसी के मामले में दखल नहीं रखता है। यहाँ व्यक्ति स्वतंत्र बकाई है। स्वीडन जैसे समृद्धशाली देश में एक ओर नोबेल पुरस्कार म्यूजियम भी है परन्तु यही सबसे अधिक आत्महत्याएँ भी होती है।¹

इस प्रकार माचवे जी ने भारतीय मध्यमगीय परिवार में पीढ़ियों के अन्तराल के कारण उत्पन्न होने वाले सामाजिक तथा मानसिक समस्याओं को इस उपन्यास में यथार्थ के साथ चित्रित किया गया है। इस संदर्भ में डा० चन्द्रकान्त बाँदिव्हेकर का वक्तव्य महत्वपूर्ण है - वे लिखते हैं -

“माचवे जी के सामने एक भारतीय बौद्धिक समाज का चित्र है। यह बौद्धिक समाज स्वतंत्र, गांधीवाद, समाजवाद तरह तरह के संस्कार लेकर आगे बढ़ रहा है। यह वह दलमुल्यकीनी का है जो किसी स्थिति को मनःपूर्वक न स्वीकारता है, न उसे अंतिम सीमा तक जाकर गहराई से जी लेता है। यह खास भारतीय मध्यमगीय बुद्धिजीवी समाज है जिसकी रीढ़ की हड्डी ही कमजोर है, जो आत्मशक्ति से प्रतीतिपूर्ण परिचय से अलग पड़ गया है। सब परिघभी विचारधाराओं को वह अपना लेता है परन्तु ये विचार उसे कहीं भिगो नहीं देते - ऊपर से छिटकर खिसक जाते हैं।”² आगे

डा० चन्द्रकान्त बाँदिव्हेकर, डा० माचवे जी के उपन्यास “तीस चालीस पचास” की चर्चा करते हुए कहते हैं कि - “विज्ञान टेक्नालजी, बुद्धिवाद, उद्योगीकरण, नागरिकरण, मुन्यश्रुतता से उत्पन्न दोष सभी आघातों से यह काँ बड़ी अनिश्चित अवस्था में है। वह कोयले में रत्नरूप की खोज करना चाहता है, काले बादल की स्वर्णमय रेखा को देखना चाहता है। उसने अमरीकी के जीवन का सुख-सुविधापूर्ण और भयानक रूप देखा है, स्त्री

1. डा० कृष्णा रेणा - प्रभाकर माचवे के हिंदी उपन्यास - पृ० 54

2. चंद्रकान्त बाँदिव्हेकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास: सृजन और आलोचना

जीवन की अच्छाइयों, बुराइयों से वह परिचित हो गया है। उसके सामने प्रश्न है - उसकी खेवापुरी, भारत का अभावग्रस्त प्रान्त में उसके लिए इनमें से क्या क्या लाभदायक और स्वास्थ्यप्रद हो सकता है। माचवे के पास भी उत्तर नहीं है। ये शून्य समाप्त होगी। और उनमें पूर्ण जायेगा। या फिर अनेक शून्य मिलकर एक बड़ा सर्तुल बनेगा।* - ये अंतिम दो वाक्य हैं। माचवे जी चाहते हैं कि हम उनका उत्तर खोजें।*

2.4. युवा वर्ग और समसामयिक यथार्थ :

मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था युवावस्था है। इस अवस्था में ही मनुष्य अपने भावी जीवन का स्वरूप निर्धारण कर उसके लिए तैयार होने की कामना करता है। इसलिए ही शायद किसी ने कहा है कि युवावस्था मनुष्य का दूसरा जन्म है। साधारणतः 14 से 35 वर्ष के बीच की अवस्था को युवावस्था कहा जा सकता है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि 14 वर्ष आते ही बालक युवक बन जाता है और 35 वर्ष पूर्ण होते ही प्रौढ़ हो जाता है और न ही यह धारणा सर्वकालिक है। परिस्थितियों के अनुसार युवावस्था में परिवर्तन आ जाता है।

इस अवस्था में ही मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दृष्टि से काफी परिवर्तन होता है। यह अवस्था बचपन प्रौढ़ अवस्था के बीच की

1. चंद्रकान्त बाँदलकर - आधुनिक हिंदी उपन्यास : सृजन और आलोचना - पृ. 23

संक्रमण अवस्था है। इस काल में बालक में शारीरिक अंगों में विकास होता है। उसके गले में आवाज में परिवर्तन होता है। मानसिक रूप से युवावस्था मनुष्य जीवन का अत्यन्त अवस्था कही जा सकती है। इसी समय मनुष्य में जीने के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है स्पर्ध करने की अदम्य साहस उत्पन्न होता है। इस कारण युवा कर्म हमेशा स्पर्ध करने में रुचि ज्यादा दिखाते हैं। इसीलिए इस अवस्था में होश की अपेक्षा जोश की अधिकता दिखाई पड़ती है।

युवा पीढ़ी स्नातक तत्वों जैसे प्रेम, भय और क्रोध आदि से परिचालित होता है। इस कारण इनके मन में अदम्य विश्वास और उत्साह भरा रहता है। इस अवस्था में साहसिक कार्यों को करने में युवक अधिक उत्साहित दिखाई पड़ते हैं। इनके अन्दर सहनशीलता का अभाव प्रायः हुवा करता है। इस कारण किसी भी कार्य में हो या किसी बात में हो आर या पार होना चाहते हैं। इस अवस्था में युवा बीच का रास्ता पसंद नहीं करते। इसके हृदय में आत्म प्रकृष्टता की भावना अधिक रहती है वह हमेशा यही सोचते रहता है कि समाज में उसकी अस्तित्व की कदर हो। यदि उसकी अस्तित्व की कदर समाज में न हो तो उसके अन्दर विद्रोह की भावना जागृत हो उठती है। उसके आत्म सम्मान को कभी ठेस नहीं लगनी चाहिए। यदि लगा तो वह प्रतीकार की भावना से मचल उठता है उसका हृदय उछल पछल हो जाता है। इस अवस्था में किशोर महत्वकांक्षी होता है और उच्च उच्च स्वप्नों देखने लग जाता है जिसके कारण उसके हृदय में पक्कल उद्वेग उठते रहते हैं। इस तरह से वह महत्वकांक्षियों के सपनों में जीते हुए भविष्य के प्रति आशा तथा आदर्श की भावना के साथ रहता है।

युवावस्था में आदमी आस्था और अनास्था के बीच संतुलित रहता है। उसमें कभी जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न होती है जिसके कारण

वह उत्साही और आनन्दित दिखाई पड़ता है तो कभीजीवन के प्रति अनास्थावान हो जाता है और संपूर्ण जीवन को धीरे निराशावादी दृष्टि से आकलन करने लगता है । इस अवस्था में युवा मानस में सोचने की पूर्ण क्षमता होती है । किन्तु उसमें जोश अधिक रहता है । इस कारण प्रत्येक कार्य करने से पहले वह उस कार्य से संबंधित सभी पक्षों पर ठीक से विचार नहीं कर पाता है और एक दृढ़ निर्णय पर आ नहीं पाता । किसीकार्य के सम्पन्न होने के बारे में वह जितना शीघ्र सोचता है वह उतना ही जल्दी व्यावहारिक रूप से कार्य सम्पन्न होना चाहता है । इस कारण युवा मानस को क्रान्तिकारी परिवर्तनों का आकर्षण कहते हैं । समाज को जितनी तेजी के साथ परिवर्तन करने की बात मस्तिष्क में सोचता है उतनी ही तेजी से समाज परिवर्तन होना चाहता है । यह कार्य शक्य नहीं है । जिसके कारण उसका विद्रोही मन समाज के प्रति उग्र रूप धारण करता है किन्तु सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में उसे धीरे-धीरे समझने लगता है कि समाज में उसकीहेसियत, सीमा तथा नियति की स्थिति क्या है ।

विश्वर के चरित्र की कुछ मुख्य विशेषताओं के बारे में पी ठी पाठक लिखते हैं - कि - "चिन्ता उच्च आदर्श, शक्तिशाली कल्पना, आत्म-भिमान स्वतंत्रता के प्रति प्रेम, धार्मिक रीति रिवाजों में विश्वास प्रति-
चिन्ता की भावना, अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह, विचारों की चकता भावनाओं की प्रकलता और मनोभावों में अकारण एवं आकस्मिक परिवर्तन ।"।
आदि विश्वर के चरित्र को प्रभावित करते हैं ।

युवावस्था के उपर्युक्त प्रमुख विशेषताओं के अलावा कुछ विसंगतियाँ भी उसमें पनपी हुई रहती हैं। इन विसंगतियों में पहला प्रेम और दूसरा घेसा है। प्रेम और घेसे के पीछे युवा पीढ़ी दौड़ लगा रही है उसे लगता है कि घेसे से सारे भौतिकसुखों को प्राप्त किया जा सकता है और प्रेम से मानसिक सुख को। इस कारण इन दो विसंगतियों के पीछे दौड़ लगी हुई है। आज का युवा वर्ग इन दोनों को ही सबसे ज्यादा समझ रहा है। जिस युवक या युवती को ये दोनों मिल जाते हैं उनमें पर्याप्त आस्था, भक्तिता और आदर्श दिखाई देते हैं और जिन को ये दोनों नहीं मिलते उनके मन में निराशा, कूँटा, आक्रामकता, ईर्ष्या तथा हीनभावनाएं उत्पन्न हो जाती हैं जिसके कारण पारिवारिक सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से उनमें विकृतियाँ उत्पन्न हो जाते हैं। और उनका जीवन दुःखायी हो जाता है। ऐसे समय पर उनके जीवन का लक्ष्य पथभ्रष्ट हो जाता है और समाज के प्रति उनके मन में विद्रोह की भावना जागृत होती है। उनके प्रति न आस्था होती है और न ही आदर्श की भावना। इस कारण यह धीरे निराशा में डूब कर किष्टकारी हो जाता है। उसका मन में हिंसात्मक और ध्वंसात्मक कार्यों की ओर अग्रसर हो जाता है।

आज की युवा पीढ़ी के संदर्भ में आशारानी बहोरा लिखती हैं - "उम्मान के बाद भी ठहराव नहीं"। दिशा खोजती एक सहज प्रवाही जीवन धारा जिसमें घट्टानों से ठकराने की क्षमता के बावजूद विपरीत हवाओं से बचाव या पलायन की प्रवृत्ति ही प्रायः पनपती गई। यह प्रवृत्ति उसका स्थायी भाव न हो, पर संचारी भाव आक्रोश भी तो सब कुछ तबस नहस करने में ही अधिक व्यक्त हुआ, रचनात्मक दिशा के अभाव में इससे कुछ नया पाने, कुछ उजला लाने की ललक पैदा नहीं हुई। निरंतर हाथ लगती असफलता से निराशा के बाद हताशा।"।

2.4.1. "क्वशोर" तथा "लापता" उपन्यासों में युवाका का चित्रण :

उपर्युक्त कतिपय क्विशताओं के परिश्रेय में डा० प्रभाकर माधवे द्वारा लिखित "क्वशोर" तथा "लापता" उपन्यासों में चित्रित युवा पात्रों का क्विवेचन करेंगे ।

वस्तुतः क्विशोर तथा लापता उपन्यासों में चित्रित युवा पात्रों की समस्या लगभग एक ही है । दोनों के मन में अकेलेपन, आत्म निवासिन तथा परिवार के लोगों की प्रेम तथा सहानुभूति न मिलना आदि क्विशताओं को दोनों उपन्यासों के पात्रों में देख सकते हैं । हाँ यह सच है कि दोनों उपन्यासों में कथ्य की भिन्नता है और अन्तः परिणति भी अलग है ।

"क्विशोर" उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार माधवे जी युवक की अ्यक्तिगत समस्याओं, क्वि क्विकालय के छात्रान्दोलन की समस्या तथा जेल में अकेलेपन की समस्या को चित्रित किया गया है स मुख्यतः इस उपन्यास में उपन्यास के नायक क्विशोर आदि से अन्त तक समस्या से ग्रस्त है । "यह समस्या तीन रूप लेती है - मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक । उसकी मनोवैज्ञानिक समस्या है कि वह अकेला है । जितना ध्यार उसे मिलना चाहिए था उसे नहीं मिल पा रहा है । उस पर भी सीतेजी माँ का अव्यवहार ठाँट फटकार अतः उसमें कहीं विद्रोह की अग्नि जमा हो जाती है । सामाजिक स्तर पर उसे धुसा मिलती है । प्रातः काल जो उसका मुह देखता है वही उसे फटकारता है क्योंकि वह नीच जाति का है । यहाँ भी वह तिरस्कृत है । जेल से छूटने पर वह बेकार है । उसे सी रूपये की नोकरी कुछ महीनों के लिए मिलती है परन्तु स्थायी रूप से

वह बेकार है। उसे कोई अपने पास नहीं आने देता।¹ "लापता" उपन्यास के नायक अरविन्द की भी स्थिति ऐसी ही है। उसे भी न घर और न ही समाज में समुचित आदर मिलता है। इस कारण वह घर से निकल जाता है और देश के अनेक प्रान्तों में अनेक रूपों में धूमते रहता है। उसके मन में जलगाव की भावना घर कर लेती है।

युवा वर्ग देश की सच्ची तस्वीर हुआ करती है। उसमें देश का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का स्पष्ट दिखाना पड़ता है। इसलिए महात्मा गांधी ने कहा था कि - "विद्या-शीर्ष पर परिस्थिति के दर्पण रूप है। उनमें न दर्भ है न झेध। जैसा हो वैसा ही वे अपने को दिखाते हैं। उनकी हर बात एक दर्पण होती है। जो प्रतिबिम्ब अपने में लेती। विद्याशीर्ष में अगर पुस्त्यार्थ न हो, सत्य न हो, ब्रह्मचर्य न हो तो वह दोष उन लोगों का नहीं। वह दोष माँ-बाप का है। वह दोष अध्यापक का, आचार्य का और राजा का है।"² वर्तमान परिस्थितियों में विद्याहीन होकर युवक भटक रहे हैं। इसका कारण समाज, सरकार और परिवार है। यदि समाज और सरकार उन्हें एक सही राह नहीं दिखाता और परिवार हमदर्दी और सहानुभूति नहीं रखती तो निश्चित रूप से युवावर्ग में उनके साथ नकारात्मक भावनाएँ पनपेंगी जिसे परिणाम स्वरूप समाज में विद्रोह या क्लेश न हो सही कम से कम खोखला पन जरूर उत्पन्न होगा जिसमें न उत्साह रहेगी और

1. डॉ० कृष्णा रेणु - प्रभाकर माधवे के हिंदी उपन्यास - पृ० 47

2. प्रभाकर माधवे - विश्वोदय भूमिका से पृष्ठ 5

न ही जिजीविषा रहेगी । बस, रहती है घोर निराशा । इस निराशा से हिंसक प्रवृत्तियाँ जाग उठेंगी । डा० प्रभाकर माधवे "क्विशोर" उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं - "मनुष्य में जो पशु ज्ञी तर्क अदम्य श्रेष्ठ है, वही हिंसा का प्रेरक है, मनुष्य में का देवत्व या संपूर्ण अहिंसा ज्ञी क्लेश में अवतरित नहीं हुई है । वह एक सपना है, एक यूटोपिया । और हम सब जैसे नींद में कल रहे हैं । यथार्थ को टुकराते हुए यथार्थ से प्रपीडित, यथार्थ से ध्वराये ध्वराये । क्विशोर कुछ और समस्याएँ भी उभरता है - समाज में नेतृत्व की भावी दिशा की समस्या ।"¹

अतः कहा जा सकता है कि डा० माधवे जी अपने उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि क्विशोरों में मानसिक विकृतियाँ पनपने से पहले ही उनका निन्दान करना चाहिए । इसके लिए घर में ही या समाज में उन्हें तिरस्कृत या अज्ञेयता की भावना से ग्रसित होने नहीं देना चाहिए । यदि उनके मन में ऐसी भावनाएँ घर कर लेती हैं तो वे अलग-अलग व हिंसक प्रवृत्तियों के प्रति आकर्षित होंगे जो कि समाज व देश के लिए खतरनाक साबित हो सकते हैं ।

"क्विशोर" उपन्यास का नायक क्विशोर नामक किशोरी है । वह हमेशा समस्याओं से ग्रसित रहता है । उसकी सबसे बड़ी समस्या मानसिक है । उसे न घर में और न समाज में समुचित आदर मिलता है और न सहानुभूति । इसी कारण उसके मनःस्थित विद्रोह की भावना जाग उठती है। ऐसे तो क्विशोर एक साधारण लड़का है जो कभी कभी हिंसक वारदातों

1. डा० प्रभाकर माधवे - क्विशोर उपन्यास - लेखक का कृतव्य

में शामिल नहीं' हुआ है किन्तु जैसे जैसे समाज के प्रति और घर के प्रति उसमें घृणा की भावना उत्पन्न होती है तो उसके अन्दर अचानक हिंसक प्रवृत्तियाँ जाग उठती हैं। विशोर अस जलाने पर उपन्यासकार ठूँ माचवे जी ने लिखा है - "ऐसे तो विशोर बेहद ठरपोक और दबबू लडका रहा है। वह खुले में आकर न किसी से लड़ा न किसी से हाथापाई करते पाया गया। न कभी किसी को गाली तक दी। पर आज सहसा उसने इतना बड़ा साहस का काम कैसे कर डाला ?"। आगे उपन्यासकार कहते हैं कि शायद उसके अन्दर कई दिनों से जमा हुआ गुस्सा एकदम विस्फोट होकर ज्वालामुखी के समान बाहर आ गया हो। "ऐसे ही कुछ उसके भीतर हुआ। उसे एक क्षण भर लगा कि झूठे हैं सब रिश्ते नाते। घर में कोई नहीं है उसका। बाप दबबू है। गरीब क्लर्क है। सात भाई बहनों की पालने के उसके पास साधन नहीं है। सौतेली माँ तो पूरी डाइन है। कभी खाने को भी ठीक से नहीं देती। न पहनने को पक्का। अस रात-दिन काम कराती रहती है। मानो विशोर कोई बिना मजूरी का बेगार मजूर हो। दूसरे भाइयों के लाठ होते हैं। बहनों के लिए सब कुछ और वह अकेला सबसे बड़ा रात दिन ताने सुनते रहता है।" 2 यही स्थिति "लापता" उपन्यास में भी है। वहाँ पर भी नवयुवक अरविंद मल्होत्रा को घर में लाठ प्यार न मिलने के कारण घर से कौ जाता है। उसमें भी हीन भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। क्योंकि उसकी भी सौतेली माँ है। छोटे भाई को ज्यादा प्यार किया जाता है और उसे घर में कदर नहीं किया जाता। अरविंद मल्होत्रा कहता है कि "मेरी भी माँ नहीं रही। पिता ने दूसरी शादी कर ली। सौतेली माँ ने मुझे कभी प्यार नहीं

1. विशोर - पृ. 1

2. विशोर - पृ. 2

दिया ।¹ और एक भाई था । "वह मारपीट करता । घर पर लाकर हूँ बोलता । सबकी सहानुभूति पाता । छोटा था न । मुझे सब दूरदुराते । सब चाहते थे कि मैं पढ़ाई पूरी करने से पहले ही कमाने लग जाऊँ । यह कैसे संभव था ? मेरी किताबें वह छुराता । पन्ने फाड़ डालता मेरे होम वर्क के । मेरे अपमानित होने में उसे बड़ा आनन्द मिलता था ।"² इस प्रकार माघवे जी ने युवकों के मन में घर के प्रति, परिवार के प्रति उदासीनता और चिड़चिड़ाहट उत्पन्न होने के कारणों को स्पष्ट किया है । ऐसी अलगाव की स्थिति उत्पन्न होने के बारे में माघवे जी कहते हैं -

"यो शुरू होती है एक बड़े पहिचाने बने रहने की दुनिया । एक तरह से सब चीजों से अलगाव । एक ऐसा बोध कि हम सबसे कटे हुए हैं । कहीं कोई छोटा सा भी, हल्का सा भी संबंधों का तंतु शेष नहीं है । नित्य प्रताड़ित, अपमानित, वींचत, एक कुकली हुई, तुड़मुड़ाई हुई, आधी, अधूरी जिन्दगी में हम जीते रहते हैं । कुछ है जो समझोता कर लेते हैं । अस्तित्व को ही पूरा सत्य मान लेते हैं । यह धोखा बड़े पैमाने पर लोगों को हो जाता है ।"³

घर में प्रताड़ना, अपमान आदि होने पर मनुष्य में घर के प्रति अपनापन की भावना खत्म होती है । इसी कारण "लापता" का नायक अरविंद मल्होत्रा घर छोड़कर कला जाता है तो "क्विथोर" का नायक क्विथोर क्वेसर घर के बाहर ही अधिक समय व्यतीत करता रहता है । "रोज की जली कटी सुन सुनकर वह लंग आ गया । घर में ज्यादा देर रहना उसने छोड़ दिया । क्वेसर क्वेस बाहर ही बिताता । दोस्त भी उसके ऐसे ही मिल गये, जिन्हें समाज आवारा, शोहदा और बेकार

1. लापता - पृ. 87

2. लापता पृ. 88

3. लापता पृ. 88

समझता था ।¹ किशोर को घर में रोज अनेक काम करने पड़ते थे । रोज सुबह दूध लाना पड़ता था । दूध के लिए उसे "वयू" में खड़ा होना पड़ता था । घर में हाथ धाने के लिए भी "वयू" था । कालेज जाने के लिए "बस" के लिए "वयू" । इस प्रकार वह इस वयू से उबल चुका था । और इसके बाद आर्थिक अभाव की स्थिति जिसके कारण भी वह बेघर रहता करता था । उसकी पढ़ाई अंग्रेजी माध्यम से हुआ करती थी । वह मैट्रिक तक हिंदी में पढ़ा था । यह और एक समस्या थी । डा० माधवे जी ने लिखा है - "काज "टेस्ट" का दिन था । किताबें जो प्रोफेसरों ने मोटी-मोटी बताई थी, उनके दाम भी उतने ही लम्बे घोंठे थे । वे खरीदने की ताब कहां ? कालेज लाइब्रेरी में थोड़ा बहुत पटक नोट बना लेता था, उसका पटककू दोस्त चिंमाम्णी । उसी के नोट्स यह नकल कर लेता था । पर सबसे बड़ी मुसीबत यह थी कि क्लायत से लोटे तर्क अद्यापक न जाने कैसी मुंह बना बनाकर अंग्रेजी बोलते थे । मैट्रिक तक सब विषय किशोर ने हिन्दी में पढ़े थे । अंग्रेजी का एक परचा किसी तरह रट रटाकर पास कर लिया था और यह सारी पढ़ाई अंग्रेजी में । उसका तो माया ही भग्ना जाता था ।²

किशोर के साथ एक और समस्या थी । उसका कम जात में जन्म हुआ था । सब लोग उसका मुंह तक देखना पसंद नहीं करते थे । जिसके कारण उसमें हीन भावना जाग उठी और वह हिन्दू धर्म में स्थित अस्पृश्यता के बारे में सोचने लगा । "तो किशोर यादव जाति में जन्मा यह उसका तो अपराध नहीं" है । भगवान् कृष्ण भी यादव कुल में जन्में थे । बाद में यादव बड़े जोधा लोग भी हुए । पर अबउसे पता लग गया था कि हिन्दू समाज में चार वर्ण है । और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वनिये सब यादव

1: किशोर - पृ० 2

2: किशोर - पृ० 5

को निकली जाति का मानते थे । क्या आदमी इस तरह से दूसरे को नीचा उठा मान सकता है ? उसने देखा था कि उसके मोहल्ले के पास ही गिरजे में लोग रविवार को जमा होते थे । उनमें कोई भेदभाव नहीं था । उसने किताब में पढ़ा था कि कुछ धर्म में भी ऐसा नहीं होता । मुसलमानों को तो उसने देखा है : तगि वाले याकूब और उसके तगि में बैठने वाले बड़े नवाब को एक साथ एक ही थाली में खाते हुए । फिर यह इस तरह का भेदभाव हमारे हिन्दुओं में ही क्यों है ?¹

घर में सीलेनी माँ बाग बबूला होती है । "बाजार से कोयले कौन लायेगा ? तेरा बाप ? सवेरे सवेरे लाट साइब मामा जी की पंथायत में पहुँच गये । ले ये पैसे और थोड़े से कोयले ही ले आ । उठाकर लाना । अगर कोयले जल्दी नहीं आये तो बाज खाना नहीं मिलेगा ।"² जब वह कोयले "बयू" में ठहर कर लाया तो सीलेनी माँ ने गरज कूक कर कहा - "कब आये हैं ? शाइजादे । जरासा कोयला लाने में इत्ती देर । जब से कॉलेज में दाखिला मिला है, मित्राज ही सातवें आसमान में है ।...कब अंगीठी जलेगी । तब कुछ पकेगा । बाज खाना नहीं मिलेगा, समझे ?"³ वह रात की सूखी रोटी और दाल खाकर बस के लिए जा खड़ा हुआ । वह छिछिछा होने के कारण उसकी बस वाले से लड़ाई हो गई । बस में स्थिति कुछ और थी । "वहाँ एक मोटीसी भूढ़ महिला आकर बैठी थी । पास खड़े विशोर से जैसे उसे "धूत" के बीमार की सी "फज्जी" अप्रियता थी । तो वह बार बार उसे धकिया रही थी । वह जहाँ खड़ा था वहाँ दोनों ओर दो मुस्टड़े लंबे चौड़े आदमी थे । उन्हें परवाह नहीं थी कि बीच में किसी कमज़ोर लड़के की कलाई या हाथ की कितावें दबोची जा रही है ।"⁴

1. विशोर - पृ. 3

2. विशोर - पृ. 6

3. विशोर - पृ. 10

4. विशोर - पृ. 10

इस प्रकार इन सारे समस्याओं के कारण किशोर के मन में जिन्दगी के प्रति निराशा की भावना जागने लगी । वह सोचने लगा कि जीवन का अर्थ क्या है ? क्या अपना जीवन व्यर्थ है ? किशोर मन में सोच रहा था - "कितना व्यर्थ है उसका जीवन ? घर में वह किसी की नज़र में उपयोग नहीं, महत्व का नहीं । बाहर सब उसे हल्की जात का कहते हैं । गरीब है इसलिए दुकान वाले उसे पास नहीं फटकने देते । बस में भी सामान्य आदमी का वर्ग बोध कपड़े पर आश्रित है । जिसके लकड़क साफ हक पकड़े हुए, उसे हट से जगह मिल जाती है । कंडक्टर भी उससे मीठी जवान से बातें करता है और किशोर जैसे साधारण भले फटे कपड़े दीखे कि सब उसे तू ठाक से पुकारते हैं ।"¹

ऐसे स्थितियों में उसे कभी कभी पड़ोसी आचार्य के पास जाकर अपने पढ़ाई के बारे में पूछ लिया करता था । एक ओर थी दया । "जिसने एक दिन बचपन में जब उसकी घेर की उंगली कील से लगकर कट गई थी और खून बह रहा था, तो उसकी मरहम पट्टी की थी ।"² दया धनवान की बेटी थी । उसके साथ ही कभी कभी बात किया करता था । बस, इस छंसार में यही दो ही व्यक्ति विशेषतः दया - उसके प्रति सहानुभूति दिखाने वाले थे ।

"लापता" के अरविंद मल्होत्रा जो घर छोड़ कर चला जाता है उसे अकेलेपन की भावना सताती है । उसने भारत के अनेक प्रान्तों में देश बदलकर नाम बदलकर घुमा और विदेशों में भी रह कर आया किन्तु उसे हमेशा अकेलेपन की भावना सताने लगती है । "कहीं न कहीं" गहरे में उसके मन में यह पीड़ा थी कि वह बिना जहाँ का, निर्मूल, विच्छिन्न एक तरह

की अमरेल्ल का सा जीवन बिा रहा के । फिर उसने यूरोप में गत महायुद्ध के बाद रेफ्यूजियों के जहाँ तति लग खये और जिन-जिन देशों में विनाश के बाद पुनर्निर्माण का कार्य भी खड़े पैमाने पर हुआ वह देखा और उसके मन में यह एकाकीपन उसे और भी सालने लगा ।¹ अरविन्द महोत्रा अपना अस्तित्व मिटाने के लिए नाम बदलकर ठा० सदानंद के रूप में अमेरिका चले जाता है । वह अच्छी अंग्रेजी बोल लेता था । दुनिया भर की अवांतर बातें सीख ली थी । अच्छे पकड़े पहनता था । पर भीतर ही भतर उसे एकान्त बहुत खलता था । "अकेला होने पर उसका मन उसकी खाने लगता था । बार बार उसे अपने परिवार की याद आती । सोतेजी ही क्यों न हो माँ कैसी है, कहीं है ? और सब रिश्तेदार ? बाँधी आते ही फ़ी भाग नहीं जाते है ? दरिद्र का भी ऐसा ही होता है । फिर पैर पर पत्ते आये कि फ़ी चहचहाने आ जुटते है । पेसे वालों के पास लोग हर तरह जमा हो जाते है । जहाँ होंगे कण वही जुटेंगे जन ।"²

"क्वियोर" उपन्यास में क्वियोर कुछ शरारती तत्वों या विखटन-कारी तत्वों के क्ला में आकर बस जलाता है । बस जलाते समय रंग हाथ उसे पुलिस पकड़ लेती है और हवालात में बन्द कर देती है । उस समय उसे मिलने न मित्र आते है और न ही उग्र आन्दोलन के नेता । सिर्फ़ उसके आत्मीय लोग आते है । उसे अपने आप के अर्द्धहीन सम्झने लगा कि "सारा संसार धृषापुर्ण है । यहाँ प्रेम देने वाला, प्रेम करने वाला या जिससे प्रेम किया जा सके ऐसा कोई नहीं है । एक जलती हुई लाल लाल बस के बदले लाल लाल लोहे की छेँ है और उन्हें लाल लाल आँखों से देखने वाला एक छठी धारी देहाती शिक्षक है । प्रेम के अभाव में सब सुना है और सुनेपन में

1. लापता - पृ. 39

2. लापता - पृ. 45

किसी पर निर्भर करने की किसी से प्रत्याशा रखने की क्या आवश्यकता है १^{*1} किन्तु जैसे ही उसे लाटरी में दो लाख रुपये मिलते हैं तो उसके लिए संसार ही दबल जाता है। फाकार, रेठियो वाले, टी.वी वाले सब इन्टरक्यू लेने आये, उसकी मान प्रतिकृता बढ़ गई। "दया" के पिता ने जो पहले उससे नफरत करता था। दया का हाथ देना चाहता। किन्तु विश्वोर ने अभी शादी की उर नहीं हुई है कहकर टाल दिया। "उसे आश्चर्य हो रहा था कि समाज में उसके संबंध किस तरह से बदलते जा रहे हैं। आदमी का पैसे वाला बनना ही क्या उसे एकदम सर्वगुण संपन्न बना देता है। सारी योग्यता का आधार आज हमारे समाज में क्या सिर्फ आर्थिक ही रह गया है १^{*2} फिर एक बार "वह सोचने लगा कि यह दुनिया भी कैसी है १ कल तक वह गरीब था तो सब उसकी ओर धिक्कारत से देख रहे थे, मानो वह कोई कीटा मकोठा हो और आज सहसा सबकी नज़रें बदल गयी। क्या दुनिया में पैसे कोइतना अधिक मान है १ क्यों है १ x x x पैसा चीजें खरीद सकता है। आदमी को प्रतिकृता दिला सकता है। शायद वह झूठी प्रतिकृता है। वह क्षणिक है। अधिक स्थायी नहीं है। पर फिर भी उसका कितना अधिक मूल्य है १ जो लोग उसे बिनाकुल मूल्य नहीं देना चाहते थे, वे भी कहीं न कहीं उससे सूक्ष्म रूप से बंधे हैं। अब विश्वोर भी उसके बन्धन की चपेट में आ गया है। पुराना विश्वोर, विश्वोर नहीं रहा।³

धनाभाव ने विश्वोर के मन में एक कृंता का रूप धारण कर लिया था। इस कारण उसकी पढ़ाई में रुचि नहीं थी। "विश्वोर के मन में ऐसी

1. विश्वोर - पृ. 26

2. -वही- पृ. 76

3. -वही- पृ. 82

पढ़ाई के लिए पहले से ही नफरत है, जिसमें कितने लोगों के आगे अनावश्यक झुकना पड़ा। वक्त पर फीस नहीं है, देने को गिड़गिड़ा रहे हैं। पाठ्यक्रम की पुस्तकें खरीदने को पैसे नहीं हैं, फिर दोस्तों के सामने याचना कर रहे हैं।¹

युवकों में आक्रोश, जोश और उत्साह अधिक रहता है। इस कारण वे बया कर रहे हैं इसके बारे में कम ही सोचते हैं। परिणामतः श्रेष्ठ आदेश में अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इसलिए कहते हैं कि होश की अपेक्षा जोश की अधिकता का नाम ही युवा मानस है। "क्विनोर" उपन्यास में क्विनोर ने दूसरों के बहकावे में आकर छात्रान्दोलन के समय बस को जला दिया। हालाँकि क्विनोर के मन में ऐसा करना कदापि नहीं था। एक छात्र हितैषी कहे जाने वाले के बातों में आकर उसने ऐसा किया। क्विनोर से उसने कहा था - "कुछ नहीं करना है। उस गली से आकर यह जलता हुआ पेट्रोल का पलीता उस बस की टंकी पर छोड़ देना है। इसमें तुम्हें कोई देखेगा नहीं। तुम पर सन्देह कोई करेगा नहीं। उस गली से तुम चुपचाप खिसक आओगे। हमारे क्लांटीयर तुम्हें अपने स्कूटर पर दूर पहुँचा देंगे, घर पर। किसी को कानोकान खबर तक भी न होगी। एक मिनट का काम है।"² इन बातों में आकर क्विनोर बस जलाता है और रंगी हाथों पुलिस उसे गिरफ्तार कर लेती है।

हवालात में बन्द क्विनोर से मिलने "दया" आती है और उसे स्लाह देती है कि वह पूरी समस्या का बोझ अकेले मत लिया करो और कहती है कि पुलिसवालों से कह दे कि श्रेष्ठ आदेश में ऐसा किया गया है और आगे नहीं करेगा। उसने क्विनोर से कहा - "माँ बाप बच्चों को

1. क्विनोर - पृ. 23

2. क्विनोर - पृ. 22

घर में प्यार नहीं दे पाते । सहन नहीं करते, स्कूलों कालिजों में ठेल देते हैं । वहाँ अध्यापक उन्हें सहन नहीं कर पाते, बाहर स्कूलों पर ठेल देते हैं स्कूलों पर कानून के रखवारे सहन नहीं कर पाते, जेलों में ठेल देते हैं । यह सब किशोर पलायन है किशोर । यों कोई समस्या छल नहीं होती । बहुरिक समस्या ज्यों की त्यों भी नहीं बनी रहती । उलझती जाती है ।¹

जेल में किशोर के पास दूसरे कोई भी मित्र हो या छात्र नेता मिलने नहीं पाये । जिसके कारण किशोर को मनुष्यता पर से ही किवास उठ गया । बचपन से ही उसका खिन्न पर किवास उठ गया । एक बार वह घर वालों के साथ कहीं तीरर्थ गया था । वहाँ के मंदिर में हरिजन होने से एक सीमा तक ही प्रवेष्टा संभव था और वहाँ पर देवी के आगे कोई मेमने को बली दिया जा रहा था । इसको देखकर किशोर का मन बहुत दुखी हुआ था ।

किशोर का बाप जमानत की व्यवस्था करके किशोर को हवालात से छुटा लिया । हवालात से छूटने के बाद उसने साहित्य लिखना चाहा । किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में साहित्य की क्या स्थिति है उसने तुरन्त समझ लिया और उससे उब गया । "साहित्य की राजनीति के इस रूप से किशोर एकदम उब गया और उसने निश्चय किया कि साहित्य क्षेत्र में हाथ पैर मारना बेकार है । उसके लिए बहुत ही ज्यादा गेछि जैसी खाल या मगर जैसा चमड़ा चाहिए । किशोर बहुत भाकु और सिद्धान्ताल था । तो उसने लेखक बनने की बात मन से निकाल दी ।"² किन्तु जो साहित्यकार

1. किशोर - पृ० 29-30

2. किशोर - पृ० 59

और प्रकार उसे लेकर बनने में बाँटे जाये थे उन्होंने ही जब किशोर को दो लाख रुपये की लाटरी निकलती है तो पत्र पर बाधा स्वामित्व देना चाहता ।

किशोर ने सभी प्रकार के छात्र नेताओं से छात्रों दशा और दिशा पर विचार विमर्श किया । हिन्दू पुनरुद्धारक, समाजवादी, साम्यवादी, गांधी वादी आदि विचारधाराओं के नेताओं से मिला किन्तु सभी अपने अपने राजनैतिक स्वार्थों से ग्रसित थे । इसलिए किशोर ने अश्वि निराश हो गया । उसने सोचा कि छात्र स्वयं अपना रास्ता ढूँढ लें । *अपना उपयोग किया जा रहा है, अपनी हक्का के विरुद्ध यह भावना कितनी भयानक है । वही हक्का मर जाती है । छात्र चाहता है कि अपनी हक्का से जीना मरना । वह शिक्षा पद्धति जो उसे ऐसा मौका नहीं देती, खन्धी है, जड़ है । और उसके नाश के बीच उसी में मौजूद है ।*

किशोर ने सोचा कि छात्रों में आदर्श भावनाएँ जागृत हो और अपने पैरों पर खड़े होने की सोच उनमें जाये । किसी राजनैतिक नेताओं के गिरफ्त में छात्र न जायें । उसने यह भी सोचा कि पुलिस के पास जो कुछ छात्रोन्दोलन के समय हुआ था । सब सब बता दें और जो कुछ नुकसान हुआ है अपने लाटरी में निकले दो लाखरुपयों से दे । इस प्रकार - *किशोर ने बस फण्ट में काफी बड़ी रकम दी और छात्रों की सहकारी बस सर्विस शुरू हो गई । छात्रों, द्वारा छात्रों के लिए छात्रों की बस ।*² इस प्रकार की आदर्शवादी चित्रण करते हुए स्वयं उपन्यासकार नाचवे जी लिखते हैं कि - *ऐसा आदर्श क्या यथार्थ में जन्दी ही मूर्त होगा ?*³

1. किशोर - पृ० 96

2. किशोर - पृ० 104

3. किशोर - पृ० 104

"लापता" में अरविंद मल्होत्रा भी अपनी पहचान मिटाना चाहता है और घर से छ छरवालों से दूर रहना चाहता है किन्तु उसे अकेलेपन की भावना सताती है। उसने जब अशुतोष के नाम से देश बदलकर था तब एक ठायरी में लिखता कि "बादमी अकेला रहना चाहता है। उसी में उसे सुख लगता है। पर वह अकेला रह रह ही नहीं सकता। बचपन से उसे परिवार कलत्र, मित्र बड़ा होने पर पत्नी, पति, बच्चे और कितने कितने लोग घेरे रहते हैं। वह निस्संग रह ही नहीं पाता, और सोचता रहता है कि निस्संगता ही अन्तिम सुख है। यही अकेलपापन, जिसे वह सुख की कुंजी मानता है, उसके दुख की जड़ है।" वह हमेशा प्रयत्न करता था। कि अपनी पुरानी पहचान मिट जाये इसके लिए उसने देवीसेन, सदानंद वाला-कुकर, महादेव शर्मा और अशुतोष पटेल जैसे नाम धारण कर देश बदलकर घुमने लगा था। किन्तु उसकी पहचान मिट नहीं पा रही थी। "वह बेचारा लापता व्यक्ति एक अदना सा छोटा सा इन्सान अरविंद। उसकी एक अपनी पहचान थी। उसे वह मिटाने में लगा था। जितना वह मिटाने जाता, उतना ही अपनी करनी से ही उसी में उलझते जाता। वह अपने आपसे भागना चाहता था। जंगलों में, समुद्र किनारे देश में, विदेश में कहीं उसे शक्ति नहीं थी।" 2

अन्तः वह हिमालय के प्रान्त में शिवालिक के नाम से वृत्ति कर रहा था पर वहाँ भी उसे घेन नहीं मिला। विनीता के कारण वह अपने घर आ लौट गया। "अरविंद अपने घर लौट गया। सब लोग चकित हुए। यहाँ तक कि उसकी सौतेली माँ, जिससे चिढ़कर वह घर छोड़कर भागा था उसे पहले तो अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। बाद में उसी

मे भारती उतारी । उसे प्रणाम करने के लिए धर के छोटे बच्चों से कहा । मिठाई मंगवाई । ज्वन किया गया ।¹ बाद में विनीता बच्चों से कहती है कि अरविंद पर कभी गुस्सा मत करना । "यह छोटी सी बात नहीं" है । अलगाव यही से शुरू होता है । स्नेह की कमी अजनबीपन की शुरुवात है ।²

इस प्रकार इन दो "क्वोर" और "लापता" उपन्यासों के माध्यम से डा० माधवे ने युवमानस का मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के धरातल पर चित्रण किया है । दोनों उपन्यासों में अंतोष की भावना छोटे-छोटे पारिवारिक छोट्टाकशीसे शुरू होती है किन्तु उसका प्रभाव युवा मानस पर गहरी छाप छोड़ देता है । जिसके फलस्वरूप समाज में अकेलापन, अजनबीपन और अलगावपन घनघन लग जाते हैं जो कि समाज के लिए दीर्घकालीन हानी है । इस प्रकार युवा वर्ग के प्रति समाज में स्नेह, सहानुभूति देने की आवश्यकता पर डा० माधवे बल देते हैं ।

2.5. समाज और राजनीति में फैली अनेकता :

वर्तमान युग में सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में सेवा भाव का दृष्टिकोण कुम्भट लुप्त होते जा रहा है । समाज में व्याप्त पाश्चात्य उपभोगता संस्कृति ही शायद इसका एक प्रमुख कारण हो सकता है । उपभोगता संस्कृति भारत जैसे विकसित देशों में अर्थाभाव की परिस्थिति को उत्पन्न कर सकती है, क्योंकि समाज के सभी वर्ग अधिक सुविधाभोगी तथा सुखभोगी बहोना चाहते हैं । इसके लिए धन की आवश्यकता होती होती है । धन तो समाज के सभी वर्गों के पास रहता नहीं । ऐसे

1. लापता - पृ. 130

2. लापता - पृ. 132

परिस्थितियों में कुछ अन्य मार्गों से धन कमाने की विचार उठ उठा होता है । फलतः समाज में अनैतिकता , बेइमानी और भ्रष्टाचार जैसे बुरे मूल्यों का पनपना शुरू हो जाता है ।

वस्तुतः समाज में अनैतिकता बेइमानी और भ्रष्टाचार आदि अन्याय पूर्ण मूल्यों पर विकास क्रमशः होता है । जैसे जैसे समाज में आर्थिक संकट अधिक होने लगता है जैसे जैसे इन बुरे तत्वों का विकास होने लगता है । इस प्रकार जल्दी ही समाज के सभी क्षेत्रों में ऐसे लक्षण व्याप्त हो जाते हैं । समाज में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनका कांक्षित विकास एवं सेवाभाव का माना जाता है जैसे शिक्षा संस्थाएँ, अस्पताल आदि ऐसे क्षेत्रों में भी वर्तमान परिस्थितियों में भ्रष्टाचार जैसे बुरे लक्षण अधिक हो रहे हैं । यहाँ पर भी अजकल "सेवा" का "भाव" माँगा जा रहा है, सीधे नहीं तो छपके से ।

इस प्रकार समाज के अनेक क्षेत्रों में बुरे मूल्यों का विकास हो रहा है । इतना ही नहीं राजनीतिक क्षेत्र में भी इस प्रकार के लक्षण दिखाई दे रहे हैं । वास्तव्य समाज में ऐसे इन बुरे मूल्यों का जड़ राजनैतिक क्षेत्र ही है । राजनीतिक नेताओं के कारण ही भ्रष्टाचार आदि बुरे लक्षणों का विस्तार हो रहा है । "धन" और भाई भतिजावाद के व्यामोह में नेता लोग अपना स्तर तथा देश का स्तर दोनों को गिरा रहे हैं ।

2.5.1. "अखि मेरी, बाकी उनका" उपन्यास में समाज और राजनीति में

फैली अनैतिकता का चित्रण :

डा० प्रभाकर माचवे ने अपने अनेक उपन्यासों में भ्रष्टाचारी, बेइमानी और अन्यायी पूँजीपतियों, जमींदारों , मिल्-मालिकों तथा नेताओं का चित्रण किया है । "अखि मेरी, बाकी उनका" नामक अपने

उपन्यास में विरोध; समाज में व्याप्त बेधमानी तथा झूठाचार का यथार्थ चित्रण करते हुए राजनैतिक क्षेत्र में रहे सर्वोदयी, साम्यवादी, समाजवादी काग्रित दक्षिण पंथी, मुस्लिम तथा पारसी विचार धाराओं से संबंधित नेताओं तथा उनके महिला सहकर्मियों का जल लेखा जोखा प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। इन राजनैतिक लोगों की सोछेपन, स्वाभिमता आदि लक्षणों का पदफिफास किया गया है।

डॉ० प्रभाकर माधवे ने "आखिरी मेरी, आकी उनका" उपन्यास में कथा प्रस्तुतिकरण में एक नयी और वैदिक्य पूर्ण शैली का चुनाव किया है। इस उपन्यास में सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों के गतिविधियों का विवर्ण वीक्षण करने के लिए "दास" और राजा नामक पात्रों की कल्पना की गई है। दास झूठा है वह चार वर्ष के बाद मरने वाला है ऐसा उसके विवास-पात्र उद्योक्तियी ने भक्तिव्यापी बतलायी थी। और राजा रामराज है जो हमेशा दास के साथ रहता है। दोनों मिल कर इन चार वर्षों तक सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों को देखते जाते हैं। वास्तव में कई योजनाओं से गुजरते हुए आखिर दास ने तय किया कि वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करेगा - "चार बरस बाद मौत। इस सन्चार्य का सामना कैसे किया जाये ? और मेरे उद्यान से एक बात तो अपने हाथ में है, उसी पर अम्न दिया जाये, जो जो सामने छिटत हो रहा है, वह "केवल" देखा जाये, "सुना" जाये, छुँचा, चूसा हुआ भी जाये।" वह आगे कहता है कि "मुझे कोई ऐसी शक्ति प्राप्त हो गई है कि मैं वह सब देख सकता हूँ। जो सामान्यतः भौतिक आँखें देख नहीं पाती। इसी से मैं यह सब लिखने बैठा।" 2

1. आखिरी मेरी आकी उनका - पृ० 33

2. -वही- पृ० 34

इस प्रकार दास और राजा ५ यमराज ५ ने अतीन्द्रिय शक्ति के माध्यम से समाज में कैसीकैसी छटनाएं छट रही हैं और जनता की प्रक्रिया कैसी है जादि को देखकर उसका यथार्थ चित्रण कि या है। जैसे पहले ही कहा गया है कि जो कुछ देखा गया है उसी का यथातथ्य चित्रण किया गया है ।

अतः सबसे पहले एक ऐसा दृश्य देखा जाता है कि बन्द बरवाजे के आगे एक बिछड़े में सुन्दर बच्चा है जो वस्तुतः अवैध सन्तान है । इस रिश्वत को देख कर वहाँ को भीठ तरह तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करती है । दास को उनके साथ यमराज कहते हैं - "देखो, यह है जन्म । न नाम है न पता । न माँ, न बाप । न भाई, न बहिन । शून्य अस्तित्व । इस समय इसे कहाँ कहाँ लास है किसी संबंध का । किसी और बात का । यह तो फलदम ज्ञातीत है । सब मायामोह से परे । सब बंधनों से परे । सिर्फ भूख है और ज्वास है । नौद है और लुब्धा की वास है ।" वहाँ से उस बच्चे को ले जाने के लिए भीठ में लड़ाई होती है । अंततः उस बच्चे को एक हँसई नम उठाकर ले जाती है । इस छटना पर दुनिया में होने वाले तर्क वितर्क वाद-विवाद के बारे में भी माधवे जी ने दास और राजा के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है । भीठ में उस बच्चे की धर्मांतरण होने की बात चलती है इस पर हिन्दूवादी और अन्यो के बीच लीखी छठें होती है । इस वाद विवाद में एक ईश्वर उपासित हिन्दू धर्म पर प्रहार करता हुआ कहता है - "हिन्दू बने रहने से क्या लाभ है ? यदि मैं नीच वर्ण का हिन्दू हूँ - और राजनीति में नहीं हूँ - तो मुझे उच्च पद पर

पहुँचने में जितना समय और शक्ति लगेगी वह सब धर्मातिर से नहीं लगती । जादू से जैसे मेरा नाम जन्म से जोन हो जाने से मैं सब तरह की सामाजिक सुविधाओं के लिए अधिकारी हो जाता हूँ । जन्म भी या जन्म मेहतर के साथ आप आराम से बैठकर चाय नहीं पीयेगी न खाना खायेगी । पर वही आप जोन साहब होते ही अपना दर्जा आपकी हेसियत, आपका स्तम्भा, आपका सामाजिक स्थान उँचा हो जाता है । यह कथा मजाक है ? वही बात जन्म से जान मुहम्मद या जफरुल्ला हो जाने में है ।¹

इस प्रकार समाज में अदृश्य रूप से पैदा होने वाले बच्चों की स्थिति और धर्मातिरण के कार्य पर समाज में व्याप्त धारणाओं को माचवे जी ने यथा तथ्य प्रस्तुत किया है ।

जन्म और धर्मातिरण की समस्याओं के बाद माचवे जी इस उपन्यास में पाठशाला, कॉलेज, दफ्तर, अस्पताल आदि जगहों पर दृष्टि डाला है और वहाँ की परिस्थिति का आकलन प्रस्तुत किया है । जब वे पहले दास और राजा जिस स्कूल को देखने जाते हैं, उस स्कूल के बोर्ड पर माचवे जी अध्ययन करते हुए लिखते हैं, कि "मेन्गेट के उपर "दानवीर सेठ अमुकम्मा अमुकवाति, अमुक धर्म प्राथमिक तथा माध्यमिक पाठशाला, बोर्ड लगा था जिसका रंग उज्ज्वल चुका था । वहाँ भी कंबुसो से लिखे गये थे ।"² और वहाँ की पढ़ाई की बारे में डा० माचवे जी लिखते हैं - "मास्टर नामक प्राणी कोई सवाल या गणित "ब्लैक बोर्ड पर लिखकर खुद कुर्सी में ऊँसे या उपन्यास पढ़ते बैठे हैं । बीच बीच में बच्चों का शोर बढ़ जाने पर ठंडा पीटकर बच्चों में अनुशासन पैदा करने का ठर या दहलात पैदा करते

1. अखि मेरी बाकी उनका - पृ. 38

2. -वही- पृ. 40

हुए ।¹ यह स्थिति केवल अमृक प्रान्त और अमृक स्कूलकी नहीं है । यह देश के सारे प्रान्तों की स्थिति है ।

स्कूल के बाहर दो छोटे बच्चे हैं - एक घाय की दुकान में काम करता है तो दूसरा जुता पालिश करता है । ये बच्चे भी स्कूल जाना चाहते हैं किन्तु धनाभाव से नौकरी करने के लिए विवश हैं । फिर भी जुता पालिश करने वाला बच्चा अपने साथी से कहता है कि - "पढ़ लिखकर भी क्या करेंगे ? बेकार ठोलते फेंकेंगे । काम कहाँ है ? हम तो बच्चे हैं । आजाद हैं । कमा रहे हैं ।"² इस प्रकार मजदूर बच्चों के माध्यम से माधवे ने आज की बेरोजगारी समस्या पर दृष्टि डाली है ।

दास और राजा स्कूल के पर्याप्त कालेज की स्थिति पर दृष्टि डालते हुए वहाँ की स्थिति का उजागर करते हैं । वहाँ की स्टाफ रूम में अफामरु बातें, चल रही थी । "क्या देखा, उठा पटक, जोड़ तोड़ कुछ टोखा किकरण, गिन्दार-दुराई, यही सब उन नष्ट मानवों का उपजीव्य था ।"³ उदाहरण के लिए वहाँ पर चल रही बातचीत का एक कथन जो इस प्रकार है - "ग्राहक कालेज में क्या एजीटेशन ? घर बेठा देगें । हस्तासा मुँह लेकर बच्चों बैठ जावों । सिटी के एमए बहुतरे मिलते हैं । अब तो पी.एच.डी भी गली गली मारे मारे फिर रहे हैं । जिस गति से डिग्रियाँ बँट रही हैं, उस गति से नौकरियाँ तो नहीं बढ़ रही हैं ।"⁴ इसके बाद ठाक कालेज में होने वाला लापरवाही तथा समय का पावर्दी न रहने की बात को भी उठाते हैं । अस्पताल की चर्चा करते हुए वहाँ पर होने वाले अठार पर दुःख व्यक्त करते हैं । "अस्पताल में दवाइयों के नाम पर भ्रष्टाचार भरी दवाइयाँ बेची जा रही थी । अस्पताल में "रक्त"

1. लखि मेरी आँकी उनका - पृ. 41

2. -वही- पृ. 42

3. -वही- पृ. 44

4. -वही- पृ. 43

की आवश्यकता मरीज को होने पर पेन अपरेशन के समय कह दिया जाता था - यहाँ इस तरह का "रक्त" जो आपके काम का हो, नहीं है। फिर गिड़गिड़ाता, धिधियाता मरीज उसी नर्स या अस्टिंट के पास चुपके से छुता और कहाँ पाया जाएगा ? वह चुपके से रास्ता बताता है - फ्लाफ्ला बौंक बौंक या सेटर से ज्यादा दाम देकर भिगेगा। और यह जानकारी देने के लिए इतने भुके चाहिए।" इस प्रकार वहाँ पर सब जगह कमीशन था। जिस देश में देश को भगवान मानते हैं उसी के भींदर सब अस्पताल में यह झूटाचार नीति बन रही है। यह सामाजिक सेवाओं पर बहुत बड़ा आघात है।

इस प्रकार दास और राजा के माध्यम से समाज के कुछ संस्थाओं का सर्वेक्षण करते हुए उपन्यासकार कण्ठत करना चाहते हैं कि कहीं पर भी सब न्याय, धर्म, सेवाभाव नहीं रह गया है। सब समाज में चारों ओर अन्याय, अधर्म, स्वाधु, बेहमानी और झूटाचार फैला है। इस का यथार्थ चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है और झूटाचार फैला है। इस का यथार्थ चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है। जामे इस उपन्यास में अनेक विचारधाराओं से संबंधित नेताओं का स्वरूप प्रस्तुत किया है जिसमें उनका सोझापन, स्वार्थमरता, झूटाचार और बेहमानी मुख्य रूप से उजागर हुए हैं।

दास ने राजनैतिक क्षेत्र की ओर देखा तो "वहाँ भी उसे जनता का नेताओं द्वारा शोषण और जनता द्वारा दोगी बाबूओं, स्वामियों, महन्तों, महर्षियों, स्वयं प्रचारित भगवानों और उनकी ही प्रतिष्ठा, देखियों, माताजियों, ब्रह्मचारिणियों की पूजा जो इस तक के तक ही नहीं करती दोगी सज्जनों, गांधीवादी, कुर्बाना कम्युनिस्ट, सामाजिक समाजवाद मुस्लिम प्रेमी हिन्दूत्व निष्ठ, दूधिते, अल्पसंख्यक नेताओं और सुबुद्धि

वादी, व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी नेताओं को भी इस बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण न्योछावर हो रही है। जनता की इस भक्ति भावना का वास के फलते इन कर्णधारों द्वारा इस देश को किशोर से जाया जा रहा है, उसके बदलाव का वास्तविक स्वरूप क्या है? इन नेताओं के गुण दुर्गुण जो केवल एक व्यक्ति तक सीमित नहीं रह गये हैं - ये सब बुराईयाँ जमा हो कर "टाइप" बन चुकी है।¹ इन्हीं "टाइप" नेताओं तथा उनके महिला सहकर्मियों मित्रों का व्यवहार तत्त्व चित्र यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास के प्रथम खण्ड के अन्तर्गत नेताओं का चरित्र तथा दूसरे खण्ड में उनके महिला सहकर्मियों मित्रों का चरित्र उजागर किया गया है। सबसे पहले सर्वोदयी नेता दादा जी के चरित्र का उल्लेख किया गया है। इनका "नगर में मान था। पर सभी उनको एकदम प्रभाव शून्य और एक अक्षर की तरह जानते थे।"² यह नेता ठाकुर प्रताप सिंह को टटित न करने के लिए आलाकमान से दूरवाराह करता है। ठाकुर प्रताप सिंह ने हरिजनों की छोपड़ियों को जलाया था। दादा जी ठाकुर सहाय का समर्थन बर्ताव करते हैं कि वह दादा जी के गोशाला के लिए एक झूत रकम दान में देने को तैयार है। दादा जी के पास गोशाला का कामकाज देख लेने वाला जर्बुत ने "गोशाला के आर्थिक महत्व पर शोध कार्य किया, छुपचाप उसे व्यवहारि जीवन में उतारा। कहाँ कहाँ यात्राएँ की गवालों, धोसियों, आरियों, गुजरों के बीच। उसे अपने शरीर की परवाह नहीं थी। तब दादा जी ने सतका लाभ उठाया। उसकी

1. प्रकर 1, करवी 1985, में दुर्गा बाबू की "अर्थ मेरी बाकी उनका"

पर समीक्षा - पृ. 18

2. अर्थ मेरी बाकी उनका - पृ. 50

एक पण्डितलिपि ली, अपने नाम से छाप दी ।¹ इस पर जब जाम्बुवत कड़ा विरोध किया तो दादा जी उस पर लठ्ठन लगाया कि उसका चरित्र ठीक नहीं है । उसका सेहानी से संबंध है । इस प्रकार "उस डेबुनियाद की बात को मिथ्या को सत्य सिद्ध करके दादा जी ने अपने प्रतिस्पर्धी जाम्बुवत को वहाँ से भगा दिया था ।"² यह सर्वोदयी नेता अपना वसीयत लिखते समय भी सब कुछ छुट और ढोंग की शैली में बड़े लोगों का मज़ा करते हुए लिखता है - "मेरे बाद मेरी रचनाओं को जो अधिकांश लघुकाशित है - संस्था को मुफ्त दिया जाये । मेरी निम्न की वस्तुएँ बहुत कम है । कुछ किताबें जमा है । वे सर्वोदय संघ की लाइब्रेरी में दी जाये । और जो भी पैसे मेरे नाम से जमा है - समय समय पर मित्रों ने कृपा की है - वे सब एक ट्रस्ट के रूप में जमा करके उसमें से जो व्याज मिले, जिसी हरिजन कन्या की शिक्षा के लिए दं । दिया जाये । वस्तुतः मे जाफूजी का समन्वय सेकर रहा, और मैं कोई भाया नहीं बटोरी । मेरे नाम से कोई संस्था न बनाई जाये । न नेता किन्न, न शिक्षाकृति दूबत या प्रतिमा, कहीं लगाया जाये । न मेरी जीवनी लिखवाई जाये । न मेरे पत्र जमा करके छापे जाये । जब इस देश में गांधी जी का वादमय नहीं चिक्ता है, तो हमेंकोन फूला है जो १ मेरी वसीयत यही है कि सब सच बोलें, सब प्रेम से रहे । किन्नव में छु, न हो । वसति ।"³

इसी प्रकार दादा जी की अन्तेवासिनी कान्तिस्त्रैन भी उद्यम सर्वोदयी है । वह दिखावा करती है । उसका जीवन अत्यंत विज्ञासमूर्ण है । दास और राजा कान्तिस्त्रैन के पास आते हैं । उनके घर का वर्णन

1. दाहिं मेरी बाकी उनका - पृ. 54

2. -वही- पृ. 54

3. -वही- पृ. 56

करते हुए बताते है कि "जब हम कान्तिन की फर्शकी छोंपठीनुमा "काटेज" में पहुँचे तो वे एक बहुत कीमती कालीन पर खूबसूरत का आसन दिखाये, "परबदा चक्र" नामक चरखे पर घुमते जाते रही थी। "काटेज" उनके मकान का नाम था। केवल बाहर स्थापत्य की शोभा को छत बादि ऐसी रंगरंग बना दी गई थी, खासा सीमेंट काँकरीट का बंगला था। सुन्दर बागीचा चारों ओर था।¹ इस प्रकार प्रत्येक क्षण में वह दिखावे का प्रदर्शन करती थी। चाहे वह अन्तर्जातीय विवाह हो या उर्दू पढ़ाना हो सभी में तुष्टिकरण की नीति अपनाती थी।

दूसरे नेता है कम्युनिस्ट विचारधारा में खिचा रखने वाले कामरेड बिजलचन्द। उनके बारे में कहा जाता है कि "कामरेड बिजलचन्द जब कामरेड बन गए, उनकी खुद याद नहीं। न तो उन्होंने कभी लाली खाई, न जेल गये, न उन्हें "बण्डर ग्राउण्ड" जाना पड़ा, न उन्होंने किसी जुलूस का खुद कभी नेतृत्व किया, न कभी ऐसा कोई काम किया जिसका दूर दराज से भी "क्रांतिकारी कार्यक्रम" से सीधा संबंध माना जा सकता है। परन्तु उन्होंने हर ऐसी हँकलाबी हलचल, तहरीक और कलकले का पूरे दिल और दिमाग से फायदा उठाया।"² कामरेड बिजलचन्द उंची-उंची बातें करता था। मार्क्सवाद पर बहस करता था किन्तु "अपने व्यवितगत जीवन में अत्यन्त धटिया था। शहाब भी कर बीबी बच्चों को पीटता था। कर्ब लेता था तो कभी लोटाता नहीं था। फोटोग्राफी करने का बहाना करके नौजवान लड़कियों के पीछे धूमता था। उसे मित्रों से खिचास-धात करने में कुछ भी बुरा नहीं लगता था।"³

1. अखि मेरी बाकी उनका - पृ. 98

2. -वही-

पृ. 56-57

कामरेड विज्ञानपद की राजनैतिक सह प्रवासिनी बिलकिस जो पति द्वारा परित्यक्ता मुस्लिम महिला है। कालेज में अंग्रेजी साहित्य पढ़ती है। साम्यवाद की दुहाई देने वाली बिलकिस कामन सिविल कोड समान नागरिक संहिता पर पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते हुए कहती है कि - "परिवारों के शादियों के, रिवाजों के गठन अलग अलग के है। आदर्श तो यही होता कि सबके लिए कानून एक सा होता। पर दुभाग्य सेहमारी सांस्कृतिक इकाइयाँ अभी इतनी उदार नहीं हुई है। सब आदि-वासियों को एक से कपड़े पहनाने की बात जैसे जबरदस्ती लगेगी, जैसे ही यह कुछ है।" इस पर डा० माधवे जी ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है कि - "दूसरों को भौतिकवाद और अंधवाद का उपदेश देना या उससे सारे इतिहास की गति को समझाना एक बात है और स्वयम् निज के जीवन में समस्याओं से उसी सिद्धांत के सहारे जूझना दूसरी।" 2

इस प्रकार के कुर्बाना व्यक्तित्व वाले साम्यवादी रहने के कारण ही शायद माधवे जी ने प्रश्न उठाया है कि "कम्युनिज्म ठेठ तो क्यों में एक भी आदर्श राज्य बना नहीं पाया। क्यों?" 3

तीसरे नेता है प्रजा समाजवादी पार्टी के भाई काले। यह बातों में समाजवाद की व्याख्यान करते हैं। कहता है कि "हमें समावाद को भारतीय संदर्भ में उतारना था। उसे भारतीय जामा पहनाना था। गांधी जी की बहिर्सा से उसे अनुप्राणित करना था।" 4 किन्तु उनका व्यावहारिक रूप अलग है। वह उद्योगपतियों का सहयोगी है। वह उनसे फ़ैक्ट में लेन-देन

1. अखि मेरी बाकी उनका - पृ. 114

2. -वही-

3. -वही- पृ. 63

4. -वही- पृ. 65

किया करता है । उद्योगपतियों का वह काम करता है और उनसे उसका उत्तम मोबाक़्का उसे मिलता है ।

"भाई काले की मित्र किया ताई राख्द सेवा का से बहुत बचपन से जुड़ी हुई थी । साने गुन्जी का साहित्य पढ़कर वह समाजवादी दल की ओर आकृष्ट हुई थी । x x x किया ताई दिल की मरीज थी । उनका दिल जैसे तो अगस्त सन् बयालीस के समय ही टूट चुका था, यद्यपि वे उस समय बहुत छोटी थी । पर वे ऐसी बढ़ा चढ़ाकर बातें करती थी कि मानों सारा "भारत छोड़ो आन्दोलन" उन्हीं के इशारे पर हुआ था । जैसा कि ऐसे कुँठित लोगों का हो जाता है, वे बड़ बड़ बातें करती थी ।" जब दास और राजा उनके घर पर पत्रकार के रूप में उनका सप्ताहिकार लेने जाते हैं तो उनसे किया ताई कहती है - "देखिए मिस्टर दास कौन सी चीज रहती है । कायमी तौर पर । सब बदल जाता है । मुझे ही देखिए न, कालेज में जब पढ़ती थी, तब कितनी सुन्दर लगती थी आप मुझ पर लिखे तो यही तस्वीरी रूप का फोटो ब्रूँ छापिए - अक़्कय भेनि कुछ "कापी" भी बना रखी है, उस फोटो की । तो समाज वादी आन्दोलन कोरेह तो बहुत स्थायी चीज़ें नहीं होती । वे बदलती ही जाती हैं ।" इस प्रकार के नेता कोरे समाजवादी की आँठ में अपने जीवन को सुविधाभोगी बनाते जाते हैं ।

चौथे नेता है सुविधाभोगी, स्वार्थी और काग्रेस पार्टी के लिए सबसे ज्यादा चंदा देने वाले गोपीनाथ गुप्ता जी । वे ऐसे आदमी थे जिनका मत था कि दास बहुत पक्का न था । "यानी जैसा सिंहासन हो, जैसी कुर्सी पर सरता हो उनके अनुसार इनका मत और कि दास "जलवायु कुबकूट ११६६र कौकू की तरह बखल सकता था । x x x गुप्ता जी इस

1: अखि मेरी बाकी उनका - पृ० 119-120

2: - वही-

पृ० 125

समय बहुत प्रभावशाली थे। कारण वे सत्ताधारी पार्टी के कोषाध्यक्ष के भाई थे। और नगर में उनकी अच्छी खासी प्रतिक्रिया थी। स्वयं का व्यापार था, लंबा चौड़ा। राजनीति तो मूल्य एक हाथी थी। उनकी भाषा में "एक खेल है।" ऐसे व्यक्ति अनेक सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं में अपने व्यक्तियों के लिए सिफारिश भेज देते थे। लोग इनके नाम का फायदा उठाते थे। "फिर गुप्ता जी का नाम लेकर अखबार वाले बदमासी कराते थे। अखबारवालों का मुँह बन्द करने के लिए दूसरी तरह का प्रणाली... एक स्लिमलिमा शुरू हो जाता है, एक छूट से बचने लगे छुट्टों का सहारा लेने का।" 2

"दानवीय सेठानी सीतादेवी, गोपीनाथ गुप्त जी की फोटोसिन थी। गुप्ता जी की वह बड़ी प्रशंसिका थी। इसलिए गोपीनाथ जी की जो भी राजनीति थी, वह उन्हें प्रिय थी।" 3 सेठानी सीता देवी जी जो कहती थी बिल्कुल उसके विपरीत व्यवहार किया करती थी। "सीता देवी का धरैलू जीवन केसा था ? ठीक जो बाहर प्रचार करती थी, उसके विपरीत। बाहर प्रचार करती थी सादगी का। घर में वे बहुत बान ठन्कर, लज संवरकर, गहने पहनकर, नर्त से नर्त फ़ैशन से लैस रहती। बाहर वे प्रचार करती थी कि "छोटा परिवार" सुखी परिवार" किन्तु उनके अपने छह बच्चे थे - चार पुत्र, दो पुत्रियाँ, बाहर वे कहती थी, मनुष्य को कोई व्यसन नहीं होना चाहिए। उनके पति सिगरेट और शराब के बिना नहीं रह पाते थे। स्वयं हर मिन्ट पान मुँह में दबाये रहती।

1. बखि मेरी बाकी उम्मा - पृ. 69

2. -वही- पृ. 73

3. -वही- पृ. 132

बाहर ये कहती गुरुकुल और आश्रम पद्धति की मातृभाषा माध्यम की शिक्षा ही श्रेष्ठ है। घर में सब बच्चे कान्फेस्ट में पढ़ने जाते थे। इस टॉगीपन के कारण नेताओं की बात का विश्वास केवल ये ही करना चाहते थे, या ये दिखाते थे कि विश्वास कर रहे थे, जिन्हें उन नेताओं से मतलब होता है।¹ ऐसी नेवाहन का एक मात्र लक्ष्य था अपनी पार्टी में सर्वोपरी होना। उसके लिए वे आवश्यक योग्यताएं अपने आप में विकसित कर रही थी। उनके लिए जनता की सेवा एक फाशन मात्र था।

प्रायः व्यक्ति है दक्षिण पंथी विचारधारा वाले पं० कृष्णा जी शुक्ला जी। "पंडित कृष्णा जी ने चोटी रखी थी। चंदन लगाते थे। छोटी कुर्ता पहनते थे। ताल ओढ़लेते थे सट्टियों में। शाकाहारी थे। मिठाई बहुत पसंद थी। चाय नहीं पीते थे। शादी ब्याह के मामले में बहुत सनातनी थे। अपने आपको कट्टर हिन्दू कहते थे। धार्मिक बातें करने में उनका कोई सानी नहीं था।"² ऐसे कट्टरवादी के अपने कुछ मुन्य थे। वह सभी को अपने द्वारा अनुसरित मुन्यों को ही अनुसरण करने के लिए कहते थे - "शुक्ला जी अपने परते सारी दुनिया को नापते थे। अगर उनके घर में पर्दा प्रथा है, तो वह सारे समाज और राष्ट्र के लिए वे उपयोगी मानते थे। यदि उनके घर में छुआछूत बरती जाती है, तो वही सारे समाज और राष्ट्र के लिए हितायक वे मानकर चलते थे। यदि उनकी भाषा संबंधी धारणा हिंदी राष्ट्रभाषा सबके लिए साम्य न हो, तो वे ऐसा मानने वालों को देशद्रोही कहते थे।"³

1. बांछी मेरी बाकी उनका - पृ० 133

2. -वही- पृ० 73

3. -वही- पृ० 77

पठित कृष्णा जी श्रुता जी की फोटोसिन शशी वचन से ही समिति में सक्रिय कार्यकर्त्री थी । वह लंदन के गुरुजी के आदर्शों पर चलती थी । क गुरु जी ने यही सिखाया था कि "हिन्दू जाति को आत्मरक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाना चाहिए । नहीं तो वह नष्ट हो जायगी । हिन्दू स्त्रियों ने ही संस्कृति की रक्षा अनदि काल से की है । सती, सावित्री, सीता के आदर्श सामने रखना है । कुम्भ्या, सुग्रीष्णी, सुमाता बनना है ।" शशी इस लंदन के एक कार्यकर्ता के साथ प्रेम करने लगी, जिसकी पत्नी पत्नी और उससे बच्चे भी थे । शशी ने उस कार्यकर्ता के साथ गंछर्व विवाह कर लिया था ।

उठे व्यवित है फुवोकेत सेयद अनवर हुसैन । वे अपने बापकी "माठन मुस्लिम" मानते थे । राजनीतिक में रुचि होने के कारण जो पार्टी सत्ता में जाती है उसके साथ जुड़ जाते थे । पूरतनी सम्पत्ति थी । "सब रक्षा रक्षा नजर आता था । मगर कुम्भा मन में दुखी रहता था । उन्हें लगता था कि मुस्लिम होने की वजह से उनके साथ ठीक सलूक नहीं किया जा रहा है ।" सेयद अनवर हुसैन का इसलिए बज्जत थी कि "कुछ वोट" इनके हाथ में थे । जरना उन्हें कोई न गाँव में, न कस्बे में, न शहर में, कहीं फुलता नहीं था इसलिए जब वह अपना सारा गुस्सा बेकार की बातों पर उतारते थे । हिंदी के खिलाफ ॥ स्व० ॥ फिराक अ गोरखपुरी की भावनाएं दुहराते । मोरा जी ने जैसे उर्दू को अलग भाषा मानने से इनकार किया और नेपाली को भारत की भाषा नहीं माना यह सब कहते ।" इस प्रकार वे इस जनतन्त्रिक व्यवस्था में संतुष्ट नहीं थे । यह समस्या उनके मन में एक ही नग्निय का रूप धारण कर रही थी ।

1. शशि मेरी बाकी उम्मा - पृ: 142

2. -वही- पृ: 81

3. -वही- पृ: 86

सैयद अनवर हुसैन की हुस्ना कभी मित्र बुझा करती थी । ये कालेज में पढ़ाती है । "हुस्ना का यह विश्वास है कि मुस्लिम इस भारत देश में अक्षुण्णित है, महफूज नहीं है । पता नहीं कौन कोई उठकर उसको मार पीठ दे, क्या न कर दें ? यह ठर उसे हमेशा लगा रहता है । इसलिए वह अपने साथ में एक अस्त्र, एक पेनी कुवरी नुमा अस्त्र लेकर चलती है । यह ठीक है कि आज तक उसका इस्तेमाल करने का मौका नहीं आया था । सदा रखती थी । इस सारे अंतजाम के बाकबुद खेतान की तरह हिंसा देश में फैलती ही जा रही थी । सो उनकी पहली दिलचस्पी मुस्लिम कोमीयत में है ।" हुस्ना के पास जाकर मिलने के बाद दास कहता है कि "हुस्ना के पास जाकर हमें एक नई बात का ज्ञान हुआ है । भीठ में भी अकेला, बहुसंख्यकों से घिरा अल्पसंख्यक कैसा असहाय है ? क्या कोई कौरवशा उसके इस बेगानेपन को पाटने की कोई गई ? कौन करता ?" 2

सातवें व्यक्ति पारसी के मिस्टर रुस्तम सोपवाबखाला । "रुस्तम सोपवाबखाला एक ऐसी जहानियत का नाम है, जो आप देश में एक खास तरह का नव धनादय का पाल रहा है । उनके प्रिय अखबार है, उनके प्रिय लेखक है - देशी और विदेशी । उनके प्रिय आर्थिक सामाजिक प्रोग्राम है ।" 3 इनको संविधान पर विश्वास नहीं है । ये कहते हैं - "हमारा अन्तिम लक्ष्य अराजकवाद है । यानी गडबड़ी और फैलाना ।" 4

मिस दाखाला हिन्दुस्तान को अपना देश नहीं मानती थी । "भारत की एक भी बात उन्हें अच्छी नहीं लगती थी । यहाँ बहुत सी

1. बाकि मेरी बाकी उनका - पृ. 148

2. -वही- पृ. 154

3. -वही- पृ. 90

4. -वही- पृ. 90

पेचक संपत्ति थी । वह छोटना भी नहीं चाहती थी । विदेशी नागरिकता लेना नहीं चाहती थी । x x x उन्हें सभी वे लेखक ॥ अंगरेजी में अच्छे लगते , जो भारत की निन्दा करते थे ।*१ यह सोचती है कि उनके पारसी धर्म में कोई दखल अन्दाज कर रहे हैं । सभी अल्पसंख्यकों का "कॉमिनेट" और डिप्लोमेट ॥ विनोद ॥ हो रहा है ।

इस प्रकार समाज में सभी कर्गों के नेता तथा अन्य लोग अपने अपने दृष्टि से सुधारने की बात सोचते हैं । कोई भी समाज के बारे में कोई नहीं सोचता ।

3. निष्कर्ष :

डा० प्रभाकर माचवे सुप्रसिद्ध प्रयोगवादी कवि, उपन्यासकार एवं विचारक हैं । माचवे जी प्रायः किसी भी समस्या को संपूर्णता में देखने का प्रयास करते हैं । चाहे वह समस्या प्रमुख हो या गौण । प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए, उसके विश्लेषण के लिए वे उसके अतीत को देखना चाहते हैं । इसका परिचय उन्होंने अपने उपन्यासों में दिया है । नारी जीवन के संबंध में उन्होंने अपने उपन्यासों में जो किया है उसमें भावात्मक पक्ष से ज्यादा समस्या का बौद्धिक पक्ष प्रबल रूप में उभर कर सामने आया है । नारी के जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक समस्या को उन्होंने अपने बुद्धि की कसौटी पर कसे देखा है । हर समस्या का कारण क्या है ? समस्या का मूल कहाँ से है, और समस्या की मूल बात कैसे होती है आदि प्रश्नों के संबंध में उन्होंने अतीत के सहारे गहन अध्ययन करे विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है । ऐसे उपन्यासकार गिने-बुने ही हैं ।

वस्तुतः नारी की जितनी भी समस्याएँ हैं - प्रेम, दहेज, विवाह परित्यक्ता कलात्कार, सती तलाक़ भरप-पोषण, कन्याओं की बिक्री, पुरुष प्रधान समाज में समान अधिकार आदि को उन्होंने सिर्फ एक उपन्यासकार के रूप में उनका भावात्मक ढंग से चित्रण ही नहीं किया है बल्कि इन समस्याओं के पीछे स्थित वस्तुस्थितियों का भी पता लगाने का प्रयास किया है। इसके लिए उन्होंने सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख किया है। और साथ में वर्तमान परिस्थितियों में इन समस्याओं का जल बयों नहीं हो पा रहा है १ कानून एवं सरकार की सीमाएँ बयां है २ आदि महत्वपूर्ण मुद्दों पर एक चिंतक व विचारक के रूप में गंभीरता के साथ सोचा है। इसी प्रकार शोषित पीड़ित तथा दमित नारी के हृदय में भी झाँक कर उसकी मानसिक स्थिति से तथा उसकी वेदना से पाठक को अवगत कराया है। इसके लिए उन्होंने ग्रामीण शहरी, शिक्षित, अशिक्षित कामकाजी गृहिणी देशी विदेशी, सम्पन्न विपन्न और बालिका, युवती तथा कुछ महिला आदि का सामाजिक आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का चित्रण किया है जिसमें सफलता भी, प्राप्त हुई है। इस प्रकार माचदे जी ने पाठक के सामने नारी जीवन का यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया है।

"रंगभेद" समस्या के संदर्भ में माचदे जी ने आत्यंत विकसित देश माने जाने वाला अमरीका की पोल खोली है। पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति का शोषण अनेक प्रकार से हो रहा है किन्तु सभ्यता के धरम तब पहुँचने वाले अमरीका में मानवता को हो शर्मिंदा करने वाली "रंगभेद" नीति का पालन करना सभ्य समाज पर एक क्लंक है। इस समस्या का उल्लेख किया है और उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि रंगभेद समस्या और अस्पृश्य समस्या में मूलभूत अंतर दिखाई नहीं देता।

दोनों ही मानवता को कर्तव्य करने वाले हैं और दोनों को इस संसार से जल्द मिटा देना चाहिए। रंगभेद समस्या को नीग्रो मायक "जो" के जीवन के माध्यम से चित्रित किया है साथ में बीच बीच में मुस्लिम के माध्यम से भारत की दलित समस्या पर प्रकाश डाला है। डा० माधवे का "जो" उपन्यास अमरीकी रंगभेद समस्या को जानने, समझने में सहायक कृति सिद्ध होती है।

पीढ़ियों के अन्तराल के कारण आने वाली समस्याओं का चित्रण डा० माधवे ने अपने उपन्यास "तीस-चालीस-पचास" के माध्यम से किया है। इस उपन्यास में पुरानी पीढ़ी, नई पीढ़ी तथा इन दोनों की बीच की पीढ़ी का सुन्दर चित्रण किया गया है। पुरानी पीढ़ी के लोगों का कहना है कि अपने क़िस्म, आस्था, मुख्य और मान्यताओं पर अपनी भावी पीढ़ी को किन्तु हर नयी पीढ़ी अपने पुरानी पीढ़ी के मान्यताओं और क़िस्मों को ठुकरा देती है। यह एक लम्बी परम्परा है। हर पुरानी पीढ़ी के साथ उसकी अगली पीढ़ी की यही प्रतिक्रिया होती है। पुरानी पीढ़ी ने आदर्श सुधार आदि मान्यताओं के साथ बचपना मार्ग चुन लिया है और नई पीढ़ी अराजकतावाद में पड़ गयी है और न कोई चिन्ता है और न दुःख। किन्तु इन दोनों के बीच में जो पीढ़ी है वह न किसी दिशा को अपनाती है और न किसी को ठोड़ती है। वह दृढ़ता पूर्वक कोई निर्णय नहीं लेता। इस बीच की पीढ़ी का जीवन अस्थिर और त्रिशंकु के समान है। डा० माधवे का कहना है कि यह पीढ़ियों का अन्तराल हमेशा चलता रहेगा। इस में कोई परिवर्तन कभी नहीं आयेगा।

डा० प्रभाकर माधवे ने अपने उपन्यासों में विशेषतः "विहोर" और "लापता" में युवावर्ग के मानसिक समस्याओं के स्तर में विचार किया है। इन उपन्यासों में युवकों में बढ़ी हुई आत्मम्युनता की भावना, अलगापन

बाद के बारे में उल्लेख किया है। समाज की वर्तमान परिस्थितियों में युष्क दिग्भ्रामित जैसा हो गया है। न उसके लिए एक राह है और न ही दिशा। दोनों उपन्यासों में परिवार के प्रति तथा समाज के प्रति युष्कों में अंतोष और प्रतिकार की भावना तब जाग उठती है जब घर में छोटे-छोटे किस्मों पर इन पर गुस्सा किया जाने लगता है। इसी कारण ये युष्क घर में रहना पसंद नहीं करते और कहीं जाना चाहते हैं किन्तु कहाँ जाए इनके लिए कोई दिशा नहीं है। "क्वोर" उपन्यास का क्वोर अवस्था के कारण जैसे ही घर में अपमान सहन करते हुए रहता है किन्तु "लापता" का अरविंद बिना किसी को कहे घर से निकल जाता है। अरविंद देश के अनेक प्रान्तों का भ्रमण करता है, विदेशों में जाकर रहता फिर भी अपनी पहचान मिटाने की कोशिश में असफल होता है। और अवैधानिक को महसूस करता है। अंततः वह घर लौट आता है। वह घर से इसलिए चला गया था कि घर में उसे स्नेह, प्यार, ममता और सहानुभूति नहीं मिलती है। इस कारण उसका किड़ोही मन ने घर छोड़ने का निर्णय लिया था। दूसरी ओर "क्वोर" में क्वोर का मन घर में, तथा समाज में अपने प्रति होने वाले अपमान को सहन करने में असमर्थ होता तो तब वह किड़ोही हो गया जिसकी पराकाष्ठा उस जलाने में हुई।

इस प्रकार ७१० माघसे ने वर्तमान परिस्थितियों के परिश्रय में युष्कों के अन्तर्गत के सार्थक रूप का चित्रण उपर्युक्त उपन्यासों में सफलतापूर्वक किया है।

"अखि मेरी बाकी उनका" उपन्यास के माध्यम से माघसे जी ने समाज में व्याप्त अनैतिकता, भ्रष्टाचार तथा सुविधाभोगियों का चित्रण अनेक सामाजिक संरक्षकों तथा समाज के विभिन्न राजनीतिक नेताओं और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के माध्यम से किया है। लेखक सबसे पहले अनाथ शिशु की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालता है। जब कोई ईसाई मन उस

लड़के को ले जाती है तो जनता में धमतिरण पर वाद विवाद खड़ा हो जाता है। इसके बाद लेखक ने पाठशाला तथा कालेज में छात्र-छात्राओं तथा शिक्षकों की स्थिति पर कड़ा व्यंग्य किया है। जहाँ पर ज्ञान का दान दिया जाता है वहाँ पर व्यर्थ गपशप शोर मचावा हो रहा है। दफ्तरों में आलसी और लापरवाही का चित्रण हाक छत्र के माध्यम से किया। अस्पताल में फेली भ्रूटाचार का भी उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् सर्वोदारी, कम्युनिस्ट, समाजवादी, कश्मि, दक्षिणपंथी, मुस्लिम तथा पारसी विचारधाराओं में विश्वास रखने वालों तथा इनके महिला सहकर्मी मित्रों का भी लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया है। इन सभी नेताओं में व्याप्त स्वाई की भावना को परदेफाश किया है।

ठा० माखे ने आज की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों में मनुष्य की बेबसी और सुविधाभोगी नेताओं के कार्यक्लापों को बड़ी खेबाकी के साथ उद्घाटित किया है। इन नेताओं की सहकर्मी मित्र महिलाएँ भी इन्हीं के नक़्शे कदम हैं। नारी सदा प्रेरणा का स्रोत रही है उसे अपने सदाचरण और कर्मों द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। लेकिन ये भी किलाबी ज्ञान के सहारे सुविधाओं के बीच जीती हुई देश सेवा की चिन्ता किया करती है। जिस दल से ये संबंधित है उनके सदस्यों को जानने समझने में इनकी रुचि नहीं है। बस इसी एक बात की फिक्क है इन्हें कि सुविधा उन्हें कितनी मिल पा रही है ?

अध्याय - छः

उपसंहार

अध्याय - छः

उपसंहार

डॉ० मुभाकर माधवे आधुनिक हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ प्रयोगवादी कवि एवं लेखक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में अपना योगदान दिया है। कविता, उपन्यास, कहानी, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध आदि के क्षेत्रों में उन्होंने सृजन किया है। प्रयोगवादी साहित्यकार होने के कारण उन्होंने साहित्य में नये नये प्रयोग किये हैं। इन्होंने अपने जीवन काल के अंतर्गत हिंदी, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं में लगभग सौ से अधिक ग्रंथों को लिखा और संपादित किया। इनका लगभग दस हजार पृष्ठों का साहित्य विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपा है। वे केवल एक साहित्यकार ही नहीं थे बल्कि एक पत्रकार भी थे। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में "चोथा संसार" पत्रिका के संपादक के रूप में काम कर रहे थे।

वस्तुतः डॉ० माधवे जी का रचना संसार व्यापक एवं विशिष्ट है।
विशेषतः इनके उपन्यास हिंदी उपन्यास साहित्य में अपना अलग महत्त्व रखते हैं। इनके उपन्यास सामान्यतः लघु होने पर भी विचारों की गंभीरता लिये हुए रहते हैं। इन उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण सरल रूप से हुआ है। उपन्यासकार का भी आशय यह है कि उपन्यास का सृजन मुख्य विषय पर ही और वह विषय सामाजिक यथार्थ से जुड़ कर रहे। इस कारण ही डॉ० माधवे जी के उपन्यासों में कहीं पर भी अधिक कल्पनापूर्ण वर्णन या

आदर्श का चित्रण नहीं मिलता है। डॉ० माधवे समाज में जो यथार्थ देखते हैं उसी का अपने दृष्टि, ज्ञान और अनुभव के माध्यम से पाठक को बोध कराने हेतु कथात्मक रूप में सृजन करते हैं। इस प्रकार इनके उपन्यास मुख्य घटना या विषय को लेकर पाठक के सामने यथार्थ का बोध कराने आते हैं।

इनके उपन्यासों की एक और विशेषता यह है कि किसी घटना या समस्या का चित्रण करते हुए उपन्यासकार उस घटना या समस्या का ऐतिहासिक विवरण भी प्रस्तुत करता है। इस प्रकार डॉ० माधवे जी पाठक को हृदय स्पर्श करने वाले यथार्थ से ही नहीं अवगत कराते बल्कि मस्तिष्क को भी उपन्यासों के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं की सूचनाएं देते हैं। शायद इसीलिए डॉ० माधवे जी को "चिंतन प्रधान उपन्यासकार" कहा जाता है। इस प्रकार अपने तथ्यों को और अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए वे वेद, उपनिषद्, पुराण और अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथों से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उपन्यासों के बीच में कहीं-कहीं महापुरुषों एवं प्रसिद्ध चिंतकों के विचारों, उद्धरणों का भी उल्लेख किया गया है। इन उपन्यासों में बीच-बीच में विषय वस्तु के अनुकूल कविताएं भी दी गयी हैं। कविताएं कहीं हिंदी की हैं तो कहीं अंग्रेजी या अन्य भाषाओं से अनूदित हैं। इस प्रकार उपन्यास में विषय वस्तु से मेल खाती हुई कविताओं का समावेश करना शायद एक नया प्रयोग है।

डॉ० प्रभाकर माधवे ने अपने उपन्यासों में वैविध्यपूर्ण विषय वस्तु को लिया है। प्रत्येक उपन्यास में एक रोक्क तथा सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण घटना या समस्या को अपने उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु बनाया है। इस प्रकार वैविध्य पूर्ण विषय वस्तु का चुनाव करने के पीछे उपन्यासकार की सामाजिक परिप्रेक्ष्य पर गहरी पकड़ है। इस प्रकार उपन्यासकार समाज में व्याप्त सभी समस्याओं तथा वैषम्यों का गहरा अध्ययन किया है। इसी कारण समाज में फैले समस्याओं का चित्रण अपने उपन्यासों में यथार्थ के

साथ करता है। वस्तुतः यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध ये तीनों शब्द दिखने में एक जैसे लगने पर भी इन के अंतर्गत सूक्ष्म भिन्नता है। "यथार्थ" जीवन की सच्ची अनुभूति है जिसमें हम अपने जीवन में घटित होने वाले राग-विराग, सुख-दुःख और अन्य भावनाओं का अनुभव करते हैं। अपनी इन्द्रियों के द्वारा समाज में होने वाले सभी प्रकार के क्रिया कलापों का अनुभव करना ही यथार्थ है। इस यथार्थ की अनुभूति के कारण चिंतक या साहित्यकार में एक विशिष्ट सैद्धांतिक विचारधारा उत्पन्न होती है उसी को यथार्थवाद कहते हैं। "यथार्थबोध" यथार्थ को ग्रहण करने वाले और उसको दूसरों तक पहुंचाने वाले का होता है। अर्थात् लेखक या साहित्यकार समाज में जो देखता है उसको पाठक तक यथातथ्य पहुंचाने का जो प्रयास करता है वह यथार्थबोध कहलाता है। लेखक समाज से यथार्थ को ग्रहण करते समय उसकी दृष्टि विचार और अनुभव का पुष्कल प्रभाव रहता है। इसी कारण यथार्थ एक होने पर भी भिन्न भिन्न लेखकों का यथार्थ बोध भिन्न भिन्न होता है।

ऐसे "यथार्थवाद" जैसी सैद्धांतिक विचारधारा में अनेक प्रकार के यथार्थवादों का विकास हुआ है। इनमें मुख्य है - समाजवादी यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, पुक्त्ववादी यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, अतियथार्थवाद, आदर्शानुसृत यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, पार्श्वात्य दर्शन की देन है। कार्ल मार्क्स, काउत्स, प्लौवर जोला, हावर्ड पास्ट, अन्स्ट फिशर, एंगेल्स जैसे विचारकों का यथार्थ के विश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

उपन्यास से यथार्थ का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। आधुनिक साहित्य में यथार्थ का चित्रण जितना विस्तार से और सशक्त रूप में उपन्यास साहित्य में होता है उतना अन्य विधा में शायद ही हो। उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसके अन्दर आधुनिक जीवन की सभी अनुभूतियों को विशिष्टतः विसंगतियों

और विक्षेपताओं को चित्रित कर सकते हैं। इस प्रकार जीवन का यथार्थ सही अर्थों में हम उपन्यासों में देख सकते हैं।

हिंदी उपन्यास साहित्य पर एक दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि उपन्यास के आरंभिक काल में यथार्थ का चित्रण अधिक नहीं हो रहा था। इस काल के उपन्यासों का मुख्य ध्येय मात्र पाठकों का मनोरंजन करना था। इस कारण सन् 1915 ई.वी. तक के लगभग सभी उपन्यासों में मनोरंजन के तत्त्व प्रधान रूप से रहने लगे थे। विशिष्ट ऐयाशी और तिलस्मी तत्वों से पूर्ण उपन्यासों की अधिक लोकप्रियता थी। इस कारण इस काल के उपन्यासों में उपन्यासकार कल्पना लोक में विचरण करते थे। यद्यपि कुछ समाज सुधार वादी कथा वस्तु के उपन्यास इस काल में लिखे गये पर भी उनमें रुढ़िवादिता परंपरागत संस्कार और आदर्शवादिता का आवरण रहने के कारण समाज की वस्तुस्थिति का चित्रण कम हो पाया था। इस प्रकार उपन्यास के आरंभिक काल, जिसे हम शैशव काल कह सकते हैं - में यथार्थ का चित्रण पूरा न होने पर भी आंशिक रूप में हो रहा था।

हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचन्द के आगमन से उपन्यास विधा का कायाकलन हो गया। आरंभिक काल में उपन्यासों में जो कल्पना लोक का वर्णन होता था उसका यहाँ पर बहिष्कार किया गया। इस प्रकार सन् 1915 ई० वी० के आसपास से सन् 1936 तक हिंदी उपन्यास को प्रेमचन्द ने एक सही दिशा और दृष्टि प्रदान की। प्रेमचन्द के जमाने में ही उपन्यास को सीधा समाज से जोड़ने का सफल प्रयास किया गया। इस काल में समाज का चित्रण जो उपन्यासों में होता था वह वस्तुस्थिति का यथार्थ चित्रण रहता था। इस प्रकार प्रेमचन्द काल में उपन्यास ने जीवन की अनुभूतियों को व्याख्यायित करने वाली संश्लेष विधा का रूप धारण किया।

प्रेमचन्दोत्तर काल में उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण विस्तृत स्तर पर होने लगा । इस दृष्टि से हम प्रेमचन्दोत्तर युग को दो छंटों में विभाजित करके देख सकते हैं - एक प्रेमचन्दोत्तर युग १९३६ - १९६० और दूसरा साठोत्तरी युग १९६०-८०। इन दो छंटों में भी उपन्यासों में यथार्थ के अनेक रूपों का चित्रण हुआ है । विशेषतः समाजवादी यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद, पुस्तकवाद, अतिथार्थवाद, आदर्शान्मुख यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद आदि विचारधाराएं इस काल के उपन्यासों में दिखाई देती हैं । इस संबंध में यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि किसी भी उपन्यास में किसी एक यथार्थवाद के रूप को लेकर कथा वस्तु नहीं लिखी जा सकती । वस्तु वस्तु के अनुसार एक ही उपन्यास में एक से अधिक यथार्थवाद के रूपों को परिलक्षित कर सकते हैं । हाँ, इतना कह सकते हैं कि किसी उपन्यास में अग्रे प्रकार के यथार्थवाद का चित्रण अधिक प्रभावी रहा है । इस प्रकार कह सकते हैं कि प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण बहुत सूक्ष्मता के साथ हुआ है और यह जीवन के मानवीय पक्षों का सुंदर चित्रण करने में सक्षम रहा है ।

जब हम इसी उपन्यास साहित्य के परिप्रेक्ष्य में डॉ० प्रभाकर माधवे के उपन्यासों का विश्लेषण करते हैं तो स्पष्ट होता है कि इनके उपन्यासों में सामाजिक परिदृश्य का चित्रण अत्यंत यथार्थ के साथ किया गया है । इसी कारण इनके लगभग १६ उपन्यासों में वैविध्यपूर्ण कथा वस्तुओं का यथार्थरूप चित्रण हुआ है । जैसा कि पहले कहा गया है कि रचनाकार को सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करने के लिए दृष्टि विचार और अनुभव की आवश्यकता होती है । डॉ० माधवे के पास इन तीनों विशेषताओं का अपार भण्डार है । इस कारण वे न सिर्फ देश के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, और राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण कर पाये हैं बल्कि विदेशी संस्कृति और वहाँ की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का भी सूक्ष्म रूप से चित्रण कर सके हैं । इसका साक्ष्य उनका उपन्यास साहित्य ही है ।

डॉ० पुभाकर माधवे के उपन्यासों में सबसे पहले यदि सामाजिक वर्गीय पृष्ठभूमि को देखे तो स्पष्ट होता है कि उन्होंने लगभग अपने सभी उपन्यासों में समाज में व्याप्त मध्य तथा निम्न वर्गों का व्यापक स्तर पर विश्लेषण किया है। पुस्तकें वर्ग की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए उनकी विशेषताओं तथा विसंगतियों पर भी प्रकाश डाला गया है। इनके उपन्यासों में उच्च वर्ग का चित्रण जमींदारों, भूस्वामियों, राजपति, सैन और मिल मालिकों के माध्यम से हुआ है। इस वर्ग के विशेषताओं के प्रस्तुत करते हुए माधवे जी का कहना है कि यह वर्ग अधिक स्वाधीन रहता है। अधिक लाभ कमाने के लिए निम्न वर्ग का शोषण करता है। यथ्यता और संस्कृति के आड में काले कारनामे करता है। विशेषतः अपनी यौन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए निम्नवर्गीय महिलाओं को अपने पास में बांध लेता है जिसके लिए वह धन का लालच दिखाता है या फिर उनमें समाज में अमायादा होने का भय पैदा करता है। इसके अलावा यह वर्ग अपने स्वार्थ के लिए देश या समाज का हित नहीं सोचता। वह अपने लाभ के लिए जो चाहे कर सकता है। इन्होंने विशेषताओं को डॉ० माधवे ने "परन्तु", "एकतारा", "साँचा", "छूत", "दशभुजा" और "लापता" आदि अपने उपन्यासों में उच्च वर्ग के प्रतिनिधि पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है।

इस प्रकार उच्च वर्ग का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए डॉ० माधवे जी अपने उपन्यासों के माध्यम से कहना चाहते हैं कि यह वर्ग अपने स्वार्थ के लिए अपनी बहन की मान मर्यादा को भी व्यापार को दृष्टि से देख सकता है। देश का हित भी उसके लिए कोई मायने नहीं रहता, वे अंग्रेजों को माल वितरण करने का ठेका लेते हैं, उनके विज्ञापन अपने समाचार पत्रों में छापते हैं और निम्नवर्ग का श्रम और अर्थ का शोषण ता आम बात है।

डॉ० माचवे अपने उपन्यासों में मध्य वर्ग का भी यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया है। मध्यवर्ग का ऐसा वर्ग है जिसके पास जीने योग्य सुविधाएं भी पर्याप्त नहीं हैं उसी की परिपूर्ति के लिए यह वर्ग जीवन पर्यन्त संघर्ष में जुड़ता रहता है। मध्यवर्ग न उच्च वर्ग वर्ग के समान सकल भोग किलास और सुख सुविधाओं के साथ है और न ही निम्नवर्ग की तरह केवल श्रम को बंध कर जीविका कमाती है। यह इन दो वर्गों के बीच का वर्ग है। इसकी समस्याएं और इसके जीवन विधान में अनेक जटिलताएं और विसंगतियां हैं। इसी कारण इस का जीवन निर्वाह उच्च तथा निम्न वर्ग के मुकाबले में बहुत ही संश्लिष्ट है। इस वर्ग को सबसे मुख्य समस्या आर्थिक है। आर्थिक अभाव में भी अपने सभी आकांक्षाओं को यह वर्ग पूरा कर लेना चाहता है। इसी के कारण इसके जीवन में संघर्ष उत्पन्न होता है। मनस्वि स्व में कुंठाएं उत्पन्न होती हैं, हीनता ग्रंथि घर करती है। दूसरों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष की भावना जागृत होती है। इसके कलस्वरूप परिवारों में विघटन हो जाता है। प्रति पत्नी में तनाव पैदा होता है। इन्हीं विसंगतियों और विशेषताओं का माचवे जी ने अपने उपन्यासों "परन्तु", "एकतारा", "दशभुजा", "किशोर", "किसलिए", "कहां से कहा", दशभुजा और "लापता" आदि उपन्यासों में चित्रित किया है। इन उपन्यासों में मध्यवर्ग का एक जीता जागत चित्र प्रस्तुत होता है जिसमें उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का तथा मनोवृत्तियों का यथार्थ रूप सामने आता है।

निम्नवर्ग का चित्रण डॉ० माचवे ने लगभग सभी उपन्यासों में किया है। माचवे जी की यह विशेषता है कि उपन्यास का आकार लघु होने के बावजूद सामाजिक समस्याओं का चित्रण संक्षिप्त और सार गर्भित रूप से करते हैं। निम्नवर्ग के चित्रण के संदर्भ में माचवे जीने यही किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में विशेषतः, "सांवा", "जो", "किशोर", "दर्द के पैबन्द", "किसलिए", "घूत", "लक्ष्मीबेन", "कहां से कहा", "दशभुजा" आदि के माध्यम

माध्यम से इस वर्ग के सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इस वर्ग की सबसे बड़ी समस्या है अज्ञान और अधाभाव। इसी के कारण समाज में उच्च वर्ग के द्वारा इन वर्गों का शोषण हो रहा है। कहीं कोई एकाध निम्नवर्ग का व्यक्ति शोषण के प्रति विद्रोह करने लगता है तो उच्च वर्ग उसे तुरन्त धन या पुरासन की मदद से कुचल देती है। इस प्रकार निम्न वर्ग का सब कुछ शोषण हो रहा है। इस वर्ग के स्थितियों की हालत तो और भी दयनीय है। उच्चवर्ग के पुरुष इनको अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उपयोग कर लेते हैं। इस प्रकार डॉ० माचवे जी अनेक विश्वेस्ताओं के साथ इस वर्ग का चित्रण यथार्थ रूप से करने में सफल रहे हैं।

माचवे जी के उपन्यासों में चित्रित विभिन्न वर्गों की विश्वेस्ताओं और विसंगतियों के आधार पर यही कह सकते हैं कि समाज में वर्ग वैषम्य की भावना के पीछे आर्थिक परिस्थिति मुख्य कारण है। आर्थिक दृष्टि से यदि समानता आ जाती है तो समाज में वर्गीय भेद भाव नहीं रहेगा। विश्वेस्तः निम्नवर्ग में चेतना लाने के लिए औपचारिक समाज सुधार के बदले पूरे मन से समाज सुधार करने वालों की आवश्यकता है। इसी कारण माचवे जी ने अपने अनेक उपन्यासों में सरकारी अन्तर्धान से समाज सुधार करने वाले समितियों पर व्यंग्य का प्रहार किया है। इस प्रकार माचवे जी ने अपने उपन्यासों में उच्च मध्य तथा निम्न वर्गों की विश्वेस्ताओं से पाठक की यथार्थ बोध करने का सफल प्रयास किया है।

डॉ० माचवे ने अपने उपन्यासों में एक और समस्या की और सभी का दृष्टि आकृष्ट किया है। वह समस्या है औद्योगीकरण की। औद्योगीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने के कारण देश विदेश में अतृप्तपूर्व विकास होने लगा है।

विशेषतः आर्थिक दृष्टि से अनेक देश सम्पन्न होने लगे हैं। इस कारण औद्योगीकरण देश के विकास के लिए मेरुदण्ड बन गया है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया भारत में भी 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से आरम्भ हो गई। देश के सामाजिक ढाँचे पर इसका प्रभाव पड़ने लगा। इस कारण देश की सामाजिक व्यवस्था में अभूतपूर्व परिवर्तन आने लगा। विशेषतः देहातों की जनता काम के लिए शहरों को ओर बढ़ने लगी। जिन-जिन शहरों में मिल कारखाने लगाये गये थे वहाँ पर गंदी बस्तियों का निर्माण होने लगा। इस प्रकार औद्योगीकरण के कारण आर्थिक दृष्टि से देश का हित होने के बावजूद सामाजिक दृष्टि से बहुत धिक् पड़ गई है। विशेषतः नगरीकरण के कारण गाँवों का पतन, दुर्बलता तथा अपराधों की वृद्धि नैतिक मूल्यों में परिवर्तन और मिस-कारखानों के कारण उपजे उब और अलग-अलग आदि। प्रवृत्तियाँ विचारणीय हैं। इन्हीं विशेषताओं के साथ माचवे जीने आने उपन्यास "साँघा" और "घूत" में औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण किया है।

डॉ० माचवे इन उपन्यासों के माध्यम से कहते हैं कि औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप मनुष्य के व्यक्तित्व का ह्रास हो रहा है। वह अपनी स्वतंत्रता खोते जा रहे हैं। वह अपने जीवन का विकास करने के बदले उसे संकुचित करता जा रहा है। आधुनिक काल में मनुष्य का व्यक्तित्व छिड़ित होते जा रहा है। मशीन का महत्त्व बढ़ते जा रहा है और मनुष्य का घटते जा रहा है। इसके कारण मनुष्य में अनेक प्रकार के मानसिक तनाव उत्पन्न हो रहे हैं। उसमें कूँठा, हीनता की भावना धर कर रही है। इसका कारण भी स्पष्ट है कि वह जिस मिल में काम करता है वहाँ पर उसका शोषण होता है, परिणाम स्वरूप मजदूरी बहुत कम मिलती है। वह जब भी शहरों को छोड़कर गाँवों में नहीं ले सकता इस कारण मिल के पास ही गंदी

नाली के कीड़े की तरह अपना जीवन बिताने के लिए विवश होता है। वह जिस झुग्गी - झोपड़ी में रहता है उसमें न तो रोशनी और पानी की व्यवस्था होती है और न ही स्वच्छता का पृबंध। इसी प्रकार उन मजदूरों के लिए न मनोरंजन का कोई साधन होता है और न ही स्वास्थ्य की देख-भाल के लिए अस्पताल। फिर भी मजदूर अपने गाँव और परिवार के सदस्यों को छोड़कर जीविका के लिए एक कोटरी वाली नीची छत की झुग्गी-झोपड़ी में रहने के लिए विवश है।

माचवे जी ने अपने उपन्यास साँचा और "छूत" के माध्यम से यह भी स्पष्ट किया है कि औद्योगीकरण के कारण मनुष्य के सृजनात्मक एवं स्वस्थ विकास में बाधा उत्पन्न होती है। माचवे जी अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर यह स्पष्ट कर चुके हैं कि ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था ही मनुष्य को स्वस्थ सृजनात्मक एवं क्रियाशील बना रखती है और उसके मानवीय विभिन्न गुणों - दया, प्रेम, ममता, परोपकार आदि को विकसित करती है। ग्रामीण सामाजिक, व्यवस्था का ह्रास होना मानवीयता का हनन है। वे मानवीय गुणों का मनुष्य में लुप्त होने का दोष भी औद्योगीकरण को ही देते हैं। "छूत" निर्मल उपन्यास में माचवे ने अपने कल्पना पूर्ण शक्ति से जो इस्पात नगरी का निर्माण किया है, उसके माध्यम से औद्योगीकरण प्रक्रिया को अतिस्थायी दृष्टि से चित्रित किया है।

डॉ० माचवे ने अपने उपन्यासों में अनेक ऐसे समस्याओं का चित्रण किया है जो समाज में ज्वलंत रूप से उभर रहे हैं। इनके उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं विशेषतः नारी जीवन की समस्याएं, विश्व में व्याप्त रंगभेद समस्या और उसके परिप्रेक्ष्य में भारतीय वर्ण भेद समस्या, पीढ़ियों के अंतराल

के कारण उत्पन्न समस्याएं, युवावर्ग की समस्याएं तथा समाज और राज-नीति में कौसी अनैतिकता की समस्या का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया गया है। माधवे ने तुल्येक समस्या को चाहे वह पुच्छ हो या गौण - अतीत के ऐतिहासिक विवेचन के साथ विश्लेषण करने का सफल प्रयास किया है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि डॉ० पुभाकर माधवे जी के सोलह उपन्यासों में लगभग आधे उपन्यास मात्र नारी जीवन को केन्द्र में रखकर लिखे गये हैं। "डाभा", "एकतारा", "दर्द के पैबन्द", "लक्ष्मीबेन", "दशभुजा", "अन्देशी" आदि उपन्यासों में नारी समस्याओं का विवेचन अधिक विस्तार से किया गया है। माधवे जी ने नारी के समस्याओं को भावनात्मक पक्ष से ज्यादा बौद्धिक पक्ष से अधिक विचार किया है। तुल्येक समस्या को अतीत से जोड़ कर देखने का प्रयास किया है। इसी कारण उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक धरातल के आधार पर वेद, पुराण तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से समस्या का ऐतिहासिक स्वरूप को स्पष्ट किया है। डॉ० माधवे जी अपने उपन्यासों में नारी के ररावलंबी जीवन के प्रति होने वाले भेद भाव तथा अत्याचारों का विस्तृत विवरण उन्होंने अपने उपन्यासों में दिया है। माधवे जी ने अपने उपन्यासों में विशेषतः नारी संबंधी, इन समस्याओं के बारे में यथार्थ चित्रण किया है - प्रेम, दहेज, विवाह, परित्यक्ता नारी, बलात्कार, सती, तलाक, भरण पोषण, कन्याओं की बिक्री, पुरुष प्रधान समाज में समान अधिकार आदि। इन समस्याओं का चित्रण केवल भावनात्मक स्तर पर नहीं किया है बल्कि सम-कालीन परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बिठाते हुए सम्कालीन समाज में इन समस्याओं का समाधान किस प्रकार होगा ? कानून और संविधान में स्त्रियों के कौन - कौन से अधिकार हैं ? आदि प्रश्नों का समाधान भी

पुस्तुत करने का सकल प्रयास किया है। इसी प्रकार माचवे जी ने शोषित पीडित तथा दमित नारी का वैयक्तिक अनुभवों को भी पाठक के सामने प्रस्तुत करने के लिए उसकी मानसिक स्थिति का तथा मूल हृदय वेदना का यथार्थ चित्रण किया है। इसके लिए लेखक ने सभी प्रकार के ग्रामीण शहरी, शिक्षित - अशिक्षित, ग्रहणी - कामकाजी, देशी - विदेशी, सम्पन्न-विपन्न, और बालिका, युवती तथा वृद्ध महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का चित्रण सफलता पूर्वक किया है। इसप्रकार हम कह सकते हैं कि डा० माचवे जी ने नारी जीवन के सभी मुख्य अंशों का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। वे नारी के समस्याओं के बारे में चिन्तित अपने उपन्यासों में किया है। वे नारी के समस्याओं के बारे में चिन्तित करते हुए कहते हैं कि वह समाज की एक अंग होते हुए भी समाज उसके प्रति मानवीय संवेदना नहीं दिखा पा रहा है। वह बाज के आधुनिक परिस्थितियों में भी पुरुष पर निर्भर होने में विवश है।

सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत माचवे जी ने विश्व में व्याप्त रंग भेद समस्या का चित्रण भी किया है। शायद डा० प्रभाकर माचवे हिंदी के पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने इस विषय पर उपन्यास लिखा है। वस्तुतः रंग भेद समस्या विश्व के अनेक देशों में व्याप्त है। अमेरिका में रबेत और अरबेत लोगों के बीच चल रहे सामाजिक संघर्ष को स्वयं देखकर लेखक ने इस उपन्यास को लिखा है। इस कारण उपन्यासकार माचवे के उपन्यास "जो" में चित्रित सभी घटनाएं यथार्थ पर आधारित हैं।

"जो" उपन्यास के माध्यम से लेखक ने अमेरिका में पूँजीवादी समाज व्यवस्था में अश्वेतों के प्रति होने वाले अन्याय अत्याचार एवं शोषण का

पदांश किया है। केवल शारीरिक रंग के आधार पर किसी के पुति भेद-भाव करना अमेरिका जैसे विकसित देशवासियों के लिए लज्जा का विषय है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने जो नामक नीग्रो का चरित्र उभारते हुए नीग्रो जाति की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का आकलन किया है। इस समस्या के परिप्रेक्ष्य में ही भारत में अनादिकाल से व्याप्त अस्पृश्य समस्या के बारे में भी लेखक ने इस उपन्यास में उल्लेख किया है। इस उपन्यास के पात्र रामन जो लेखक का स्थानापन्न है और उसका मित्र मुस्लमन जो दलित है, के माध्यम से भारत में सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अस्पृश्यता का वर्णन किया है। माघवे इस उपन्यास में यह भी विषय स्पष्ट करते हैं कि भारत के दलित सोचते हैं कि अमेरिका जैसे विकसित देशों में नीग्रो जाति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार आ गई होगी। किन्तु अपने देश में दलितों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। अमेरिका के नीग्रो सोचते हैं कि भारत में ऐसी रंगभेद समस्या नहीं होगी, वहाँ के सभी लोग एक जैसे होंगे। किन्तु अमेरिका के नीग्रो को नहीं पता कि भारत में भी जाति के नाम पर वही भेदभाव को अपनाया जा रहा है जो अमेरिका में श्वेत अश्वेतों के पुति अनाते है।

इस प्रकार उपन्यासकार एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का चिन्म करते हुए कहते हैं कि इस समस्या के पीछे एक मात्र कारण शोषण की पुवृत्ति है।

आधुनिक समाज की सबसे विकराल समस्या पीढ़ियों के अन्तराल की है। वर्तमान परिस्थितियों में हर नयी पीढ़ी अपनी विचार धारा को ही सही मानती है और अपने से पुरानी पीढ़ी को घोर रुढ़िवादी करार कर देती है। अपने उपन्यास "तीस चालीस पचास" में इस समस्या का चिन्म

किया है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक स्पष्ट करना चाहता है कि पीढ़ियों के अन्तरालों के कारण सामाजिक व्यवस्था में कलकली मच जाती है। पुण्येक पीढ़ी अपने विचारों पर अडा रहना चाहती है। हर पीढ़ी अपने से परानी पीढ़ी को रुढ़िवादी और आदर्शवादी मान्यताओं से अधी समझती है और अपने से आगे वाली पीढ़ी को किङ्गोही और अराजकतावादी समझती है। यह परम्परा ऐसी ही चलती रहती है। "तीस चालीस पचास" उपन्यास में एक ही परिवार के तीनों पीढ़ियों के छः सदस्यों को लेकर उपन्यासकार ने पीढ़ी दर पीढ़ी में आने वाली वैचारिक भिन्नता पर प्रकाश डाला है। लेखक यह भी स्पष्ट करते हैं कि पुरानी पीढ़ी हमेशा अपने आदर्श, विश्वास और आस्था पर जीना चाहती है और अपने संतान को भी उसी मार्ग में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। "तीस चालीस पचास" उपन्यास में आचार्य वसुदेव और उनकी पत्नी सरला पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि पात्र हैं जिन्हें माध्यम से लेखक ने पुरानी पीढ़ी के रुचियों, मान्यताओं और विश्वासों पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास की दूसरी पीढ़ी है मोहन तथा उसकी पत्नी रुक्माना। यह पीढ़ी समझती है कि पुरानी पीढ़ी अधी विश्वासों और कठोर आदर्शवादिता में डूब गई है। मोहन स्वयं को आधुनिक समझता है और वह वैज्ञानिक भी है। समाजवाद के प्रति आकर्षित होकर मुसलमान लड़की रुक्माना से शादी कर लेता है। किन्तु उसके साथ समाज ने बुरा व्यवहार किया। उसे जाति बाहर कर दिया। पिता ने उसे स्वेच्छाचारी कहा, समाजवादी पीढ़ी ने एनर्किस्ट कह कर निकाला। उसमें प्रतिकार की भावना जागृत हुई। मार्क्सवाद विरोधी साहित्य पढ़ने लगा।

इस उपन्यास में तीसरी पीढ़ी अनिरुद्ध और उषा की है। इस पीढ़ी के पास कोई कमी नहीं है। इन्हें बचपन से सुख सुविधा मिला गया है। इसी

कारण इस पीढ़ी के लोग अंधवादी भोग विलास में विश्वास करते हैं। उन्हें रात-दिन में कोई रूख नहीं कहाँ चाय कीदुकान पर कहीं खेल के मैदान में घंटों बिताते हैं। सभी चिन्ताओं को एक गोली खाकर दूर करना चाहते हैं। इनमें न कोई सरकार है और न कोई आदर्श। यह पीढ़ी अराजकता-वाद की प्रतीक है।

अंत में लेखक कहना चाहता है कि पुरानी पीढ़ी अपने आदर्शों और मान्यताओं पर टिकी है और नई पीढ़ी सांसारिक बन्धनों को तोड़ कर भोग करने में व्यस्त है, पुंम को जैविक प्रक्रिया मानती है और अराजकवाद का प्रतीक है। किन्तु जो इन दोनों के बीच की पीढ़ी है वह न पुरानी पीढ़ी में मिल सकती है और न ही नई पीढ़ी में मिल सकती है। इस प्रकार इस बीच की पीढ़ी के अपने विशेष समस्याएँ हैं। इस प्रकार माचवे न पीढ़ियों के अन्तराल के माध्यम से बदलते हुए मान्यताओं पर प्रकाश डाला है।

"किशोर" तथा "लापता" उपन्यासों के माध्यम से उपन्यासकार डॉ० माचवे जी ने युवावर्ग में व्याप्त होने वाली असंतोष की भावना का चित्रण किया है। इन उपन्यासों में युवकों की मानसिक समस्याओं का मनोवैज्ञानिक धरातल पर यथार्थ का चित्रण किया गया है। समाज तथा देश में मूल भूत परिवर्तन क लाने में सक्षम युवावर्ग आज निराश, कूँटा, अलगाव-पन, अकेलापन आदि भावनाओं से भ्रू ग्रसित है। उसकी अद्भुत कार्य क्षमता व्यर्थ ही चली जा रही है। वह नित्य असंतोष में रह रही है। उसे न समाज और न ही सरकार दिशा निर्देश दे रहे हैं। उसके घर में, समाज में सभी जगहों पर अपमान हो रहा है। यही अपमान की भावना, यही असंतोष की भावना और यही निराश की भावना से उसके मन विद्रोह का रूप धारण रही है। इसी के कारण "किशोर" उपन्यास का किशोर तथा

"लापता" उपन्यास का "अरविंद" घर में नहीं रहना चाहते । किशोर घर से निकल जाने का सहास नहीं कर पाता, जैसे ही अपमान के झूट पीते हुए रहता है । "लापता" का अरविंद घर से निकल जाता है और पागल की तरह अपनी पहचान मिटाने के प्रयत्न में दर - दर देश और विदेश में घूमता है । किन्तु वह अपने आपको अजनबी और अकेला समझने लगता है और अन्ततः घर लौट कर आता है । "किशोर" उपन्यास का किशोर अपने में स्थित असंतोष आत्महीनता आदि के कारण अन्तःमुखी विद्रोही हो जाता है और यह अन्तःमुखी विद्रोह छात्रान्दोलन के समय क्षणिक आवेश में फूट पड़ता है । जिसके फलस्वरूप किशोर "बस" जला देता है । इस प्रकार इन उपन्यासों के माध्यम से लेखक यही कहना चाहता है कि परिवार में युवकों के प्रति पूर्ण दृष्टि और ईर्ष्या की भावना से नहीं देखना चाहिए । उनके प्रति सहृदयता स्नेह, ममता, प्यार और सहानुभूति दिखाना चाहिए । परिवार में उत्पन्न छोटी सी असंतोष की भावना ही उसमें अलगाव की भावना उत्पन्न कर सकती है । अतः युवकों के प्रति आत्मीय भावना रखना आवश्यक है ।

सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में व्याप्त अनैतिकता का चित्रण भी डॉ० माधवे ने अपने उपन्यासों में किया है । विशेषतः "आंखे मेरी, बाकी उनका" उपन्यास में समाज में फैली बेइमानी, भ्रष्टाचार और अन्याय का यथार्थ चित्रण किया है । इस उपन्यास में इन कुरीतियों का चित्रण दो खंडों में किया है । पहले खंड में सामाजिक व्यवस्था के अनेक संस्थाओं में फैली अनैतिकता का पदार्पण किया जाता है । दूसरे खंड में विभिन्न राजनैतिक व्यक्तियों के चरित्र चित्रण करते हुए उनमें नैतिकता का अंश कितना है, देखने का प्रयास किया गया है । पहले खंड में एकवनाथ शिंदे की सामाजिक स्थिति क्या होगी इस प्रश्न पर विचार किया गया है । उस शिशु का पालन-पोषण का भार कोई नहीं उठाते जब एक इसाई "नन" आकर उसे ले जाती है, तब

समाज के लोगों में धर्मावरण पर व्यर्थ खर्चा शुरू होती है। इसी प्रकार पाठ-शाला तथा कालेज में विद्यार्थियों तथा प्राध्यापकों की नैतिक मूल्यों पर व्यय किया गया है। माचवे कहते हैं - दिन-ब-दिन हमारे देश में शिक्षा का स्तर गिरने का कारण अध्यापक ही है। सरकारों कायालियों में लापरवाही और जाबस्ती का चित्रण "डाक घर" के माध्यम से किया है। अस्पताल में जहाँ प्राणों की रक्षा होनी चाहिए वहीं पर प्राणों से खेलने का चित्रण भी किया गया है। अस्पताल में फैली घूसखोरी और भ्रष्टाचार का इस उपन्यास में यथार्थ चित्रण किया गया है।

इस उपन्यास के दूसरे छण्ड के अंतर्गत देश के विभिन्न विचारधारा वाले राजनैतिक और सम्प्रदाय के नेताओं तथा उनके सहकर्मी महिला मित्रों का चरित्र चित्रण किया गया है। इनमें सर्वोदयी नेता दादा जी और उनकी अन्तेवासिनी कान्तिबेन, कामरेठ बिशनचन्द और उनकी राजनैतिक सह प्रवासिनी क्लिक्स, पूजा समाजवादी के नेता काले और उनकी मानी हुई बहन विजया ताई, कांग्रेस के गोपीनाथ गुप्ता जी और दानवीरा सेठानो सीतादेवी, दक्षिणमधी पं० कृष्णा जी शुक्ला जी और उनकी पठोस की समिति की कार्यकर्ती शशी, मुस्लिम के सेयद अनवर हुसैन और उनकी कालेज की सहसंगिनी हस्ना तथा पारसी के मि० तोपबाक्सवाला और उनकी पार्टी सेक्रेटरी दारुवाला के माध्यम से लेखक ने सभी संस्थाओं तथा सभी व्यक्तियों में फैली स्वाधीनता, बेहमानी और भ्रष्टाचार का व्यापक पूर्ण दृष्टि से चित्रित किया है।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखक का कहना यही है कि समाज में सभी स्थानों पर अनैतिकता पनप रही है। कहीं अनैतिक संबंध के कारण कुल्ले संतान पैदा हो रही है और कहीं लापरवाही और जाबस्ती के कारण छात्रों

का भविष्य नाश हो रहा है। देश के कर्णधार माने जाने वाले राजनैतिक नेताओं में स्वार्थरता, भाई भतीजावाद और भ्रष्टाचार छर कर लिया है। समाज में धीरे धीरे न्याय, धर्म और परांपरा की भावनाएं लुप्त होते जा रहे हैं।

इस प्रकार समसामयिक यथार्थबोध की दृष्टि से गुभाकर माधवे के उपन्यासों के सतर्क विवेचन से निम्नलिखित त्रयीक्षताएं उभरती हैं -

1. गुभाकर माधवे का उपन्यास लेखन समसामयिक यथार्थबोध से संतुलित और परिचालित है, कलस्वस्व उपन्यास और यथार्थ जीवन की परस्परसम्बन्धन पृष्ठ करता है।

2. माधवे जी के उपन्यासों में यथार्थ चित्रण ऐतिहासिक परिदृश्य एवं शृंखला में तार्किक आधार और संवेदनात्मक ज्ञान के संदर्भ में हुआ है।

3. उनके उपन्यासों में आज के यथार्थ के प्रमुख विचारणीय मुद्दे उठाये गये हैं जैसे - नारी जीवन की ब्रासदी, औद्योगिकरण और यंत्रीकरण के कारण विकृष्ट मानव जीवन, आर्थिक संकट के कारण मूल्यों में गिरावट, और मानवीय संबंधों की एकात्मकता का विघटन, वर्ग विभक्त समाज के वर्गानुबंधों का चित्रण, पीढ़ियों के अन्तराल के कारण उत्पन्न समस्याएं तथा राष्ट्रीय स्तर पर अस्पृश्यता तो अन्तराष्ट्रीय स्तर पर रंगभेद की पक्षपात पूर्ण प्रवृत्ति का चित्रण।

संदर्भ ग्रंथ सूची

मूल ग्रंथ : डा० पुभाकर माचवे के उपन्यास

1. परन्तु हिंदी पुष्पकार संस्थान, पी.बी.एस न० 106
पिशाचनमौचन, वाराणसी-1
संस्करण : 1964
2. एकतारा हिंदी पुष्पकार संस्थान, पी.बी.एस न० 106
पिशाचनमौचन वाराणसी-1
संस्करण: 1964
3. द्रामा किताब घर, गांधी नगर, दिल्ली-110 031
पुथम संस्करण : 1986
4. साधा -उही-
5. "जो" भारतीय ज्ञानपीठ, प्रधान कार्यालय
9 क्लोवर पार्क प्लेस कलकत्ता-27
पुथम संस्करण: 1964
6. किशोर कृष्णा बुक्स, कचहरी रोड, कजमेर,
द्वितीय सं० : 1977
7. तीस-चलीस-पचास राजपाल एंड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली
पहला संस्करण: 1973
8. दर्द के पेबन्द साहित्य भवन पुता लिमिटेड के पी कक्कई
रोड, इलाहाबाद- 211 003.
पुथम संस्करण - 1974
9. किसान राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
पुथम संस्करण: 1975
10. "धूत" राजपाल एंड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली
पहला: संस्करण : 1976

11. लक्ष्मीबेन राजपाल एंड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली
पहला संस्करण : 1977
12. कहाँ से कहाँ पूर्वोदय प्रकाशन 718 दरिया गंज
नई दिल्ली- 110 002.
प्रथम संस्करण : 1978
13. दशभुजा विभूति प्रकाशन, के. 14, नवीन शाहदरा
दिल्ली- 110 032
प्रथम संस्करण 1981
14. आँसे मेरी, बाकी उनका विभूति प्रकाशन के. 14 नवीन शाहदरा
दिल्ली- 110 032.
प्रथम संस्करण- 1983
15. लापता राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट,
दिल्ली- 110 006.
प्रथम संस्करण - 1984
16. ऊन्देसी पूर्वोदय प्रकाशन प्रो. लि. 718 दरिया गंज
दिल्ली- 110 002.
प्रथम संस्करण - 1988

सहायक ग्रंथ सूची

हिंदी ग्रंथ

क्र.सं.	ग्रन्थकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
1.	अग्रवाल भारत भूषण	हिंदी उपन्यासों पर पश्चात्त्य प्रभाव	दिग्दर्शनचरण जैन ग्रंथमंदिर जैन एवं संतति 21 दरियागंज नई दिल्ली- 2 संस्करण : प्रथम
2.	कुमार जेनेन्दु	समय और हम	पूर्वादेय प्रकाशन 7/8 दरियागंज नई दिल्ली-2 संस्करण: 1985
3.	कुमार, सतीश	आदमी दर आदमी	अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. 2/36 अन्सारी रोड दरियागंज दिल्ली-6 प्रथम संस्करण : 1966
4.	वैवल्या, मदन	पश्चात्त्य साहित्य शास्त्र की भूमिका	अनुम प्रकाशन जय जयपुर प्रथम संस्करण: 1972
5.	गुप्त, रघुराज	भारत में समाज कल्याण और सुरक्षा	किताब महल 56 ए जी री रोड हलाहाबाद चौथा संस्करण: 1883
6.	गुप्त विश्वम्भरदयाल	उपन्यास का समाज शास्त्र	श्री प्रिन्सिंग हाउस 4056 अजमेरी गेट दिल्ली- 110 006 प्रथम संस्करण- 1979
7.	गुप्त सूर्य	हिंदी उपन्यास वार्षिकी 1976	सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली- 110 006 प्रथम संस्करण: 1976

कु.सं. गुन्थाकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
8. गौकावकर सुधाकर	मार्क्सवाद और हिंदी कहानी	विद्या विहार 87/40ए आचार्य नगर कानपुर-3 प्रथम संस्करण: 1979
9. चन्द्र, बिस्सा कृष्ण कुमार	साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राज-नीतिक चेतना	दिनमान प्रकाशन 3014, चण्डी-लान दिल्ली- 110 006 प्रथम संस्करण: 1984
10. बुध सत्यपाल	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की बिरुप विधि	इकाई प्रकाशन 16 पुरुषोत्तम नगर हिममतगंज, इलाहाबाद-1 प्रथम संस्करण: 1968
11. जायसवाल अमर पुसाद गणेश पुसाद	हिंदी लघु उपन्यास	विद्या विहार 106/154 गांधी नगर कानपुर-12 प्रथम संस्करण: 1984
12. जैन अरविन्द	औरत होने की सजा	विकास & प्रेस बॉक्स 9/221 मेन रोड दिल्ली- 110 031 प्रथम संस्करण: 1994
13. जैन ज्योतिपुसाद	भारतीय इतिहास: एक दृष्टि	भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन काशी प्रथम संस्करण : 1961
14. जैन रविन्द्रकुमार	अन्यास: सिद्धांत और संरचना	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज दिल्ली- 6 प्रथम संस्करण - 1972
15. टंडन पुतापनारायण	हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना ॥प्रेमचन्द्र युग॥	लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ प्रथम संस्करण: 1956

क्र.सं. ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
16. तलवार स्वर्णिता	हिंदी उपन्यास और नारी समस्याएं	जयभारती प्रकाशन, 447 पत्नीस कोटी नई बस्ती कीडमंज इलाहाबाद- 211 003. प्रथम संस्करण- 1992
17. तिवारी राममूजन	राष्ट्रवात्य काव्य शारत्र	राधाकृष्ण प्रकाशन 2, अन्सारी रोड दरियागंज, दिल्ली-6 प्रथम संस्करण - 1971
18. त्यागी सुमित्रा	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य मे जीवन दर्शन	साहित्य प्रकाशन, मालीवाडा दिल्ली प्रथम संस्करण: 1978
19. विवाडी राममूरतन	भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति	किताब महल 56 ए जीरो रोड इलाहाबाद. प्रथम संस्करण 1962
20. देसाई रास्कान्त	साठोत्तरी हिंदी उपन्यास	सूर्य प्रकाशन नई सडक दिल्ली-6 प्रथम संस्करण: 1984
21. दिवेदी हजारी मुसाद	विचार और विवर्क	साहित्य भवन इलाहाबाद तृतीय संस्करण : 1969
22. -वही-	साहित्य सहचर	लौक भारती प्रकाशन संस्करण 1975
23. "निर्मम" हेमराज	हिंदी उपन्यासों मे मूयवर्ग 1936 से 1975 ई॥	विभू प्रकाशन साहिबाबाद- 201 005 प्रथम संस्करण: 1978
24. पटेल स्व॥ नित्यानंद	प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य मे सांस्कृतिक चेतना	लिपि प्रकाशन 1 अन्सारी रोड दरियागंज नई दिल्ली- 2 प्रथम संस्करण- 1980

क्र.सं	ग्रन्थकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
25.	पाठक मारुतिनंदन॥सं॥डा० पुभाकर माचड़े	सौ दृष्टिकोण	पारमिता प्रकाशन अनुग्रहदरी कालोनी गया॥बिहार॥823 001 प्रथम संस्करण: 1988
26.	पाँददार हनुमान पुसाद	श्रीमद्भगवद्गीता	गोविन्द भवन वापलिय गीता प्रेस गौरखपुर-213 005 तृतीय संस्करण : सं 2051
27	पुसाद शंकर	सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान	अनुपम प्रकाशन पटना- 6 प्रथम संस्करण: 1978
28.	प्रेमचन्द	साहित्य का उद्देश्य	हंस प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण : 1967
29.	इन्धन हरिश्चंराय व अन्य ॥सं॥	समसामयिक हिंदी साहित्य	साहित्य अकादमी रवीन्द्र भवन नई दिल्ली- 1, संस्करण 1967
30.	बडौले भीरथ	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में मानव मूल्य और उपलब्धियाँ	स्मृति प्रकाशन 124 शहरार भाग इलाहाबाद- 211 003 प्रथम सं: 1983
31.	बादिवहेकर, चंद्रकांत	आधुनिक हिंदी उपन्यास सृजन और आलोचना	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002* प्रथम संस्करण: 1985
32.	बाला, रोल	हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास	सत्य सदन, सराङ्गी, बाराबंकी प्रथम सं: 1973

कृ.स	गुंथकार	गुंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
33.	बुधकर कमलकांत व जयसवाल शिव	अंबर-अर्ण ॥ठाण्णुभाकर माचवे का सारस्वत समादर॥	आयास प्रकाशन, हरिद्वार संस्करण 1981
34.	भटनागर प्रेम	हिंदी उपन्यास शिल्प ज्दलते परिप्रेक्ष्य	अर्चना प्रकाशन 10सी जालूपुरा जयपुर प्रथम संस्करण 1968
35.	भट्ट, भू सिंह	मध्यवर्गीय चेतना और हिंदी उपन्यास	श्याम प्रकाशन इण्डिया कालोनी जयपुर-302 003. प्रथम संस्करण: 1987
36.	माचवे, प्रभाकर	सादल्ला की छरी छरी	माचवे, ई-180, गेट र कैलाश नई दिल्ली- 110 048. संस्करण- 1992.
37.	मिश्र रामदरश	हिंदी उपन्यास: एक अन्तर्धान	राजकमल प्रकाशन गु.लि. 8, नेताजी, सुभाष मार्ग नयी दिल्ली- 110 002. द्वितीय संस्करण : 1982.
38.	मिश्र, शिवकमार	यथार्थवाद	मैकमिलन इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली. प्रथम संस्करण : 1975
39.	"रत्नाकर मोहनलाल गुप्तवन्द युगका हिंदी उपन्यास		दिग्दर्शनचरण जैन वृक्षभरण जैन एवं सन्तति 21 दरियागंज नई दिल्ली- 110 003 प्रथम संस्करण: 1979

क्र.सं०	ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
40*	रवीन्द्रनाथ टैगोर	मावसंवाद और हिंदी उपन्यास	वाणी प्रकाशन, 61 एफ कलानगर दिल्ली - 110 007 संस्करण
41*	रस्तोगी, शैल	हिंदी उपन्यासों में नारी	किशु प्रकाशन साहिबजाबाद-201005 प्रथम संस्करण 1977
42*	राशिा रणवीर	हिंदी साहित्य- कारों से साक्षा- कार	किताब घर 24/4866 अंतारी रोड दरिया गंज, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1991*
43*	रा. कौशल कुमार	नगरीय समाजशास्त्र	बेल्मबा विकासभवन वाराणसी प्रथम संस्करण : सं० 2022
44*	रेखा कृष्णा	ग्रभाकर नाचवे के हिंदी उपन्यास	किशूति प्रकाशन के 14, नवीन शाहदरा दिल्ली- 110 032 संस्करण 1985
45*	लोटा महावीर साल	हिंदी उपन्यासों का साहित्य विवेचन	श्रीनि बोंहरा बोंहरा प्रकाशन धौरुडीका रास्ता जयपुर संस्करण 1972
46*	कक्षा विजय	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के संदर्भ में महाराष्ट्र की भूमिका	दिव्यदर्शन जैन एवं संतति 4697/5- 21 ए दरिया गंज नयी दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1987
47*	जर्मा, जेनेवद	हिंदी काव्य में मावसंवादी धेतना	रामबाग कानपुर- 12 प्रथम संस्करण 1974
48*	जर्मा प्रभा	हिंदी उपन्यास: सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप 1960 से 1980 तक	बलाचिक्ल पब्लिशिंग कंपनी ॥ 28 शापिंग सेंटर ॥ करमपुरा नई दिल्ली - 110 015 प्रथम संस्करण 1990

क्र.सं. ग्रंथिकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रकाशन वर्ष
49. ठडोरा आशारानी	नारी शोषण आदि और आचाम	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरिया गंज, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण - 1994
50. -वधो-	भारतीय नारी दशा और शिक्षा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरिया गंज नयी दिल्ली- 2 प्रथम संस्करण - 1983
51. -वधो-	सरोकार	आर्य प्रकाशन गांधी नगर दिल्ली - 110 031 प्रथम संस्करण- 1916
52. शर्मा जगदीश	पारवात्म काव्य शास्त्र	आशोक प्रकाशन नई सड़क दिल्ली- 110 001 प्रथम संस्करण - 1979
53. शर्मा देवेन्द्रनाथ व गोपाल राय	हिंदी साहित्याब्द कोश 1973	ग्रंथ निवेदन 67/24 राजेन्द्र स्टोन - 800 016 प्रथम संस्करण - 1973
54. शर्मा भवतराम	मावर्तवाद और हिंदी कविता	वाणी प्रकाशन 61-एफ कमानगर दिल्ली - 110 007 प्रथम संस्करण - 1980
55. शर्मा मधुसूदन	हिंदी उपन्यास: विकास और समीक्षा	प्रभारत प्रकाशन 205 चाव्ही जाजार दिल्ली - 6 संस्करण 1970
56. शर्मा रामावलाल	मावर्त और पिछड़े हृदय समाज	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण- 1986
57. शर्मा रामविलास	मानव सभ्यता का विकास	वाणी प्रकाशन हंसारी मार्ग दरिया गंज नई दिल्ली - 2 द्वितीय संस्करण - 1991

क्र.सं	प्रकाशक	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण और प्रकाशन वर्ष
58.	शर्मा शेखर	सम्झाली न सखिदना और हिंदी नाटक	भायना प्रकाशन 174सी पटपठगंज दिल्ली- 2 प्रथम संस्करण 1988
59.	शुक्ल रामचन्द्र	हिंदी साहित्य का इतिहास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, आर.ए.पी. पुनर्मुद्रण सं० 2025
60.	श्रीवास्तव बीना	हिंदी उपन्यास का विकास और महत्व- योग्य चेतना	एस.जी. क्लानी द्वारा मैकमिलन इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1981
61.	समसेना ओमवती	प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यासों में काँ सौंदर्य	सूर्य प्रकाशन मंदिर विस्तार का चोक बीकानेर प्रथम संस्करण - 1986
62.	सरस्वती दिग्विजय	हिंदी उपन्यासों में नारी का मनो- वैज्ञानिक विश्लेषण	पुस्तक संस्थान 190/50 ए मेडर नगर कानपुर-208012 संस्करण - 1974
63.	साहित्याध्ययन दाल	दर्शन दिग्दर्शन	किताब मकान बलाहाबाद संस्करण 1978
64.	साहनी भीष्म व अन्य ११	आधुनिक हिंदी उपन्यास	जाकिर हुसैन कालिदास की ओर से राज्यपाल प्रकाशन प्रा.लि. 8 मेलाजी सुभाष मार्ग नयी दिल्ली- 110 003 प्रथम संस्करण - 1980
65.	सिंह, त्रिभुवन सिंह	हिंदी उपन्यास और यथाकाल	हिंदी ग्रंथारक पुस्तकालय की 21/30 पिशाचमोचन वाराणसी - 1 चतुर्थ संस्करण - 2022 वी

क्र.सं. ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण व प्रकाशन वर्ष
66. सिंह, दिनेश प्रसाद	प्रेमचन्दः विविध आद्याम	अनुपम प्रकाशन पटना-4 प्रथम संस्करण - 1983
67. सिंह बीरेन्द्र प्रताप पाण्डेय, रावि प्रकाश	सम्कालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति	विजय प्रकाशन मंदिर लो के 15/53 ए रुडिया वाराणसी प्रथम संस्करण - 1979
68. सिंह रामशोभित प्रसाद	हिंदी उपन्यासः प्रेम-चन्दोत्तर काल 1937-1947 ई.	दिग्दर्शन चरण जैन बुकचरण जैन एवं सन्तति 4662/21 दरियागल नई दिल्ली- 2 संस्करण - 1981
69. शिवकर	आलोचना के आधुनिक वाद और नयी समीक्षा	राज्य बुक सेंटर के 38/9 गोलधर वाराणसी - 1 प्रथम संस्करण - 1978
70. सिंह श्रीराम	आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य में चित्रित समस्याएँ और आलोचन के संदर्भ में	राष्ट्रीय साहित्य अका 36 गौतम बुक मार्ग लखन प्रथम संस्करण 1985
71. सिंह सुखवीर सिंह	समीक्षा के नए प्रतिमान	कविता प्रकाशन 3/4 762 अन्सारी रोड दरिया गल दिल्ली - 2 प्रथम संस्करण - 1980
72. स्वर्णिता	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि	विवेक पब्लिशिंग हाउस लाल जी साहू का रास्ता जयपुर संस्करण : 1975
73. हिंदी विभाग संपादन, पुणे विद्यापीठ, पुणे	संछोत्तर हिंदी साहित्य का परिचय	भारत पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागल नई दिल्ली- 3 प्रथम संस्करण 1987

अंग्रेजी व अनुदित ग्रंथ

क्र.सं. ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण प्रकाशन वर्ष
74. कार्पुशियन तथा अन्य	प्रगति: बर्द्धात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद की सरल रूप रेखा	प्रगति प्रकाशन मास्को संस्करण : 1977
75. एंड्रिये बिपन अनुवादक: डी आर चौधरी	भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास यदि राज्य एक प्रोड काप इकनामिक मैगनेलियम इन इंडिया	अनामिका प्रकाशन 106 बी एन वार्ड जी अजोक विहार दिल्ली - 110 052 चितीय संस्करण - 1993
76. थापर रोमिला अनुवादक: एम पी सहजल एवं मोहन गुप्ता	भारत का इतिहास	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 807 संस्करण 1987
77. भारद्वाज ए.एन	अस्पृश्यता एवं मानवता	किताब घर, मेन रोड, गांधी नगर दिल्ली - 1 प्रथम संस्करण - 1987
78. मार्क्स कार्ल	ए काम्यूनिस्म टू द क्रिटिक ऑफ पॉलिटीकल इकनोमी इंग्लिश	प्रगति प्रकाशन मास्को पाँचवा मुद्रण: 1984
79. मार्क्स तथा एंगेल्स	काम्युनिस्ट पार्टी का प्रोपगण्डा	प्रगति प्रकाशन मास्को संस्करण - 1985
80. जर्नेर मैक्स अनुवादक आर पी सिंह	अमेरिकी संस्था	रामलाल पुरी, संवाक आत्मा राम एण्ड सन्स जयपुरी गेट दिल्ली प्रथम संस्करण - 1963

क्र.स	ग्रंथकार	ग्रंथ	प्रकाशक, संस्करण एवं प्रस्करण वर्ष
81.	वाट, वायन अनुवादक सरिन धर्मपाल	उपन्यास का उदय	निदेशक हरियाणा हिंदी ग्रंथ अकादमी कण्ठीगढ़ प्र.सं. 1974
82.	सेन, सुकोमल अनुवादक: वार एस चादव्यू	भारत का मजदूर आंदोलन 1830- 1970। सून और आंदोलन का इतिहास।	जागची एंड कंपनी 266 बी बी गार्गुली स्ट्रीट कलकत्ता - 12 प्रथम संस्करण - 1986
83.	खबीब हरकान	भारतीय इतिहास में जाति और मुद्रा	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस बांसी रोड नयी दिल्ली प्रथम संस्करण - 1935

शब्द कोश

84. कश्यप, सुभाष तथा विरदना गुप्त दुसरे राजनीति कोश
85. श्रीरेन्द्र वर्मा - हिंदी साहित्य कोश
86. मीर दुसरे मानविकी परिभाषिक कोश साहित्य छपड़
87. प्रसाद, कालिका दुसरे हिंदी बृहत् कोश

पत्र पत्रिकाएँ

88. आजकल : अंक 4 अगस्त 1991
89. अग्रिम : अंक 13 16-31 जुलाई 1991
90. नवभारत टाइम्स दैनिक 23 जून, 1991

91* प्रकर - फरवरी 1985

92* मधुमती - सितम्बर, 1989

93* याजना [तेलुगु] 15 एवं 30 नवम्बर, 1993

94* सम्मालीन सृजन : संस्कृतिक 7 - 8, जुलाई - दिसंबर, 1990
[जाति भेद और रंग भेद विरोधाक]